मिश्रित

लोह पुरुष

सरदार वल्लभभाई पटेल

लेखक

श्री दीनानाथ व्यास 'काव्यालङ्कार'

"सरदार पटेल अपने स्वयं के क्षेत्र में महान हैं और वे एक योग्यतम शासक भी हैं।"

—महात्मा गांधी : प्रवचन १५-१-४८

प्रथमावृत्ति] १९४८ [मूल्य ८)

प्रकाशक—

विनोद पुस्तक मन्दिर

हास्पीटल रोड, आगरा।
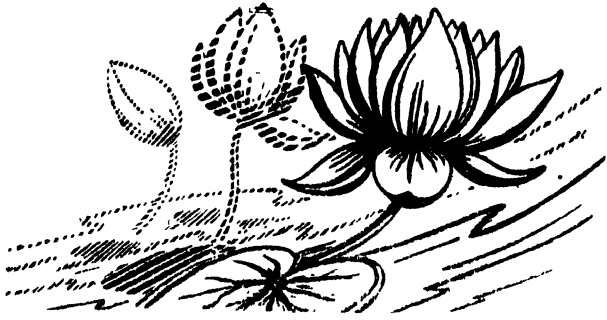
मुद्रक—

श्री हनूमान प्रिंटिंग वर्क्स,

गुड़ की मण्डी, आगरा।

प्राच्य विद्या महार्णव, विद्या वाचस्पति,
साहित्य वाचस्पति,
राजकवि
परम पूज्य,

पंडित गिरिधरजी शर्मा "नवरत्न"

झालरापाटन

के

वात्सल्यमय, ममत्वमय कर कमलों
में

पुत्रवत्
दीनानाथ व्यास

पुस्तक की राम कहानी-

इस पुस्तक के लिखने की भी एक कहानी है, और यही इसकी भूमिका है। पुस्तक लिखने की आवश्यकता महसूस करने के बाद, शीघ्र ही, सरदार पटेल के विषय में सामग्री जुटाने के लिये मैंने चेष्टा आरम्भ की। दो माह के यथेष्ट पत्र व्यवहार के बाद, मुझे, यह जान कर कम आश्चर्य नहीं हुआ कि इस विशाल देशके इस महामानव पर, गुजराती होते हुए भी गुजराती में बहुत ही कम लिखा गया है। हो सकता है कि इसमें मेरे परिचय क्षेत्र का सीमित होना भी एक कारण हो, पर जहाँ तक मेरा विश्वास है, इसमें सरदार पटेल की इस ओर उदासीनता और फलस्वरूप लेखकों और प्रकाशकों की उदासीनता ही इसका मुख्य कारण है। सरदार पटेल कर्मवीर हैं, वे काम करना जानते हैं, लिखने और पढ़ने का उन्हें कम ही शौक है। मैंने अनुभव किया कि गुजराती ही नहीं, हिन्दी और अंग्रेजी में भी, उनपर नहीं के बराबर ही लिखा गया है। ऐसी कठिनाइयों के होते हुए कार्यारम्भ किस प्रकार किया जाय। अतः इस समस्या में कई दिनों तक उलझे रहने के बाद, दृढ़ निश्चय के साथ लिखना आरम्भ कर ही दिया और परिणामस्वरूप यह जीवनी आपके सम्मुख उपस्थित है।

सरदार पटेल का व्यक्तिगत जीवन उनकी बैरिस्टरी तक ही सीमित है। इसके बाद उनपर राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का प्रभाव पड़ा और कुछ ही दिनों में इनका स्वतन्त्र अस्तित्व गांधीजी में विलीन हो गया। बैरिस्टरी छोड़ने के बाद की सरदार पटेल की जीवनी देश के स्वतंत्र्य संग्राम का इतिहास है। हजार चेष्टा करने पर भी वे इससे पृथक् नहीं किये जा सकते। ऐसी परिस्थिति में, कई मामलों में सरदार पटेल का स्वतन्त्र व्यक्तित्व मानकर उनपर कलम उठाना बहुत ही खतरनाक है। इन खतरों से बचने तथा पुस्तक के प्रधान "हीरो" के साथ न्याय करने के लिये, मैंने उन अध्यायों को, जिनमें घटनाचक्र के

साथ पटेल साहब का प्रधान सम्बन्ध है, या कहिये कि वे जिनमें प्रधान संचालक के रूप में रहे हैं, काफी विस्तृत लिखा है और जिनमें वे प्रधान होकर भी प्रधानवत् दृष्टिगोचर न होकर अन्दरूनी तौर पर कार्य संचालन करते रहे, वहाँ घटनाओं को इस ढङ्ग पर लिखा गया है कि पुस्तक तथा घटनाओं का क्रम टूटकर उसमें अरोचकता उत्पन्न न हो जाय। तीसरे, जहाँ सरदार पटेल केवल एक दर्शक के रूप में रह गये हैं वहाँ उनके भाषणादि इस ढङ्ग से रखे गये हैं कि पढ़ने वाला देश की परिस्थितियों और गतिविधियों से अनभिज्ञ न रह जाये। पूरी पुस्तक में खयाल यह रखा गया है कि पटेल साहब के महान व्यक्तित्व, साहस, सूझ, दृढ़ता, अपार संगठन शक्ति एवं राजनीतिक अन्तर्दृष्टि एवं पारदर्शिता की हर स्थल पर झलक देखने के लिये पाठक को परिश्रम न करना पड़े। गांधी जी के सम्पर्क में आने के २४–२५ वर्षों बाद भारत सरकार के रियासत विभाग के मन्त्री होने के बाद ही पटेल साहब का स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व पुनः प्रकाश में आया है।

सारांश यह कि इस जीवनी के लेखक को परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही ढङ्गों को अपनाना पड़ा है। जहाँ "हीरो" को घटनाचक्रों में प्रमुख भाग प्रत्यक्ष नहीं था वहाँ अप्रत्यक्ष ढङ्ग ही अपनाने को लाचार हो जाना पड़ा है। यह इसलिये अपनाना आवश्यक हुआ कि देश के, बीच के इतिहास की, शृंखला भङ्ग न हो जाय। यदि ऐसा होता तो जीवनी शृंखला हीन होकर पाठकों को अरुचिकर प्रतीत होने लगती।

जहाँ तक हो सका है इसमें प्रायः सभी पत्रव्यवहार, दस्तावेज, वक्तव्य, भाषण, समझौते, रियासती यथापूर्व समझौते, संधीकरण के प्रतिज्ञा-पत्र [Conventious] तथा तत्सम्बन्धी अन्य कागजात, प्रान्तीय विधान का मसविदा मूलभूत अधिकार समिति तथा अल्पसंख्यक समिति की रिपोर्ट तथा पूरक रिपोर्ट आदि अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं उपलब्ध तथा अनुपलब्ध. सामग्री प्रस्तुत की ही नहीं गई है वरन् यथा स्थान उस महत्वपूर्ण सामग्री का उपयोग भी किया गया है।

इस दृष्टि से, पर्याप्त सामग्री के उपलब्ध न होने के कारण, पुस्तक लिखने में, जिन कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ा है, उनको मद्देनजर रखते हुए आशा है कि प्रातः स्मरणीय महा-मानव का चरित्र होने के नाते, इसपर बिना कारण ही कुदृष्टि नहीं डाली जायेगी और इसपर उदार हृदय के साथ ही विचार किया जायेगा। तर्क और न्याय संगत सुझाव तो हर हालत में मान्य होंगे ही।

यदि इस बृहद जीवनी में कुछ विशेषताओं का समावेश हो गया हो, तो वह उन्हीं विद्वान एवं कर्मनिष्ठ त्यागी नेताओं और लेखकों की मेहनत का फल है, जिनकी सुकृतियों से मैंने आद्योपान्त फायदा उठाया है। और यदि इसमें कुछ खामियाँ हैं, तो वे मेरे प्रमाद और उपरोक्त साधनों की कमी हो के परिणाम स्वरूप हैं।

"कृष्ण जन्माष्टमी"

२८-८-४८

कवि कुटीर उज्जैन]

दीनानाथ व्यास

विषय सूची

सरदार पटेल

युद्ध के पूर्व

गुजरात ने भारतवर्ष के कितने ही महान् पुरुषों को जन्म दिया है। महान् सुधारक स्वामी दयानन्द ने गुजरात में ही प्रेरणा प्राप्त की। महात्मा गांधी ने तो गुजरात के नाम को सम्मानित ही नहीं बल्कि अमर ही कर दिया। पाकिस्तान के प्रवर्तक श्री मोहम्मदअली जिन्ना भले ही करांची में पैदा हुए हों, पर उनका समस्त जीवन गुजरात में ही व्यतीत हुआ है।

सरदार वल्लभभाई पटेल का जन्म ३१ अक्टूबर १८७५ ईस्वी में गुजरात प्रान्त के पेटलाद ताल्लुके के करमसद ग्राम में हुआ था। यह जात के कुरमी हैं और इनकी उपजाति लवा है। लवा उप-जाति के लोग मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री रामचन्द्र जी के सुपुत्र लव के वंशज माने जाते हैं। सरदार पटेल के पिता का नाम जबेर-भाई था। उनकी करमसद गाँव में कुछ जमीन थी, इसमें वे खेती किया करते थे। उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, पर साहस और दिलेरी के कार्यों में जबेरभाई विख्यात थे। सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध में वे महारानी लक्ष्मीबाई की बुन्देला सेना में भरती होकर बड़ी ही बहादुरी के साथ अंग्रेजों से लड़े थे। महारानी लक्ष्मीबाई युद्ध में परास्त हुईं और जबेरभाई बन्दी बना लिये गये। उन्हें महाराजा मल्हारराव के जेलखाने में रखा गया। उस समय की उनकी एक घटना अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। एक दिन

जेलखाने की कोठरी में बैठे ही बैठे उनकी नजर शतरंज खेलते हुए महाराजा मल्हारराव पर पड़ी। जवेरभाई शतरंज के मंजे हुए खिलाड़ी थे अतः वे खेल को दूर से ही बड़े गौर से देखने लगे। शतरंज की चाल में महाराजा मल्हारराव ज्यों ही चूके कि जवेरभाई से रुका नहीं गया। वे कैदी की स्थिति में ही वहीं से चिल्ला उठे—"राजन्! खोटी चाल मत चलो, अपने इन मोहरों को अमुक-अमुक जगह रखो।" महाराजा ने कैदी की बात सुन ली। वे सम्हल कर खेलने लगे और जवेरभाई की बतायी हुई चाल से जीत भी गये। इस पर तो मल्हारराव जवेरभाई से इतने प्रसन्न हुए कि उनकी सूझ के उपलक्ष में उन्होंने जवेरभाई को जेल से मुक्त कर दिया।

जवेर भाई का ६२ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ। उनका वृद्धावस्था में स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा था। उन्होंने अपना समस्त जीवन कठोर संयम के साथ व्यतीत किया था।

सरदार वल्लभभाई पर अपने पिता का ही असर पड़ा। उनमें आज जिस अदम्य साहस और अडिग सैनिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं वह उन्हे बिरासत में मिली हुई अमूल्य निधि है। वल्लभभाई बचपन में अपने पिता के साथ खेतों पर जाया करते थे और रास्ते भर पहाड़े याद करते जाते थे। वल्लभभाई का विशेष समय अपने पिता के सम्पर्क में ही व्यतीत होता था। वे आरंभ से ही अत्यन्त नटखट और चंचल थे। उनके यह गुण सभी को प्रकट होजाते थे।

कुछ बड़े हो जाने पर वल्लभभाई को नडियाद में पढ़ने बैठाया गया। वहाँ उनकी एक शिक्षक से खटक गई। शिक्षक बिक्री के लिये स्कूल में ही पढ़ाई सम्बन्धी सभी चीजें रखता था और लड़कों को उसी से चीजें खरीदने के लिये मजबूर भी करता था। उसका यह एक प्रकार का व्यवसाय था। वल्लभभाई ने इसका विरोध आरंभ किया। उन्होंने लड़कों को भड़काना शुरू किया कि

इस शिक्षक से कोई भी वस्तु नहीं खरीदी जाय। लड़के प्रायः सभी वल्लभभाई के कहने में थे। नतीजा यह हुआ कि शिक्षक से लड़कों ने चीजें खरीदना बन्द कर दिया। शिक्षक इस पर लड़कों से बहुत ही कठोरता का बर्ताव करने लगा। उसकी इस कठोरता से नाराज होकर वल्लभभाई के कहने पर लड़कों ने स्कूल न जाने की हड़ताल कर दी। छः-सात दिन स्कूल सुनसान,पड़ा रहा। आखिर में शिक्षक को ही झुकना पड़ा। इस हड़ताल के सर्वेसर्वा वल्लभभाई ही थे। यह उनके साहस का पहिला नमूना है। हड़ताल में भले ही वल्लभभाई को कामयाबी मिली पर शिक्षक उनसे बहुत ही क्रुद्ध था। अतः हर बात में झगड़े होते रहते थे। वल्लभभाई का उस स्कूल में निभाव होना अब कठिन ही था। कुछ समय के बाद उन्हें वह स्कूल छोड़ देना पड़ा। नड़ियाद से वे बड़ौदा चले आये।

बड़ौदे में जब वे मैट्रिक में पढ़ते थे तो उन्होंने संस्कृत छोड़कर गुजराती लेली। संस्कृत में वल्लभभाई की स्वतंत्र प्रकृति लाग नहीं खाती थी। जो शिक्षक उन्हें गुजराती पढ़ाते थे वे संस्कृत के पक्षपाती थे। उनका नाम छोटेलाल था। ज्यों ही वल्लभभाई संस्कृत छोड़कर गुजराती के शिक्षक के कमरे में घुसे कि व्यंग पूर्वक शिक्षक छोटेलाल ने कहा—"पधारो महापुरुष! तुम संस्कृत छोड़कर गुजराती लेने चले हो, पर जानते हो संस्कृत के बिना गुजराती आ ही नहीं सकती?"

वल्लभभाई कब चूकने वाले थे! उन्होंने फौरन ही अपने शिक्षक को उत्तर दिया—"यदि हम सभी संस्कृत पढ़ने लगते तो आपके दर्जे में कौन आता? और फिर आपकी यहाँ जरूरत ही क्या रह जाती?" एक १४ वर्ष के बालक का इतना कठोर उत्तर सुनकर शिक्षक तिलमिला उठा और उसने वल्लभभाई को बेन्च पर खड़ा कर दिया। इसके अलावा दैनिक दण्ड के रूप में उन्हें आदेश

दिया गया कि वे रोजाना पहाड़े लिखकर लाया करें। वल्लभभाई ने आज्ञा तो मानली पर शिक्षक नित्य पहाड़ों की संख्या बढ़ाता चला जाता था। मैट्रिक क्लास के विद्यार्थी से पट्टी पहाड़े लिखवाना यह उसका सरासर अपमान था। और वल्लभभाई जैसा विद्यार्थी तो इस अपमान को कभी भी बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। एक दिन जान बूझकर झगड़ा मोल लेने के लिये वे मदरसे में पहाड़े लिखकर नहीं लाये। शिक्षक ने पूछा—"पाड़े करके ले आये ?" पहाड़ों को गुजराती में पाड़े कहते हैं पर दूसरा अर्थ इससे गाय या भैंस के बच्चे भी लिया जाता है। वल्लभभाई खार खाये तो बैठे ही थे, उन्होंने तुरन्त ही शिक्षक को उत्तर दिया—पाड़े लाया तो था पर स्कूल के दरवाजे पर आते ही भड़क कर भाग गये।"

शिक्षक इस मुंहतोड़ जवाब से आग-बबूला होगया। उसने उन्हें हेडमास्टर के पास भिजवाया। हेडमास्टर से उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि मास्टर मैट्रिक क्लास के लड़के से रोजाना पहाड़े लिखवाता है, इससे मुझे कुछ भी लाभ नहीं होता, वरन् तमाम लड़कों में मेरा अपमान होता है। हेडमास्टर श्री नरवण ने उन्हें बिना कुछ कहे सुने क्लास में भेज दिया।

इसके कुछ दिनों बाद उन्होंने उसी शिक्षक से फिर झगड़ा मोल लिया। अब की बार वे स्कूल से निकाल दिये गये। वहाँ से वे फिर नड़ियाद चले आये और वहीं से मैट्रिक पास किया।

मैट्रिक पास करने के बाद वल्लभभाई की इच्छा आगे पढ़ने की थी पर उनके परिवार की स्थिति साधारण थी। वल्लभभाई बैरिस्ट्री पास करना चाहते थे पर इसके लिये विलायत जाना जरूरी था और घर में इतना धन नहीं था। बी० ए० या एम० ए० पास करने में वे व्यर्थ समय बरबाद नहीं करना चाहते थे।

बैरिस्टरी पास करने की लगन वल्लभभाइ के हृदय में इतनी तीव्र थी कि उन्होंने पैसा जोड़कर बाद में विलायत जाने की सोची। पर धन जुड़े कैसे ? उनके दिल में आया कि मुख्तारी पास की जाय और मुख्तारी शुरू करदी जाय। इससे पैसा जुड़ जाने पर बैरिस्टरी पास की जाय।

वल्लभभाई ने कुछ समय में ही मुख्तारी पास करली और गोधरा में काम भी आरंभ कर दिया। थोड़े समय के बाद वे वहाँ से बारसद चले आये और वहीं मुख्तारी करने लगे। मुख्तारी में आपको सफलता मिली। उनकी जिरह करने की सूझ अनोखी थी। साहसी प्रवृत्ति होने के कारण उनकी फौजदारी मामलों में दिलचस्पी भी बहुत अधिक थी। अपनी सबल वाक्शक्ति एवं जिरह की पटुता के कारण वे शीघ्र ही प्रसिद्ध होगये और बारसद के नामी मुख्तार माने जाने लगे। फौजदारी मामलों में विशेष अभिरुचि एवं प्रसिद्ध मामलों में सफलता मिलते रहने के कारण उनके पास धन भी खिच कर आने लगा।

जब वल्लभभाई इंगलैण्ड बैरिस्टरी के लिये जाने की तीव्र लालसा में धन एकत्रित करने में जुटे थे तभी गोधरा में प्लेग का प्रकोप हुआ। अदालत के एक नाजिर का लड़का प्लेग में आगया। वल्लभभाई ने उसकी हर प्रकार से सहायता की, पर वह लड़का चल बसा। छुआछातवश वल्लभभाई को भी एक गिल्टी निकल आई। वे सीधे नड़ियाद पहुँचे और अपनी ऐसी दशा के कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी को अपनी जन्मभूमि करमसद पहुँचा दिया। वल्लभभाई की धर्मपत्नी उन्हें इस दशा में छोड़कर जाने को तैयार नहीं थीं, किन्तु पति के विशेष आग्रह के कारण वे इन्कार नहीं कर सकीं। विधि का विधान एक अनोखी चीज है। वल्लभभाई ने पत्नी को प्लेग

से बचाने के लिये ही करमसद भेजा था पर पत्नी बीमार हो गई और वे खुद अच्छे हो गये। पत्नी की बीमारी का समाचार पाकर वे सीधे करमसद पहुँचे और वहाँ से पत्नी के इलाज के लिये उन्हें बम्बई पहुँचा आये। पत्नी की खबर रोजाना उनके पास पहुँचती रहती थी। कुछ समय बाद उन्हें अदालत में ही तार मिला, पर कार्यव्यस्त होने के कारण उन्होंने उसे जेब में रख लिया। जब उनकी जिरह खत्म हो गई तब उन्होंने तार निकाला और उसे पढ़ा। पत्नी की मृत्यु के समाचार से वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। कर्तव्य के आगे वल्लभ-भाई सब कुछ भूल जाते हैं। उनमें अपार कष्टों की गम्भीरतापूर्वक सह लेने की अनोखी क्षमता है।

मुख्तारी करते-करते उनके पास काफी पैसा एकत्रित होगया था। अतः वे विलायत जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने उसके लिए आवश्यक पत्र-व्यवहार भी आरम्भ कर दिया। उस पत्र-व्यवहार का एक पत्र उनके बड़े भाई स्वनामधन्य विट्ठलभाई पटेल, जो आगे चलकर भारतीय केन्द्रीय धारासभा के सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध प्रेसीडेण्ट हुए—के हाथों में पड़ गया। जब बड़े भाइ को वल्लभभाई के इरादों का पता लगा तो वह इन्हें समझाकर कहने लगे कि विलायत जाने का प्रथम अवसर बड़े भाई को मिलना चाहिए। पहिले मैं जाऊँगा उसके बाद तुम जा सकते हो। वल्लभभाई ने स्वीकार कर लिया। वल्लभभाई के त्याग का यह ज्वलन्त उदाहरण है। उन्हें जो पासपोर्ट मिला था उसमें वल्लभभाइ का संक्षिप्त नाम अंग्रेजी में "V. J. PATEL" लिखा था और यही नाम बड़े भाई का भी है। अतः पासपोर्ट में रद्दोबदल करवाने की आवश्यकता ही नहीं थी। वल्लभ-भाई ने बड़े भाई की इस बात को मान लिया। विट्ठलभाई विलायत चले गये और वल्लभभाई यहीं रहकर फिर धन एकत्रित करने के लिए जुट गये। यथा समय बड़े भाई बैरिस्टर होकर लौट आये और

"मेरी स्मृति में १९१३ की १३ वी फ़रवरी आती है जब सरदार पटेल ने विलायत से बम्बई के बन्दरगाह पर पैर रखा। पटेल दूसरे ही दिन अहमदाबाद पहुँच गये। पटेल का उस समय के प्रधान न्यायाधीश सर बेसिल स्कॉट से अच्छा परिचय था, इसीलिये उन्होंने पटेल साहब को मिलने के लिये बम्बई बुलाया। सर बेसिल ने उनका अच्छा स्वागत किया और उन्होंने पटेल साहब को हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। सर बेसिल ने गवर्नमैन्ट लॉ स्कूल (उस समय कालेज इसी नाम से पुकारा जाता था) में पटेल साहब को प्रोफेसरी का पद भी प्रदान करना चाहा। परन्तु स्कॉट सहाब का कहना यह था कि इसके लिये उन्हें बम्बई में स्थायी रूप से रहना चाहिये। लेकिन वल्लभभाई विकालत के पेशे के लिये आरम्भिक दिनों में बम्बई को पसन्द नहीं करते थे इसीलिये अहमदाबाद चले आये। अपने मुवक्किलों की सेवा करने के लिये उनके दिल में अपनी खास योजनाएँ थीं। अहमदाबाद में रहकर वे सार्वजनिक क्षेत्र में भी काम करना चाहते थे। यह भी एक संयोग की बात है कि पटेल सहाब के दो साल बाद महात्मा गान्धी ने भी सार्वजनिक कार्यों के लिये इसी शहर को चुना। अहमदाबाद की जनता को इस बात का गर्व और आनन्द होना चाहिये कि उनके शहर ने राष्ट्रीय कार्यों में प्रायः ३० वर्षों तक नेत्रत्व किया है।"

"युवक बैरिस्टर पटेल ने एक प्रतिभा सम्पन्न युवक के रूप में, जो अच्छे ढंग से सिले हुए अंग्रेजी लिबास तथा फेल्ट हैट-एक तरफ जरा झुकी हुई-लगाये, जूनियर बार (Bar) में प्रवेश किया। उस युवक की आँखें चमकीली तथा दृष्टि गहरी और पैनी थी। उसे ज्यादा बोलने की आदत नहीं थी। वह अपने मुलाकातियों का भी एक मुस्कराहट के साथ स्वागत करता था और उनसे प्रायः नहीं ही बोलता था। उसकी दृष्टि दृढ़ और हृदय मजबूत था ऐसा प्रतीत होता था कि

वह उषावस्था की भावना के साथ ही दुनिया के लोगों को देख रहा है वह जब कभी भी बोला, तो शब्दों पर वजन डालते हुए, गर्व के साथ ही बोला। उसके चेहरे पर हमेशा ही दृढ़ता और मौन के भाव झलकते थे। पटेल के आते ही जूनियर बार में एक प्रकार की जान सी आगई क्योंकि युवक पटेल सभी के आकर्षण का केन्द्र था। उसके व्यक्तित्व और रहन-सहन सभी में एक विशिष्ट प्रकार का आकर्षण था। जब वह किसी की ओर देखता तो उसके देखने के ढंग में आकर्षण, सम्मान, आतंक और शायद दबे हुए जोश की भावना स्पष्ट झलक जाती थी।"

"वकील की हैसियत से पटेल साहब फौजदारी में ज्यादा दिलचस्पी लेते थे। उनका गवाह से जिरह करने का ढंग अत्यन्त ही संक्षिप्त लेकिन चुभता हुआ होता था। उन्हें मनुष्य की बुद्धि का इतना अच्छा ज्ञान था कि एक बार गौर से किसी व्यक्ति को देखकर ही वे जान लेते थे कि इससे किस तरह अपने मतलब की बात निकाली जा सकती है। वे मनुष्य के स्वभाव की पहिली नजर में ही पूर्ण रूप से जांच करके उस पर जिरह द्वारा ऐसा हमला बोल देते थे कि वह सभल भी नहीं पाता था। उनकी पैरवी के ढंग से ही जाहिर होजाता था कि उनकी मामले की घटनाओं से कितनी जानकारी है और साथ ही यह भी स्पष्ट होजाता था कि उन्होंने अपने विरोधी पक्ष के मामले का भी कितनी गम्भीरता के साथ अध्ययन किया है। वे अपना बचाव और हमला दोनों के विषय में हमेशा ही पहिले से ही सावधान रहते थे। अहमदाबाद में उनकी प्रशंसा वकालत की दृष्टि से कम किन्तु निर्भीकता की दृष्टि से बहुत ही अधिक थी। साफ साफ कहने में वे अदालत के न्यायाधीषों से भी नहीं चूकते थे। वे जज को अपनी मर्यादा से कभी भी आगे नहीं बढ़ने देते थे और न वे कभी किसी जज का पुलिस की ओर अन्यायपूर्ण झुकाव बरदाश्त करते थे। यदि

उन्हें किसी जज का पुलिस की ओर या अपने विपक्षी की ओर अनावश्यक झुकाव दिखाई देता तो वे साफ-साफ जवाब दिये बिना चुप रह ही नहीं सकते थे।"

"पटेल साहब विकालत के पेशे को इस उद्देश्य से नहीं करते थे कि वे इससे अपार सम्पत्ति पैदा करके आराम, सुख और भोग-विलास का जीवन व्यतीत करें। वे एक साधारण गृहस्थी में पैदा हुए और किसान परिवार की तरह पले। वे बचपन से ही देहातियों की तकलीफों और कष्टों को अच्छी तरह जानने लगे थे और बचपन में ही उनके उद्धार के लिये सोचते रहते थे। बैरिस्टर पटेल किसानों की सेवा के लिये ही हमेशा सोचते और उनके कष्टों को दूर करने के लिये हमेशा तैयार रहते थे। उनके अध्ययन काल में उन्हें गरीबी से काफी मुठभेड़ करनी पडी किन्तु वे कभी भी परावलम्बी नहीं रहे। बचपन की इसी प्रवृत्ति ने आज उन्हें आज का सरदार वल्लभभाई पटेल बनाया है। प्रतिभा के साथ ही स्वावलम्बन, दृढ़ता एवं कठिन परिश्रम ने उनके आज के जीवन में जबरदस्त सहयोग दिया है।"

"यद्यपि सार्वजनिक सेवा ही उनके जीवन का लक्ष्य था फिर भी युवक पटेल हिन्दुस्थान में आने के साथ ही इसमें प्रविष्ट नहीं हुए। वे दूर से ही इन सब बातों को बड़े गौर से देखते, अध्ययन करते और अपने सम्बन्ध बढ़ाते रहे। उस समय के भारत में सार्वजनिक जीवन केवल वकीलों के ही हाथों में था। महात्मा गांधी ने अहमदाबाद में १९१५ में सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। वे भी अहमदाबाद के सार्वजनिक नेताओं से सम्बन्ध-स्थापित करने के लिये बहुत उत्सुक थे। इसी उद्देश्य को लेकर वे गुजरात क्लब में दो-तीन बार गये और वहाँ सत्याग्रह आश्रम के विषय के अपने विचारों को लोगों पर व्यक्त किया। वल्लभभाई गांधीजी की बातों को गौर से सुनते और कड़ी आलोचना करते। वे गान्धीजी के सामने अपने

विचार बड़ी ही कठोरता एवं निर्दयता के साथ पेश करते थे जब पहिली बार गांधीजी गुजरात क्लब में आये उस समय वल्लभभाई अपने एक दोस्त के साथ ब्रिज का खेल खेल रहे थे। मैं और श्री०ठाकोर वल्लभभाई के पास बैठे खेल देख रहे थे। गांधाजी के आने के साथ ही मैं उठ कर बुजुर्ग लोगों के पास, जहाँ गांधी जी बैठे थे, जाने को उद्यत हो हुआ कि वल्लभभाई ने मुझे बहुत ही तीव्र निन्दात्मक बातें कहीं जिससे मैं गांधीजी के असर में न आजाऊं। उन्होंने मुझे गांधीजी की ओर से निराश करने में कोई कसर उठा नहीं रखी थी। उस समय की उनकी बातों से कोई भी यह ख्याल तक नहीं कर सकता था कि यही कटुतम आलोचक आगे चलकर उन्हीं गांधीजी का परम विश्वस्त अनुयायी तथा गांधीवाद का कट्टर हामी और उनके नेतृत्व का सब से बड़ा सहायक हो जायेगा। लेकिन वल्लभभाई का जबर-दस्त परिवर्तन गांधीजी के साथ निरन्तर सहवास और सहयोग तथा वर्षों तक दोनों का साथ-साथ गरीबी और पराधीनता के विरुद्ध संग्राम और निस्वार्थ देश—सेवा के ही कारण हुआ।"

"प्रायः दो वर्षों तक अहमदाबाद में रहने पर भी वल्लभभाई और गांधीजी एक दूसरे से दूर ही रहे। १९१६ में अहमदाबाद म्यूनिसिपल्टी में प्रवेश करके वल्लभभाई ने स्वतन्त्रता के साथ पहिली बार सार्वजनिक जीवन में पदार्पण किया। उनकी विशेषताओं के कारण वे बहुत ही आगे आ गये। उन्होंने वहाँ के प्रबन्ध आदि की पूरी जानकारी प्राप्त करने तथा जनता के कल्याण के लिये रात और दिन एक कर दिये और सफाई कमेटी के अध्यक्ष होकर भी एक साधा-रण सफाई करने वाले का काम भी दिल खोल कर किया।"

"१८९६ के बाद यद्यपि देश के कुछ भागों में समय-समय पर प्लेग का आक्रमण होता रहा पर अहमदाबाद बड़े ही आश्चर्य जनक ढंग से प्लेग से बचा रहा। अलबत्ता अक्टूबर १९१७ में अहमदा-

बाद की प्लेग से थोड़ी बहुत हालत सोचनीय हुई थी। आमतौर से लोग शहर छोड़ कर झोंपड़ियों में रहने लगे और अदालतें भी प्रायः बन्द हो गई थीं। ऐसे समय में सफाई विभाग के अध्यक्ष की बड़ी गंभीर जिम्मेदारी थी। वल्लभभाई घबराने वाले जीव नहीं थे। वे बराबर शहर में ही रहे और अपने कर्मचारियों साथ सफाई के प्रबन्ध के लिये बराबर शहर में घूमते रहे। उन्होंने अपने हाथों में झाड़ू लेकर अहमदाबाद की म्यूनिसिपल्टी के सामने एक अजीब आदर्श और सेवा का एक अनोखा तरीका पेश किया।"

"जुलाई १९१७ में वल्लभभाई और श्री० हरीलाल देसाई क्लब के सैक्रेटरी निर्वाचित हुए। मैं संयुक्त मन्त्री चुना गया। इसी क्लब में हमने सुना कि गांधी जी ने मोतीहारी (बिहार) की अदालत में मजिस्ट्रेट से बड़ी ही बहादुरी के साथ मोर्चा लिया। मोतीहारी में महात्माजी मजदूरों की वास्तविक स्थिति की जांच करने गये थे क्योंकि वहां यूरोपियन व्यवसायी मजदूरों को नाना प्रकारके कष्ट देते थे। मजिस्ट्रेट ने गांधीजी को मजदूरों की वास्तविक स्थिति का निरीक्षण करने के लिये मना कर दिया। गांधी जी ने माजिस्ट्रेट के हुक्म को ठुकरा दिया। गांधीजी का भारत में यह पहिला अहिंसात्मक सत्याग्रह था। उन्होंने मजिस्ट्रेट को साफ कह दिया कि "मैं जांच करूंगा, यदि आप—नहीं करने देना चाहते तो सजा दे सकते हैं।" गांधीजी के इस जवाब को पढ़कर सारे क्लब के वातावरण में सनसनी छागई। दीवानबहादुर हरीलाल देसाई इस खबर को सुनकर उछल पड़े और अपने हाथ ऊपर उठाते हुए बोले—'मावलंकर! यह एक बहादुर आदमी है और इसी को हम गुजरात सभा का प्रेसीडेन्ट बनायेंगे।" यही वह अवसर था जब वल्लभभाई गुजरात सभा की ओर आकर्षित हुए। अभी तक वल्लभभाई का ध्यान सिर्फ म्यूनिसिपल्टी के कामों तक केन्द्रित था किन्तु अब वे आगे बढ़ रहे थे और गुजरात

सभा के कार्यों में भी दिलचस्पी लेने लगे थे। गाँधी जी ने गुजरात सभा के अध्यक्ष बनाये जाने के निवेदन को स्वीकार कर लिया। यहीं से वल्लभभाई गांधी जी की योजनाओं और कार्यों में दिलचस्पी लेने लगे और धीरे धीरे गाँधी जी की ओर आकर्षित होने लगे। वल्लभभाई स्वतः बहादुर व्यक्ति थे अतः गांधी जी की बहादुरी से उनका शीघ्र ही मेल बैठ गया। आज के गांधी जी और वल्लभभाई के गंभीर सम्बन्धों तथा मात्रभूमि की सेवा में दोनों के अन्योन्य सहयोग का यह आरंभिक परिचय है।"

"गुजरात सभा के जितने कार्यक्रम चालू थे सभी में वल्लभभाई या तो कार्यकर्ता थे या फिर किसी-न-किसी रूप में पदाधिकारी। गुजरात सभा के मंत्री की हैसियत से मेरा और वल्लभभाई का सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन बढ़ता ही चला गया। गुजरात सभा का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्य खेड़ा के किसानों के कष्टों का निवारण था। १९१७ में खेड़ा में फसल नहीं हुई। गुजरात सभा ने सरकारी पदाधिकारियों से काफी निवेदन किया। उस समय के बड़े-बड़े व्यक्ति भी बीच में डाले गये पर सफलता नहीं मिली। नौकरशाही अपने इरादे पर दृढ़ थी। आखिर गुजरात सभा के सामने यह प्रश्न आगया कि आगे क्या करना चाहिये। सभा के तमाम सदस्य गांधी जी की योजना के पक्ष में थे किन्तु निश्चय यह किया गया कि सभा के सदस्यों में से ही कुछ व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई जाय जो सरकार से बातचीत जारी रखे। गांधी जी खुद आफीसरों व सरकार से पत्र व्यवहार कर रहे थे और सभा के सदस्य प्रमाणों के संग्रह में जुटे थे। खेड़ा के सत्याग्रह का इस प्रकार आरंभ हुआ। यह सत्याग्रह १९१७ से १९१८ तक जारी रहा। उस समय के भारत में यह सरकार और किसानों के बीच की प्रथम अद्भुत लड़ाई थी। इस संग्राम से जनता जागृत हुई तथा उसे अपनी शक्ति पर भरोसा होगया।"

"इस लड़ाई की पूरी की पूरी कहानी बहुत ही दिलचस्प है। लेकिन उसे यहां देने की आवश्यकता नहीं।"

यहां उस विषय में इतना ही लिखना काफी है कि गांधीजी खेड़ा जिले में ही अपना केन्द्र स्थापित करना चाहते थे, लेकिन वे मोतीहारी (बिहार) में व्यस्त थे अतः जमकर खेड़ा में रह नहीं सकते थे। समय अत्यन्त ही मूल्यवान था, संग्राम को स्थगित नहीं किया जा सकता था अतः वल्लभभाई ने गांधीजी के लेफ्टीनेन्ट के रूप में कार्य भार अपने कन्धों पर ले लिया। वल्लभभाई की यह जन्मभूमि थी जहाँ उन्होंने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था खेड़ा के लोग बहादुर थे और वे वल्लभभाई से घनिष्ट परिचिय रखते थे। गांधीजी को उस समय वल्लभभाई से अच्छा कार्यकर्ता मिलना भी दुर्लभ ही था। वल्लभभाई भी संग्राम में दिल से कूद पड़े और हमारा केन्द्र अहमदाबाद से बदलकर नड़ियाद में ले आया गया। गांधीजी हमोरी गतविधि के निरीक्षण तथा मार्ग-प्रदर्शन के लिये यदा कदा आते और कुछ समय ठहरते भी थे। हमारे लिये गांधीजी की मानसिक स्थिति एवं विचारधारा, उनके तरीकों तथा सत्य और अहिंसा के दर्शन के तथ्यों को समझने का यह सुनहला अवसर था। साथ ही हम राजनीति के क्षेत्र में सत्याग्रह के उपयोग और प्रयोगों को भी समझ लेना चाहते थे। खेड़ा के सत्याग्रह में ही हमने पहिली बार वल्लभभाई को कोट, पैन्ट और हैट छोड़कर किसानों के साथ पैदल फिरते देखा। धोती और कुरता पहन कर वे सारे दिन फिरते रहते थे। सत्याग्रह का भारत में प्रथम प्रयोग खेड़ा में सफल हुआ और परिणाम स्वरूप वल्लभभाई और दूसरे कई साथी गांधीजी के श्रद्धालु भक्त होगये।"

"इसके बाद १६१६ में देश के राष्ट्रीय जीवन में एक जबरदस्त तूफान आया। रौलट एक्ट, तथा जालियाँवाला बाग की दुर्घटना ने

देश के हृदय को हिला दिया। ६ अप्रेल की देशव्यापी ऐतिहासिक हड़ताल, संभावित सत्याग्रह, पलवल में गांधीजी की गिरफ्तारी ११ अप्रैल की अहमदाबाद में जनता की हलचल, तथा क्रोधित जनता के सरकारी इमारतों को नष्ट करने, पुलिस चौकियों को जलाने आदि के सरकारी विरोधी कार्यों का तांता लगा हुआ था। घटनाएँ होरही थीं और देश का तापमान भी क्रमशः बढ़ता चला जारहा था। जनता के सामने दूसरे सवाल नगण्य होते जारहे थे यही एक सवाल मुख्य होगया था। वल्लभभाई ने १६१६ में कुछ व्यक्तियों की पैरवी भी की। अदालत में वकील की हैसियत से खड़े होने का उनका यह आखिरी मौका था।"

"१६१६ के बाद भारतीय कांग्रेस में महान् परिवर्तन हुए। सितम्बर १६२० के कलकत्ता अधिवेशन में अहिंसात्मक असहयोग प्रोग्राम का प्रस्ताव स्वीकृत होगया और अहमदाबाद की म्यूनिसिपल्टी इसे व्यवहारिक रूप देने में किसी से पीछे नहीं थी। इसके बाद ही नागपुर कांग्रेस का १६२० में अधिवेशन हुआ। इसके बाद दूसरा अधिवेशन नागपुर में १६२१ में बुलाया गया। इस वर्ष के सेवादल के प्रोग्राम से सारे देश में सनसनी फैल गयी। सरदार वल्लभभाई बम्बई की प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सर्वप्रथम प्रेसीडेण्ट निर्वाचित हुए। और मुझे तथा श्री इन्दुलाल याज्ञिक को उसके मंत्री बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब वल्लभभाई ३६ वें कांग्रेस अधिवेशन अहमदाबाद की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे, मैं उस समय उनका जनरल सैक्रेटरी था। तब तक हम गांधीजी से पूर्णरूप से परिचित होचुके थे। उस समय की हमारी शिक्षा सम्बन्धी लड़ाई तथा उसके बाद की म्यूनिसिपल्टी की कथा, ये ऐसी बातें हैं जिनसे देशप्रेमियों को इन संस्थाओं द्वारा जनता का कितना भला किया जा सकता है,

इसका पूरा ज्ञान हो सकता है। शर्त यही है कि नगर-पिता के दिल में जनता की भलाई की निःस्वार्थ भावना होना आवश्यक है।"

इसके बाद १६१८ में मजदूरों की जबरदस्त हड़ताल हुई। अशिक्षित मजदूरों के नेता हुए महात्मा गांधी और सरदार पटेल। यहां वल्लभभाई ने जैसा संगठन कौशल प्रदर्शित किया उससे देश की आंखों में वे समा गये। यहां उन्हें जनता के आन्दोलनों को सफलता पूर्वक संचलित करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ जो आगे चलकर उनके लिये बड़ी ही महत्वपूर्ण चीज़ साबित हुई। वल्लभभाई ने रात और दिन एक करके अहमदाबाद के मजदूरों को एक सूत्र में बांध दिया और उनकी एक संस्था स्थापित करदी जिसका नाम Trade Union रखा गया। यह संस्था देश में मजदूरों के लिये आगे चलकर एक आदर्श संस्था प्रमाणित हुई।

थोड़े ही दिनों में युवक वल्लभभाई के संगठन कौशल की चर्चा देशव्यापी होगई। इसीलिये गांधीजी के असहयोग आन्दोलन १६२०-२१ के पहिले होने वाला कांग्रेस का अधिवेशन अहमदाबाद में ही हुआ। इस प्रकार कलकत्ता के खास अधिवेशन तथा नागपुर के वार्षिक अधिवेशन के लिये अच्छा क्षेत्र तैयार होगया। अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में असहयोग के कई तरीकों—काउंसिल का बहिष्कार, स्कूल तथा कालेजों और अदालतों का बहिष्कार आदि के प्रस्ताव अत्यन्त बहुमत से पास हुए।

इसके बाद तो गांधीजी और मौलाना अबुल कलाम आजाद ने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक असहयोग का भाषणों द्वारा प्रचार आरम्भ कर दिया। उनके भाषणों में हजारों नर और नारी एकत्रित होते थे। कहीं अलीबन्धुओं के जोशीले भाषण होते थे और कहीं देशबन्धुदास के। कहीं मोतीलाल ज़ी नेहरू के अकाट्य तर्कों से

सम्पन्न गम्भीर भाषण होते थे और कहीं जवाहरलाल जी नवयुवकों में अटूट जोश भरने में व्यस्त थे। नेताओं को जनता के जोश का भरोसा था। गांधीजी अपना काम प्रोग्राम तथा समय के अनुसार ही किया करते थे। गांधीजी ने कांग्रेस के लिये एक ही वर्ष में एक करोड़ रुपये जमा कर दिये थे। लड़कों और लड़कियों ने पढ़ना छोड़ दिया, कई वकीलों और प्रोफेसरों ने अपना काम त्याग दिया। कई तो ऐसे भी निकले जिन्होंने आजीवन उन धन्धों को फिर नहीं किया। पण्डित मोतीलाल नेहरू, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, देशबन्धुदास, वल्लभभाई, राजेन्द्रप्रसाद तथा राजगोपालाचार्य आदि ने, जिनको कई हजार रुपये माहवार की विकालत में पैदा थी हमेशा के लिये अपनी विकालत छोड़ दी और समस्त जीवन देश-सेवा में अर्पण कर दिया। गांधीजी के भाषण के लिये हजारों की तादाद में स्त्रियां आतीं और वे अपनी सोने की चूड़ियां, जंजीरें, तथा अन्य जेवर गांधीजी को दान के रूप में दे जाती थीं।

१६२१ के असहयोग में वल्लभभाई के एक अत्यन्त ही जोशीले भाषण की प्रेस रिपोर्ट इस प्रकार है—

"तुम्हारे मैदान में कूद पड़ने के पहिले मैं फिर एकबार तुमसे कह देना चाहता हूँ कि अच्छी तरह सोच समझलो। इसी से मन में सन्तोष मत करलो कि तुम्हें मेरे जैसा एक नेता प्राप्त हो गया है। मुझे और मेरे साथियों को एक दम भूल जाओ। यदि तुम समझते हो कि जुल्मों और अन्याय को खत्म किया जा सकता है तो युद्ध छेड़ दो। यदि कूदने का ही दृढ़ इरादा है तो फिर सुस्ती से दूर रहो। यदि तुम हार गये तो याद रखो वर्षों तक लड़ाई के योग्य नहीं हो सकोगे। यदि तुम विजयी हुए तो समझलो कि स्वराज्य की नींव रखने में तुमने बहुत बड़ा पार्ट अदा किया है। अब मैं आप से इस निर्णय पर मत चाहता हूँ। इसे तुम्हें ही समर्थन करना है और तुम्हें

ही पास भी करना है। हम में से कोई भी इस पर प्रकाश नहीं डालना चाहता। यह तुम्हारे इरादे और इच्छा से ही होना चाहिये।"

—१२ फरवरी १९२१

अमृतसर से लौटने के बाद गान्धीजी ने हिन्दुओं के दिल को टटोलने की चेष्टा की। वे चाहते थे कि हिन्दू लोग खिलाफत आन्दोलन में दिल खोल कर भाग लें इसलिये वे देखना चाहते थे कि हिन्दुओं के दिल खिलाफत आन्दोलन के विषय में कैसे हैं?

"अब खिलाफत और पंजाब के मामलों का सरकार ने तस्फीया कर ही दिया है, फिर भी हम गुजरात और बम्बई के पुराने साथी गान्धीजी के जोशीले प्रचार में आकर उपरोक्त मामलों का सामना करने तथा उनके परिणाम को भोगने के लिये उद्यत हो गये। हम रूढ़िवादी और सावधान हिन्दू होने के नाते, गान्धीजी के खिलाफत आन्दोलन में भाग लेने और हमें मजबूर करने के विषय में प्रसन्न नहीं थे। गान्धीजी खिलाफत आन्दोलन को मुस्लिम दृष्टिकोण से ही हमारे पर थोप रहे थे, हम यही महसूस कर रहे थे। हममें से बहुत से कट्टर नास्तिक वादी नहीं थे, तो कम-से-कम धर्म के मामलों में डांवाडोल स्थिति में तो थे ही। हमें इस बात का गर्व था कि देश की जनता के अन्ध-विश्वासों तथा बेहूदे रस्म-रिवाजों आदि से काफी ऊँचे स्तर पर हैं। हमने गान्धीजी के साथ किसी भी अर्द्ध धार्मिक या धार्मिक-राजनीतिक हलचल में भाग लेने का कोई भी सौदा नहीं किया था। हम उनके साथ महज़ इसीलिये थे कि वे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये जो संग्राम छेड़ रहे हैं वह शुद्ध राजनीतिक होगा। इन महीनों में मेरी कई दोस्तों से इस विषय में खुल कर बातचीत व वाद-विवाद हुए। इस विषय में मेरी वल्लभभाई पटेल से भी खूब चर्चा हुई जिनके पास ही उन दिनों मैं ठहरा

हुआ था। उन्होंने मेरी चिन्ता और उलझन दोनों में ही मेरा सहयोग किया। अक्सर वल्लभभाई मुझ से कहते—"गान्धीजी फिर पूरे जोश के साथ लिख रहे हैं लेकिन रौलट एक्ट के विरोध में किये गये आन्दोलन के समय की सी उनमें न आग ही पाई जाती है और न जनता को उभाड़ने वाला जोश।" वल्लभ भाई पटेल के दिल में खिलाफत आन्दोलन के प्रति न तो उत्साह ही था न जोश ही, यद्यपि गान्धीजी हर रोज हमें उसमें दिलचस्पी लेने के लिये उकसाते रहते थे। वल्लभभाई में दिल्लगी करने की तीव्र भावना हमेशा विद्यामान है अतः हम खिलाफत आन्दोलन की पवित्रता की भावना के विषय में काफी अपवित्र मज़ाक किया करते थे। एक बार वल्लभभाई ने कहा—"अरब देश के लोगों तथा फिलिस्तीन, सीरिया और मेसोपोटेमिया की स्वतन्त्रता क लिये हमारे देश के लोगों का साथ देना क्या मतलब रखता है जब कि हम खुद अपने देश में ब्रिटिश लोगों के हथियारों के नीचे गुलाम बने बैठे हैं ? क्या गांधीजी का ऐसा सोचना ही कौतूहलजनक नहीं हैं ?"

"इसलिये हम इस विषय को अत्यन्त ही गंभीरतापूर्वक चारों ओर से सोचते। इस तरह सोचते रहने से हमारी उलझनों और चिन्ताओं के साथ ही साथ गान्धीजी की चिन्ताएँ और उलझनें बढ़ती जाती थीं। गवर्नरों ने हमारे काम में रोड़े नहीं अटकाये हैं, इसीलिये हमारे सम्माननीय मित्र (गान्धीजी) को सन्तोष हैं'

—इन्दुलाल याज्ञिक

सरदार पटेल ३३ वें अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। यह अधिवेशन १६१६ में अंग्रेजों के दमन, ज्यादतियों तथा जालियाँवाला बाग में निरपराध लोगों के खून बहाने आदि के विषय में विचार करने के लिये हुआ था। वास्तव में देखा

जाय तो अहमदाबाद का अधिवेशन महायुद्ध की राष्ट्रीय विचार सभा के रूप में हुआ था । स्वागत सम्बन्धी प्रबन्धों में युवक पटेल के व्यक्तित्व की गहरी छाप थी। हर बात में सादगी-यही उसकी विशेषता थी । शिविर हाथ के कते और बुने हुए कपड़े के बनाये गये थे। पटेल साहब का स्वागत भाषण भी सादगी से भरा हुआ एक अत्यन्त ही संक्षिप्त भाषण था।

इसके बाद इन नेताओं ने ब्रिटिशदुर्ग पर हमला करने के विषय में अपने विचारों का आदान-प्रदान किया । सामूहिक अवज्ञा आन्दोलन जारी करने का निर्णय हुआ। इसका आरम्भ बारडोली से किया जाने का निश्चय हुआ । शान्ति के सेनिकों ने नौकरशाही के दानवों पर बारडोली से हमला बोलने के लिये अपनी कमर कसी । युवक पटेल महात्मा गांधीजी की छत्रछाया में इस आन्दोलन के नेता बनाये गये । इसी बीच, जब आन्दोलन जोरों पर था, चौरी चौरी में हिंसात्मक दुर्घटनाएँ हो गयीं और आन्दोलन ठप हो गया।

आन्दोलन के एकदम बन्द होजाने का फल यह हुआ कि कांग्रेस में दो दल पैदा हो गये । परिवर्तनवादियों की इच्छा थी कि पुनः धारासभाओं में प्रवेश किया जाय और अन्दर घुसकर साम्राज्य वाद से लोहा लिया जाय । अपरिवर्तनवादी सत्याग्रह पर ही डटे रहना चाहते थे। परिवर्तनवादियों के नेता थे पंडित मोतीलाल नेहरू और श्री सी० आर० दास०। अपरिवर्तनवादियों के नेता थे स्वयं महात्मा गान्धीजी और वल्लभभाई पटेल । महात्मा गान्धी के जबर-दस्त साथी थे राजगोपालाचार्य । परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तन वादियों में धारासभा में प्रविष्ट होने के विषय को लेकर खूब ही रस्सा कशी हुई। २७ मई १९२३ को बम्बई में होने वाले अधिवेशन में यह मतभेद पराकाष्टा पर पहुँच गया। परिणाम यह हुआ कि गान्धी-वादी सदस्यों ने इस्तीफे देदिये और उनके स्तीफे भी स्वीकार कर

लिये गये। आखिर थोड़े दिनों बाद दिल्ली में दोनों दलों में समझौता होगया और यह होगया कि दोनों दल बिना आपसी रुकावटों के अपना-अपना कार्य जारी रखेंगे क्योंकि वास्तव में दोनों के उद्देश्य एक ही हैं।

अपनी गिरफ्तारी के समय महात्मा गाँधी ने सन्देश दिया था कि सत्याग्रह के अनुयायी महज़ रचनात्मक कार्यों तक ही अपने को सीमित रखें; इसी कार्यक्रम से देश की हिंसात्मक प्रवृत्ति का शमन हो सकता है जो लोगों ने चौरीचौरा में हिंसात्मक कार्यों द्वारा प्रकट की है। महात्मा गांधी को विश्वास था कि देश उनके बताये हुए मार्ग पर ही चलेगा और उन्हें यह भी भरोसा था कि उनके कार्यक्रम को कार्यान्वित कर सकने की सामर्थ्य देश वासियों में है। देश में ऐसा भी दल था जो ईमानदारी के साथ गांधी जी के प्रोग्राम को आगे बढ़ा सकता था। उस दल के सर्वोपरि नेता श्री राजगोपालाचार्य थे। इसके अलावा सरदार वल्लभभाई पटेल, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और डाक्टर अन्सारी भी गांधीजी के परम श्रद्धालु अनुयायी थे। यही दल अपरिवर्तन वादी दल कहलाया।

दूसरे दल के सुप्रसिद्ध नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री देशबन्धुदास तथा श्री विट्ठलभाई पटेल थे। इस दल का विश्वास था राजनीतिक हितों की प्राप्ति के लिये राजनीतिक कार्यक्रम ही आवश्यक है। साम्राज्यवाद के नाश के लिये सत्याग्रह भी अत्यन्त आवश्यक है, इस सिद्धान्त पर उपरोक्त नेताओं का भी विश्वास था कि साम्राज्यवाद के गढ़ में प्रवेश करके ही साम्राज्यवाद का सर्वनाश हो सकता है। वे गांधीजी के कार्यक्रम में महज़ इतना ही परिवर्तन चाहते थे इसीलिये वे 'परिवर्तनवादी' कहलाये।

दोनों दलों में वैधानिक तथ्यों पर काफी मतभेद होते रहे। मौलाना आज़ाद ने जेल से रिहा होते ही एक वक्तव्य के द्वारा

अपनी स्थिति साफ करने के साथ-ही-साथ दोनों दलों के मतभेद मिटाने की भी भरसक चेष्टा की।

"कोई भी राजनीतिक प्रोग्राम एक मज़ाक जैसा ही होगा। पहिले उसे उसके तथ्यों द्वारा जांच लेना चाहिये। गांधीजी ने वातावरण और परिस्थिति को शुद्ध साधारण विवेक तथा व्यवसायिक बुद्धि से परखा है। गांधीजी ने देश को जो सत्याग्रह का सिद्धान्त प्रदान किया है वह उन्हें बहुत ही प्यारा है लेकिन दुनिया में बसने वाले मनुष्य की हैसियत से उन्होंने यह भली भाँति देख लिया है कि न तो इस समय असहयोग का आदर्श और न अहिंसा से ही काम चल सकता है जब तक दोनों दल एक दूसरे का छिद्रान्वेषण और एक दूसरे की कोशिशों को बेकार करते रहेंगे। अतः गांधीजी ने किसी-न-किसी प्रकार दोनों दलों के कार्यक्रम में मेल बैठाने की चेष्टा की है। यदि मेल न हो सके तो भले ही न हो। लेकिन वे स्वयं दोनों दलों के कार्यों से बिल्कुल ही अलग रहेंगे। इस कार्य द्वारा उनका तात्विक महत्व बहुत बढ़ गया है। उन्हें दोनों दलों का विश्वास और सम्मान पहिले जैसा ही प्राप्त है। वे अपने कार्यों में दत्तचित्त हैं और उनके कार्यों के विषय में बातचीत तथा वाद-विवाद करने के लिये वे लम्बी यात्रायें भी कर रहे हैं।"

—मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

१५ सितम्बर १९२३ को दिल्ली में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद उसके अध्यक्ष थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने एक समझौते के सिद्धान्त की ओर संकेत किया। उस फारमूले में यह बताया गया था कि जो पार्लिमेन्टरी कार्यों में दिलचस्पी रखते हों वे वैसा कर सकते हैं। वे अंग्रेजों की धारासभाओं में प्रविष्ट होकर वहां असहयोग करें और नौकरशाही को मिटाने की चेष्टा करें और जो इन तरीकों में

विश्वास नहीं करते हों वे गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में जुट जाँय। मौलाना आजाद का यह फारमूला स्वीकृत हो गया। इस प्रकार कांग्रेस में पार्लिमेन्टरी प्रोग्राम का प्रवेश हुआ। बात बहुत पुरानी है किन्तु इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि दोनों दलों में इस प्रकार समझौता कराकर उस समय मौलाना आजाद ने अपनी राजनीतिक चतुरता का यथेष्ट परिचय दिया था। उन्होंने अपने उपरोक्त फारमूले को स्पष्ट करते हुए कहा था—

"मैंने जान लिया कि कांउसिल प्रवेश के प्रोग्राम से हमारा कुछ भी भला नहीं होगा लेकिन मेरी नजर में हमारा भविष्य भी था। मैं जानता था कि हमारी काँग्रेस के प्रभावशाली व्यक्तियों में से कई की पार्लिमेन्टरी प्रवृति इस समय बहुत ही जोर पकड़ रही है और उसमें कई प्रसिद्ध नेता भी साथ दे रहे हैं, ऐसी सूरत में मैंने यही उचित समझा कि जब तक हमारे सामने असहयोग करने का कोई दूसरा कारगर तरीका नहीं है तब तक इसी तरीके को जारी रहने दिया जाय। कुछ न होने से तो यही अच्छा है।"

—मौलाना आजाद; अध्यक्षीय भाषण
—दिल्ली कांग्रेस १९२३ से

असहयोग आन्दोलन बन्द करने की दूसरी प्रतिक्रिया हिन्दू-मुस्लिम दंगों के रूप में भी सामने आई। १९२३ के बाद हिन्दू-मुस्लिम झगड़े बढ़ने लगे। मुलतान, बरेली, नागपुर तथा अन्य जगहों में १९२७ में कई भयंकर दंगे हुए। दंगों की रोक के लिए संयुक्त सम्मेलन भी किये गये, पर इन सम्मेलनों में पास हुए प्रस्ताव सिर्फ कागजों पर ही लिखे रह गये। गांधीजी साबरमती में बैठकर अपना कार्य करने लगे। वे कांग्रेस के अधिवेशनों में भी प्रायः नहीं ही जाते थे। यदि गये भी तो सुनते अधिक थे, बोलते बिल्कुल नहीं। मद्रास कांग्रेस में "स्वतन्त्रता ही कांग्रेस का ध्येय है"—यह प्रस्ताव भी

गांधीजी की अनुपस्थिति में ही स्वीकृत हुआ था।

अपरिवर्तनवादियों के रचनात्मक कार्यों में व्यस्त होजाने का परिणाम यह हुआ कि परिवर्तन वादियों के लिये मार्ग साफ होगया। चारों तरफ कांग्रेसियों ने ही चुनाव क्षेत्रों पर कब्जा करना आरम्भ कर दिया। हर संस्था के ऊंचे-से-ऊंचे पद प्रतिक्रियावादियों से छीन लिये गये। चार साल तक १६२३ से १६२७ तक राष्ट्रीय नेताओं ने अपने अपने मुकामों के राजनीतिक क्षेत्रों पर पूरी तरह कब्जा रखा। कहना चाहिये कि राष्ट्रीय जीवन में १६२३ से १६२७ तक के साल प्रयोग के वर्ष थे। श्री० सी० आर० दास कलकत्ता म्यूनिसिपल्टी के प्रेसीडेन्ट हुए और श्री सुभाषचन्द्र बोस प्रधान व्यवस्थापक (Chief Executive Officer) निर्वाचित हुए। विट्ठलभाई पटेल बम्बई की म्यूनिसिपल्टी के मेयर चुने गये और वल्लभभाई पटेल अहमदाबाद म्यूनिसिपल्टी के प्रेसीडेन्ट निर्वाचित हुए। वल्लभभाई-पटेल इस पद पर १६२८ तक रहे और यहां रहकर उन्होंने साम्राज्य-वाद से हर मौके पर टक्कर ली।

१६२८ में बारडोली का सत्याग्रह हुआ और परिवर्तनवादियों का प्रोग्राम खत्म होगया। बारडोली का युद्ध वह युद्ध था जिसने देश की मानसिक स्थिति ही बदल दी।

रणभूमि में

बारडोली के लगान का इतिहास—

बारडोली ताल्लुके में सबसे पहिला बन्दोबस्त सन् १८६५ में हुआ। उन दिनों अमेरिका युद्ध में व्यस्त था, अतः कपास आदि के भावों में अत्यधिक वृद्धि होरही थी। अच्छी जमीन और बढ़े हुए भावों को देखकर तत्कालीन सेटलमेन्ट आफीसर कैप्टन प्रेस्कॉट ने सोचा कि जनता की स्थिति बहुत अच्छी है। उन्होंने बढ़िया मालेटी (Dry land) जमीन का फी एकड़ ६) रु० लगान नियत किया। क्यारी की जमीन में पीयत के आकार के १०) रु० और बढ़ा दिये, इस प्रकार १६) फी एकड़ लगान कर दिया। उन्होंने १४ वर्गों में जमीन को बांटा था और जरायत (मालेटी) के तीन रुपये से लेकर छः रुपये तक तथा क्यारी (चावल की जमीन) के ७॥।) से लेकर १६) रु० तक लगान निश्चित किया था। परन्तु सरकार ने इन १४ वर्गों को नामंजूर करके केवल ७ वर्ग ही मंजूर किये और सन् १८६६ में तो इन ७ वर्गों के भी केवल ४ ही वर्ग कर दिये गये और पानी के दर कुछ कम कर दिये गये। इस तरह कैप्टन प्रेस्कॉट के द्वारा मुकर्रर किये गये पानी के दरों में सन् १८६५-६६ में काफी कमी करदी गई। किन्तु प्रेस्कॉट आखिर अंग्रेज थे वे अपनी चालों से बाज नहीं आये। जब उन्होंने सर्वे किया तब ताल्लुके में लगभग २६००० एकड़ जमीन घास के लिये रखी गई थी जिसका लगान फी एकड़ १) किसानों को

देना पड़ता था। इन जमीनों का लगान खासकर इसीलिये कम रखा गया था कि उसमें लोग मवेशी के लिये घास पैदा करें। पर कैप्टन प्रेस्कॉट ने इन दरों को बढ़ाकर उन जमीनों को जरायत (मालेटी) में शामिल कर दिया। गोचर भूमि रखने के लिये लोगों को जो लालच था, सरकार ने उसे हटा लिया। लोग उस जमीन को हाँक हाँक कर उसमें कपास बोने लग गये। इधर कई वर्षों से कपास के भाव भी अच्छे रहे अतः लोगों ने समझ लिया कि इससे हमारी कोई हानि नहीं हुई। परन्तु घास खरीद कर जानवर पालना बहुत मंहगा पड़ता है और इसीलिये खेती में हानि उठानी पड़ती है। किसान उस समय तो इस बात को नहीं समझे पर दीर्घ दृष्टि से देखने पर यह निश्चय किसानों के लिये हानिकारक ही सिद्ध हुआ।

सन् १८६४-६५ में ताल्लुके का लगान लगभग सवा तीन लाख रुपये था। प्रेस्कॉट ने इसे बढ़ाकर करीब ४ लाख कर दिया। इसके बाद १८९५-९६ में दूसरा बन्दोबस्त हुआ। उस समय दिखाने के लिये यद्यपि मुख्य दरों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया, पानी के द० तक कुछ कम कर दिये गये, परन्तु कुछ गांवों को नीचे के वर्ग से ऊपर के वर्ग में चढ़ा दिया गया, इसलिये स्वभावतः ताल्लुके के कुल लगान में फीसदी साढ़े दस की वृद्धि होगई। इस लगान वृद्धि के समय भी तत्कालीन सेटलमेन्ट आफीसर मि० फरनान्डिस ने प्रेस्कॉट की भांति यही कहा था कि ताल्लुका इन पिछले तीस वर्षों में अधिक समृद्ध होगया है। तथापि तत्कालीन सूरत के जिला कलक्टर मि० फ्रेडरिक लेली ने सेटलमेन्ट कमिश्नरी की राय से अपनी नाइत्तिफाकी जाहिर की थी। उनकी रिपोर्ट पर मि० लेली ने अपना अभिप्राय इन शब्दों में प्रकट किया है—

"यदि लोगों के रहन सहन में सुधार होजाय तथा उनके रहने के मकान अच्छे दिखाई दें तो इस पर से हम यह अनुमान तो नहीं

निकाल सकते कि प्रजा समृद्ध होगई। हमें यह देखना चाहियें कि लोगों के सिर पर कर्ज कितना है ?"

तत्कालीन मामलतदार ने ताल्लुके के कर्ज का अनुमान करके यह बताया था कि ताल्लुके की प्रजा पर लगभग ३३७६०००) का बोझा है। उन्होंने यह भी बताया था कि इसके कारण फी सैकड़ा बारह रुपये वार्षिक सूद के हिसाब से जनता पर प्रति वर्ष चार लाख रुपये का बोझ बढ़ जाता है। इस अधिकारी का कहना था कि शायद ही कोई काश्तकार कर्ज से मुक्त हो। जनता की ऐसी स्थिति होते हुए भी प्रत्येक बन्दोबस्त के समय किसी-न-किसी बहाने सरकार लगान में वृद्धि करती ही चली जारही है। या तो लगान का दर बढ़ जाता है या जमीन के वर्गीकरण में फेरफार कर दिया जाता है या परती की जमीन को चालू जमीन में शामिल कर लिया जाता है।

बारडोली और चोर्यासी ताल्लुके की ३० वर्ष की लगान की मियाद सन् १६२७-२८ में पूरी होती थी इसीलिये सरकार ने तत्कालीन उत्तर विभाग के डिस्ट्रिक्ट कलक्टर मि० एम० एस० जयकर को १६२४ में असिस्टेन्ट सेटलमेन्ट आफीसर के स्थान पर नियुक्त करके भेजा। उन्होंने १६२४-२५ में रिवीजन शुरू किया और रिपोर्ट ११ नवम्बर १६२५ को पेश की गई। रिपोर्ट में दस्तखत ३० जून १६२५ के हैं। इसका कारण बताते हुए जयकर लिखते हैं—

"रिपोर्ट का मसविदा पहिले कमिश्नर को पेश किया था और बाद में उनकी सूचनाओं के अनुसार रहन, शिकमी लगान, बिक्री आदि के कोष्टकों का संशोधन करके फिर उनकी स्वीकृति के लिये भेजा गया। अब उन्होंने अपनी स्वीकृति सहित उचित रीति से पेश करने के लिये रिपोर्ट लौटा दी है।"

जयकर ने अपनी रिपोर्ट में २५ प्रतिशत वृद्धि की सिफारिश की है परन्तु गाँवों के वर्गीकरण में २३ गाँवों को ऊपर के वर्ग में चढ़ा दिया जिससे कुल वृद्धि ३० प्रतिशत तक बढ़ गई।

जयकर ने यह रिपोर्ट सेटलमेन्ट कमिश्नर मि० एन्डरसन के पास भेजी। एन्डरसन ने जयकर की रिपोर्ट की खासी खबर लेते हुए लिखा—

"श्री जयकर ने लगान बढ़ाने के सम्बन्ध में जो सूचनाएँ पेश की हैं उन पर विचार करें। मुझे दुख है कि उन्होंने अपनी सिफारिशों का सारा आधार प्रधानतया इसी बात पर रखा है कि जमीनों की उपज बढ़ती जारही है। ताल्लुके की सामान्य अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए ५७ वें पैरेग्राफ में उन्होंने जमीन की कीमत और किराये के बढ़ने का केवल एक ही उदाहरण दिया है और लिखा है कि किराये की तुलना में लगान वृद्धि बहुत ही कम है। पर इसके लिये उन्होंने कोई विशेष आधार पेश नहीं किया। और बिना आधारके कहीं कोई इमारत खड़ी की जासकती है? भला, इस तरह सैटलमैन्ट रिपोर्ट लिखी जाती है? इसके बाद पूरे दो पृष्ठों में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि सरकार यदि रुपयों के बदले लगान में नाज ही वसूल करती रहती तो वह कितना बढ़ जाता? मानों इसमें उन्होंने सरकार को कोई बहुत बड़ी बात कही हो। वे बताते हैं कि ताल्लुके की कुल आय में १५ लाख की वृद्धि हुई है। पर यह सब लिख डालने के बाद उनकी समझ में आया कि असल प्रश्न के साथ इन बातों का कोइ सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि इस तरह तो यदि खेती का खर्च भी १५ लाख बढ़ गया हो तब तो लगान बढ़ाने की सिफारिश के लिये कोई आधार ही नहीं रह जाता।"

"खैर यही हो तब भी कोई बात बिगड़ी नहीं। पर यदि खेती का खर्च १५ लाख की बजाय १७ लाख होगया हो तब तो लगान

बढ़ाने के बजाय उलटे घटाना पड़े न ? अब मि० जयकर किस तरह सिद्ध करेंगे कि आपके साथ साथ खर्च नहीं बढ़ा है ? इसके विषय में तो वे केवल एक ही लाइन लिखते हैं—"हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि शायद खेती के खर्च भी बढ़ गये हों !"—इस तरह पर जयकर साहब ने किले का मुख्य दरवाजा तो खुला ही छोड़ दिया है। अगर कोई यह सिद्ध करदे कि खेती के खर्च बढ़ गये हैं तो मि० जयकर के पास कोई भी उत्तर शेष नहीं रह जाता। इतना सब जान लेने पर ही किसी की समझ में यह आसकता है कि लगान निर्णय का आधार खेती की उपज और माल के भाव नहीं, बल्कि जमीन का किराया ही होता है। श्री० जयकर की रिपोर्ट के ५७ से ६५ तक के पैराग्राफ तो बिलकुल ही व्यर्थ कहे जासकते हैं। यही नहीं, उन्होंने लगान बढ़ाने की जो सूचनाएँ की हैं, उनका समर्थन करना तो दूर, उनकी दलीलों में से ही उनके खण्डन की यथेष्ट सामग्री मिल जाती है। इसलिये वास्तव में वे बहुत ही भयंकर हैं........"

"इस तरह खेती के खर्च की अगर गिनती न की जाय बल्कि केवल उसकी उपज की ही गिनती लगाकर लगान बढ़ा दिया जाय, तब तो हमें औंधे मुंह ही गिरना होगा। यह करते हुए मनुष्य की क्या स्थिति होती है यह तो ५६ वें पैरेग्राफ में देखने से ज्ञात हो सकता है। ६६ वें पैरेग्राफ में लगान वृद्धि की सूचना करते हुए श्री जयकर की यही दशा हुई है। उन्हें यही कहना पड़ा कि खर्च बाद नहीं किया गया फिर भी उपज तो इतनी बढ़ गई है कि प्रतिशत ३३ लगान जरूर बढ़ाया जा सकता है। पर साथ ही वे यह भी जानते हैं कि शायद यही बाजार भाव आगे कायम न रहे। यदि ऐसा ही हुआ तो उन पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि लगान बहुत बढ़ा दिया। इसलिये उन्होंने डरते डरते और बिना कोई कारण बताये यह सिफारिश की है कि २५ फी सैकड़ा लगान उचित और न्याय युक्त होगा।

अगर सरकार लगान बढ़ाने को हद ७५ प्रतिशत कायम कर देती तो शायद जयकर ६५ प्रतिशत लगान वृद्धि को भी उचित और न्याययुक्त कह कर किसानों पर ६५ प्रतिशत लगान बढ़ाने की सिफारिश कर देते।

इस प्रकार एण्डरसन ने जयकर की रिपोर्ट की तो आलोचना कर के उसे बेकार करदी पर उन्हें भी तो नौकरशाही के सुर में ही सुर मिलाना था। उन्होंने जमीन के शिकमी लगान को ही सच्चा आधार और दिशा दर्शक बनाया उनके दृष्टिकोण से जमीन का खर्च चाहे कितना भी बढ़ जाय, पर अगर लोगों को खेतों से कोई लाभ नहीं होगा तो उसका किराया नहीं बढ़ सकता। अगर बढ़े हुए किराये पर लोग जमीन उठाते हैं तो इसके मानी तो यही हुए कि लोग इसमें गुंजायश देखते हैं। पर मि० एण्डरसन की स्थिति वास्तविकता को देखते हुए जयकर जैसी ही है। इस दृष्टि से दोनों ही मौसेरे भाई सिद्ध होते हैं।

जयकर ने ४२९२३ एकड़ जमीन किराये पर दी हुई बताई है। यह कुल (१२६९८२) एकड़ खेती योग्य जमीन की एक तिहाई है। पर इसमें साझे पर दी गई जमीनें शामिल करके एण्डरसन साहब मान लेते हैं कि किराये पर दी हुई कुल जमीन, जमीन की करीब-करीब आधी हो जाती है। पर वास्तव में बात कुछ और ही है। सरदार वल्लभभाई के कार्यकर्ताओं की जांच से यह पता चलता है कि ताल्लुके में किराये पर दी गई कुल जमीन ६००० एकड़ से अर्थात् प्रतिशत ५ से अधिक न होगी। ४२९२३ एकड़ तो किराये पर दी गई जमीन की सात वर्षों की मीजान है। जहाँ इतनी थोड़ी-सी जमीन किराये पर दी जा रही हो, उसके लिये थोड़े-से दिवालिये लोगों के कारण, जमीन पर दर बढ़ाना तो दर असल अनुचित ही है। फिर दूसरी बात यह है कि एण्डरसन ने इस किराये को वास्तविकता से भी अधिक महत्व दे दिया है।

इस प्रकार जयकर की रिपोर्ट की धज्जियाँ उड़ा कर तथा उसमें से अपने मतलब की बातों का समर्थन करते हुए एण्डरसन ने २९ प्रतिशत की वृद्धि की सूचना करके रिपोर्ट को उत्तर विभाग के कमिश्नर मि० चेट फील्ड के पास भेज दिया। मि० एण्डरसन पहिले सूरत के कलक्टर रह चुके थे अतः हर जगह रिपोर्ट में अपने अनुभवों के भी प्रमाण उन्होंने पेश किये। इस प्रकार उनकी रिपोर्ट उनकी नजर में यथेष्ट अधिकारपूर्ण होगयी थी।

चेटफील्ड ने एण्डरसन की उपरोक्त रिपोर्ट पढ़कर लिखा—

"मुझे बारडोली सम्बन्धी कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। तथापि मैं देखता हूँ कि मि० एण्डरसन ने थोड़े किराये वाले गांवों को ऊंचे वर्ग के गाँवों में शामिल कर दिया है पर ऐसा करने में, उनके लिये कोई चारा नहीं था।"

इस प्रकार मि० चेटफील्ड ने एण्डरसन द्वारा पेश की हुई रिपोर्ट को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। ऐसा करने में उन्होंने स्पष्ट भी कर दिया कि एण्डरसन को बारडोली ताल्लुके का विशेष ज्ञान है।

इस बन्दोबस्त में जिन बातों के आधार पर जनता को समृद्ध बताया गया वे कतई गलत थीं, साथ ही लगान वृद्धि भी जबरदस्त अन्याय्य थी। बारडोली की जनता ने चेटफील्ड को इस आशय की दरख्वास्तें भेजीं कि लगान एकदम गलत आधार पर कूता गया है। परन्तु चेटफील्ड ने सभी अर्जियों को व्यर्थ बताकर रद्दी की टोकरी में डाल दिया और रिपोर्ट का जोरदार समर्थन करते हुए बम्बई सरकार के रेवेन्यू मिनिस्टर के पास भेज दिया।

बारडोली के किसान पस्त हिम्मत होने वाले नहीं थे। १९२१ में ही उन्होंने जन जागृति का अर्थ भली भाँति समझ लिया था।

चिन्गारी

नये बन्दोबस्त के सम्बन्ध में सेटलमैन्ट आफीसर जब आर्थिक जांच कर चुकता है और अपने प्रस्ताव अधिकारियों के पास भेजता

है, तब लगान वृद्धि के कारण तथा अपने प्रस्तावों के सहित सरकार उस रिपोर्ट को काश्तकारों की जानकारी के लिये प्रकाशित कर देती है जिससे जनता को उस विषय में जो भी शिकायतें आदि करना हो उसका मौका मिल जाय। जनता की वाजिबी शिकायतों के मुताबिक उसमें सुधार किया जाकर तब वह रिपोर्ट कानूनी बनादी जाती है। पर उपरोक्त रिपोर्ट में न तो सैटलमैन्ट आफीसर ने ही कोई आर्थिक जांच की और न रिपोर्ट तैयार हो जाने पर उस पर किसी का उज्र ही सुना गया। पहिली शिकायत के मुतल्लिक बम्बई के रेवेन्यू सैक्रेटरी मि० स्मिथ का कहना है कि मि० जयकर दस महीने गाँव-गाँव घूमे, हर किसान से मिले, और मौजूदा कानूनों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने आर्थिक अवस्था की पूरी जांच करके ही रिपोर्ट तैयार की है। परन्तु जनता ने जब रिपोर्ट देखी तो बताया कि हमने तो जयकर साहब के दर्शन तक नहीं किये हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल ने अपने पत्र में जो उन्होंने कलक्टर को लिखा था, इस बात की शिकायत की है—

"जाँच करते समय किसानों को खबर तक नहीं भेजी गई। सरकल इन्सपेक्टर को अपने साथ लेकर प्रत्येक गाँव में दो-दो मिनिट ठहर कर जन्म मरण के रजिस्टर पर दस्तखत किये और चल दिये। इसप्रकार एक दिन में उन्होंने ४-४, ५-५, गाँव निवटा दिये। कई मुकामों पर तो पटेल को रजिस्टर लेकर अपने डेरे पर बुलवा लिया और साधारण-सी बातचीत करके तथा रजिस्टर पर दस्तखत करके उसे बिदा कर दिया। इस विषय में कितने ही जिम्मेदार कार्यकर्त्ताओं ने गाँव-गाँव घूमकर तहकीकात की है, पटेलों से पूछा है, गाँवों के मुखियाओं से बातचीत करके पूछा है और सभी स्थानों से यही उत्तर मिला है कि सेटलमैन्ट आफीसर ने ठीक-ठीक जांच नहीं की है। यही क्यों, आपके दफ्तर में उस समय का उनका लिखा रोजनामचा भी होगा उसे निकाल कर देखलें। आजकल ओलपाड और चिखली

में भी नये बन्दोबस्त का काम चल रहा है, वहाँ भी आर्थिक जांच चल रही है। वहाँ के सैटलमैन्ट आफीसरों के रोजनामचों से श्री० जयकर के रोजनामचों की तुलना करके देखिये आपको फौरन मालूम हो जायेगा कि इन दोनों जाँचों में कितना भरी अन्तर है।"

—वल्लभभाई पटेल का पत्र
८ अप्रैल १९२८

सरकार यह दावा करती है कि वह जनता को रिपोर्ट का उत्तर देने का मौका देती है। श्री शिवदासानी,—बम्बई धारासभा के तत्कालीन सदस्य ने इस विषय में अपने अनुभव सुनाते हुए धारासभा में कहा था—

"रिपोर्ट को प्रकाश में बिलकुल ही नहीं लाया जाता, यहाँ तक कि रिपोर्ट की नकल तक भी नहीं दी जाती। ताल्लुके के प्रधान दफ्तर में रिपोर्ट की एक अंग्रेजी कापी रखदी जाती है और किसानों से यह आशा की जाती है कि वे इसे पढ़कर अपनी शिकायतें लिखकर भेजें। एक बार तो मैंने यह भी सुना था कि एक मामलतदार ने तो किसानों को रिपोर्ट तक दिखाने से इन्कार कर दिया था। पर यदि हम यह मानलें कि उसने रिपोर्ट दिखाई भी हो तो क्या यह कानून और न्याय से भी सम्मत है कि किसानों के हितों से इतना गहरा सम्बन्ध रखने वाली रिपोर्ट को ताल्लुके के दफ्तर में रखा जाय और १०० गाँव के लोगों से कह दिया जाय कि वे उसे पढ़लें—क्या इसे ही प्रकाशित करना कहते हैं?"

बारडोली पर टिप्पणी लिखते हुए श्री महादेव देसाई—गांधीजी के सैक्रेटरी तथा "नवजीवन" के सम्पादक—ने "नवजीवन" में लिखा था—

"बारडोली में तो इससे भी अधिक दुर्दशा हो गई। सेटलमेंट आफीसर अपनी रिपोर्ट कलक्टर को भेजता है। कलक्टर रेवेन्यू

आफीसर की हैसियत से उसकी जांच करता है और उसे आगे भेज देता है। यहाँ तो स्वयं सैटलमेंट आफीसर ही कलक्टर भी था, फिर उसकी जांच और कौन करता? रिपोर्ट आगे बढ़ी। सेटलमैन्ट कमिश्नर ने खूब उसकी छीछालेदर की और उन्हीं के शब्दों में "प्रायः शुरू से आखिर तक नई रिपोर्ट लिखी।" इस पहिली रिपोर्ट का क्या हुआ सो तो ईश्वर ही जाने। लोगों को तो वह हरगिज नहीं दिखाई गई। धारासभा के सदस्यों को भी रिपोर्ट देने से इन्कार कर दिया गया। हमारा तो खयाल है कि उस रिपोर्ट को बेकार समझकर फेंक दिया गया। और दूसरी रिपोर्ट लिखी गई"—और "प्रायः शुरू से आखिर तक नई रिपोर्ट लिखी"—यह तो शिष्ट प्रयोग ही जान पड़ता है। और ऐसा अनुमान करने के लिये हमारे पास कारण भी हैं। उनमें से एक तो यही है कि रिपोर्ट खानगी न होने पर भी उसको प्रकाशित करने की सरकार की हिम्मत ही नहीं हो रही है। धारासभा के सदस्यों को भी इससे वंचित ही रखा गया है।"

बाद में अखबारों और धारासभाओं में झगड़ा उठने पर उन्हें कोरी नकलें भेज दी गई थीं। उसमें से मैकमिलन और एण्डरसन की टीका टिप्पणियों की नकलें निकाल दी गई थीं।

सन् १९१९ में भारतीय शासन में नये सुधार करते समय एक पार्लियामेन्टरी कमेटी नियुक्त की गई थी। उसने सिफारिश करते हुए लिखा था—

"जितनी जल्दी हो सके धारासभा को जमीन का लगान बढ़ाने सम्बन्धी कानून बनाने का अधिकार मिल जाना चाहिये।'

एक तरफ तो पार्लिमेन्टरी कमेटी की यह सिफारिश और दूसरी तरफ धारासभा के सदस्यों को समय टालकर रिपोर्ट देना—ब्रिटिश नौकरशाही इसी तरह अपना शासन चलाया करती थी। ज्यादा हो हल्ला मच जाने से जनता इतना तो अच्छी तरह समझ गई थी कि इस बार २५ से लेकर ३० फीसदी लगान की वृद्धि की सिफारिश

की गई है। इस पर सारा का सारा ताल्लुका क्षुब्द हो उठा। बारडोली स्वराज्य आश्रम की तरफ से श्री नरहरी भाई पारखे तथा गुजरात विद्यापीठ के अध्यापक श्री मलकानी ने जांच पड़ताल करके अपनी जांच के फल प्रकाशित कर दिये थे। यह भी जाहिर कर दिया गया था कि सेटलमेन्ट आफीसर ने आर्थिक जांच, बन्दोबस्त के कानून के अनुसार नहीं की है

जब मामले को बढ़ता हुआ देखा तो सरकार ने धीरे से रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। भारतवर्ष में सरकार का प्रधान आधार किसान हैं। किसानों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करके सरकार ने किसानों को यह स्पष्ट कर दिया कि वह उनका कितना खयाल करती है। इधर धीरे-धीरे सरकार का असली स्वरूप भी जनता समझने लग गई थी। किसान भी सरकार के इन कृत्यों द्वारा सतर्क और जागृत हो रहे थे, दूसरी तरफ इस कार्य के लिये कार्यकर्त्ता भी मैदान में आ डटे थे। गुजराज तथा बारडोली मे ऐसे कितने ही सुशिक्षित कार्यकर्त्ता थे जो कितनी ही असुविधाओं के होते हुए किसानों की फरयाद सुनने के लिये तैयार हो गये। उन्होंने किसानों की तरफ से सरकार को कई अर्जियाँ भेजीं और लगान वृद्धि के प्रति घोर असन्तोष प्रकट किया। बारडोली ताल्लुके के खेड़ूत मण्डल (किसान मण्डल) ने भी सरकार को निवेदन पत्र भजे। खेड़ूत मण्डल ने जब जागृति के लिये ताल्लुके में कई सभाएँ भी की और सरकार के विरोध मे कई प्रस्ताव भी पास किये। सरकार से हर दरखास्त में यह प्रार्थना की गई कि वह इस वृद्धि को रोक दे। धारा सभाओं में भी यह प्रश्न जोर पकड़ने लगा। सूरत जिले के धारासभाई सदस्यों ने धारासभा में इस प्रश्न पर खूब ही चर्चा की। अन्त में ३० जनवरी १६२७ को सभा में यह निश्चय किया गया कि बारडौली के खास-खास काश्तकारों का एक शिष्ट मण्डल श्री० भीमभाई नाइक और श्री दादूभाई देसाई के नेत्रत्य में महकमा बन्दोबस्त के हाकिम मि०

रियू से मिले और उनसे लगान वृद्धि को रोकने की प्रार्थना करे। ता० २६ मार्च १६२७ को यह शिष्ट मण्डल मि० रियू से मिला। इसके साथ ही चौर्यासी ताल्लुके का भी शिष्ट मण्डल था। श्री० भीमभाई नाइक ने मि० रियू से निवेदन किया कि पैदावार में अब बहुत घटती हो गई है। जमीन का किराया तथा जमीन की कीमतें भी कम हो गई हैं साथ ही मजदूरी तथा खेती के अन्य खर्च बहुत ही बढ़ गये हैं और ताल्लुके पर कर्ज भी काफी हो गया है। यदि मि० रियू चाहें तो वे अपनी बातों के समर्थन में प्रमाण भी दे सकते हैं। किन्तु मि० रियू ने एक ही जवाब दिया कि "मैं इस तरह सर्वसाधारण तौर से की गई शिकायतों पर ध्यान नहीं दे सकता। यदि किसान स्वयं अपनी दरख्वस्तें भेजें और प्रत्येक बात को तफसील बार मेरे सामने रखें तो मैं उन पर विचार कर सकता हूँ।

आखिर मि० रियू से रूबरू मिलने से कोई भी लाभ न होते हुए देख, श्री० भीमभाई ने सारी शिकायतें दरख्वास्त के रूप में लिखकर किसानों की तरफ से मि० रियू को पेश कर दी। इसके बाद ताल्लुके के दोनों प्रतिनिधियों ने मिल कर २८ मई १६२७ को एक दरख्वास्त गवर्नर इन-कांउसिल को भी भेजी। इन सब निवेदनों में किसानों की ओर से निम्न बातें लिखी गई थीं—

"सैटलमेंट आफीसर ने लगान बढ़ाने की सिफारिश करते हुए यह बताया है कि जनता समृद्ध हो गई है और इसका सबसे पहिला सुबूत यह बताया है कि जमीनों की कीमतें बढ़ गई हैं। पर जमीनों की कीमतों में यह वृद्धि तो महायुद्ध के बाद (१६१४ से १६२५) में हुई है। उस समय कपास के भाव इस तरह आस्मान पर चढ़ गये थे कि लोगों को खेती बड़ा फायदेमन्द धन्धा दिखाई देने लग गया था। फिर जो लोग विदेशों से धन कमाकर लाते, उन्हें यहाँ जमीनें खरीदने की बहुत इच्छा होती, क्योंकि देश में तो वही आबरूदार आदमी समझा जाता है, जिसके पास जमीन होती है। कपास के बढ़े-चढ़े

भाव और यह आबरू की भावना जमीनों की कीमतें बढ़ने के खास कारण हैं। सम्भव है अधिकारियों के दिमाग में यह बात नहीं समाती होगी कि यदि जमीन से काफी उपज नहीं हो सकती तो लोग क्यों इतनी कीमत देकर खरीदते हैं। बैंकों में अपने रुपये क्यों नहीं रखते ? पर मानव हृदय अर्थशास्त्र के नियमों से बंधा हुआ नहीं है। यदि एक किसान के पचास हजार रुपये किसी बैंक में जमा हैं और उसके पास कोई जमीन वगैरह नहीं है और एक दूसरे किसान के पास नकद रुपया तो उतना नहीं है मगर ५० एकड़ जमीन जरूर है, तो जनता की नजर में यह जमीनदार किसान अधिक इज्जतदार है। बैंक और रुपये का क्या भरोसा ? आज है, कल नहीं। फिर ताल्लुके में जाँच करने पर यह पता चलता है कि जमीनों को खरीदने वालों में अधिकांश लोग विदेश से लौटे हुए हैं, पर सेंटलमेंट आफीसर ने इस बात का रिपोर्ट में कहीं भी जिक्र नहीं किया।"

"सैटलमेंट आफीसर ने जनता की समृद्धि का दूसरा सुबूत यह पेश किया है कि माल के भाव खूब बढ़ गये हैं, पर उनके बढ़ने का कारण भी महायुद्ध ही है। सैटलमेंट आफीसर की रिपोर्ट की स्याही सूखने के पहिले तो वे भाव गिर गये और तब से बराबर गिरते ही जारहे हैं। आज कपास के भावों में कितनी घटती होगई है ? इसके स्पष्ट है कि ऐसे अपवाद रूप बढ़े हुए भावों के आधार पर ३० वर्ष के लिये लगान बढ़ा देना अन्यायपूर्ण है। फिर माल के साथ खेती के खर्च और मजदूरी के भाव भी तो बढ़ गये हैं। सेंटलमेंट आफीसर ने इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया। जो बैल-जोड़ी पच्चीस-तीस वर्ष पहिले सौ रुपये में मिलती थी आज वैसी जोड़ी के चार-पाँच सौ रुपये लग जाते हैं। जो 'दुबला' पहिले तीस रुपये में किसान के यहाँ वर्ष भर काम करता था आज उस पर किसान के दो-तीन सौ रुपये लग जाते हैं।"

"अब जमीन के किराये पर बातचीत करें। यह बात अत्यन्त

महत्वपूर्ण है, क्योंकि सरकारी अधिकारी इसे ही खेती का नफा-नुकसान बताने वाला अपना विश्वासनीय मार्गदर्शक समझते हैं। अतः उनका खयाल है कि लगान के दर इसी के आधार पर कायम करना सब से आसान और न्याययुक्त तरीका है। यह तरीका आसान भले ही हो पर न्याययुक्त तो नहीं कहा जा सकता। अहमदनगर के कलक्टर मि० स्मार्ट ने लैंड रेवेन्यू एसेसमेंट कमेटी (Land Revenue Assesment Committee) के सामने, जिसकी नियुक्ति सन १९२४ में हुई थी, जुबानी बयान देते हुए इस प्रश्न को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि Rental Value अर्थात् किराये को लगान निश्चित करने का एकमात्र साधन कभी समझा नहीं जा सकता। फिर भी यदि इसी के आधार पर जमीन का लगान निश्चित करना हो, तो नीचे लिखी बातों पर सम्पूर्ण विचार होना जरूरी है।

जांच के लिये एक ऐसा मामूली गाँव चुना जाय जो नतो बहुत बड़ा हो, और न छोटा। वह कल कारखाने वाले शहर से बहुत नजदीक न हो। वहाँ पर जिन जमीनों को किराये या मुनाफे पर दिया गया हो, उनके पिछले पांच वर्ष का इतिहास जाँच लेना चाहिये। इस इतिहास में यदि यह पाया जाय कि जमीन का मौजूदा किराये-दार पहिले जमीन का मालिक था तो ऐसी जमीनों को हमारे हिसाब में शामिल नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोगों को अपनी पुरानी जमीन पर प्यार होता है। बपौतीकी भावना भी होती है। वे चाहते हैं कि उनकी जमीन को और कोई न जोते। साहूकार उनकी इस भावना का अनुचित लाभ उठाकर अधिक किराया मांगता है और हर साल बढ़ाता जाता है। इसी प्रकार परती की जमीन जो पहले पहल किराये पर दी गई, उसे भी हमारे हिसाब में शामिल नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ऐसी जमीनों से पहले पहल खूब पैदावार होती है, इसलिये उनका भी किराया बहुत अधिक होता है। कई बार किरायेदार और जमीन के मालिक के बीच कर्जदाता और साहूकार का सम्बन्ध होता

है। इसीलिये उसके किराये में साहूकार के दिये कर्ज का शूद भी शामिल रहता है। ऐसी समस्त बातों को छोड़ने के बाद ही जमीन सच्चे किराये के दर हमें मिल सकते हैं।"

"जमीन का किराया बढ़ने का एक कारण और भी है। कभी-कभी किसान के पास जमीन कुल १०-१२ बीघा ही होती है फिर भी उस के लिये एक बैल जोड़ी तो रखना ही पड़ता है। पर एक बैल जोड़ी से वह २०-२५ बीघा जमीन जोत सकता है। इसलिये वह अपनी बैल जोड़ी तथा "दुबला" को भी काफी काम मिल जाय इसलिये भारी किराया देकर भी थोड़ी-बहुत दूसरे की जमीन भी किराये पर जोतने के लिये लेलेता है। फिर यह किराये पर लगान निश्चित करने का सिद्धान्त तो तब लगाया जा सकता है जब ताल्लुके में किराये पर ही अधिकांश जमीन दी जाती हो बारडोली में तो यह भी नहीं है। क्योंकि समस्त ताल्लुके में जमीन निम्नलिखित प्रकार से बंटी हुई है—

ताल्लुके में कुल १४२००० एकड़ जमीन है। इनमें से १७००० एकड़ तो जंगल तथा टेकड़ियों के कारण खेतों के लिये उपयोगी नहीं है। शेष १२५००० एकड़ जमीन निम्नप्रकार से किसानों में बटी हुई है—

१ से ५ एकड़ तक जिस के पास है ऐसे खातेदारों की संख्या १०३४५
६ से २५ एकड़ तक जिसके पास है ऐसे खातेदारों की संख्या ५९३६
२६ से १०० एकड़ तक जिसके पास है ऐसे खातेदारों की संख्या ८२९
१०० से ५०० एकड़ तक जिसके पास है ऐसे खातेदारों की संख्या४०

इस तरह बारडोली में कुल १७१८४ खातेदारों में १६३१५ ऐसे हैं जिनके पास २५ एकड़ से अधिक जमीन नहीं। १०३७९ खातेदारों के पास तो केवल १ से ५ एकड़ तक ही जमीन है। ऐसी हालत में कितनी जमीन किराये पर दी जा सकती है? जिनके पास २५ एकड़ से अधिक जमीन है वे ही किराये पर दे सकते हैं। इस तरह

हिसाब किया जाय तो फी सैकड़ा पांच से अधिक जमीन किराये पर नहीं उठाई जाती। फिर जिन परिस्थितियों में ये जमीनें किराये पर उठाई जाती हैं, उनका भी अगर विचार किया जाय तो किराये को लगान वृद्धि का आधार मानना सरासर अन्याय युक्त मालूम होगा।"

"सैटलमेंट आफीसर की शेष दलीलें बिलकुल ही थोथी हैं। हल, बैल जोड़ी, गाड़ी वगैरा की संख्या बढ़ना समृद्धि का लक्षण नहीं माना जा सकता। क्योंकि जैसे-जैसे किसानों के कुटुम्ब विभक्त होते जायेंगे, उनके लिये अलग-अलग हल, बैल जोड़ी तथा गाड़ी वगैरा रखना जरूरी है। फिर भी मि० जयकर स्वयं कुबूल करते हैं कि खेती के उपयोगी जानवरों को संख्या बढ़ी नहीं, बल्कि उलटी घट ही गई है। यद्यपि खेती की जमीन बढ़ गई है। दुधार जानवरों की संख्या बढ़ने का खास कारण यह है कि महज खेतों से लोगों का पेट नहीं भरता, इसलिये दूध घी बेच कर अपना गुजर करने के लिये उन्हें गाय, भैंस रखनी पड़ती है।"

ताप्ती बैली रेल्वे को तो कई वर्ष हो गये। इसके बजट वगैरा पिछले बन्दोबस्त के समय ही तैयार हो गये थे। अतः इससे लोगों को जो-जो लाभ होने की आशा थी, उनका हिसाब पिछली लगान वृद्धि के साथ ही सैटलमैन्ट आफीसर मि० फरनान्डीज ने लगा लिया था। उसे इस बार जनता की समृद्धि के बढ़ाने वाले साधनों में फिर गिनना अनुचित है। जो नई सड़कें बनी हैं, उनमें से अधिकांश स्थानीय कोष से बनी हैं और बहुत कम अच्छी हालत में हैं। कर्नल प्रेस्कॉट ने उनके विषय में लिखी है—

"वे आदमी और जानवरों की जान लेने के लिये काफी हैं।" और उन सड़कों का हाल जो उस समय था, वह आज भी है।"

"नियमित वर्षा होना और अकालों का कम होजाना क्या बेचारे किसानों का अपराध है? इसके लिये लगान में वृद्धि करके उन्हें

लूटना क्या ब्रिटिश न्याय के अनुकूल है ? यदि आकाल नहीं आते तो क्या फिर उनका लाया जाना आवश्यक है ?

क्या ब्रिटिश सरकार चाहती है कि जनता के पास दो पैसे भी नहीं रहने दिये जाँय। जन संख्या की वृद्धि वाली दलील तो एक दम थोथी है। तीस वर्ष में ३८०० की वृद्धि तो व्यापार के केन्द्र माने जाने वाले ४-५ कस्बों में हुई है। शेष ताल्लुके की जन संख्या तो उलटी घटती हुई प्रतीत होती है।"

"पक्के मकानों का बनना तथा बिना चौथाई की नोटिस के लगान का वसूल होजाना भी जनता की समृद्धि के कारणों में शुमार किया गया है। पहिले तो ये बातें यह सिद्ध नहीं करती कि जनता समृद्ध हो गई है। पक्के मकान दक्षिण अफ्रीका से लौटे हुए लोगों ने बनवाये हैं। जमीन के समान ही पक्के मकानों का होना भी आबरू दार आदमी का लक्षण बारडोली में किसी प्रकार समझा जाने लगा है, इसीलिये लोग कर्ज लेकर भी पक्के मकान बनवाने लगे हैं। यदि वे ऐसा नहीं करें तो उन्हें डर रहता है कि उनके बच्चे अविवाहित ही रह जायें अथवा ऊँचे वर्ग के समधी उन्हें नहीं मिलें। ताल्लुके में जितने पक्के मकान हैं, उनमें से आधे से अधिक तो अफ्रीका से लौटे हुए लोगों के हैं, और शेष पक्के मकानों के मालिक कर्जदार हैं। यही हाल शादी और मृत्यु भोज का भी है। एक धनिक व्यक्ति शौक के खातिर अधिक पैसा खर्च कर देता है, लोग उसकी तारीफ करते हैं। दूसरों को भी उसी की तरह प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा होती है, वे भी वैसा ही करने लगते हैं। और शनैः शनैः वह एक रिवाज बन जाता है। फिर उसे तोड़ने की हिम्मत किसे हो सकती है ? लोग आंखें मूंद कर फिजूल खर्ची करते चले जाते हैं और कर्ज में डूबते जाते हैं। इन बातों को जनता की समृद्धि समझना भयंकर भूल है लोग समय पर लगान दे देते हैं यह उनकी समृद्धि की अपेक्षा दण्ड भीरुता का लक्षण भले ही कहा जा सकता है।"

''काली परज जाति में सुधार हो रहे हैं, उनमें शिक्षा बढ़ती चली जाती है और शराबखोरी और खर्चीली प्रथाएँ घटती जाती हैं, इसीलिये उन पर लगान बढ़ाने की नीति के लिये "कुटिलता" के सिवा और कोई उपयोगी शब्द नहीं मिलता। क्या यह कुटिलता नहीं कि जब काली परज जाति में खर्चीली प्रथाएँ हों, शराबखोरी हो, शिक्षा का अभाव हो, तब यह कह कर उन पर अधिक कर लगाया जाता है कि वे व्यर्थ की बातों में खर्च कर डालते हैं, इसलिये कर ही बढ़ा देना ठीक है। अब जबकि उन्होंने शराब छोड़दी और दूसरी बातों मे भी सुधरते जारहे है, तब यह कहा जाता है कि अब तो ये सुधरते जारहे हैं, उनकी कमाई में बचत भी होती होगी, अतः अब तो उनपर कर बढ़ाना ही चाहिये। फिर भी यदि काली परज की दशा सचमुच ही अच्छी होती, तब भी बात समझ में आसकती थी। इस समय तो वे अपना पेट भी पूरा भर नहीं पा रहे हैं, फिर कर वृद्धि की यह ज्यादती क्यों ?"

वास्तव में जनता की हालत तो पहले की अपेक्षा कहीं अधिक खराब हो गई है। पिछले बन्दोबस्त के समय तीस वर्ष पहिले बारडोली ताल्लुके पर ३३ लाख रुपये का कर्ज था। आज वह एक करोड़ से भी अधिक है। प्रति वर्ष बारडोली में २८६०५४८) का माल खेती से पैदा होता है, परन्तु इसे पैदा करने में ३२०००००) खर्च हो जाता है एक करोड़ का कर्ज, उसका सूद और उस पर भी यह चार लाख रुपये सालाना की घटती, इन सब बतों पर सरकार को खयाल करना चाहिये।

१—खेती के मामले के, खासकार कपास के भाव बहुत गिर गये हैं और अब मजदूरी के भाव इतने बढ़ गये हैं कि किसानों को कुछ भी बचत नहीं रहती।

२—सैटलमैन्ट आफीसर ने जमीनों की कीमतें यथा माल के भावों का खयाल करते समय असाधारण वर्ष गिन लिये हैं।

३—जमीनों की कीमतें बढ़ने का कारण उपज नहीं, दक्षिण अफ्रीका में पैदा किया हुआ धन है।

४—विनिमय के भाव बदलने के कारण भी किसानों के बड़ी हानि उठानी पड़ी है।

५—किसान कर्जदार हैं, जमीन में उन्हें विशेष लाभ नहीं होता।

६—शिकमी लगान (Rental Value) का हिसाब गलत है।"

इन समस्त शिकायतों के काम चलाऊ जवाब देकर सरकार ने ता० १६ जुलाई १६२७ के दिन एक प्रस्ताव द्वारा लगान २६.३० से घटाकर २१.६७ कर दिया और जाहिर कर दिया कि "इस बन्दोबस्त के सम्बन्ध में जितनी भी दलीलें पेश की गई हैं उन पर गवर्नर इन काउन्सिल ने खूब अच्छी तरह विचार कर लिया है और वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि लोगों द्वारा पेश की गई सारी दलीलें भ्रममूलक हैं। नेताओं की यह भविष्य वाणी गलत होगी कि जनता बरबाद हो जायगी। इसके विपरीत गवर्नर और उनकी कौंसिल को इसमें रत्ती भर सन्देह नहीं कि लगान में इतनी वृद्धि हो जाने पर भी बारडोली का आगामी तीस वर्षों का इतिहास उसकी समृद्धि का ही इतिहास होगा।

इस प्रस्ताव और जवाब से जनता और भी खीज उठी। सारे ताल्लुके भर में असन्तोष और क्षोभ की आग फैल गई। माना कि सरकार ने लगान में कुछ कमी करदी थी तथापि गाँवों के वर्गीकरण में फिर परिवर्तन कर दिये गये थे। कई नीचे के वर्ग के गाँव ऊंचे वर्ग में रखदिये गये थे। इसलिये उनपर दुगना लगान कर दिया गया। लगान दुगना होजाने के साथ ही उन पर २२ प्रतिशत और भी बढ़ा दिया गया। ये गाँव खास कर रानी परज के ही थे। अतः रानी परज में सब से अधिक असन्तोष फैल गया।

युद्ध की पूर्व पीठिका

जब जनता सरकार से निवेदन करते-करते थक गई और

लगान वृद्धि को रोकने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं रहा तो जनता का ध्यान गांधीजी के बताये हुए अस्त्र-सत्याग्रह-की ओर गया। ६ सितम्बर १९२७ को बारडोली में ताल्लुके के समस्त किसानों की एक परिषद् हुई। श्री दादूभाई देसाई उसके अध्यक्ष थे। श्री भीमभाई नाइक और डाक्टर दीक्षित के जोरदार भाषण हुए। वैध आन्दोलन की असफलता उनके सामने ही थी। हर आफीसर .से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में भी वे निवेदन कर चुके थे। यहाँ तक कि रेवेन्यू मेम्बर तथा गवर्नर तक ने उनकी बातें नहीं सुनी। इधर धारा सभा के सदस्यों ने भी कोरा ही जवाब दे दिया कि "हमसे जितना भी हो सकता था, हमने सभी किया। अब आपमें शक्ति हो और कष्टों को झेलने की क्षमता हो तो सत्याग्रह के सिवाय अब कोई उपाय नहीं है।" धारासभा के सदस्यों ने जनता से यह भी कहा कि वे सरदार वल्लभभाई पटेल को अपना नेता बनायें। इसके बाद परिषद में सरकार को किसी भी सूरत में लगान न देने का प्रस्ताव पास होगया और सभा विसर्जित हो गयी।

११ दिसम्बर १९२७ को वालोड़ महाल के लोगों की भी एक सभा हुई। अध्यक्ष धारासभा के सदस्य श्री शिवदासानी थे। यहाँ भी सरकार को लगान न देने का प्रस्ताव पास हुआ।

इसके बाद सूरत के दयालजी भाई पटेल से नेतृत्व ग्रहण करने की प्रार्थना करने गये। श्री वल्लभभाई पटेल ने नेतृत्व ग्रहण करने के पहिले भाषण देते हुए बांकानेर में कहा—

"दयालजी भाई आप लोगों से मिलकर मेरे पास लौट आये। उन्होंने कहा कि लोग तो सिर्फ उतना लगान भरने से इन्कार करने के लिये तैयार हैं, जो अभी बढ़ाया गया है। मैंने देखा कि इस तरह की लड़ाई लड़ना तो पाखण्ड है। यह तो साफ-साफ कायरता है। इसमें सत्य का लवलेश भी नहीं। शायद आपने सोचा होगा कि जमीनें

खालसा होने की अथवा अन्य तरह की कोई भारी जोखम नहीं उठाना पड़े, इस विचार से पुराना लगान तो सरकार को दे दें, और बढ़ा हुआ लगान न दें, और इससे सरकार पर जरूर असर पड़ेगा। पर आप विश्वास रखिये, यह सत्याग्रह नहीं कहा जासकता। सत्याग्रह तो एक अमोघ उपाय है। यदि आप साढ़े चार लाख रुपये तो सरकार को देदें और एक लाख लाख न दें तो इससे सरकार का क्या बिगड़ सकता है? वह तो धीरे-धीरे सब वसूल कर लेगी। यह तो आपको सावधानी के साथ, बिना कोई जोखम उठाये लड़ने के लिये कहा जारहा है। इससे कुछ फल नहीं निकल सकता। इससे न तो बारडोली का ही भला होसकता है और न हिन्दुस्थान का मेरा यह सन्देश लेकर दयालजी भाई लौटे, पर वे बीमार होगये। फिर एक दिन, मेरे पोरबन्दर जाने से पहिले, कल्याणजीभाई तथा खुशालजीभाई मुझसे मिले और उन्होंने कहा-"बारडोली के लोग बड़े असमंजस में पड़े हुए हैं, इसलिये आपही उन्हें कोई रास्ता सुझाइये।" मैंने उनसे कहा-"आप बारडोली जाइये, गाँव गाँव घूमकर देखिये कि लोग लड़ना चाहते हैं या नहीं। अगर वे लड़ना नहीं चाहते तो मैं उन्हें जबरदस्ती लड़ाना नहीं चाहता। यदि वे समझ चुके हों कि इस समय तो सरकार से लड़ना ही हमारा धर्म है तो किस प्रकार लड़ना चाहिये, यह बताना मेरा काम है। यदि उनकी इच्छा हो कि नेता मिल जाय तो लड़े। तो मेरा धर्म है किमैं उनका साथ दूं।" दयालजी भाई और खुशालभाई बारडोली में घूमे, परिस्थितियों का अध्ययन किया और फिर उन्होंने मुझसे आकर कहा कि-"लोग इस बात को समझते जारहे हैं कि सत्यागह ही लड़ने का एकमात्र और सबसे बढ़िया मार्ग है। और बहुत से लोग इस तरह लड़ने को तैयार भी हैं।" तब मैंने उनसे कहा कि-"अब आप जाइये और समस्त ताल्लुके के किसानों को बारडोली में किसी दिन एकत्रित कीजिये और मुझे इसकी खबर कर दीजिये। एक बार मैं स्वयं लोगों से रूबरू बात

चीत करके जान लेना चाहता हूँ कि उनके दिल में क्या है ? ”

४ फरवरी १६२८ को बारडोली ताल्लुके के समस्त किसानों की एक प्रतिनिधिक सभा हुई। अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल हुए। इस सभा में धारासभा के तीन सदस्य श्री भीमभाई नाइक, श्री दादूभाई देसाई तथा डाक्टर दीक्षित भी उपस्थित थे। तीनों धारा सभाई सदस्यों ने जनता से कहा कि "हम तो सब कुछ कर चुके। अब बाजी फिर हमारे हाथों में है, अब तो वल्लभभाई जैसे सत्याग्रही ही आपकी सहायता कर सकते हैं; इसलिये आप अब उन्हीं का आश्रय लीजिये।" सरदार पटेल ने सबसे पहिले कार्यकर्त्ताओं की अच्छी तरह जांच की और यह जान लिया कि वे सत्याग्रह के अर्थ और गम्भीरता को अच्छी तरह समझे हुए हैं। इसके बाद उन्होंने प्रतिनिधियों को बुलाया। ७९ गांवों के लोग उस दिन हाजिर थे। ताल्लुके में जितनी भी खेतिहर जातियाँ थीं, सबके प्रतिनिधि वहाँ विद्यमान थे। सभी प्रतिनिधि अपनी जिम्मेदारियों से पूर्ण परिचित थे। कई प्रतिनिधि तो सभा में खड़े होकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे कि "बढ़ा हुआ लगान कतई अन्यायपूर्ण है अतः इसे किसी भी प्रकार नहीं भरना चाहिये।"

सरदार पटेल ने एक-एक प्रतिनिधि से इस विषय में बातचीत की उनमें से पांच प्रतिनिधि ऐसे निकले जिन्होंने यह कहा कि "हम पुराना लगान जमा करा देंगे और नया लगान वसूल करने के लिये अपनी शक्ति आजमाने की सरकार को चुनौती देंगे।" शेष सभी लोगों ने एक स्वर से कहा कि "जब तक सरकार नहीं झुकेगी या पुराना लगान ही लेने के लिये तैयार नहीं होगी, तब तक हम उसे कुछ न देंगे।" एक रानी परज के किसान ने कहा—"हम अड़े तो रहेंगे पर सरकार का जुल्म सहना जरा मुश्किल मालूम होता है।" दूसरा इस पर गरज उठा—"सरकार जो चाहे सो करे, दूसरों का कुछ भी होता रहे, पर मैं तो कभी लगान न दूंगा।" सभा को पूरे

जोश में देखकर सरदार पटेल ने गरज कर कहा—"यदि आपमें ऐसे चार आदमी हों जो लगान बृद्धि के इस अन्याय के विरोध में लड़ते-लड़ते अपना सर्वस्व गंवाने के लिए तैयार हों तो वे आगे आ जायें।" इस पर एक दम सभा में से चार आदमी आगे आकर खड़े हो गये। इस प्रकार लोगों की मनोदशा की अच्छी तरह जांच कर लेने के बाद सरदार पटेल ने लोगों को सत्याग्रह में होने वाले कष्टों का खयाल दिलाया और बताया कि "जो करना है उसके पहिले खूब सोच समझ लो। मेरे साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सकता। मैं किसी ऐसे काम में नहीं पड़ता जिसमें कोई खतरा या जोखिम न हो। जिसे संकटों को निमन्त्रण देना हो, उसकी सहायता के लिए मैं हमेशा ही तैयार हूँ।"

लोग सत्याग्रह की प्रतिज्ञा लेकर युद्ध की घोषणा करने के लिये अधीर हो रहे थे। सरदार वल्लभ भाई ने समझा बुझा कर इस महान् प्रश्न पर आठ दिन और विचार करने के लिये दे दिये। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि—"मैं इस बीच सरकार को एक बार इस मामले में न्याय करने के लिए फिर समझा कर देख लेता हूँ।"

इसके बाद सभा विसर्जित हो गई।

सत्याग्रही के सर्वोपरि धर्म के अनुसार सरदार पटेल ने सरकार को आखिरी बार समझाने की चेष्टा करते हुए बम्बई के गवर्नर सर लेस्लीविलसन को एक पत्र लिखा।

अहमदाबाद ६ फरवरी १९२८

श्रीमान,

आज यह पत्र आपको मैं जिस विषय के सम्बन्ध में लिख रहा हूँ, उसमें एक लाख किसानों के हित का सवाल है। मैं यह पत्र आपको बड़े संकोच के साथ लिख रहा हूँ। इसमें मुझे अपनी जिम्मे-दारी का पूरा खयाल है। फिर मैं यह पत्र आपको ही लिखने की

इसलिये इजाजत चाहता हूँ कि यह मामला बहुत ही जरूरी है और लोगों तथा शायद सरकार के लिये भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

सूरत जिले के बारडोली ताल्लुके की जो नई जाँच हुई है, उसमें फी सैकड़ा २२ लगान वृद्धि की गई है। ता० १६ जुलाई १६२७ के सरकारी निर्णय नं० ७२५६। २४ के अनुसार उस पर इसी वर्ष से अमल भी होने वाला है, इसीलिये जनता बहुत ही उत्तेजित हो गयी है। वह मानती है कि उसके साथ भारी अन्याय हुआ है। न्याय प्राप्त करने के तमाम मामूली उपायों को लोगों ने आजमा कर देख लिया। अन्त में यह सोचने के लिये कि, लगान वृद्धि का जो कि किसानों की दृष्टि में एक तरफा, अन्याय तथा अत्याचारपूर्ण है, विरोध किस प्रकार किया जाय। बारडोली में ताल्लुके के किसान, की एक परिषद् हुई थी। इस परिषद् का अध्यक्ष स्थान गृहण करने के लिये किसानों ने मुझसे प्रार्थना की थी। गत पन्द्रह दिनों में ताल्लुके के गाँवों से मेरे पास इस विषय में बहुत अर्जियाँ आई थीं।

परिषद् का काम आरंभ करने के पहिले ७५ गांवों से भी अधिक के प्रतिनिधियों से मैं मिला। किसी गाँव का एक भी प्रतिनिधि ऐसा ना था जो इस लगान वृद्धि को अन्यायपूर्ण न मानता हो। पाँच गाँवों के प्रतिनिधिओं ने लगान में जो नवीन वृद्धि हुई है उसे ही भरने से इन्कार करने की बात कही। किन्तु उनको छोड़कर शेष ७० से भी अधिक गाँवों के प्रतिनिधियों ने एक स्वर से यही निर्णय जाहिर किया कि जबतक उन्हें न्याय न मिले तबतक सारा लगान ही न दिया जाय। इस तरह अधिकांश गाँवों की राय देख कर पूर्वोक्त पाँच गाँवों के प्रतिनिधियों ने भी अपना निर्णय बदल दिया। मैंने लोगों को खूब समझाया कि उनके निर्णय के कितने गंभीर परिणाम हो सकते हैं, संभव है लड़ाई जल्दी खत्म न हो। अनेक संकट भी आसकते हैं, परन्तु लोग तो मुझे अपने निर्णय पर दृढ़ दिखाई दिये। परन्तु जहाँ तक हो सके मेरी इच्छा है कि वर्तमान परिस्थिति में सरकार के साथ

बहुत बड़ी लड़ाई न छेड़ी जाय, इसलिये लोगों से मैंने कहा कि अपने निर्णय पर खूब विचार करलो। और अन्तिम निर्णय करने के पहिले आपको भी मैं एक पत्र लिखकर देख लेना चाहता हूँ, उनसे भी कहा। उन्होंने मेरी यह बात मानली और यह तै हुआ कि एक हफ्ते तक आपके उत्तर की राय देखी जाय तथा तबतक इस निर्णय पर विचार करके ता० १२ को फिर वहीं सब लोग सम्मिलित हों। इस मामले पर विचार करने लिये इससे अधिक समय मिल सकता तो मुझे बड़ी खुशी होती। परन्तु यह अशक्य था। क्योंकि लगान अदा करने की १५ दिन की मियाद ता० २० फरवरी को समाप्त हो रही है।

सरकार की लगान सम्बन्धी नीति के कारण अभागे गुजरात को बहुत सहना पड़ा है। इसके परिणाम अहमदाबाद और खेड़ा जिले के कितने ही ताल्लुकों में तो साफ-साफ दिखाई देते हैं। सूरत की दशा भी उनसे अच्छी नहीं। किन्तु वहाँ के बारडोली तथा अन्य ताल्लुकों में कपास की खासी उपज होती है और इस गत महायुद्ध के कारण कपास के भाव असाधारण रूप से चढ़ गये हैं। खेड़ा जिले का मातर ताल्लुका जो कि एक समय काफी मालदार समझा जाता था, आजकल ऐसा बरबाद हो रहा है कि कभी इस बरबादी से उठने की उसे आशा ही नहीं है। उसी जिले के अहमदाबाद तथा अन्य कितने ही ताल्लुकों की यही दशा हुई जा रही है। अहमदाबाद के धोलका तथा धुंधुका ताल्लुके का भविष्य भी इनकी अपेक्षा आशाप्रद नहीं है। यह सब सरकार की जमीन सम्बन्धी लगान नीति के कारण हुआ है और यह सिद्ध किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जब मैंने ता० १६ जुलाई १९२७ का रेवेन्यू डिपार्टमेंट का सरकारी निर्णय नं ७२५६/२४ का निम्नलिखित अन्तिम वाक्य पढ़ा तब मुझे दुख और आश्चर्य भी हुआ।

"इसके विपरीत गवर्नर और उसकी कौंसिल को तो इस बात में जरा भी सन्देह नहीं कि यद्यपि जमीन के लगान में वृद्धि की गई है फिर भी आगामी तीस वर्ष में ताल्लुके का इतिहास यही बतायेगा कि ताल्लुका दिन व दिन समृद्धि हो होता गया है।"

मैं तो सिर्फ इसके बाद यही कह देना चाहता हूँ कि गुजरात के अन्य भागों के सम्बन्ध में किये गये ऐसे भविष्य हमेशा झूठे साबित हुए हैं।

सरकार के उपर्युक्त निर्णय का ग्यारहवाँ पैरा पढ़ते हुए भी दुख होता हैं। लोगों ने अपनी अर्जियों और दरख्वास्तों में सरकार के सामने जो दलीलें और आपत्तियां पेश की हैं उन सब पर एक कलम मार कर इस पैरा में हड़ताल फेर दी गई है। वे दलीलें गम्भीर और परिणाम जनक हैं। फिर भी सरकार ने उन्हें जिस तरह ऊपर-ही-ऊपर उड़ा दिया है उससे यही स्पष्ट है कि सरकार तो हर तरह बढ़ा हुआ लगान वसूल कर ने पर ही तुली हुई है।

लगान की पुनः जाँच या वृद्धि का मामला बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें सरकार का यह कर्तव्य था कि वह अपने अधिकारियों को इस आशय की हिदायतें दे कि जिन लोगों से लगान वसूल किया जाता है उन्हें इसकी खबर करदी जाय। सेटलमैन्ट आफीसर प्रत्येक गाँव के प्रतिनिधियों के साथ पूरी तरह बातचीत करें और उनकी राय को पूर्ण महत्व प्रदान करें। इस के सिवाय किसी प्रकार की भी सिफारिशें वह न करें। पर मालूम होता है कि सरकारी अधिकारियों ने यह कुछ नहीं किया। उन्होंने तो शिकमी लगान के कागजों पर ही अपनी सारी इमारत खड़ी की है। साथ ही मुझे यहाँ पर यह कह देना चाहिये कि जमीन लगान के इतिहास में लगान निश्चित करने के इस सिद्धान्त को पहिली ही बार इस ताल्लुके में इख्तयार किया गया है। सेटलमैन्ट आफीसर ने न तो लोगों से ही बातचीत

की ओर न उनकी राय को कोई महत्व ही दिया। खैर इस बात को यदि छोड़ दिया जाय तो भी जमीन का लगान निश्चत करने का यह सिद्धान्त ही आपत्तिजनक है, और किसानों के लिये बड़ा ही हानिकारक है।

पर यदि क्षण भर यह भी मान लें कि यह सिद्धान्त अनुचित नहीं, फिर भी अपनी ही उद्घोषित नीति के—उदाहरण के लिये मार्च १९२७ में धारासभा की एक बैठक में रेवन्यू मेम्बरों ने जो बात कही थी, उसके खिलाफ तो बिना किसी महत्वपूर्ण कारण के सरकार कदापि नहीं जा सकती। रेवन्यू मेम्बर के कथन के विपरीत इस साल के सार बन्दोबस्त का आधार असाधारण वर्षों में बढ़ी हुई जमीन की कीमतें और माल के भावों पर ही रखा गया है, और भी कई कारणों से यह लगान वृद्धि दूषित है। उनकी तरफ भी मैं श्रीमान् का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

सेटलमेन्ट आफीसर ने अपनी रिपोर्ट लगान निर्णय की प्रचलित प्रथा के आधार पर बनाई है, जिसमें किराये को गौण स्थान प्रदान किया गया है। इसलिये लोगों ने जब अपनी ओर से आपत्तियां पेश कीं तो उन्होंने भी किराये (Lease) को विशेष महत्व नहीं दिया। परन्तु इसके बाद सेटलमेन्ट कमिश्नर ने लगान निर्णय का एक बिलकुल ही नवीन सिद्धान्त ग्रहण किया। यही नहीं, बल्कि सेटलमेन्ट आफीसर ने गांवों के जो वर्ग बनाये थे, उनको भी कमिश्नर ने उलट दिया और अपनी ओर से अलग ही वर्गीकरण किया। ऐसी सिफारिशों को मंजूर करके सरकार ने लगान निर्णय में एक बिलकुल ही नई बात आरम्भ करदी है। इस नवीन वर्गीकरण में कई गांव ऊपर के वर्ग में चढ़ा दिये गये हैं। इसलिये उनपरतो ऊन पर के वर्ग का ऊँचा दर और बढ़ाया हुआ लगान भी, यानी ५०-६० फी सैकड़ा लगान बढ़गया है। अन्तिम हुक्म देने के पहिले इस बात की लोगों

को खबर तक नहीं दी गई। सरकार ने तो सैटलमैन्ट कमिश्नर का वर्गीकरण स्वीकार कर लिया और १६ जुलाई १६२७ को अन्तिम हुक्म जारी कर दिये। इसी वर्ष यदि नये सैटलमेन्टल पर अमल करना है तो अगस्त की पहिली तारीख के पहिले इसकी घोषणा हो जाना आवश्यक था।

पर जो बात सब से अधिक नियमों के विपरीत थी, वह तो यह है कि जुलाई के अन्तिम सप्ताह में ३१ गाँवों को नोटिसें दी गई कि इस वर्गीकरण पर जिन्हें आपत्ति होवे व अपनी दलीलें दो माह के अन्दर पेश करें। इस प्रकार से तो १६ जुलाई १६२७ का लगान वृद्धि वाला सरकार का निर्णय (Resolution) अन्तिम नहीं रहा। और अन्तिम हुक्म देने के पहिले जनता के द्वारा पेश की गई आपत्तियों का विचार करने के लिये सरकार बँधी हुई है। दूसरे छः महीने का नोटिस दिये बिना इसी वर्ष सरकार लगान वृद्धि वाले हुक्म पर अमल नहीं कर सकती।

परन्तु ताल्लुके के साथ जो प्रकट अन्याय हुआ है, उसके विषय में मैं अधिक लिखना नहीं चाहता। मेरी तो सिर्फ यही विनय है कि लोगों के प्रति न्याय करने के लिये सरकार कम-से-कम नये बन्दोबस्त के अनुसार लगान वसूल करना अभी मुल्तवी रखे और इस सारे मामले की फिर एकबार शुरू से जाँच करले। इस जाँच के अन्दर लोगों को अपनी बातें पेश करने का अवसर दिया जाय और और यह वचन दिया जाय कि उनकी बातों को पूर्ण आवश्यक समझ कर उनको महत्वपूर्ण माना जायेगा।

अत्यन्त नम्रतापूर्वक मैं श्रीमान् से निवेदन कर देना चाहता हूँ कि बहुत संभव है, यह मामला तीव्र स्वरूप धारण करले। अतः इसे रोकना श्रीमान् के हाथ की बात है। इसलिये मैं आदरपूर्वक श्रीमान् से अनुरोध करता हूँ कि लोगों को अपना पक्ष ऐसे निश्पक्ष पंच के

समक्ष पेश करने का श्रीमान् अवसर दें जिसे इस मामले में पूरे अधिकार भी प्राप्त हों।

यदि इस विषय में रूबरू बातचीत करने की आवश्यकता श्रीमान को दिखाई दे तो निमंत्रण पाते ही मैं उपस्थित होने के लिये उद्यत हूँ।

आपका नम्र सेवक

ता० ६ फरवरी १९२८ वल्लभभाई जवेरभाई पटेल

गांवों के प्रतिनिधियों की जिस दिन वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में सभा हुई, उसके दूसरे ही दिन लगान वसूली की शुरू तारीख थी। तलाटियों ने वेठियाओं द्वारा लगान भर देने की डुग्गी गाँव-गाँव में पिटवा दी। परन्तु ता० १२-२-२८ तक तहसील में लगान की एक कौड़ी भी नहीं पहुँची।

इस बीच बम्बई के गवर्नर के प्रायवेट सैक्रेटरी ने वल्लभभाई पटेल को उनके उपरोक्त पत्र का उत्तर भेज दिया।

गवर्नमैन्ट हाउस
बम्बई, ८ फरवरी १९२८

श्रीयुत पटेल,

बारडोली ताल्लुके के नये बन्दोबस्त सम्बन्धी आपका पत्र ता० ६ फरवरी का लिखा हुआ माननीय गवर्नर के सामने पेश किया गया था। अब उस पर विचार करके, उचित कार्यवाही करने के लिये, वह पत्र रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट की तरफ भेज दिया गया है।

आपका
जे० केर
प्रायवेट सैक्रेटरी

अपने वायदे के अनुसार १२ फरवरी को वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में फिर ताल्लुके के समस्त प्रतिनिधियों की सभा हुई।

इस बीच बारडोली के समस्त गांवों में जागृति इतनी व्यापक हो चुकी थी कि लोग लड़ाई के ऐलान की बाट देख रहे थे। वल्लभभाई ने फिर अलग-अलग प्रतिनिधियों से बातचीत की। इस बार प्रतिनिधियों ने ऐसी दृढ़ता के साथ पटेल साहब को जवाब दिये जैसी उन्होंने शायद उम्मीद भी नहीं की थी। इसके बाद पटेल साहब ने समस्त प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"पहिले तो कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिसमें कोई जोखिम हो, पर यदि करनी ही पड़े, तो उसे मुकाम पर पहुँचा देना चाहिये। याद रखिये, इस लड़ाई को छेड़कर कही आप हार गये तो सारे देश की नाक नीची हो जायेगी और यदि जीत गये तो सारे संसार में तुम्हारे देश का मस्तक ऊँचा हो जायेगा। चलो, वल्लभभाई जैसे नेता मिल गये तो लड़ ही डालें, ऐसा समझकर कहीं अखाड़े में मत उतर पड़ना। यह खूब अच्छी तरह समझ लेना कि तुम्हें अपनी ही ताकत के भरोसे पर लड़ना है। मैं तो तुम्हें केवल राह दिखाने वाला हूँ। इस बार कहीं झुके या हिम्मत हारे तो निश्चयपूर्वक समझ लेना कि आगामी सौ वर्ष तक फिर न संभल सकोगे। आज हमें जो प्रस्ताव करना है उसे आप ही लोगों को पेश करना है। मैं कुछ न करूंगा और न कभी भाषण ही दूंगा जो कुछ करना है, सोच समझकर तुम्हीं को करना है।"

इसके बाद भरी सभा में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—"पिछले सप्ताह जब हम यहां एकत्रित हुए थे, तब यह निर्णय करके गये थे कि इस लगान के प्रश्न पर एक सप्ताह और विचार करलें और इसके बाद निर्णय करें। इस बीच मैंने चाहा कि सरकार को भी एक पत्र लिखकर अंतिम प्रयत्न करके देख लेना चाहिये। तदनुसार मैंने गवर्नर साहब को एक पत्र लिखा भी। किन्तु उनका जो जवाब आया, उसमें कोई जान नहीं। जवाब की तो मैंने उनसे आशा भी नहीं की थी। आशा तो मुझे आपके निर्णय की थी। इस

लिये आज जो बातें मैं आपसे कहूँगा, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनकर उन पर खूब विचार कीजिये और तब कोई निर्णय कीजिये ।"

"सरकार की लगान नीति बड़ी ही जटिल है । उसे कोई समझ नहीं सकता । सरकार के कोई भी दो अधिकारी इस विषय पर एक मत नहीं हैं । कलेक्टर, कमिश्नर आदि सभी के मत अलग-अलग हैं । फिर यह बातें किसानों की समझ में कैसे आसकती हैं ? यह कानून इसी तरह बनाया गया है कि सरकार जैसा चाहे मनमाना अर्थ लगा सकती हैं । जमीन के लगान का जो कानून इस समय प्रचलित है उसकी धारा १०७ के अनुसार लगान लगाया जाता है । उसका तत्व यही है कि जमीन की उपज पर किसान को जो फायदा हो उसके अनुसार लगान कायम किया जाय । अर्थात् इस बार सरकार ने बारडोली पर जो लगान बढ़ाया है, वह लगान जमीन के इस कानून के विपरीत है ।"

अब यह आशा करना व्यर्थ है कि हमारी कहीं सुनवाई होगी । अब तो सिर्फ एक मार्ग हमारे लिये खुला है, और प्रत्येक जाति के लिये भी वही एकमात्र रास्ता रह गया है । वह है शक्ति का सामना शक्ति से करना । सरकार के पास तो तोपें हैं, बन्दूकें हैं और है हुकूमत, पर आपके पास सत्य का बल है, दुख सहने की शक्ति है । अब इन दो शक्तियों का सामना है । अगर आपको यह निश्चय हो कि आपके साथ अन्याय होरहा है, और उसका सामना करना हमारा धर्म है । अगर आपकी अन्तरात्मा भी यही बात कह रही हो तो सरकार की समस्त शक्ति आपके सामने घास का तिनका है । वह कुछ नहीं कर सकती । आप लगान दोगे तभी वह ले सकेगी । जब तक आप अपने हाथ से उठाकर उसे लगान नहीं देंगे, तब तक वह आपका कुछ भी नहीं कर सकती । जालिम से जालिम सत्ता भी उस प्रजा के सामने नहीं टिक सकती जिसमें एकता है । यदि आपके अन्दर सचमुच ऐसी एकता हो तो मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि सर-

कार के पास ऐसा एक भी साधन नहीं जिससे आपके निश्चय और एकता को वह तोड़ सके। परन्तु जैसा श्री भीमभाई नाइक अपने पत्र में लिखते हैं, यह निश्चय करना आपका काम है। इस युद्ध में अपना सर्वस्व होम देने की आपके अन्दर अगर शक्ति हो तो ही इस मसले को उठाइये।"

इस युद्ध में जो जोखिम है, उसका पूरा खयाल कर लीजिये। जिस काम में जितनी भारी जोखिम होती है, वह उतना ही अधिक विशाल और महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न करता है। ज़रा कहीं सख्ती की गई और आपने अपना कदम उठाकर पीछे हटा लिया तो केवल गुजरात ही को नहीं, सारे देश को आप हानि पहुँचायेंगे। इसलिये जो कुछ भी निश्चय करें, ईश्वर को साक्षी रखकर निश्चय करें और उस पर दृढ़ रहें। जिससे बाद में आप पर कोई उंगली न उठा सके। यदि आपका कहीं यह खयाल हो कि मोम का हाकिम तक नाकों दम कर डालता है तो इतनी बड़ी सरकार का सामना हम कैसे करेंगे। तो इस डर को दिल से हटा दीजिये। आपतो यह सोचिये कि इस समय लड़ना हमारा धर्म है या नहीं। यदि आपको यह दिखाई दे कि राज्य जब किसी प्रकार का इन्साफ करना नहीं चाहता, तो उसके साथ न लड़ना, चुप-चाप पैसे भर देना, अपनी तथा अपने बच्चों की बरबादी है, यही नहीं बल्कि अपने स्वाभिमान को भी चोट पहुँचती है तो आप यह युद्ध छेड़ सकते हैं।"

कोई लाख सवा लाख या ३० वर्ष के ३५ लाख रुपये का ही सवाल नहीं, यह तो सत्य और असत्य का सवाल है, स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न है। इस राज्य में किसानों की कोई सुनता ही नहीं, इस प्रथा को तोड़ने का सवाल है। सारे राज्य का दारोमदार किसानों पर निर्भर है, फिर भी उसी की कहीं भी कोई पूछ नहीं। वह जो कहे सो सभी झूठ! ऐसी परिस्थिति का विरोध करना आपका धर्म है। पर यह विरोध इस तरह का हो कि यदि कहीं आपको परमात्मा के

सामने इस बात का जवाब देना पड़े तो कहीं सर नीचे न झुकाना पड़े। अपने दिल पर काबू करके, सत्य पर अटल रह कर, संयम पूर्वक सरकार से आपको जूझना है। अफसर आवेंगे, आपको खूब सतायेंगे, उकसायेंगे, गंदी मनमानी भाषा का प्रयोग करेंगे, जितनी भी आपमें कमजोरियां उनको दिखाई देंगी, उन पर प्रहार करके आपको गिराने की कोशिश करेंगे। तथापि आप अपनी टेक न छोड़ियेगा। अहिंसा को क्षणभर के लिये भी न भूलियेगा। सरकार जब्तियाँ करे, खालसा करे, खेत पर जावे, नीलाम की बोलियाँ लगावे, जो कुछ भी सरकारके अधिकारियों को सूझे, करने दें। पर वह आपसे कोई ऐसा काम न ले सकें, जो आपकी इच्छा के विरुद्ध हो। बस यही इस संग्राम की कुंजी है। यदि आप इतना कर सकें तो मुझे निश्चय है कि हमारी जीत होगी क्योंकि हमारे युद्धका आधार सत्य है।"

"भले ही शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायें पर आपको सरकार की इन तमाम गलतियों को और पोलों को मैदान में लाकर उनका भण्डाफोड़ कर देना चाहिये और जब तक आपके साथ इन्साफ नहीं होता, आप लगान देने से साफ इन्कार करदें। सरकार से कहिये कि एक निष्पक्ष जाँच कमेटी के सामने इस मामले को रखा जावे। सरकार अपना मामला पेश करे और हम हमारा। जब तक यह नहीं होगा, काम न चलेगा। यदि इतना भी हमसे न बन पड़ा, यदि सरकार की मनमानी इसी प्रकार हम सहते रहेंगे तो हम मनुष्य नहीं जानवर हैं। पर यह सब बातें आपको खुद समझने की हैं। यदि मैं आपके स्थान पर होता तो मैं तो साफ-माफ कह देता कि इस शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जांय पर मैं तो ऐसे लगान की एक पाई भी न दूंगा। सरकार तो अपनी मनमानी कर गुजरेगी, पर आप सब कुछ सह लेने का निश्चय करलें। मुझे तो भरोसा है कि बारडोली के वे किसान जिन पर एक समय सारे देश की आँखें लगी हुई थी, इस बार अपनी कीर्ति को शोभित करने वाली योग्यता और बहादुरी जरूर बतायेंगे

और एकबार फिर देश की दृष्टि अपनी तरफ करके अपने आपको सारे देश की बधाई के पात्र बनायेंगे।

"मैं फिर आपको एकबार सावधान किये देता हूँ कि मुझ पर या मेरे साथियों पर नहीं, अपने ही बल पर विश्वास करके अपना निर्णय आप करें। यदि आपका विश्वास सच्चा होगा, मर मिटने की आपमें क्षमता होगी और जो मार्ग आपको बताया गया है उसके पालन करने का आपमें दृढ़ संकल्प होता तो निश्चय ही आपकी जीत होगी। ऐसा निश्चय कीजिये जिसमें आपकी टेक रहे, धर्म की रक्षा हो, आपकी इज्जत बढ़े और आगे जो कुछ भी हो, आप कभी अपने प्रण से न टलें। यह सब ध्यान में रख कर ही प्रस्ताव करने वाले प्रस्ताव करें। मह प्रस्ताव मुझे अथवा मेरे साथियों को नहीं, आपमें से किसानों को ही उपस्थित करना पड़ेगा। हम तो आपकी सहायता के लिये सिर्फ बगल में खड़े रहेंगे। प्रस्ताव का समर्थन करने वाले भी आपमें से ही निकलना चाहिये। यदि आप उस पर भाषण न देसकें तो इसकी जरा भी परवाह न करें। बस धर्म पूर्वक अपने दिल के भाव प्रकट कर दें। भले ही सरकार आपके नाम लिखले, भले ही आपके ही घर पर सब से पहिले आ जावे। बस इसी से बारडोली के किसानों की इज्जत बढ़ेगी।

इसके बाद नीचे लिखा प्रस्ताव पूणी वाले श्री भीमभाई खण्डू-भाई ने उपस्थित किया—

"बारडोली के काश्तकारों की यह परिषद प्रस्ताव करती है कि हमारे ताल्लुके के लगान में सरकार ने जो वृद्धि जाहिर की है वह अनुचित, अन्याय्य और अत्याचारपूर्ण है। ऐसा हम मानते हैं। इस-लिए सरकार जब तक वर्तमान लगान को ही सम्पूर्ण लगान के बतौर लेने अथवा निष्पक्ष समिति के द्वारा इस लगान-वृद्धि के मामले की जाँच फिर से कराने के लिए तैयार न हो, तब तक हम सरकार को लगान बिलकुल न दें। सरकार हमसे जबरदस्ती लगान वसूल करने के

लिये जब्ती, खालसा वगैरह जिन-जिन उपायों का अवलम्बन करे, उनसे होने वाले कष्टों को शान्तिपूर्वक हम सहन करें। बढ़ाये हुए लगान को छोड़कर पुराने लगान को ही सम्पूर्ण लगान समझकर सरकार लेना चाहे तो हम उसे फौरन दे दें।"

गांवों से आये हुए प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। इसके बाद प्रस्ताव पर मत लेने के पहिले वल्लभभाई ने कहा—

"भाई सुलतान खां ने अभी प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा था कि बारडोली का नाम सुनते ही बंगाल में लोग हमारी चरण-रज लेने लग गये थे, यह सत्य है। बारडोली के पीछे एक बार सारा हिन्दुस्तान पागल हो रहा था। वही बारडोली यदि आबरू गँवा दे तो हम कहाँ जायँगे। इसलिये परमात्मा को याद करके इस प्रस्ताव को मंजूर करें। आज हम जो महान कार्य करने जा रहे हैं, वह इतना भयङ्कर है, इतना उत्तरदायित्वपूर्ण है कि परमेश्वर हमें भक्ति अर्पण करे, तभी हम अपनी आबरू के साथ सही सलामत पार निकल सकते हैं। इसलिये यदि आप ईश्वर को याद करके इस प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे तो मुझे विश्वास है कि परमात्मा हमारी नैया जरूर पार लगा देगा।"

इसके उपरान्त प्रस्ताव पर मत लिये गये। वह सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। साबरमती आश्रम के इमाम साहब अब्दुलकादर बावजीर ने कुरान की आयतें पढ़ीं और स्वर्गीय महादेवभाई देसाई ने कबीर का "शूर संग्राम को देख भागे नहीं" पद गाया। इसके बाद सभा विसर्जित हो गई।

युद्ध की तैयारी—सरदार वल्लभभाई के सिर पर अभी तक इतनी बड़ी और देश के भविष्य की निर्णायक जिम्मेदारी नहीं पड़ी थी। उपरोक्त प्रस्ताव के पास हो जाने पर उनपर गम्भीरतम जिम्मेदारी आ पड़ी। अब वे चैन से कैसे बैठ सकते थे। संसार की एक महान

बलशाली शक्ति से बारडोली ताल्लुके के मुट्ठी भर किसानों का सामना था। और युद्ध की सफलता और असफलता का सारा दारो-मदार वल्लभभाई के सिर पर था। अतः सभा समाप्त होने के बाद रात को वल्लभभाई सीधे बाँकानेर पहुँचे। अब तो उन्हें सारे ताल्लुके को सत्य और अहिंसा के अमोघ अस्त्र लेकर खड़े करना था। बाँका-नेर में आसपास के २०-२५ गांवों के किसान एकत्रित हुए थे। सरदार पटेल ने उनसे कहा—

"बारडोली में मैं आज एक नवीन स्थिति देख रहा हूँ। पिछले दिनों को मैं भूला नहीं हूँ। उन दिनों इस तरह की सभाओं में पुरुषों के साथ कितनी ही बहिनें भी आती थीं। अब तो आप केवल पुरुष ही पुरुष गाड़ी जोतकर सभा में आते हैं। मालूम होता है बूढ़े-बड़ों की खातिर शायद आप ऐसा करते हैं। पर मैं कहता हूँ कि यदि हमारी बहिनों, स्त्रियों और लड़कियों को भी हम साथ में न रखेंगे तो आगे नहीं बढ़ सकेंगे। कल ही से जब्तियां आरम्भ होंगी। जब्ती हाकिम हमारी चीजें, बर्तन, गाय, बैल आदि लेने के लिये आवेंगे। यदि हमारी बहिनों को हम इस युद्ध से परिचित नहीं रखेंगे, उन्हें भी अपने साथ तैयार नहीं कर लेंगे, यदि वे भी पुरुषों के समान ही इस युद्ध में दिलचस्पी नहीं लेने लगेंगी तो वे उस समय क्या करेंगी? खेड़ा जिले में मैंने अनुभव किया है कि जिन स्त्रियों को युद्ध की तालीम नहीं दी गई, उन्हें उस समय बड़ी चोट पहुँची है, जब उनके यहां से जब्ती हाकिम जानवर छोड़कर ले गये। इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि बहिनों को भी युद्ध में आप बराबर अपने साथ रखें।

चाहे जितनी भी मुसीबतें आवें, कितने ही कष्ट झेलने पड़ें, फिर भी इस प्रकार की लड़ाइयां तो लड़नी ही चाहिये। सरकार भले ही हमारी जमीनें खालसा करने के हुक्म जारी करे, हम तो अपने हाथ से उठा कर उसे एक भी पाई नहीं देंगे। बस यही निश्चय कर लें। अपने अन्दर लड़ने की ताकत को बढ़ावें, केवल ऊपरी शोर

मचाने से कुछ भी न होगा। सरकार आपकी पूरी परीक्षा लेगी और उसे यह करने का पूरा हक है। यदि उससे लड़ना है और इस लड़ाई को यदि आदर्श लड़ाई बना देना है तो सारे ताल्लुके को हमें जगा देना पड़ेगा। सारे वायुमण्डल को बदल देना होगा। आप ये शादियां लेकर बैठे हैं, इन्हें जल्दी समाप्त करना होगा। जहां लड़ाई छिड़ गई हो, वहां क्या व्याह-शादियों के लिये समय होता है? कल सुबह से लेकर शाम तक मकानों में ताले लगाकर खेतों में घूमते रहना पड़ेगा। लड़ाई में लड़ने वाले सिपाही की तरह सावधान जीवन बिताना होगा। बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष समय को समझ लें। अमीर-गरीब सब एक हो जावें और इस तरह काम करें जैसे एक शरीर हों। रात पड़े ही सब घर पर लौटें। जब्तियां करने के लिये सरकार को गांव या ताल्लुके से आदमी तो लाने पड़ते हैं न? ठीक है, तो आप सारे ताल्लुके में ऐसी हवा बहा दीजिये कि सरकार को इन कामों के लिये एक भी आदमी न मिलने पावे। मैंने अब तक ऐसा जब्ती आफीसर तो नहीं देखा जो अपने सर पर जब्ती के वर्तन उठाकर ले जासके। सरकारी अधिकारी तो पंगु होते हैं। पटेल, मुखिया, वहिवटदार, तलाटा आदि कोई भी सरकार की सहायता न करें। साफ-साफ सुना दें कि मेरे गांव तथा ताल्लुके की इज्जत के साथ मेरी भी इज्जत है। जिस कारण से मेरे ताल्लुके की इज्जत जाय ऐसा मुखिया बनना मैं नहीं चाहता। मेरे ताल्लुके के हित में ही मेरा भला है। इस तरह हम सारे ताल्लुके में ऐसी हवा बहा दें जिससे सारे देश में स्वराज्य की-सी सुगन्ध फैल जाय। प्रत्येक आदमी के चेहरे पर सरकार के साथ लड़ने का तेजस्वी निश्चय हो। मैं आपको यह चेतावनी देने के लिये आया हूँ कि अब मौज या शौक में कोई एक मिनिट भी व्यर्थ न गँवाये। बारडोली की कीर्ति सारे भूमण्डल पर फैल गई है। अब तो हमें मर मिटना है या पूरी तरह सुखी होना है। अब तो रामबाण छूट चुके हैं। हम गिरे तो सारा का सारा देश गिर जायगा और डटे रहे तो

बेड़ा पार हो जायगा और देश को एक अच्छा पाठ मिल जायगा। आप ही के ताल्लुके ने महात्मा गान्धी को आशा दिलाई थी कि स्वराज्य-संग्राम की नींव यहीं से डाली जाय। वह परीक्षा तो अब गई। फिर भी बारडोली का डङ्का तो देश देशान्तर में बज ही गया। आज फिर आपकी परीक्षा का अवसर आगया है।''

बारडोली की परिषद् समाप्त करके आज मैं फिर आपके पास इसलिये आया कि अब ताल्लुके के जितने भी भाई-बहिन मिलें उन्हें भी मैं अपना सन्देश सुना दूं। अब सब सावधान रहें, कोई गाफिल न रहे। सरकार आपको गिराने में कोई बात उठा न रखेगी। आपके अन्दर वह फूट पैदा करने की चेष्टा करेगी, आपसी झगड़े खड़े करवा देगी, और भी कई तरह के फितूर करेगी। पर आप तो अपने सारे व्यक्तिगत झगड़ों को तब तक कुए में डाल दीजिये जब तक आपका संग्राम खत्म नहीं हो जाता। बाप दादों के समय की दुश्मनियों को भी भूल जाइये। जीवन भर आप जिससे कभी भी न बोले हों, उससे भी आज बोलना आरंभ कर दीजिये। आज गुजरात की इज्जत आपके हाथ में है, उसे सुरक्षित रखना आपका धर्म है। कितने ही लोगों को यह भय है कि हमारी जमीनें खालसा हो जायेंगी। पर मैं पूंछता हूँ कि खालसा के मानी क्या हैं? क्या कोई आपकी जमीनों को उठा कर विलायत ले जायेगा? जमीनों का खालसा होने दें। जो कुछ होगा सरकार के कागजों में ही फेरफार होगा। पर यदि आपके अन्दर एका होगा तो आपकी जमीन में कोई दूसरा हल नहीं डालने पावेगा। यह इन्तजाम करना आप लोगों का काम है। खालसा का डर त्याग दो। जिस दिन आप अपनी जमीनों का खालसा कराने को तैयार हो जाओगे, उस दिन तो निश्चय ही सारा गुजरात आपकी सहायता के लिये दौड़ पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि हमारे बीच इतना नीच तो कोई नहीं, जिसे खालसा जमीन को लेने की जरूरत हो। यह श्रद्धा अगर आपके अन्दर जाग जाय तो आप

निश्चन्त हो जायें। जमीन का जब तक फैसला नहीं हो जाता तब तक निश्चयपूर्वक समझिये कि हम बेघर बार के निर्वासित हैं। ईर्ष्या को अपने दिल में कभी भी स्थान नहीं देना चाहिये। एक को बिगड़ते देख कर जहाँ दूसरा प्रसन्न होता है, उस देश का कभी भी भला नहीं हो सकता। यदि एक गाँव भी पूरी तरह दृढ़ प्रतिज्ञ हो गया तो सारा ताल्लुका सहज ही एक हो जायेगा।"

"युद्ध की घोषणा हो चुकी है। अब हर गाँव को फौजी छावनी समझें। प्रत्येक गाँव के समाचार अब रोज ताल्लुके के केन्द्र में पहुँच जाने चाहिये और वहाँ से जो हुक्म छूटें, वे उसी दिन गाँव-गाँव में पहुँचा दिये जाने चाहियें। हमारा अनुशासन ही हमारी जीत की कुंजी है। सरकार के तो हर गाँव में केवल दो ही आदमी एक पटेल और दूसरा तलाटी—होते हैं। हमारे पक्ष में तो सम्पूर्ण गाँव ही है।"

सरकार ने हमें लड़ने पर ही मजबूर किया है तो आओ! जरा उसे भी लड़कर दिखादें। यहाँ अमर पद को लेकर कौन आया है? जर-जमीन सब यहीं का यहीं रखा रह जायेगा। केवल एक नाम ऐसा है जो हमेशा कायम रह सकता है। लाख सवा लाख रुपये की बात-चीत नहीं। हरकोई तकलीफ उठाकर भी वह तो दे सकता है। जहाँ इतना खर्च होता है वहाँ इतना-सा और सही। पर यहाँ तो सरकार आपको झूँठा कहकर लेना चाहती है। सरकार कहती है कि तुम लोग सुखी हो, बड़े-बड़े मकान हैं, खेती है पैसे देना नहीं चाहते इसीलिये बदमाशी करते हो। तुम्हारे अगुआ झूठे हैं। मैं तो कहता हूँ कि ऐसे अपमान सहकर रुपये देने की अपेक्षा तो मर जाना ही भला है। मैं इस बात को नही सह सकता कि सरकार गुजरात के किसानों को बदमाश कहे। जबतक सरकार इस भाषा को भूल नहीं जाती तब तक आपको लड़ना है। जरूरत हो तो मर मिटो। सरकार से कहो कि

यदि सचाई का दावा करती है तो आकर देखे, सिद्ध करके बतादे। सरकार से साफ-साफ कहदो कि डंडापन और बदमाशी तो तू कर रही है। तेरी बातें सारी झूँठी हैं। हिम्मत हो तो, ले आ! हम सिद्ध करके दिखा देते हैं। हमारे युवक इन बातों को समझलें और गाँव गाँव घूमकर अपने भाइयों और बहनों को समझावें।"

इस प्रकार सरदार पटेल ने गाँव-गाँव जाकर भाषण देना आरम्भ कर दिया। बांकानेर, वराड़, बड़े कुआ, बालोड़, कडोद आदि गाँवों में सत्याग्रह की आग सुलगाने के लिये पटेल साहब के जोशीले भाषण हुए। उन दिनों उनके शरीर में अलौकिक स्फूर्ति आगई थी और आंखों से हमेशा ही चिनगारियाँ बरसती रहती थीं। इधर सारे ताल्लुके में भी नवीन चेतना आगई थी।

सारा ताल्लुका युद्ध के लिये ५ मुख्य विभागों में बांट दिया गया था और उन पर एक-एक मुख्य विभागपति कायम कर दिया गया था। नीचे की फेहरिस्त में सब विभाग और विभागपतियों के नाम हैं—

सेना नायक—श्री वल्लभभाई पटेल

सत्याग्रह छावनी	विभागपति	गावों की संख्या
१—वराड़	श्री मोहनलाल पंण्डया	१६
२—वालदा	श्री अम्बालाल देसाई	७
३—बांकानेर	श्री भाई लालभाई अमीन	७
४—स्यादला	श्री फूलचन्द बापूजी शाह श्री अब्बास तैयब जी	८
५—बारडोली	डाक्टर घिया श्री चीनाई	४
६—मोता	श्री बलवन्त राय	२

७—वाजीपुरा	श्री नर्मदाशंकर पंण्डया	४
८—सीकेर	श्री कल्याणजी बालजी	७
९—आफवा	श्री रतनजी भगाभाई पटेल	६
१०—बुहारी	श्री नारणभाई पटेल	४
११—सरभण	श्री रविशंकर व्यास डा० सुमन्त मेहता	३१
१२—वापणी	श्री दरबार गोपालदासभाई देशाई	१७
१३—वालोट	श्री चन्दुलाल देसाई	२६
		१४२

सत्याग्रह की घोषणा के साथ ही बारडोली में एक प्रकाशन विभाग और सत्याग्रह कार्यालय की स्थापना की गई। अपने आधीन गाँवो की खबरें विभागपति के कार्यालय में जाने लगीं। और प्रधान कार्यालय से जो आज्ञाएँ, हिदायतें, सूचनाएँ आदि भेजी जातीं, वे रोजाना विभागपतियों के कार्यालयों द्वारा गाँव-गाँव में पहुँचा दी जातीं। स्वयंसेवक प्रत्येक गाँव में जाकर किसानों के हस्ताक्षर लेने लगे। ताल्लुके में सत्याग्रह किस प्रकार फैलता जा रहा है, कौन-कौन अभी कमजोर हैं। किसने कितना त्याग और वीरता दिखाई, सरकार के अधिकारी कितना झूठा प्रचार करके लोगों को धोखे में डालना चाहते हैं, इत्यादि खबरें गाँव-गाँव फैलाकर जनता को सचेत करने के लिये बारडोली के प्रकाशन विभाग से "सत्याग्रह समाचार" पत्र भी दैनिक रूप में प्रकाशित होने लगा। वह गाँव-गाँव मुफ्त बाँटा जाता था। एक स्वयंसेवक गाँव के लोगों को इकट्ठे करके पूरा समाचार पढ़कर सुना देता था। सरदार वल्लभभाई पटेल तथा मुख्य विभागपति भी गाँव-गाँव जाकर स्फूर्ति जनक भाषणों द्वारा लोगों को उत्साहित करते थे। प्रकाशन विभाग से "सत्याग्रह पत्रिका" नामक पुस्तिका भी समय-समय पर प्रकाशित होती रहती थी।

शुरू में तो स्वयंसेवक सिर्फ ताल्लुके के ही थे पर जब युद्ध बढ़ता गया तो स्वयंसेवक बाहर से भी आकर भरती होने लगे। यहाँ तक कि बाहर के शिक्षित स्वयंसेवकों की संख्या २५० तक पहुँच गई थी। ताल्लुके के स्वयंसेवकों की संख्या का अन्दाजा लगाना कठिन ही है। प्रत्येक गाँव में बारी-बारी से १५-२० स्वयंसेवक पहरा देते रहते और विभागपति की दैनिक सूचनाओं को प्रचारित करते रहते थे।

स्वयंसेवकों में एक खुफिया विभाग भी था जो शंकित वृत्ति वाले किसानों तथा सरकारी अफसरों की हलचलों पर कड़ी नजर रखता था। सरकार के द्वारा जो अफवाहें फैलाई जातीं, वे उन्हें अपने विभागपति को आकर कह देते थे। यदि कोई प्रजाद्रोही किसान कुछ कुकर्म करने को उद्यत होता, तो सरकार उससे फायदा न उठाले, इसके पूर्व ही विभागपति को उसकी सूचना दी जाकर उसका पूरा भण्डा फोड़ कर दिया जाता था। इससे सरकारी अधि॰ कारी भी लज्जित हो जाते और वह व्यक्ति भी।

सत्याग्रह आश्रमों में कुछ देश-भक्त धनिकों ने मोटरों का भी प्रबन्धकर दिया था जो नेताओं, समान तथा डाक पहुँचाने के काम में आती थीं।

विभागपति समस्त गाँवों की आई हुई रिपोर्ट को पढ़कर अपने आधीन मामलों पर तो उसी समय हुक्म लिख देते तथा अन्य मामलों पर अपना नोट लगा कर प्रधान कार्यालय को भेज देते। प्रधान कार्यालय में उन पर सरदार पटेल विचार करते और छपने योग्य वस्तुएँ सूरत रवाना करदी जातीं। यह सब कार्य दोपहरी में बारह बजे तक समाप्त कर दिया जाता था। इस प्रकार २४ घन्टे के अन्दर प्रधान कार्यालय से विभागपति और विभागपति से सारे गाँवों में समाचार पहुँच जाते थे। मोटरों के अभाव में यह कार्य स्वयंसेवक भी करते थे।

सब से महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि सारे संगठन में एकदम कठोर अनुशासन से काम लिया जाता था। कोई भी स्वयंसेवक अपने नायक या विभागपति से किसी कार्य के विषय में नूनच नहीं करता था। जो स्वयंसेवक आचरण में शिथिल पाया जाता उसे फौरन ही हटा दिया जाता था। 'अनुशासन की यह कठोरता महज स्वयंसेवकों तक ही सीमित नहीं थी, सरदार वल्लभभाई तथा विभागपति भी कठोर अनुशासन के आधीन थे।

विभागपतियों का चुनाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं था। डाक्टर सुमन्त महता, अब्बास तैयबजी, दरबार साहब गोपालदासभाई, इनाम साहब, श्री मोहनलाल पंण्डया आदि पर सारे ताल्लुके की अपार श्रद्धा तथा भक्ति थी। इनमें से प्रत्येक नाम ऐसा है जिसके पीछे देशभक्ति, त्याग और बलिदान की कई कहानियाँ छिपी हुई हैं। ये सभी नेता अपने-अपने क्षेत्रों के बेताज बादशाह जैसे हैं। प्रत्येक देश को ऐसे नेता पाकर अभिमान होता है। इनमें से कई नेताओं ने अपने राजसी वैभव छोड़कर किसानों की सेवा ही नही वरन् उनका रहन-सहन और पहिनाव तक अपना लिया था। सत्याग्रह करने की इच्छा रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जब तक निस्पृह, तेजस्वी, अनुभवी तथा बुद्धिमान न हो तब तक वह विपक्षी को किस प्रकार कायल कर सकता है। जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, नेतृत्व की महत्वाकांक्षा, कीर्ति की इच्छा और प्रतिष्ठा का लोभ है वहाँ कोई भी व्यक्ति सर्वजनिक सेवा में कृतकार्य नहीं हो सकता। कहने को बारडोली का सत्याग्रह देश के सामने बहुत ही छोटा-सा प्रयत्न था किन्तु इस सत्याग्रह ने देश-बिदेश का ध्यान इसलिये आकर्षित किया कि उसमें कार्य करने वाले सभी नेता त्यागी, निस्पृह, विकारों से परे अनुभवी तथा योग्यतम व्यक्ति थे।

सरदार पटेल की यह व्यवस्था और कट्टर अनुशासन को देखकर "टाइम्स आफ इंडिया" के सम्वाददाता ने लिखा था कि

"बारडोली से अंग्रेजी सरकार का राज्य उठ गया है, वहाँ तो बोल्शेविज्म स्थापित हो गया है और वल्लभभाई पटेल हैं उसके विधाता लेनिन।"

जनता में जोश

४ फरवरी की सभा समाप्त करके लोग अपने-अपने गाँव भी नहीं पहुँचे थे कि सरकार का एक घोषणा-पत्र "इगतपुरी कन्सेशन" नाम से प्रकाशित हुआ। जिसमें सरकार ने उन लोगों के साथ नीचे लिखे अनुसार रियायत करने का निश्चय किया था जिन पर फी सैकड़ा २५ से अधिक लगान बढ़ गया है।

१—फी सैकड़ा २५ तक ही जिन पर लगान बढ़ा है उनके साथ कोई रियायत नहीं की जायगी। वे अपना लगान तुरन्त अदा करदें।

२-फी सैकड़ा २५ से ५० तक जिन पर लगान बढ़ा हो, उनसे पहिले दो वर्ष तक केवल २५ फी सैकडा ही अधिक लगान वसूल किया जायेगा।

३-जिन पर फी सैकडा ५० से भी अधिक लगान बढ़ गया है, उनसे पहिले दो वर्ष पुराना और बढ़े हुए लगान का २५ फी सैकड़ा, बाद में दो वर्ष तक ५० फी सैकढ़ा और उसके बाद पूरा बढ़ा हुआ लगान भी वसूल किया जायेगा।

सरकार की भारतवर्ष में यही नीति रही है कि अन्दोलन को तेजी पकड़ते देख कर सरकार थोडी-सी रिआयत दे देती है। इससे वे लोग शान्त होजाते हैं जो दूसरों की शरम में आकर मैदान में कूद पड़ते हैं पर वास्तव में युद्ध से डरते हैं। इस तरह जरा-सी नाममात्र की रिआयत से आन्दोलन में दो मत हो जाते तथा कभी-कभी आपस में फूट भी पड़ जाया करती है। पर सरकार को यह सोच लेना था कि इस आन्दोलन का नेता कोई साधारण आदमी नहीं वरन् चट्टान से भी अधिक अडिग, लौह पुरुष सरदार पटेल है जो अंग्रेजों की चालों

को खूब पहिचानता है। उन्होंने किसानों में ऐसा जोश भरा था कि चाहे वे बरबाद ही क्यों न होजायँ पर डिगने वाले नहीं थे। किसानों की यह लड़ाई केवल एक साल के लगान वृद्धि की लड़ाई नहीं थी। उनकी यह लड़ाई तो ३० वर्षों के लगान के लिये थी। उन्हें २५ या ५० फी सैकड़ा रिआयत की कोई भी जरूरत नहीं थी। वे रिआयत नहीं न्याय के लिये लड़ रहे थे।

उपरोक्त रिआयत का परिणाम यह हुआ कि कड़ौद और बुहारी के ३ आदमियों को छोड़कर किसी ने भी एक पाई तक जमा नहीं कराई। कड़ौदी के एक वैश्य ने १२००) और बुहारी के एक वैश्य ने ५००) तथा अमेरी के एक ब्राह्मण ने अपने लगान के ३) जमा कर दिये थे। ये तीनों व्यक्ति बाद में बहुत ही पछताये। ताल्लुके का सारा वायु मण्डल उन तीनों के इतना विरुद्ध होगया था कि स्वयं सरदार पटेल को जाकर लोगों को समझाना पड़ा कि इनका बहिष्कार न किया जाय, फिर भी अमेरी के ब्राह्मण का बहिष्कार तो होकर ही रहा।

लगान अदा करने का सप्ताह ता० २६ फरवरी को ही समाप्त होगया था। सरकार ने देखा कि किसानों से कुछ भी बसूल नहीं हुआ है तो उन्होंने १०-१५ गांवों के खास-खास किसानों को उसने धमकी के नोटिस दिये। २०-२१ तारीख को रानी परज के किसानों से मार-पीट करके वहाँ के तलाटी (पटवारी) ने जबरदस्ती कुछ लगान वसूल कर लिया। ता० २३ को मसाड़ के कुछ कोलियों को बुलाकर उन्हें कायमी पटेल तथा इनाम आदि का लालच दिया। पर वे राजी नहीं हुए तो उन्हें धमकियाँ दी गई पर इससे भी काम नहीं हुआ।

बालोड़ के तहसीलदार ने रानी परज के एक किसान से लगान मांगा। उसने जवाब दिया-"पुराने लगान को लेकर नये-पुराने समूचे लगान की रसीद आप देदें। और साथ ही यह भी लिखदें कि बीस बरस तक यही लगान लिया जावेगा, तो मैं अभी पुराना लगान देने को तैयार हूँ।"

तहसीलदार इस जवाब को सुनकर सिर पर हाथ फेरता हुआ चल दिया। एक रानीपरज के किसान से एक अधिकारी ने पूछा—

"क्यों पटेल! लगान क्यों नहीं जमा कराते।"

"इसलिये कि हमारे गांव ने लगान न देने का निश्चय कर "लिया है?"

"यह नहीं होसकता। सभी पटेलों ने अपना अपना लगान अदा कर दिया है। आज तुम्हारा भी लगान अदा होजाना चाहिये।"

"देखिये साहब! यदि मैं रुपये देदूं तो अभी जात से बाहर कर दिया जाऊं। इसलिये मैं तो कुछ भी न दूंगा।"

"फिर पटेली छोडदो।"

"भले ही।"

"तो करो न अपना इस्तीफा पेश।"

(पटेल कारकून से) "लिख दो भाई इस्तीफा।"

"अरे भाई। जरा सोचो तो। इस तरह इस्तीफा क्यों लिखवाने लग गये गये?"

"इसमें कौन बड़े सोचने विचारने की बात है? आपने कहा-लाओ, इस्तीफा तो यह लो।"

"दिये। दिये, इस्तीफे! जाओ, इस्तीफे विस्तीफे की कोई जरूरत नहीं।"

यह बारडोली ताल्लुके की १०-१५ दिन की जागृति के ज्वलंत प्रमाण हैं।

संगठन का बेहद जोर बढ़ता देखकर ता० २०-२१ फरवरी को सरकार ने धमकियों के नोटिस जारी किये। सबसे पहिले बालोड़ के १५ किसानों को ऐसे नोटिस मिले। पर उनका भी कोई परिणाम नजर नहीं आया। ता० २७ फरवरी को हरिपुरा मढ़ी के किसानों को चौथाई के नोटिस दिये गये। समय पर लगान जमा कराने से एक चौथाई रकम बढ़ाकर कास्तदार से जब्ती द्वारा वसूल की जाने वाली

रकम चौथाई कहलाता है। सरकार जानती थी कि किसानों पर इन नोटिसों का कोई परिणाम नहीं होगा पर जाब्ता तो पूरा करना आवश्यक ही था। साथही नोटिसों से तो रुपये मिल नहीं जायेंगे, अतः सरकार वसूली के लिये क्या उपाय काम में लाये, इस के लिये, इसके लिये वह बहुत ही चिन्तित हो रही थी। कुछ सरकारी कर्मचारियों ने मांडवी ताल्लुके में जाकर यह पता लगाना शुरू किया कियदि बारडोली से भैंसे आदि या जमीन कुर्क की जाय तो वे लोग बोली लगाकर खरीद लेंगे ?

इस पर जलालपुर ताल्लुके के किसानों ने एकसभा की और यह प्रस्ताव पासकिया कि "बारडोली के किसानों यहाँ जब्ती हो तो यहाँ से कोई पंच बनकर न जाय। अधिकारियों को ठहरने के लिये मकान व फिरने के लिये कोई गाड़ी न दे। दूसरे ताल्लुकों के लोग बारडोली के ताल्लुके वालों के ढोर, जमीन, खेत आदि न खरीदें न जुतवायें। यदि बारडोली ताल्लुके की जमीन सरकार मुफ्त दे तो भी कोई न ले। साथ ही हर ताल्लुका चन्दा एकत्रित करके बारडोली की सहायता करे।"

पंचमहाल ताल्लुके ने तै किया कि बारडोली के सत्याग्रह में सहायता करने के लिये एक सैनिकों का दल भेजा जाय। इधर सारे ताल्लुके में जोश फैल रहा था और दूसरी तरफ सरदार पटेल और बम्बई के गवर्नर के रेवेन्यू सैक्रेटरी के बीच काफी लम्बा चौड़ा पत्र व्यवहार जारी था। रेवेन्यू सैक्रेटरी अपनी लगान नीति का समर्थन करता जाता था और सरदार पटेल तथा उनके कार्यकर्त्ताओं को बाहर के उपद्रवी लोग कहकर उनके सिर पर बारडोली के भोले-भाले किसानों को भड़काने का आरोप मढ़ता तो इधर सरदार पटेल उसे छः हजार मील दूर से आकर किसानों का खून चूसने वाले कहकर मुँहतोड़ उत्तर दे रहे थे। सरदार पटेल खुद सरकारी अधिकारियों की रिपोटों पर से सरकार की लगान नीति को अन्यायपूर्ण साबित

करने वाले उद्धरण पेश करके वे उसे चुप कर रहे थे।

पत्र नं० १

नं० ७२५६। २४—३९८६
रेवेन्यू डिपार्टमेंट
बम्बई किला, १६-२-४८

जे० डबल्यू० स्मिथ, आई० सी० एस०
सैक्रेटरी रेवेन्यू डिपार्टमेंट—बम्बई सरकार की ओर से
श्री वल्लभभाई जबेरभाई पटेल को।

विषय—बारडोली ताल्लुके का नया बन्दोबस्त।

महाशय !

१—जिला सूरत के बारडोली ताल्लुके के नये बन्दोबस्त के सम्बन्ध में माननीय गवर्नर के नाम ता० ६-२-४८ को आपने जो पत्र भेजा, उसका निम्नलिखित उत्तर देने की सूचना मुझे गवर्नर और उनकी कौंसिल की तरफ से प्राप्त हुई है।

२—ता० १३ फरवरी के 'टाइम्स' से ज्ञात होता है कि आपने ता० १२ को बारडोली की सभा में भाषण करते हुए गवर्नर साहब के प्राईवेट सैक्रेटरी के पत्र का यह अर्थ लगाया कि—"नये बन्दोबस्त के विषय में किये गये अपने निर्णय पर सरकार पुनः विचार करने से इन्कार करती है। इसलिए आपने लगान न देने का आन्दोलन करने की सलाह लोगों को दी।"—पर गवर्नर साहब ने आपका पत्र रेवेन्यू डिपार्टमेंट की तरफ उचित कार्रवाई के लिये भेजकर सरकारी कार्यपद्धति का पालन किया था। इसलिए आपका उपर्युक्त अनुमान गलत है। इस हालत में आपने जो यह कहा है कि मैं अपने अनुयाइयों को रोके हुए हूँ, उसका इस पत्र के जवाब से क्या सम्बन्ध है, सो गवर्नर साहब समझ नहीं सके हैं।

३—गवर्नर साहब तथा उनकी कौंसिल इस बात को स्वीकार नहीं

कर सकते कि गुजरात को सरकार की लगान-नीति के कारण बड़ा दुःख उठाना पड़ा है। इस बन्दोबस्त की मंजूरी देते समय उन्होंने जो यह कहा था कि यह ताल्लुका आने वाले तीस वर्षों में दिन बदिन आबाद ही होता जायगा, इस पर वे अब भी दृढ़ हैं। बारडोली और चौर्यासी ताल्लुके का पिछले तीस वर्षों का इतिहास इस भविष्य कथन का सम्पूर्णतया समर्थन करता है।

४—आप लिखते हैं कि सेटलमेंट अफसर ने बन्दोबस्त नियमानुकूल नहीं किया, उन्होंने उन लोगों को बुलाकर बातचीत तथा तहकीकात नहीं की, जिनका इस मामले में प्रत्यक्ष हित सम्बन्ध है। आपका यह कथन ठीक नहीं। मि० एम० एस० जयकर रेवेन्यू विभाग के एक अनुभवी अधिकारी हैं और वह बराबर इस महीने तक गाँव-गाँव व खेत-खेत घूमे हैं। उन्होंने किसानों से बातचीत की है और पूर्ण दक्षता के साथ लगान कायम किया है। इसलिये यह कथन सच नहीं कि लोगों को अपने उज्र पेश करने का मौका नहीं मिला।

५—आप लिखते हैं—(१) इस इलाके में इस बार पहिले पहल ही शिकमी लगान को लगान कायम करने का प्रधान आधार बनाया गया है। (२) सेटलमेंट अफसर ने गांवों का वर्गीकरण भी बदल दिया।

आपके दोनों कथन सत्य हैं, पर उनमें कोई नवीनता नहीं। शिकमी लगान (अर्थात् जमीन के किराये को) पहिली बार ही लगान कायम करने का आधार नहीं बनाया है। लैण्ड रेवेन्यू कोड की धारा १०७ में उल्लेख किया गया है कि जमीन की कीमत के साथ-साथ किराया तथा रहन के अङ्कों को भी लगान कायम करते समय महत्व दिया जाय और यह कानून आज ४५ वर्ष से प्रचलित है।

वर्गीकरण में जरूर फेर-फार किया गया, पर ३० से २६ और

१६ से २१.६७ तक लगान घटाकर सरकार ने बड़ी दया से काम लिया है और अन्याय होने की कहीं गुंजाइश ही नहीं रहने दी है। आपका कहना है कि किसानों की शिकायतें, चाहे वे कितनी ही गम्भीर और उनका परिणाम चाहे कितना भी व्यापक हो, सरकार तो उनको ठुकरा कर लगान बढ़ाने पर तुल गई है। किसानों की स्थिति पर बिना विचार किये तथा उनकी स्थिति की जांच करने के लिए जितने साधन उपलब्ध हैं, उन पर बिना पूर्ण विचार किये ही नया बन्दोबस्त जारी किया गया है। आपके इस कथन का गवर्नर और उनकी कौंसिल दृढ़तापूर्वक विरोध करते हैं।

आपने लिखा है कि ३१ गांवोंका लगान बढ़ानेके संबंध में ता० १८ जुलाई सन् १९२७ को जो सरकारी प्रस्ताव हुआ, जिसके अनुसार किसानोंको अपने उज्र दो माहके अंदर पेश करनेका नोटिस जुलाई के आखिरी सप्ताह में दिया गया था, वह गैर कानूनी है। इसका खुलासा यह है कि ऐसे नोटिस उन्हीं गांवों में लगाये जाते हैं जहां सेटलमेंट अफसर द्वारा सिफारिश किये गये लगान से भी अधिक लगान बढ़ाया जाता है। कानून के अनुसार ऐसे नोटिस जारी करने के लिये सरकार बँधी हुई नहीं है। फिर भी यह प्रथा तो इसलिए डाल दी गई है कि उसके जरिये जनता को सूचना दे दी जाय कि सेटलमेंट आफीसर द्वारा सूचित किये गये लगान में सरकार ने कुछ वृद्धि करदी है। इसमें कौनसी बात गैरकानूनी हो गई? यह तो किसानों के साथ एक प्रकार की रियायत ही हुई।

आप लिखते हैं कि आखिरी हुक्म जाहिर करने से पहिले किसानों की सभी शिकायतों का जवाब देना सरकार के लिये लाजिमी है और आखिरी हुक्म का नोटिस छः महीने से पहिले दिये बिना बढ़ा हुआ लगान सरकार वसूल नहीं कर सकती। गवर्नर साहब और उनकी कौंसिल को ऐसे किसी कानून या प्रथा का पता नहीं जिसमें इस तरह छः महीने पहिले नोटिस देने की बात हो।

अन्त में मैं आपको लिख देना चाहता हूँ कि सरकार ने तो अपने अधिकारियों द्वारा सूचित की गई दरों की अपेक्षा भी कम दरें निश्चित की हैं। सरकार ने इस बात का विशेष रूप से खयाल रखते हुए यह निर्णय किया है कि किसानों को किसी प्रकार का कष्ट न हो। अब सरकार बढ़ाये हुए लगान को वसूल करना मुल्तवी नहीं कर सकती न वह नये बन्दोबस्त पर किसी प्रकार पुनः विचार करना या और कोई रियायत करने ही के लिये तैयार है। यह घोषित कर देने पर भी यदि बारडोली के लोग अपनी बुद्धि के अनुसार अथवा बाहर के लोगों की सीख में आकर लगान भरने में किसी प्रकार की गफलत करेंगे तो लैण्ड रेवेन्यू कोड के अनुसार जो कानूनन उपाय किये जाने चाहियें उनका अवलम्बन करने में गवर्नर तथा उनकी कौंसिल को किसी प्रकार का संकोच न होगा और उसके फलस्वरूप लगान जमा न करने वालों को जो कुछ भी सहना पड़ेगा उसके लिये सरकार जिम्मेदार न होगी।

आपका सेवक—
जे० डब्ल्यू० स्मिथ,
रेवेन्यू सैक्रेटरी।

पत्र नं० २

अहमदाबाद
२१-२-१९२८

महाशय !

(ता० १२ को बारडोली में दिये गये भाषण का सप्रमाण खुलासा करने के बाद सरदार पटेल ने आगे लिखा था कि—)

अपने पत्र के तीसरे पैरे में आपने जो लिखा है उसके उत्तर में मेरा यह निवेदन है—

अ—गुजरात बम्बई इलाके में सबसे अधिक लगान भरने वाला इलाका है इस बात को सभी ने एक स्वर से कुबूल किया है।

आ—खेड़ा जिले के कितने ही ताल्लुकों में हाल ही पुराने बन्दोबस्त की अवधि समाप्त हुई है। उसमें भी नया बन्दोबस्त हुआ है, पर उसके कारण लोगों की जो दुर्दशा हुई, उसे देखकर सरकार को भी दया आगई और उसने कितने ही गांवों में प्रतिशत १६ की रियायत करदी, पर जब स्थिति इतने पर भी नहीं सम्हली तब दो ताल्लुकों में तो फिर से सेटलमेंट करना पड़ा।

इ—इलाके में जो अच्छे से अच्छे जिले हैं उनकी जनसंख्या व पशुधन के अङ्क देखने पर यही निश्चय होगा कि दिन ब दिन इन जिलों की दशा बिगड़ती ही गई है। नीचे लिखे अङ्क मनुष्यगणना तथा कृषि विभाग के विवरण से लिये गये हैं—

जिला	आबादी	आबादी	खेती के लिये उपयोगी पशु	
	१८६१	१६२१	१८८५-८६	१६२४-२५
अहमदाबाद	६२१५०७	८६०६११	१५६३६०	११७६२५
भड़ौंच	३४१४६०	३०७७४५	६७६३१	५६६६५
खेड़ा	८७१७६४	७१०४८२	१५७७४४	१०४२६३
सूरत	६४६६८६	६७४३५७	१४६५२०	११२६०३

इनमें सूरत की जनसंख्या अवश्य कुछ बढ़ी हुई दिखाई देती है। पर इन अंकों को पढ़ते हुए पाठकों के दिल में यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि कहीं इस जिले को भी अन्य निःसत्व जिलों की पंक्ति में बैठाने की गरज़ से तो यह लगान नहीं बढ़ाया गया है ?

ई—किसानों के सिर पर दिन प्रति दिन कर्ज़ा बढ़ता चला जारहा है, इस दलील को तो सरकारी प्रस्ताव में ताक पर ही रख दिया गया है। ग़ैर सरकारी जांच से पता चलता है कि पिछली लगान वृद्धि के समय बारडोली पर ३२ लाख का कर्ज था। आज वह १ करोड़ होगया है।

उ—सेटलमेन्ट आफीसर ने ठीक कानून के अनुसार ही जांच की है। उसके उत्तर में पुनः मुझे कहना पड़ता है कि मैंने प्रत्यक्ष

किसानों से खुद पूछ ताछ की है और मैं अब कह सकता हूँ कि सेटलमेन्ट आफीसर ने नियमानुकूल जांच नहीं की है। पटेल और पटवारियों के पास के दाखलों पर ही उन्होंने ने अपनी रिपोर्ट की रचना की है। मैं उनको चुनौती देता हूँ कि वे सिद्ध करके दिखादें कि उनके 'जी' और 'एच' कोष्टक सच्चे हैं। उनकी रिपोर्ट तो 'रिकार्ड ऑफ राइट्स' से प्राप्त की गई अनिश्चित हकीकत तथा असाधारण वर्षों में चढ़े हुए भावों के आधार पर लिखी गई है।

उ.—आपके ५ वें परे का उत्तर कुछ विस्तार के साथ देना पड़ेगा। लगान वृद्धि का विचार करते समय जमीन के किराये को इसी बार आधारभूत माना गया है यह मेरा कथन है। आप लिखते हैं, गवर्नर साहब इस बात को समझ नहीं पाये हैं कि यह मैं किस आधार पर कह रहा हूँ। बम्बई की सेटलमेन्ट कमेटी द्वारा प्रकाशित प्रश्न पत्र के उत्तरों को जरा आप गवर्नर साहब के समक्ष रखदें। जिला अहमद नगर के तत्कालीन कलक्टर और उत्तर विभाग के वर्तमान कमिश्नर मि० डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्मार्ट के भेजे हुए एक अनुभवी रेवेन्यू आफीसर की तरफ से गया हुआ नीचे लिखा जवाब जरा गवर्नर साहब को पढ़कर सुना देने का कष्ट कीजियेगा।

> "आज तक कभी केवल जमीन के किराये के आधार पर लगान निश्चित नहीं किया गया।"

भडौंच के तत्कालीन कार्यवाहक कलक्टर श्री० मरढ़ेकर ने लिखा था—"अब तक सिर्फ जमीन के किराये को लगान बढ़ाने या न बढ़ाने का आधार नहीं बनाया गया है।"

स्वयं आपने भी लिखा था कि लगान का निश्चय करने के लिये जमीनों के किराये की दर ही पर्याप्त नहीं है। कम-से-कम भारत के इस भाग में तो केवल इन आर्थिक कारणों से जमीनें

किराये पर नहीं उठायी जाती। जहां आबादी घनी होती है, वहां जमीनों के लिये चढ़ा ऊपरी होती है। इस चढ़ा ऊपरी में किसान कई बार जमीन की हैसियत से भी अधिक किराया देता है तब यह सवाल उठता है कि वह अपनी गुज़र फिर किस प्रकार करे ? इसका उत्तर यह है कि खेती का मौसम बीतने पर फुरसत के समय में किसान कुछ उद्योग करते हैं। कोई बैलगाड़ी किराये पर चलाता है तो कोई गाय भैंस रखकर घी दूध बेचता है। किसान कई बार भावुकता के कारण अपनी बेची हुई जमीन को अधिक किराये पर ले लेता है।

पर ये सब कागजात सरकारी दफ्तरों में पड़े हुए हैं, तथापि सेटलमेन्ट कमिश्नर ने यह नवीन रीति इसलिये अपनाई की है कि सरकार आगे चलकर जमीन के किराये को लगान निश्चय करने का एकमात्र आधार स्वीकार करेगी। फिर आप इसके विषय में अज्ञान प्रकट कर रहे हैं, यह देख कर मुझे आश्चर्य होता है। पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि सेटलमेन्ट कमिश्नर ने जिन Rental Values शिकमी लगानों के आधार पर लगान का निर्णय किया है, उनमें से अधिकांश, जिस तरह के उदाहरण ऊपर बताये गये हैं, वैसे ही किराये के अनुसार हैं, इसलिये लगान निश्चित करते समय उनका उपयोग नहीं होना चाहिये।

ए—सेटलमेन्ट आफीसर तथा सेटलमेन्ट कमिश्नर की सिफारिशों को सरकार ने जो अस्वीकार किया है, उसमें किसानों के प्रति न्याय, प्रकट करने की चिन्ता प्रकट नहीं होती। उससे तो इन दोनों ने जिन गलत अंकों और अनुचित आधारों पर अपनी सिफारिशें की हैं, उनसे होने वाले घोर अन्यायों की संकोचवश की गई स्वीकृति ही प्रकट होती है। इससे तो यही प्रकट होता है कि सरकार हर बहाने किसानों पर लगान बढ़ाने के लिये तुल गई है।

बे—इस लिये मेरा तो यही नम्र निवेदन है कि इस मामले की फिर एकबार निष्पक्ष जांच हो। इस ताल्लुके में जिन अनेक गांवों को

ऊपर के वर्ग में चढ़ा दिया गया है, उनकी दशा उनसे कम लगान वाले गांवों की अपेक्षा बुरी होने पर भी उन पर इस परिवर्तन के कारण ६६ प्रतिशत लगान बढ़ गया है। साथ ही मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि वालोड़ पेटा के पड़ौसी गांवों का लगान इनकी तिहाई से भी कम है।

ओ—छः महीने के नोटिस के सम्बन्ध में 'सर्वे एण्ड सेटलमेन्ट मैन्युअल' के पृष्ठ ३६६ पर जो सरकारी प्रस्ताव है, उसे कृपा करके आप पढ़ें। 'लैण्ड रेवेन्यू कोड' की १०४ धारा भी आप देख जायँ।

औ—आपके पत्र के ७ वें पैरे में जो कुछ भी आपने लिखा है, उसके लिये मैं आपका एहसानमन्द हूँ। मुझे दुख केवल इसी बात का है कि उसे लिखते समय आपने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सरकार के एक जिम्मेदार अधिकारी को शोभा नहीं देती। मालूम होता है, आप मुझे और मेरे साथियों को बाहर के लोग समझते हैं। मैं अपने ही आदमियों की सहायता कर रहा हूँ, इस पर आपको रोष है और उस रोष में आप इस बात को भूल रहे हैं कि जिस सरकार की तरफ से आप बोलते हैं, उसके शासन-यन्त्र में मुख्य-मुख्य स्थानों पर तमाम "बाहर के लोग" भरे पड़े हैं। यद्यपि मैं अपने आपको भारत के किसी भी हिस्से के समान बारडोली का भी निवासी मानता हूँ, तथापि आपसे मैं यह कह देना चाहता हूँ कि मैं वहां उनके निमंत्रण पर ही गया हूँ और मुझे किसी भी समय विदा देना उनके अधीन और इच्छा की बात है। पर मैं चाहता हूँ कि उनके प्राणों को दिन रात चूसने वाले, बाहर से आये हुए, और तोप बन्दूक के जोर पर लदे हुए राजतन्त्र को भी इतनी ही आसानी से विदा देने की ताकत उनके अन्दर होती, तो क्या ही अच्छा होता ?

अं—मैं एक बार फिर अपनी निष्पक्ष जांच वाली सूचना को रखता हूँ। यदि गवर्नर साहब को मेरी सूचना मंजूर होगी, तो उसी

समय मैं ताल्लुके के लोगों को पुराना लगान जमा करने की सलाह दे दूंगा।

अः–यदि गवर्नर साहब की आज्ञा हो तो मैं इस पत्रव्यवहार को प्रकाशित कर देना चाहता हूँ।

आपका विश्वस्त
वल्लभभाई जवेरभाई पटेल

पत्र नं० ३

बम्बई, ता० २७ फरवरी १९२८

महाशय,

आपने अपने पत्र के ३ रे पैरे में कई बातों की तरफ गवर्नर का ध्यान आकर्षित किया है। सब से पहिले तो आपका यह दावा है कि समस्त बम्बई इलाके में गुजरात के समान भारी लगान किसी भी प्रान्त में नहीं है। आपका यह सर्वसामान्य कथन चाहे सत्य हो या न हो, पर सरकार इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं है कि बारडोली ताल्लुके में अभी लगान अधिक है। नासिक जिले के बागलाण ताल्लुके में लगभग यही दर है। बल्कि कहीं-कहीं तो इससे भी भारी लगान उसमें है। आप खेड़ा जिले का उल्लेख करते हैं, परन्तु खेड़ा जिले की परिस्थिति बारडोली से बिल्कुल भिन्न है।

चौथे पैरे में आप किसानों पर दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए कर्ज का उल्लेख करते हैं, पर इस विषय में न तो सरकार पुराने अङ्क स्वीकार करने के लिये तैयार है और न नये। यह तो स्पष्ट है कि बारडोली के लोगों ने अभी दिवाला नहीं निकाला है और न वे दिवाला निकालने की परिस्थिति ही में हैं। ताल्लुके की जनसंख्या बढ़ गई है और अभी बढ़ती ही जारही है। वहां तो दिवालियेपन का एक चिन्ह भी दिखाई नहीं देता।

आप फिर यह लिखते हैं कि सेटलमेन्ट आफीसर ने अपनी रिपोर्ट कानून के अनुसार नहीं बनाई और इसके प्रमाण में आप यह बताते हैं कि—

१—रिपोर्ट "रिकार्ड ऑफ राइट्स" की अविश्वसनीय हकीकतों के आधार पर और,

२—असाधारण वर्षों में बढ़े हुए भावों के आधार पर लिखी गई है।

पहिले कारण का उत्तर यह है कि 'रिकार्ड आफ राइट्स' तो किसानों के बीच होने वाले प्रत्यक्ष व्यवहार का रजिस्टर है। पता नहीं आप उसमें लिखी हकीकतों को किस कारण से अविश्वसनीय मानते है, सरकार तो इन अङ्कों को अविश्वसनीय नहीं मानती।

दूसरी दलील को पेश करते हुए सेटलमेन्ट का विरोध करने वाले यह कहना चाहते हैं कि १६१४ के बाद सारे संसार की जो परिस्थिति होगई थी, वह असाधारण और क्षणिक है और शीघ्र ही महायुद्ध के पहिले जैसे दिन लौट आयेंगे। पर आज दस वर्ष हो जाने पर भी जिस वस्तु का प्रभाव अब तक टिका हुआ है, उसे देखते हुए सरकार उपर्युक्त दृष्टि विन्दु को स्वीकार नहीं कर सकती।

इसके बाद आपने इस बात के प्रमाण में कई अधिकारियों के मत उद्धृत किये हैं कि अब तक जमीन के किराये की दरें लगान निश्चय करने की एकमात्र आधार नहीं मानी गई थी। पर ऐसे अङ्क और सुबूत तो अभी-अभी ही मिलने लगे हैं, जिन पर विश्वास किया जासके। यही नहीं कहा जा सकता कि इस बात के महत्व को उपर्युक्त अधिकारी ठीक-ठीक समझ पाये होंगे। ऐसे अङ्क अब 'रिकार्ड ऑफ राइट्स' से मिलने लगे हैं, और उनका उपयोग कुछ वर्षों से किया जाने लगा है। सरकार ने जिस पद्धति का अनुकरण किया है वह ता० १७ मार्च १६२७ को धारासभा में माननीय रेवेन्यू मेम्बर साहब ने जो भाषण दिया था, उसमें प्रकट कर दी गई है। गवर्नर और

उसकी कौंसिल अक्षरशः उसी का पालन अभी भी करते चले जा रहे हैं।

लगान घटाने के सम्बन्ध में सरकार के हेतुओं का आपने बड़ा ही विपरीत अर्थ लगाया है। सरकार के हेतु और कार्य का किन्हीं सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं ने ऐसा विपरीत अर्थ लगाया हो, इसका एक भी उदाहरण गवर्नर अथवा उसकी कौंसिल को याद नहीं पड़ता।

आपने "सर्वे सैटलमैन्ट मैन्यूअल" की जिस प्रति का उल्लेख किया है वह पुरानी है। बाद में जो फेर-फार हुए, उनका उसमें समावेश नहीं हो पाया है। नये कानूनों के अनुसार सरकार की कार्य-वाही बिलकुल उचित है।

आपके पत्र ने तो नहीं, पर बम्बई के "क्रानिकल" पत्रने यह मत प्रकाशित किया है कि 'इगतपुरी कन्सेशन' नामक रियायत देने के लिये सरकार लोकमत के सामने झुकी है, मजबूर हुई है। यह बिलकुल अनुचित है। यह लिखने वाले को शायद पता नहीं कि यह रिआयत तो सरकार प्रजा के साथ सन् १८८५ से करती आई है। दक्षिण गुजरात और दक्षिण मराठा जिलों में की जाती रही है। जहाँ कहीं भी उसमें बताई शर्तों का पालन किया जाता है, वहां-वहां यह रिआयत बराबर की जाती है। सरकार आशा करती है कि आप अपने लोगों को यह बात ठीक तरह समझा देंगे।

आपके पत्र के ६वें पैरे से यह ध्वनि निकली है कि ता० १६ फरवरी १९२८ के पत्र में प्रकट किये गये विचार सरकार के केवल एक सैक्रेटरी के हैं पर इस पत्र द्वारा मैं यह भ्रम दूर करते हुए कह देना चाहता हूँ कि इस पत्र के समान ही पिछले पत्र में प्रकट किये गये विचार भी गवर्नर साहब और उनकी कौंसिल के परिणत और निश्चित विचार हैं।

आपके पत्र के दसवें पैरे में लिखी सूचना स्वीकार करने को गवर्नर और उसकी कौंसिल तैयार नहीं हैं। सरकार ने जो नीति गृहण की है वह आखिरी बार सम्पूर्णतया आपके सामने रखदी गई है। अब यदि इस विषय में कोई पत्र व्यवहार करना चाहें तो कृपया मार्फत जिला कलक्टर के कीजियेगा।

हमारे बीच जो पत्र व्यवहार हुआ है उसे यदि समाचार पत्रों में प्रकाशित करा दिया जाय तो सरकार को जरा भी आपत्ति न होगी।

आपका नम्र सेवक,
जे० डब्ल्यू० स्मिथ
रेवेन्यू सैक्रेटरी बम्बई सरकार

यह समस्त पत्रव्यवहार सरदार पटेल के एक लम्बे वक्तव्य के साथ सरकार की तमाम दलीलों का खण्डन करते हुए प्रकाशित हो गया। वक्तव्य में प्रायः वही तर्क थे जो सरदार पटेल के पत्र व्यवहार तथा भाषणों में विद्यमान थे।

इधर सरदार पटेल सरकार से पत्रव्यवहार में व्यस्त थे, दूसरी ओर धारासभा में रावबहादुर श्री भीमभाई नायक अपनी ओर से पूरे प्रयत्न कर रहे थे। १८ फरवरी को उन्होंने रेवेन्यू मेम्बर को एक पत्र लिखते हुए उनसे निवेदन किया कि लगान वृद्धि के मामले में वे पुनः विचार करें। २१ फरवरी को धारासभा की बैठक में श्री भीमभाई नाइक तथा अन्य सदस्यों ने मिलकर बारडोली के प्रश्न तथा जनता की तकलीफों को पेश करने की कोशिश की पर मामला पेश नहीं होने दिया गया। जिस समय बारडोली के पड़ौसी ताल्लुकेके बारडोली को हर प्रकार की सहायता पहुँचाने में संलग्न थे, उसी समय बढ़वाण के प्रसिद्ध लोकगायक श्री फूलचन्द भाईशाह अपने प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीतों द्वारा जनता में जोश भर रहे थे। बारडोली

ताल्लुके की स्त्रियों के जोश का कोई ठिकाना ही नहीं रहा था। वे पुरुषों से भी आगे बढ़ती जा रही थीं। सरभण इलाके के बारडोली सत्याग्रह के विभागपति श्री रविशंकर व्यास ने एक बुढ़िया की कहानी लिखते हुए बताया है कि स्त्रियों में अद्भुत बल साहस और दृढ़ता का संचार हो चुका था।

"भाई ! इस युद्ध में कौन-सी तकलीफें झेलनी पड़ेंगी ?" —बुढ़िया ने पूछा।

"जब्ती !" रविशंकर भाई ने जवाब दिया।

बुढ़िया चुप रह गयी क्योंकि वह जब्ती का मतलब ही नहीं समझी।

"जमीन खलासा हो जाय !"—रविशंकर भाई ने फिर कहा।

"ओहो ! इसमें क्या रखा है, यह कौन बड़ी बात है ? भले हो जाय !"—बुढ़िया ने लापरवाही से उत्तर दिया।

"जेल हो सकती है !" रविशंकर भाई ने कहा।

"इसमें क्या ? अरे घर रोटी खाती हैं तो वहाँ खायेंगी।" —बुढ़िया ने जवाब दिया।

"पर अम्माँ ! आप औरत की जात हैं, कैसे जायेंगी ?" —बुढ़िया के हृदय को टटोलने की कोशिश करते हुए श्री रविशंकर भाई ने पूछा।

"इसमें कौनसी कठिनाई है ? तुम जेल जाओगे तो हम भी चली जायेंगी—" निर्भीकता से बुढ़िया ने उत्तर दिया।

"अरे ! हम तो कानून को तोड़ेंगे, अपराध करेंगे, इसलिये सरकार हमें गिरफ्तार करेगी। अम्माँ ! तुम्हें कौन जेल ले जायेगा ?"—रविशंकर भाई ने कहा।

"बेटा ! क्या अपराध करने का ठेका तुम्हीं ने लिया है ?

तुम लड़के तो जेल जाओगे और हम यहीं बैठी रहेंगी ? नहीं,
तुम से पहिले हम जेल जायेंगी।"
—फौरन ही बुढ़िया ने जवाब दिया।

बारडोली ताल्लुके की स्त्रियों में इतनी वीरता आगई थी फिर भी उनमें वीरता का पूर्ण संचार करने तथा उन्हें मार्ग प्रदर्शन करने के लिये बाहर से कुछ वीर महिलाओं ने भी बारडोली में पदार्पण किया। दरबार साहब श्री गोपालदास भाई देसाई की वीर पत्नी रानी भक्ति लक्ष्मी "भक्तिबान" सत्याग्रह के आरंभ से ही बारडोली आ पहुँची थीं।

वे गाँव-गाँव पहुँच कर बहिनों को सचेत कर रही थीं। थबम्बई के विख्यात खानदान की धनिक किन्तु अत्यन्त देशभक्त कुमारी मीठूबेन पेटिट भी बारडोली आ गईं। मीठूबेन गांधी जी के खादी कार्यक्रम के पीछे पागल हो चुकी थी। पारसी होते हुए भी वे गाँव-गाँव में घूम कर बारडोली की स्त्रियों की सेवा में दत्तचित्त थीं। परम धनिक होने पर भी वे घरबार सबको भुला चुकी थीं। बारडोली सत्याग्रह में इन बहिनों की सेवा साधारण नहीं है। मीठू बहिन ईश्वर की भगतिन हैं, सरलता, सादगी और पवित्रता की सजीव मूर्ति हैं। उन्हे देशवासी "भक्तिबा" के नाम से जानते हैं। लोग गीत गायक श्री फूलचन्द भाई की धर्मपत्नी घेली बेन भी अपने पति के गीतों का प्रचार करते हुए स्त्रियों में वीरता का मंत्र फूंक रही थीं। सूरज बेन मेहता ने रानी परज की स्त्रियों में अपने आप को भुलादिया था। कुंवर बेन तो बारडोली ही की पुत्री थीं, वे भला सत्याग्रह से दूर कैसे रह सकती थीं।

इधर तो यह हो रहा था और दूसरी ओर इक्के-दुक्के कुछ ऐसे भी काण्ड हो रहे थे जो सरकार जनता को गुमराह करने के लिये कर रही थी। बालोड़ ने तहसीलदार ने सेठ केशवलाल वल्लभभाई तथा सेठ हरकिशनलाल नरोत्तमदास से पहिले ही साठ गांठ

करली थी। नाटक करने के लिये तहसीलदार बालोड में ६ मार्च को वसूली के लिये पहुँचे। तहसीलदार को देखते ही लोगों ने अपने मकानों में ताले लगा दिये और लोगों ने उपरोक्त दोनों सेठों को भी खबर करदी पर यह दोनों तो तहसीलदार से मिले हुए थे। तहसीलदार आये और केशवलाल के घर से ७८५) रु० तथा हरकिशनलाल के घर से १५००) रु० नगद लेकर चले गये। इस खबर के लोगों में पहुंचते ही दोनों सेठों का वहां रहना ही जनता ने कठिन कर दिया, आखिर सरदार पटेल श्री मोहनलाल पण्ड्या को लेकर बालोड़ पधारे। वहाँ उन्होंने एक व्याख्यान दिया और लोगों को समझाया बुझाया सरदार पटेल ने वहां जो व्याख्यान दिया वह इस प्रकार है—

"आज सुबह सूरत के स्टेशन पर ज्योंही मैं गाड़ी पर से उतरा कि मुझे इस घटना के समाचार प्राप्त हुए। सुनकर मुझे दुख तो अवश्य हुआ, क्योंकि प्रतिज्ञा लेते वक्त यदि हम सीधी तरह अपनी कमजोरी जाहिर कर देते कि हमसे अमुक कार्य नहीं होगा तो यह पाप नहीं था। परन्तु प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर देने के बाद जब्ती आफीसर के साथ सांठ-गांठ करके ताल्लुके के साथ विश्वासघात करना तो अत्यन्त ही लज्जा की बात है। ऐसी बातें हमारे इस युद्ध में शोभा नहीं देतीं। ऐसे छल से न तो हमारे अगुआ ही धोखा खा सकते और न सरकार ही इतनी भोली है जो उसे धोखा दिया जा सके। मुझको यह खबर मिली कि मैं समझ गया कि तहसीलदार की मित्रता का फल ही इस भाई को भोगना पड़ा है। आपके गाँव में ऐसी लज्जाजनक बात होगयी इस पर सचमुच ही आपको क्रोध आना चाहिये। पर इस आवेश में आप कुछ बुरा न कर बैठियेगा। इस तरह क्रोध दिखाने से कोई कायर शूर नहीं बन सकता। किसी को टीका लगाकर खड़े रखने से कोई ज्यादा समय तक खड़ा नहीं रह सकता। जो अपनी प्रतिज्ञा के महत्व को समझता है, जिसे अपनी इज्जत का खयाल है, वह तो कभी भी लगान अदा नहीं करेगा, चाहे

सारा गाँव भले ही अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ कर लगान अदा करदे।"

"यदि आपको यह भय हो कि इन दोनों को क्षमा कर देंगे तो दूसरों का भी पतन होगा। आप इस भय को दिल से निकाल फेंकिये। इस तरह यह काम नहीं चल सकता। ऐसी प्रतिज्ञा वाली लड़ाइयों में तो प्रत्येक आदमी का व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र महत्व होता है। प्रत्येक आदमी का यही संकल्प होना चाहिये कि सारा गाँव भले ही लगान जमा करदे, मैं कभी न दूँगा। मुझे आपके इन बहिष्कार के प्रस्तावों आदि की भी खबर मिल चुकी है, जिन पर आप विचार कर रहे हैं। पर मैं आपसे यह कहूँगा कि अभी आप इन बातों की जल्दी न कीजिये। हम सरकार के साथ लड़ने चले हैं, खुद हमारे ही अन्दर जो कमजोर लोग हैं, उनसे लड़ने के लिये नहीं। इनसे लड़कर भी आप क्या करेंगे? ये तो आपसे भी डरते हैं और सरकार से भी। इसीलिये तो सरकार जब्तियों के ऐसे नाटक करवा सकती है। हमें सत्याग्रही का धर्म नहीं छोड़ना चाहिये—वह बड़ा ही कठिन धर्म है। क्रोध के लिये उसमें कोई भी स्थान नहीं है। यह लड़ाई आपस में लड़ने के लिये नहीं छेड़ी गई है। निर्बल लोगों को पैरों तले रौंदने के लिये हमने यह युद्ध नहीं छेड़ा है। यह मानना झूठ है कि जिसके पास धन है या जिनिंग फैक्टरी है वह बहादुर है। इन पर तो हमें दया आनी चाहिये, ऐसा तो इनका दयनीय जीवन है। गरीब और अपढ़ लोगों के अँगूठे काट-काट कर तो इन्होंने जमीन और जायदाद इकट्ठी की है और फिर इन्हीं जमीनों पर खूब मुनाफा लेकर ये उन्हें किराये पर उठा रहे हैं। और इन ऊँचे-ऊँचे किराये के अंकों को ही देख-देख कर सरकार ने इनके पाप के फल स्वरूप सारे ताल्लुके पर लगान बढ़ाया है। और जब आप इस लगान वृद्धि के विरोध में युद्ध छेड़ बैठे हैं तब ये ही साहूकार लोग फिर आपके रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। अगर आपको अपनी शक्ति का पूरा-पूरा भान हो जायेगा तो आप पर किसी प्रकार का दबाव डालने की कोई आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

सब अपने आप सीधे होते चले जायेंगे। इस घटना से हमको एक पाठ सीख लेना चाहिये। अबसे हमें अपने तथा अपने भाइयों के विषय में और भी जागरूक रहना चाहिये। इस किस्से को अधिक बढ़ाने से कोई लाभ नहीं होगा। गन्दी चीज़ को ज्यादा कुरेदने से उलटी गन्दगी ही बढ़ती है, और बदबू भी फैलती है। इसलिये समझदार आदमी का तो यही काम है कि उस पर मुट्ठी भर मिट्टी डाल दे और अपने काम में लग जाय"

सरदार वल्लभभाई के इन महत्वपूर्ण उपदेशों के बाद उपरोक्त दोनों सेठों ने प्रायश्चित करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। एक तो उनकी आत्मा ही उन्हें काट रही थी, दूसरे ऐसे जघन्य कर्मों के करने के बाद उनका गाँव में रहना आसान काम नहीं था। दोनों सेठों ने गाँव की समस्त जनता के सामने हाथ जोड़कर क्षमा याचना की और वायदा किया कि वे अपने शेष खातों का लगान अब अदा नहीं करेंगे। सच्चे हृदय से इस प्रकार प्रायश्चित कर लेने के बाद उन्होंने अपनी मर्जी से क्रमशः ८०१) रु० तथा ६५१) धर्मार्थ अर्पण किये जो सत्याग्रह के चन्दे में जमा कर लिये गये।

चौथाई की नोटिसों की मियाद खत्म होने के साथ ही जब्तियों का दौर आने वाला था अतः बारडोली के ५० पटेलों ने एकत्रित होकर एक सभा की और यह प्रस्ताव पास किया कि सरकार हमें कोई नौकरी के पैसे नहीं देती, इसलिये कोरी पटेली के लालच में हम अपने ही भाइयों की जब्तियों में किसी प्रकार भी भाग न लेंगे।

ता० १३ को रायबहादुर भीमभाई नायक और श्री शिवदासानी फिर रेवेन्यू मेम्बर से मिले और उनसे लगान वृद्धि को रोकने की प्रार्थना की। इस पर रेवेन्यू मेम्बर ने २२ गाँवों को नीचे के वर्ग में उतार दिया। इसका फल यह हुआ कि लगान वृद्धि जो २१·६७ थी वह घटकर २० फी सैकड़ा रह गयी। पर इससे मूल समस्या का हल कुछ भी नहीं निकला। शिकमी लगान को ध्यान में रखकर की गई

लगान वृद्धि के प्रश्न पर रेवेन्यू मेम्बर ने ध्यान ही नहीं दिया। इस गलत सिद्धान्त के आधार पर हे एण्डरसन ने कई गाँवों को अनुचित रीति से ऊपर के वर्ग में चढ़ा दिया था। जिसके कारण उन पर लगान का भार बहुत बढ़ गया था। इस अनुचित कार्यवाही पर नरीमैन ने बम्बई की कौंसिल में निन्दा का प्रस्ताव पेश किया तब सरकार के बचाव में एण्डरसन ने बड़ी ही अजीब दलीलें पेश कीं। एण्डरसन की पहिली दलील यह थी—"चूंकि प्रजा ने शराब छोड़ दी है अतः उसके पास बहुत-सा धन बच जाता है। जब प्रजा समृद्ध है तो उसे लगान देने में कोई उज्र नहीं करना चाहिये।" दूसरी दलील देते हुए एण्डरसन ने कहा—"इस वर्ष के लगान में जो वृद्धि हुई है वह सन् १८३३ के लगान के साथ तुलना करने पर ११७ और १०० के अनुपात में है अर्थात् १०० वर्ष में केवल १७ प्रतिशत लगान बढ़ा है।"

आगे चलकर एण्डरसन ने कहा—"जो केवल इतनी-सी बात सुनेंगे वे यही कहेंगे कि ओहो ! १०० वर्षों में और बातों में कितनी मँहगाई होगयी है और लगान में तो सिर्फ १७ प्रतिशत की ही वृद्धि हुई है। तब तो पहिले के शासक अत्याचारी थे और अंग्रेज सरकार बड़ी दयालु है।"

सरकार की ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातों में ही आकर धारासभा में नरीमैन का निन्दा का प्रस्ताव गिर गया जिस पर नरीमैन को अपार दुख हुआ।

पहिले यह कहा जा चुका है कि जमीन की वृद्धि गोचर भूमि को काश्त वाली जमीनों अर्थात् लगान वाली जमीनों में शामिल करके हुई है। पहिले तो किसानों से गोचर भूमि पर बिलकुल ही लगान नहीं लिया जाता था, काश्त जमीन में शामिल होते ही उस पर काश्त जमीन का लगान भी लिया जाने लगा, इसलिये किसानों ने उसमें भी काश्त करना आरम्भ कर दिया। एण्डरसन की "१७ प्रतिशत की वृद्धि" का रहस्योद्घाटन करते हुए श्री महादेव देसाई ने लिखा था—

"स्वयं एण्डरसन के ही कथनानुसार सन् १८३३ में बारडोली में कुल ३००० एकड़ भूमि पर काश्त होरही थी। आज जितनी जमीन काश्त हो रही है उसका रकबा लगभग १३००० एकड़ है। पहिले सरभण में काश्तकार को २० बीघे जमीन के पीछे ६ बीघे गोचर भूमि मुफ्त दी जाती थी अर्थात् यदि फी बीघा ५) रु० लगान मानलिया जाय तो उसे सन् १८३३ में २६ बीघे जमीन के लिये १००) लगान देना पड़ता था। पर अब तो उसे १७ प्रतिशत अधिक देना पड़ता है। केवल उन बीस बीघों पर ही नहीं वरन् गोचर की उस ६ बीघा जमीन पर भी। अर्थात् अब उसे १५२·१० रुपये लगान के देने पड़ते हैं। क्या एण्डरसन साहब का यही "१७ प्रतिशत" है ?'

नरीमैन के प्रस्ताव के गिरते ही सरकार ने सारे संसार में होहल्ला मचा दिया कि धारासभा लगान वृद्धि के मामले में सरकार के साथ है। होसकता है कि इसका असर इंगलैड में अच्छा पड़ाहो, पर सरकार बारडोली की शक्ति को अच्छी तरह पहिचानती थी।

सरकार की आंरभिक कुचेष्टाएँ—

अब तो सारे बारडोली ताल्लुके में सत्याग्रह की भावना साकार हो उठी। इस आग को दिन-दिन प्रज्वालित करने के लिये हर गाँव में रोज सभायें होती थीं। सरदार वल्लभभाई तो मानो सर्वान्तर यामिन् ही हो रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने कई रूप धारण कर लिये हैं। गांवों के बच्चे तक उनके नाम से अनुप्राणित हो रहे थे। जहाँ देखो वहीं पटेल साहब तैयार ही मिलते थे। लोग उन्हें अंधेरी रात में बुलाते तो वे हाजिर और कड़ी से कड़ी धूप में बुलाते तो सरदार पटेल हाजिर। सभाओं में उनके भाषण मुर्दों में जान डाल देते थे। पुरुष और स्त्रियाँ उन्हें अपना इष्ट देववत् समझने लगी थीं। स्त्रियाँ अक्षत्, फूल चन्दन आदि से सरदार पटेल की पूजा करतीं, सत्याग्रह के लिये यथाशक्ति भेंट भी रखतीं और भक्ति भाव से उन्हें प्रणाम करके गाने गातीं—

सखीरें ! आजे ते प्रभुजी पधारिया
मारे उग्या छे सोना ना सूर रे !
वल्लभभाई घेर आविया।
म्हारा जनम मरण मटी जायरे ! वल्लभ० ॥

बहिनों के द्वारा प्रवाहित किये गये भक्ति के इस अद्भुत प्रवाह को देखकर वल्लभभाई गद्-गद् होजाते और कहते–

"बहनो ! मुझ पर यह अत्याचार न करो। आपकी इसकी पूजा से तो मुझे बडाही संकोच होता है। इस भक्ति के सागर से तो मेरा दम घुट रहा है। मैं इसके योग्य नहीं, इस पूजा के योग्य इस समय यदि हमारे बीच कोई है तो वे पूज्य महात्मा जी ही हैं। मैं तो अपका बड़ा भाई हूँ और आपका आशीर्वाद लेनेके लिये आया हूँ।" भक्ति और व्वहार दोनों साथ साथ नहीं चल सकते और खास करके युद्ध के समय तो भक्ति भावना की बात कुछ समझ में भी नहीं आती। परन्तु यहाँ वल्लभभाई की अद्भुज कार्य कुशलता का ही यह प्रभाव था कि जहाँ स्त्रियाँ भक्ति में इतनी तल्लीन थीं वहीं वे साहस, वीरता और कष्ट सहिष्णुता में किसी से भी पीछे नहीं थीं।

कुछ दिनों तक सरकार सूने मकानों में घुस जाती और यदि वहाँ कोई औरत हुई तो बड़ी परेशानी होजाती थी, पर सरकार को इस तरह पर भी एक पाई प्राप्त नहीं हुई। आखिर स्वयं सेवकों ने इसका भी प्रबन्ध करदिया। जहां गांव में सरकारी आदमियों को घुसते देखा कि स्वयं सेवक शंख या बिगुल बजाकर लोगों को होशियार करदेते थे। होशियार होते ही लोग घरों में ताले लगाकर बाहर निकल आते। सरकारी लोग अपना सा मुंह लेकर वापिस चले जाते।

पड़ौसी ताल्लुकों में बारडोली के प्रति दिन दिन सहानुभूति

बढ़ती ही चली जाती थी। बलसाढ़, आणन्द, नवसारी, पलसाण आदि ताल्लुकों की जनता ने सभाएँ करके बारडोली का साथ देने तथा सरकारी जुल्मों के प्रति असहयोग करने का निश्चय किया। यद्यपि अभी तक बारडोली में सत्याग्रह के लिये चन्दे की मांग नहीं हुई थी, फिर भी बाहरी ताल्लुकें अपनी इच्छा से चन्दा वसूल करके बारडोली भेजने लगे।

कड़ोद गाँव के लोग अन्य गावों के लोगों की अपेक्षा अधिक पढ़े लिखे थे, अतः वे सत्यागृह के चक्कर में न पड़कर लगान देरहे थे और जो व्यक्ति उनसे पूछने जाता उसेभी लगान देदेने की ही सलाह देते थे। यह बात धीरे धीरे सारे बारडोली में फैलगई। फिर क्या था ? लोगों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से उनका बहिष्कार करने का दृढ़ सकंल्प करलिया। श्री मोहन लालपंण्डया इसखबर को पाकर गांव में गये भी पर लोग तो उनके आने के पहिले ही निर्णय करचुके थे। बहिष्कार की इस बीमारी को बढ़ती देख कर महात्मा गांधी को इस पर प्रकाश डालना आवश्यक होगया। वे लिखते हैं—

"सुना है जो लोग सरकारी लगान अदा करने को तैयार होजाते हैं, उनके लिये बारडोली के सत्याग्रही बाहिष्कार के शस्त्र का उपयोग करने लग जाते हैं। बहिष्कार का शस्त्र निः संदेह ऐसा तो है जिसका तत्काल ही असर होजाता है। सत्याग्रही उसका उपयोग भी कर सकते हैं, पर अपनी मर्यादा में रहकर। बाहिष्कार दो तरह का हो सकता है हिंसक और अहिंसक भी। सत्याग्रही तो अहिंसक वहिष्कार का ही प्रयोग कर सकता है। इस समय तो मैं इन दोनों तरह के वहिष्कारों के केवल दृष्टान्तही देना चाहता हूँ। किसी से सेवा न लेना अहिंसक बहिष्कार है। सेवा न करना हिंसक बहिष्कार है। वहिष्कृत के मकान पर भोजन बनाने के लिये न जाना, विवाहादि प्रसंग पर उसके यहां न जाना उसक साथ व्यापार न करना, उससे

किसी प्रकार की सहायता न लेना यह सब अहिंसक त्यागहै। पर यदि वहिष्कृत बीमार हो तो उसकी सेवा न करना, उसके यहां डाक्टर को जाने न देना, वह यदि मर जाय तो शव की अन्त्येष्टि क्रिया में सहायता न करना, कुए, मन्दिर, आदि के उपयोग से उसे वंचित कर देना हिंसक बहिष्कार है। गहरा विचार करने पर मालूम होगा कि अहिंसक बहिष्कार अधिक काल तक निभ सकता है। उसे तोड़ने में बाहरी शक्ति काम नहीं देसकती। हिंसक बहिष्कार बहुत दिनों तक नहीं चल सकता। और उसे तोड़कर गिराने में बाहरी शक्ति का काफी उपयोग किया जासकता है। हिंसक बहिष्कार आगे चलकर युद्ध के लिये हानिकर ही साबित होता है इसके उदाहरण असहयोग के युग में से कई दिये जासकते हैं, परन्तु इस समय तो मैंने जो भेद दिखाये वही बारडोली के सत्याग्रही और सेवकों के लिये काफी हैं।"

—"नवजीवन" १८ मार्च १९२८

लगान वसूल करने के लिये तहसीलदार, कलेक्टर, पटेल, तलाटी, आदि आते तो लोग ताले लगाकर बाहर निकल जाते पर अब तो दुबला लोग भी सरकारी काम करने लग गये। डिप्टी कलक्टर और एक दुबला में जो आपसी बातचीत हुई उसी से स्पष्ट होजाता है कि वल्लभभाई ने लोगों में कैसा मन्त्र फूंका था।

"क्योंरे! लगान क्यों नहीं जमा करता?"
"लगान कम करदो तो जमा करदें।"
"तुम पर तो वहुतही कम लगान बढ़ाहै!"

"बहुत कमही सही, पर लावें कहां से तीस सेर पानी में तीन सेर आटा डालकर तो हम राबड़ी बनाते हैं, उसमें से भी आधा सेर आटा आप छीन कर लेजाना चाहते हैं।"

"भाई! यह तो इन्साफ से बढ़ाया गया है। देख न, धारा

सभा तक में वह मंजूर होगया है। इसीलिये अब लगान नहीं आया तो जमीन खालसा होगी।"

"अरे सहाब!—फूल मां फूल कपास का, और फूल कामका?
राजा माँ राजा मेघराजा और राजा कामका?"

"इसके मानी?"

"मानी ये हुए कि खालसा तो अकेला मेघराज कर सकता है और कोई हमारी जमीनें खालसा करने की ताकत नहीं रख सकता?"

"जब गरीबों में दाल न गलने के लक्षण स्पष्ट हो गये तो सरकार ने अमीरों को अजमाना चाहा। वे ता० २६ मार्च १६२८ को सुबह बाजीपुरा पहुँचे और अपने हाथ से उन्होंने सेठ वीरचन्द चेनाजी के दरवाजे पर खालसा का नोटिस चिपका दिया। इसी प्रकार के नोटिस बालोड़ के ७ अन्य धनिकों के घर पर भी चिपकाये गये—

"ता० १२ से पहिले अपनी जमीन का पूरा लगान जो कि तुमने अभी तक अदा नहीं किया है, मय चौथाई के अदा न करोगे तो कलक्टर तुम्हारी जमीन सरकार में जमा कर लेंगे।

इस नोटिस के उत्तर में सेठ वीरचन्द चेनाजी ने तहसीलदार को लिखा—

"मैं वीरचन्द चेनाजी बाजीपुरा वाला आपसे यह निवेदन करना चाहता हूँ कि मेरे रहने के मकान पर आज मुझे एक नोटिस चिपका हुआ मिला उस पर आपके जैसे हस्ताक्षर थे और उसमें लिखा था कि "ता० १२ अप्रेल १६२८ के अन्दर बालोड़ की मेरी जमीन का लगान मय चौथाई के रुपया १६०॥|≡)। १ यदि अदा न कर [illegible]

जमीन को सरकार में खालसा कर देने का कलेक्टर ने निश्चय किया है।" ऐसा नोटिस देने के लिये सारे महाल मे आपने मुझ ही को चुना। इससे यह मानने के लिये मेरे पास कारण हैं कि आपने सारे महाल में मुझही को सब से अधिक कच्चे दिल का समझ रखा है। मुझे पता नहीं कि मेरे विषय में ऐसा खयाल बना लेने के लिये आपके पास क्या कारण हैं? तथापि मुझे आपसे यह कह देना चाहिये कि भले ही सारा ताल्लुका खालसा हो जाय, सरकार ने अन्यायपूर्वक जो लगान बढ़ाया है, उसकी जब तक न्यायपूर्वक जांच न हो जाय, तब तक लगान अदा करना संभव नहीं है। न तो सारा गाँव ही अदा करेगा न मैं ही अदा करूंगा।"

"आप अगर सरकार के सच्चे वफादार नौकर हैं तो आपका यह धर्म है कि आप सरकार को ताल्लुके की सच्ची हालत बतावें और प्रजा के साथ जो अन्याय हुआ है, उसे दूर करने में प्रजा की सहायता करें। आपने जो कितने ही वर्षों से इस ताल्लुके का नमक खाया है, उसे अदा करने का समय आ गया है। मैं आपसे नम्रता-पूर्वक निवेदन करता हूँ कि अपनी नौकरी के अन्तिम दिनों में प्रजा को कष्ट देने का यह जो समय आया है, इसमें से आपको किसी तरह अपनी मुक्ति कर लेना चाहिये।"

•

"अगर इस आखिरी समय खातेदारों की जमीन खालसा करने की सत्ता आपको दी गई हो और तदनुसार यदि आपने उस नोटिस पर दस्तखत करके मेरे दरवाजे पर चिपकाया हो और यदि अब किसानों की जमीनें खालसा करने का काम आपके जिम्मे किया जा रहा हो तो अब आपकी शोभा इसीमें है कि आप ऐसी नौकरी से मुक्त हो जावें। आपकी नौकरी के गिनती के दिन बचे हैं, इतनी तो आपकी छुट्टी ही बाकी होगी। इसलिये बतौर एक हितैषी के मैं आपको यह सलाह देता हूँ कि आपके ताल्लुके के लोगों को आपही

के दस्तखत का नोटिस मिलें, इसकी अपेक्षा तो आप नौकरी से ही मुक्त हो जावें, इसी में आपकी अब इज्जत है।"

बाजीपुरा २६ अप्रेल
१६२८

आपका सेवक
शाह बीरचन्द चैनाजी

बालोड के जिन सात व्यक्तियों को नोटिस मिले थे, वे भाई-भाई थे और उनमें एक विधवा बहिन थी। जब विधवा बहिन से उसके भाई ने पूछने को गये तो बहिन ने भाइयों को उत्तर देते हुए कहा—

"खालसा नोटिस आई है तो आई है। प्रतिज्ञा भंग कहीं हो सकती है ? हम लगान कदापि अदा नहीं करेंगे। जमीन चली जायेगी तो किसी तरह पेट भर लेंगे। नाक चली गई तो सारी जिन्दगी मिट्टी में मिल जायेगी। तुम मरद हो। तुम्हें इस बात का इतना विचार करने की जरूरत ही क्या है ? अगर चिन्ता हो तो मुझे होनी चाहिये। मुझ विधवा की जमीन अगर खालसा हो जायेगी और मैं निराधार हो जाऊंगी तो गांधीजी का चर्खा तो कहीं नहीं गया है। मैं उनके आश्रम में चली जाऊंगी और चरखा चलाकर अपना पेट भर लूंगी। और यदि सरकार मुझे जेल में भेज देगी तो मुझे वहाँ भी क्या कष्ट होगा ? वहाँ चक्की पीसते मुझे लाज थोड़े ही आवेगी।

दूसरे दिन सातों भाई-बहिनों ने सरदार पटेल को पत्र लिख दिया कि आप निश्चिन्त रहें, हम प्रतिज्ञा पर अटल हैं।

ता० १ अप्रैल १६२८ को इन्हीं सत्याग्रही भाइयों को लक्ष्य करते हुए महात्मा गान्धी ने लिखा था—

"१६०) रु० की लगान के लिये हजारों रुपये की जमीन को खालसा कर लेने का नाम है नादिरशाही। इस राजनीति में चांटे का जवाब चांटा नहीं, फाँसी होती है। एक रुपये के लिये एक हजार

छीनने वाले को हम जालिम कहते हैं—उसे दशकन्धर रावण कहते हैं।"

"वल्लभभाई ने एक बार नहीं, अनेक बार चेता-चेता कर कहा है कि सरकार ने जमीन खालसा करने तथा जेल में भेजने के अधिकार कानून की सहायता से ले रखे हैं। और इन अधिकारों का उपयोग करने में वह जरा भी आगा-पीछा नहीं करेगी। उसने यह अनेक बार सिद्ध करके दिखा दिया है। इसलिये खालसा के नोटिस से आप या और लोग डरें नहीं, हिम्मत न हारें। वे विश्वास रखें कि खालसा जमीन सरकार को हजम न होगी—न नीलाम में खरीदने वाला देश-द्रोही ही उसे हजम कर सकता है। इस तरह लूटी हुई जमीन कच्चे पारे के समान है; वह शरीर में से फूट-फूट कर निकले बिना न रहेगी। अपनी आबरू और टेक से बढ़कर जमीन नहीं। ऐसे असंख्य आदमी इस देश में है जिनकी कोई जमीन नहीं। कितने ही जमीन वालों की जमीनें पिछली बाढ़ के समय बालू मे दब गई हैं। गुजरातियों ने जिस तरह दैवी आपत्ति को धीरज और वीरतापूर्वक सहा, उसी तरह वे इस सुलतानी मुसीबत को भी सहलें और अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहें।'

मांडवी ताल्लुके में भी ६००० व्यक्तियों की सभा हुई जिसमें भी वल्लभभाई पटेल भी उपस्थित हुए थे। मांडवी के लोग भी बारडोली सत्याग्रह में हर प्रकार की सहायता पहुँचाने को तैयार थे। वहाँ सरदार पटेल ने कहा—

आप बारडोली के साथ हमदर्दी प्रकट कर रहे हैं। यह अच्छा कार्य है। इस समय तो मैं आपसे कुछ भी नहीं मांगता। मैं तो चाहता हूँ कि आप अभी ठहरिये। बारडोली के युद्ध का अध्ययन कीजिये और खुद भी इसी तरह की लड़ाई लड़ने के लिये तैयार हो जाइये।"

वहां से चलकर वल्लभभाई पटेल नानी फरोद पहुँचे। सारी

जनता अपने मसीहा को उत्सुक और भक्तिभाव भरे नेत्रों से देख रही थी। सरदार साहब की चन्दन, फूल आदि से पूजा की गई। पूजा करते हुए एक बहिन ने पटेल साहब के चरणों पर एक कागज रख दिया और अपनी जगह पर बैठ गई। उसमें लिखा था—

"पूज्य श्री वल्लभभाई साहब,

यह सत्याग्रह तो लगान के विरोध में छेड़ा गया है। पर इससे हमारा व्यक्तिगत लाभ भी बहुत हो रहा है। इस युद्ध के कारण मेरे पति श्री कुंवर जी दुर्लभ को आपने जो उपदेश दिया है उसके लिये मैं आपकी आजन्म ऋणी रहूँगी। यदि सरकार इस लड़ाई में हमारी जमीन या माल जब्त या खालसा भी करले, तो हम डरने वाली नहीं हैं। अगर वह उन्हें जेल भी भेज दे तो हम उन्हें खुशी-खुशी विदा देंगी। परमात्मा से मेरी नम्र प्रार्थना है कि वह आपको इस युद्ध में विजय प्रदान करे।

नानी फरोद १-४-४८। अ० सौ० मोतीबाई।

नानी फरोद में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"यह सारा युद्ध किसान की प्रतिष्ठा स्थापित करने और उसका तेज बढ़ाने के लिये लड़ा जारहा है। आपने देख लिया कि जब्तियों का हथियार कैसा बौंडा साबित हुआ। और आप देखेंगे कि खालसा का हथियार भी कैसा पोचा साबित होता है। अरे, किसकी मजाल है जो यहाँ आकर हमारी जमीन जोत सके। हमने कहीं चोरी तो की नहीं, न डाका डाला है। हम तो अपनी इज्जत के लिये लड़ रहे हैं। तोप-बन्दूक भी हमारे हाथों में नहीं हैं। हम तो रामजी का नाम लेकर अपनी टेक पर अड़ गये हैं। आप देखेंगे कि सरकार का आसन हिल जायगा। उसकी तोप और बन्दूकों का वार तो राक्षसों पर ही काम दे सकता है। हमारे सामने तो इन तोपों के मुंह में से फूल की गेंदें ही निकलेंगी। अब बारडोली के किसानों का डर भाग

गया है। मुझे विश्वास है कि अब आप अटल रहेंगे। अटारहों वर्ण पूरा एका कर लो। बनियों के नाम खालसा के नोटिस निकाल कर सरकार हमारे बीच भेद पैदा कर देना चाहती थी। इस युद्ध में जो बनिये हमारे साथ लड़ रहे हैं, उनकी जमीन हमारे लिये गौ-मांस के समान है। कोई उसे न ले। हम माता का दूध आठ महीने पीते हैं। धरती माता को हम बरसों से चूसते आरहे हैं। अब एक-दो वर्ष उसे आराम दें। तब सरकार की अक्ल ठिकाने आ जायगी। तुम्हारी बहादुरी के कारण आज बनियों में भी वीरचन्द चेनाजी जैसे नररत्न दिखाई देने लगे है। बस एक बार सिक्का जमा कि जमा। फिर वे किसी से न डरेंगे।"

"आप तो किसान के बच्चे हैं। किसान का बच्चा कभी मुहताज नहीं होता। वह किसी की गालियाँ नहीं खायेगा, न किसी के सामने हाथ ही फैलायेगा। यह जमाना किसान का और उसके दोस्त तथा साथी मजदूर का है, जो उसके साथ खेत में काम करके खरे पसीने को कमाइ खाता ह। और सब लोगों के दिन अब लद गये। इसलिये आप अब किसी से न डरें। अपनी आबरू के लिये बराबर लड़िये। किसान के पीछे तो सारा संसार हैं, सारे देश की आँखें आप पर लगी हुइ हैं। अरे, यहाँ कौन अमर होकर आया है? एक दिन सबको मरना हैं। पर आप अपनी इज्जत के लिये, गुजरात के किसानों के लिये और यदि जरूरत हो तो सारे देश के किसानों के लिए भी लड़कर दिखा दें और देश की खातिर अपने आप को मिटाकर संसार में अमर कीर्ति फैला दें।

बारडोली के किसानों को कुचलने की जितनी भी कोशिशें सरकार ने कीं, सभी निष्फल ही नहीं गइं वरन् उनसे किसानों की शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली गइ। इसे देखकर सरकार की बेचैनी बहुत ही बढ़ गइ। अभी तक सरकार ने बालोड़ से केवल (१५००) रु०

जब्ती में वसूल कर लिये थे। चौथाई को नोटिस भी दिये जा चुके थे अर्थात् सरकार की लगान की रकम छः लाख से बढ़कर साढ़े सात लाख तक पहुँच गई थी, पर वसूली का कोई भी साधन नहीं था। कमिश्नर साहब ऊपर गांव में समुद्र किनारे पर और जिला कलक्टर बलसाड़ की विल्सन हिल्स पर आराम से शैल-निवास का आनन्द लूट रहे थे। उन्हें हुक्म मिले, वे सूरत आये। सूरत में प्रमुख अधिकारियों की एक सभा हुई। मामलतदारों ने स्पष्ट और सच्ची बातें हाकिमों के सामने रखीं। एक मामलतदार से हाकिम नाराज हो गये और उसे उसी समय स्टेशन से ४० मील दूर के गाँव में तब्दील करके भेज दिया। बड़े साहब बारडोली को झुकाने के लिये मूँछें ऐंठते हुए निकले। उस समय बारडोली का बालक गा रहा था—

एक राम न छोड़ूं गुरु ही गार,
मोको घाल जार चाहे मार डार,
नहिं छोड़ूं बाबा राम नाम।

वायुमण्डल तेज और ओज से देदीप्यमान हो रहा था।

युद्ध का यौवन—

सरकार की तैयारी की खबर पाते ही श्री रायबहादुर दादूभाई देसाई रायबहादुर भीमभाई नाइक, श्री शिवदासानी, डाक्टर दीक्षित आदि प्रसिद्ध धारासभाई बारडोली आये और इस बात पर विचार करनेलगे कि अब क्या किया जाय? आखिर यह तै हुआ कि सरकारसे एक बार और प्रार्थना की जाय। यदि वह निष्पक्ष जांच करने की बात अब भी न मानें तो हम भी धारासभा से इस्तीफे देदें। अतः बम्बई रवाना होने से पूर्व वे ताल्लुके की वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर लेना चाहते थे। [illegible] सरदार पटेल और श्री मोहनलालजी पंण्डया भी उनके साथ रहे। [illegible] जगह घूमने के बाद सरदार पटेल ने धारासभा

के सदस्यों से कहा कि "ये लोग जानें और आप जानें, आप इनसे पूछ सकते हैं कि वे किसी के उकसाये तो सत्याग्रह नहीं छेड़ रहे हैं। मैं तो कहता हूँ कि आप हमारे एक-एक आदमी को यहाँ से हटा दीजिये और फिर भी आप देखेंगे कि लोग अपनी टेक पर अटल हैं।"—धारासभा के सदस्यों ने किसानों की दृढ़ता के लिये उन्हें धन्यवाद दिया और पूर्ण सन्तोष के साथ उन्होंने यही राय दी कि अब सत्याग्रह के सिवाय और कोई मार्ग ही नहीं रहा।

लगान के सम्बन्ध में सत्याग्रहियों के सामने एक और सवाल था। कई ऐसी जमीनें भी थीं जो देवस्थान तथा इनामी आदि की थीं, जिनका लगान स्थिर था। प्रश्न यह सामने आया कि क्या इनका लगान अदा कर दिया जाय? इसके निर्णय के लिए एक कमेटी बैठी और यह तय हुआ कि ऐसे स्थानों का लगान दे दिया जाय, इसमें कोई हानि नहीं।

सरकार को भला इससे क्या समाधान होने को था? ता० १६ अप्रैल से उन्होंने दमन-चक्र का चलाना आरम्भ कर दिया। स्थानीय अधिकारियों का साथ देने के लिये नये जप्ती आफीसर भी तैनात किये गये। ३ मोटर लारियां और कुछ चुने हुए पठान भी बुला लिये गये। स्पेशल मजिस्ट्रेट भी तैनात कर दिये गये। किसानों में फूट डालने, उनकी कमजोरियों का फायदा उठाने तथा भाषणों का रिपोर्ट लेने के लिये गुप्तचरों का एक दल भी तैनात हो गया। एक डिप्टी पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट भी मय सिपाहियों के भेजा गया।

किसानों के घरों में ताले लगे रहते थे। अतः पुलिस के सिपाही टूटी खाटें तक सिर पर लाद कर ले जाते। बैलों के अभाव में पठान ही सामान ढोने का काम करते थे। पर इससे क्या होता था? अतः आफीसरों ने सोचा कि खेतों में ढोर तो चरने जाते ही है, उन्हें क्यों न पकड़ा जाय! पर कानूनन सरकार बैलों को ज[illegible]हीं कर सकती

थी। गायें भड़क कर भाग खड़ी होतीं। आखिर में बारी आई भैंसों की। और तब भैंसों की जब्ती आरम्भ हुई। जब्त की हुई भैंसों को पठान मारते-मारते अधमरी कर देते और उन्हें न पानी और न घास ही देते थे। आखिर एक भैंस तो मर गई और दूसरी भैंसें भी मरण प्रायः हो गईं। जब किसान ही सरकारी अधिकारियों से बात नहीं करते थे तो सरकार को यह समझना भी कठिन हो गया था कि जब्त भैंसों के मालिक कौन हैं। बारडोली ताल्लुके में सभी तो खातेदार थे नहीं। अतः ऐसे लोगों की भी भैंसें गिरफ्तार कर ली जाती थी जिनको सरकार का किसी भी प्रकार का लगान नहीं देना था। इसका नतीजा यह हुआ कि गैर किसानों ने सरकार को नोटिस देना आरम्भ कर दिया कि सरकार बिना कारण हमारी भैंसें पकड़ रही है। सरकार को लेने के देने पड़ने लगे।

जब सरकारी अधिकारियों को मकानों पर सामान नहीं मिलता तो वे रास्ते चलती कपास की उन गाड़ियों को ही पकड़ लेते जो जीनघर जाती हुई पाई जातीं। नतीजा यह हुआ कि जिसे सरकार का कुछ देना नहीं, उसकी भी गाड़ी जब्त होकर नीलाम पर चढ़ जाती। जिन लोगों के साथ ऐसे अन्याय हुए उन्होंने सरकार को नोटिस दिये।

खालसा के नोटिसों की संख्या ८०० तक पहुंच गई थी। सौ-सौ रुपये के लिये जनता की हजारों रुपये की चीजें खालसा कर ली जाती थीं। खालसा की नीति के आरम्भ में २० अप्रैल १९२८ को वालोड़ के १४ खातेदारों को नोटिस दिये गये। उन पर कुल लगान सरकार को २०८१–)||| लेना था। पर इसके एवज में ५०० बीघे जमीन खालसा करने की धमकी दी गई, जिसकी कम से कम कीमत ६००००) रु० होती थी। अकेले दोराब सेठ के १६६) रु० के लगान के लिये ३५०००) रु० की जमीनों को खालसा करने का नोटिस दिया

गया। इसी प्रकार भैंसों के नीलाम हुए। ये सभी जानवर कसाइयों को बेचे गये। ८ मई १९२८ को छगनलाल तहसीलदार ने निम्न प्रकार से भैंसों का नीलाम किया—

चार भैंस दो पाड़ी	५०) रु० में	चार भैंस	३५) रु० में
पाँच भैंस दो पाड़ी	५५) रु० में	दो भैंस	१५) रु० में
छः भैंस छः पाड़ी	७५) रु० में	तीन भैंस	२५) रु० में
चार भैंस	३५) रु० में	चार भैंस	३०) रु० में

इस प्रकार ४४ भैंसें ३३५) रु० में कसाइयों के हाथ सिर्फ बालोड़ में बेची गईं। शेष अङ्क यहां देना प्रायः असम्भव ही है।

जब सरकारी अधिकारियों ने जनता को रात और दिन सताना शुरू किया तो ताल्लुके के लोगों ने तय किया कि २१ अप्रैल को रात के ७ बजे से ११ बजे तक दुकानें खुलें। दिन भर हड़ताल मनाई जाय। अभी तक सरकारी अधिकारी लोकल बोर्डों के मकानों या धर्मशालाओं में ठहरते थे, पर इन जुल्मों के कारण लोकल बोर्डों और धर्मशालाओं के पदाधिकारियों ने तय कर लिया कि सरकारी हाकिमों को वहां नहीं ठहरने दिया जाय। रेलगाड़ी से उतरने पर अधिकारियों को सामान उठाने के लिये न तो बेगारी मिलते न मज-दूर! उन्हें बैठने के लिये कोई बैलगाड़ी तक नहीं देता था। आखिर हर तरह परेशान होकर सरकार ने डिस्ट्रिक्ट पुलिस ऐक्ट की धारा ३९ (१) M के अनुसार सार्वजनिक शान्ति और सुविधा की रक्षा के लिये बारडोली ताल्लुका और बालोड़ महाल में ६ महीने के लिये निम्नलिखित आज्ञा प्रचारित कर दी—

१—किसी भी रास्ते या मुहल्ले में जहां पर कि लोग स्वतन्त्रतापूर्वक आ-जा सकते हैं, कोई शख्स किराये की सवारियों को या गाड़ी बैल वाले को खराब तरह से समझाकर अथवा उसे चोट पहुँचाने की धमकी देकर उसे अपना कर्तव्य करने तथा सवारी किराये

पर देने से न रोके, रोकने के लिये न खड़ा हो और न उस के आसपास चक्कर ही काटे।

२—सरकारी अथवा लोकल बोर्ड के कम्पाउन्ड और मकान अथवा किसी सरकारी नौकर के कम्पाउन्ड या मकानों के पास वाली किसी जगह पर कि जहाँ लोग आजादी से आ जा सकते हैं, कोई शख्स उस सरकारी नौकर को या और किसी को कि जो अपने काम में लगा हुआ हो, कष्ट देने के लिये या उसके काम में खलल डालने के लिये वहाँ एकत्र न हो और न चक्कर काटें।

३—किसी व्यक्ति को, जानवरों को या सवारियो को किसी रास्ता, मुहल्ला या किसी जगह का उचित उपयोग करने के लिये कोई न रोके या रोकने के लिये न खड़ा हो अथवा टहलता रहे कि जहां सबको आने जाने की स्वतन्त्रता है।

४—बम्बई के डिस्ट्रिक्ट पुलिस एक्ट धारा ४८ की रू से डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस, आसि० सुपरिन्टेन्डेन्ट आफ पुलिस अथवा डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस समय-समय पर जो हुक्म दें अथवा नियम बनावे, उनका पालन सभी को करना चाहिये। अर्थात्

अ— रास्ते पर अथवा जुलूसों में जाने आने के समय पालन करने योग्य नियमों के विषयों में—

ब—रास्ते पर या रास्ते के पास मे वाद्य-ढोल, नकारा अथवा दूसरी तरह के बाजे, रणसिंग या ऐसे कोई बाजे जो कर्ण कटु हों, उनको बजाने सम्बन्धी इजाजत देने के विषय मे—

क— धारा ३६ (१) M के अनुसार किये गये इस हुक्म के पेटे हुक्म के बतौर और उसका मनसा को पूरी करने के हेतु, नीचे लिखी तारीख छः महीने तक यह हुक्म जारी रहेगा।

ता० २८ अप्रेल १६३८ J. F. B. HASTSHORNE. डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, सूरत

उपर्युक्त आज्ञा की कलम ४ ब के अन्तर्गत सूरत के डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस ने निम्नलिखित हुक्म बारडोली में प्रचारित किया—

"ढोल, तासे आदि बजाने पर नियंत्रण लगाने की हमें जरूरत महसूस हुई है, इसलिये सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है कि सन् १८६० के डी० पी० ए० की धारा ४८ के अनुसार नीचे लिखा हुक्म जारी किया जारहा है। वह जिला सूरत के बारडोली ताल्लुके और बालोड़ पेटा में आज की तारीख से छः माह तक जारी रहेगा।

हुक्म

यह हुक्म जारी होने की तारीख से लेकर छः महीने तक बारडोली ताल्लुका और वालोड़ महाल में आम रास्तों के नजदीक अथवा मुहल्लों में या किसी भी सार्वजनिक स्थान पर अथवा ऐसे मकानों के नजदीक जो सरकारी हों या जहाँ सरकारी अधिकारी रहते हों, कोई ढोल या तासे नहीं बजाये। इसी प्रकार रणसिंग, बिगुल सीटी अथवा और किसी तरह के बाजे और स्फोटक पदार्थ जो आवाज करते हों, नहीं बजाये जावें। बारडोली ताल्लुके के सब इन्सपेक्टर आफ पोलिस जिन-जिन को इजाजत दे देंगे उन पर यह हुक्म लागू न होगा।

ता० २ - ५ - २८ J. R. GREGGORY.
डी० सु० पुलिस, सूरत

इस लम्बे चौड़े हुक्म के द्वारा सरकार समस्त बारडोली के स्वयंसेवकों को एक साथ ही लपेट लेना चाहती थी। एक मोटर वाले ने कलक्टर साहब का सामान लेने से इन्कार कर दिया, इस पर कलक्टर साहब ने उसका लाइसैन्स जब्त कर लिया। तीन बैलगाड़ियों को पुलिस ही गाड़ीवालों के इन्कार करने पर हांक कर लेगयी।

श्री० रविशंकर व्यास गाड़ीवाले की तरफ से मामलतदार से यह शिकायत करने गये थे कि गाड़ीवान की मरजी के विरुद्ध उसमें अधिकारियों का सामान नहीं भरा जाना चाहिये। इस अपराध में रविशंकर जी व्यास को पुलिस इन्सपेक्टर मि० सदरी ने गिरफ्तार कर लिया। उन पर गैर कानून प्रवेश तथा सरकारी अधिकारियों के कार्यों में वाधा पहुँचाने की दफा ४४७ तथा १८६ भारतीय पीनल कोड लगायी गयी थीं। मि० सदरी ने रविशंकर जी से जमानत देकर घर चले जाने को कहा पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इसपर इन्सपेक्टर पुलिस से उन्हें मि० लाखिया मजिस्ट्रेट के सामने पेश करवाया मजिस्ट्रेट ने उन्हें १ मई को हाजिरी अदालत का लेखी बयान लेकर रिहा कर दिया। रविशंकर भाई की गिरफ्तारी पर सरदार पटेल ने लिखा था—

"रविशंकर मेरे दल में एक सर्वश्रेष्ठ सेवक हैं, इनसे बढ़कर आहुति इस सत्याग्रह यज्ञ में दूसरा नहीं दे सकता।"

मामला ता० ३० अप्रेल को पेश हुआ। रविशंकर भाई ने बचाव से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने अपनी ओर से एक लिखित वक्तव्य अदालत को पेश कर दिया।

"प्रान्ताधिकारी जैसे बड़े अधिकारी के उपयोग के लिखे मंगाये और भरे हुए गाड़े दिन दहाड़े कचहरी के हाते में पड़े रहें और गाड़ी वाले अपने गाड़ों को वहीं छोड़कर भाग आने की हिम्मत करें, सचमुच यह ऐसी बात है जिसमे सरकार को बुरा लग सकता है। आजतक जो रिवाज अवाधित रूप से चला आया, उसमें यह बात जरूर खलल डालने वाली है। इसे में समझ सकता हूँ। इसलिये यदि सरकार की दृष्टि से मैं अपराधी समझा जाऊं तो इसमें मुझे कोई आश्चर्य नहीं मालूम होता। मैं इसलिये अपना बचाव नहीं करना चाहता कि कानून की दृष्टि से मैं निर्दोष हूँ। मैंने तो केवल शुद्ध नैतिक दृष्टि से उस गरीब आदमी

की रक्षा करके अपने धर्म का पालन किया है। पर आप से मेरी यही प्रार्थना है कि आप यह समझ कर मुझे निःसंकोच भारी से भारी सजा दें क्योंकि आपके कानून की दृष्टि से, जिसमें कि नीति को कहीं स्थान नहीं है, मैं अपराधी हूँ। आप मेरे देश बन्धु हैं और इस सत्याग्रह के युद्ध का इससे अधिक शुभ आरंभ और क्या होगा कि आपके हाथों से मुझे सजा हो। जब तक आप इस ओहदे पर हैं, और कानून के अनुसार न्याय देने के लिये बाध्य हैं, तब तक आपका यही धर्म है कि ऐसे कार्य के लिये आप मुझे सजा दें। आप जो कुछ भी सजा सुनायेंगे उसे मैं बिना किसी दुख के अत्यन्त हर्ष के साथ सहूँगा।"

२ - ४ - २८ रविशंकर शिवराम व्यास

मजिस्ट्रेट मि० ईसब पटेल ने गैर कानून प्रवेश पर दो मास और सरकारी नौकरी के काम में विघ्न डालने के अपराध में दो मास तथा प्रत्येक अपराध के लिये पच्चीस-पच्चीस रुपये जुर्माने की सजा सुनादी। जुर्माना न देने के एवज में २०-२० दिन अधिक सजा भोगनी होगी। इस तरह कुल ५ मास और १० दिन की सख्त सजा रविशंकर भाई को सुनादी गई।

महात्मा गांधीने इस सजा पर रविशंकरभाई को नीचे लिखी बधाई भेजी—

"भाई श्री पण्डित रविशंकर,

आप भाग्यवान हैं जो खाने को मिल जाय उसी में संतुष्ट। धूप जाड़ा एक समान। कहीं कपड़े मिल गये तो पहन लिये। और अब तो आप को जेल जाने का सौभाग्य भी मिल गया। अगर सरकार अदला-बदली करने दे और आप उदार हो जाँय तो आपके साथ मैं जरूर अदला-बदली करूं। आप को और देश की जय !

बापू के आशीर्वाद"

भाई रविशंकर के बाद चिमनलाल छवीलदास चिनाई का नम्बर आया। उन पर इंडियन पिनल कोड की धारा १८६-१८७ के अनुसार मुकदमा चला। मजिस्ट्रेट ने उन्हें ८ मास और २० दिन की सजा दी। बारडोली ने अपने दोनों विभागपतियों के सम्मान में एक दिन की हड़ताल की। इसके बाद सरकार की नजर बालोड़ के वीरों पर गई और श्री सन्मुखलाल पर १८१ धारा, श्री शिवानन्द पर १८६ व ३५३ धारा व श्री अमृतलाल पर १८६ व ३५३ धारा के अन्तरगत् मामले चले और उन्हें क्रमशः ६ मास व ६-६ मास की सख्त सजाएँ दी गई। ता० ११ मई को बालोड़ में इस निमित्त एक विराट् सभा हुई जिसमें सरदार पटेल, महादेवभाई देसाई, शारदा बेन मेहता तथा डाक्टर सुमन्त मेहता भी उपस्थित थे। वहाँ सरदार वल्लभभाई ने सजा पाये हुए वीर सत्याग्रहियों को बधाई देते हुए कहा—

"इस युद्ध में सरकार ने प्रत्येक दमन का आरंभ बालोड़ से ही किया है। प्रत्येक हथियार का प्रयोग पहिले-पहल उसने यहीं से आरंभ किया है। जेल का शस्त्र भी वह पहिले-पहल यहीं से आजमाना आरम्भ कर रही है। रविशंकर और चिनाई की बात जुदा है, वे पुराने सिपाही हैं। बाहर के भी हैं। पर यह तो ताल्लुके का पहिला बलिदान है। इसलिये उनको बधाई देने के लिये मुझे पहिले आना पड़ा। और सरकार ने किसे चुना है? जो सारे ताल्लुके की नाक है। जो कुन्दन की तरह के खानदान वाला है, जिसकी जोड़ी सारे मुहाल भर में भी आपको नहीं मिल सकती। आज आपको त्याग शक्ति की परीक्षा है। संमुखलाल की वृद्धि माताजी से मैं कहूँगा कि सम्मुखलाल जबतक लौटकर नहीं आता, आप प्रभु का नाम स्मरण करती रहें और उनके एहसान माने की उन्होंने आपको सपूत प्रदान किया है। उसने लोक सेवा के लिये कष्ट उठा कर अपने कुल को पावन किया है। आप के लिये आज दुख मानने की

नहीं, खुशी मनाने की शुभ घड़ी है। आप जरा भी चिन्ता न करें जो जाति सत्य के लिये लड़ रही है, उसपर प्रभु की अवश्य कृपा है। वही सम्मुखलाल की भी रक्षा करेंगे और उसे आप घर ले आवेंगे। उसकी तपस्या विफल नहीं होगी।"

"युवकों से मैं कहूँगा कि आपके यहाँ आज गंगाजी आई हैं, उसमें स्नान करके पवित्र होजाओ और सरकार को दिखादो कि सम्मुखलाल के पीछे चलने वालों की कमी नहीं है, भले ही जमीनें हमसे छीन ली जायँ। पर आप याद रखें कि पृथ्वी तो हमारी माता है, वह अपने पुत्रों को कभी भी नहीं त्याग सकती भले ही आपको डराने धमकाने के लिये सरकार किसी को भी हमारी जमीनें देदे पर किसी की हिम्मत न होगी कि कोई आपके खेतों में हल डाले। और हम तो इन समस्त बातों का शुरू से ही विचार करके इस अखाड़े में कूदे हैं। अंत में तो जमीनें हमारे पास आवेंगी ही यह आप निश्चय समझें। भले ही हमारा देश निकाला होजाय। जालिम के जुल्म को हंसते हुए सह कर ही हम तो ईश्वर को अपनी तरफ खींच सकते हैं। जब तक सम्मुखलाल जैसे हमारे पापों को धो नहीं देते तबतक हमारे अन्दर ईश्वर की भक्ति और श्रद्धा की ज्योति नहीं प्रकट हो सकती। आपके बीच इन दिनों सरकार के जासूस घूम रहे हैं। आप सावधान रहें। उनके चक्कर में कोई न आवे। अठारहों वर्ण एक होकर दूध पानी की तरह एक दूसरे की रक्षा करते हुए अपने प्राण भी अर्पण कर देना। दूध और पानी एक दूसरे के साथ मिलते ही एक जीव हो जाते हैं। जब उनको तपाया जाता है तब पानी दूध को ऊपर हटाकर खुद जलने के लिये कढ़ाई में नीचे बैठ जाता है। पर दूध अपने सखा पानी की रक्षा करने के लिये आग को बुझाने की गरज से खुद बाहर कूदने को दौड़ता है। आज आपको उबालने के लिये सरकार ने आग सुलगाई है। सम्मुखलाल जैसे ही बाहर कूद कर उसे बुझा सकते हैं। जिसके भाग्य में होता है उसी को यह पदवी

मिलती है। यदि आपको इस पदवी की इच्छा हो तो प्रभु से प्रार्थना कीजिये और इस योग को प्राप्त कीजिये। पर एक बात याद रखिये। सम्मुखलाल आप पर एक जबरदस्त जिम्मेदारी छोड़ कर जारहा है। आप अब इस तरह काम कीजिये कि जब वह लौट कर वापस आवे तो आप उजला मुंह लेकर उसे अपने बीच ला सकें।"

इसके बाद वीर सम्मुखलाल ने अपनी तरफ से कहा—

"ताल्लुके तथा सरकार को मैं यकीन दिला देना चाहता हूँ कि यह बनिया बारडोली के नाम को नहीं डुबायेगा। इस समय तो मुझे किसी बात का यदि दुख होरहा है तो वह यही कि ऐसे सुन्दर युद्ध को देखने का आनन्द मुझे अब न मिलेगा। पर मैं इसकी परवाह नहीं करता मैं तो जेल रूपी महल में बैठकर परमात्मा को याद करूंगा और उनसे प्रार्थना करूंगा कि वे उनको विजय दें। स्नेही-सम्बन्धियों से मैं आग्रहपूर्वक कह देना चाहता हूँ कि आप मेरे शरीर की लेशमात्र भी चिन्ता न करें। आप यह न सोचें कि आदत न होने के कारण मैं जेल में मजदूरी कैसे करूंगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि प्रभू को याद करके बिना किसी प्रकार की बदनामी का टीका सिर पर लगाये मैं सीना फुलाकर आपसे फिर आ मिलूंगा।"

"आज जो यह सत्य का संग्राम छिड़ा हुआ है उसमें बालोड़ को सबसे आगे देखकर मेरा हृदय आनन्द से फूल उठा है। आह, मेरा प्यारा बालोड़। बालोड़ के लिये मुझे गर्व न हो तो और किसे? इतनी खालसा नोटिसें मेरे अपने वैश्य भाइयों पर! जेल जाने की शुरू आत बालोड़ से ही। मेरे प्यारे नौजवान दोस्तो! बालोड़ आज ताल्लुके की नाक बन गया है। इसकी लाज रखना तुम्हें डराने, धमकाने, फूट डालने के लिये चाहें कितनी ही कोशिशें की जाँय— वे जरूर ही की जायेंगी—तो भी तुम अटल रहना। जब्ती और

खालसा के नाटक जैसे हुए वैसा ही जेल का भी होगा। सरकार जेल के मेहमान चाहती है। आप इसे मुंह मांगे मेहमान देना।"

इसके बाद सभा के विसर्जन के समय सरदार पटेल का पुनः भाषण हुआ। उन्होंने कहा—

"जिसके शरीर में जवानी का जोश और देश के लिये कसक है, वह १५ दिन में मर्द बन सकता है। आप जानते हैं, सरकार अपने रंग रूटों की भरती किस तरह करती है? वह बीस-बीस रुपये महावार पर रोज जैसे जंगली जानवर रूपी युवकों को पकड़-पकड़ कर लेजाती है। इसके लिये वह दलाल रखती है जो २-४)रु० दलाली लेकर ऐसे आदमियों को फांस-फांस कर सरकार को सौंप देते हैं। पर उन्हीं के हाथ में बन्दूक देकर छः महीने के अन्दर उन्हें ऐसा बना देती है कि वे किराये के टट्टू तोप के मुंह पर धावा करने दौड़ने लगते हैं। बलसाड़ में आदमी प्लेग के कारण कुत्तों की मौत मर रहे हैं, क्या मर्द की मौत मरना उसमे बुरा है? और जहां युद्ध होरहा हो वहां भला क्या कोई आदमी कायर रह सकता है? वहां १० दिन में तो आदमी मर्द बन जाता है। जहां सम्मुखलाल जैसे जेल जारहें हों वहाँ आपमें इतनी हिम्मत तो अवश्य ही होनी चाहिये। हाँ;जो बूढ़े हों वे अवश्य ही घर में बैठे-बैठे ईश्वर-भजन करते रहें। उन्हें आप कहदें कि आखिर जमीनें तो आप हमारे लिये ही रखते हैं न? पर जमीनों की अपेक्षा अपनी सम्मान रक्षा को हम अधिक कीमती मानते हैं। ऐसे इज्जतदारों में सम्मुखलाल ने अपना नाम लिखाया है। जहाँ जमीन के एक टुकड़े के लिये हम कायरों में अपना नाम कैसे लिखा सकते हैं? बालोड़ के बच्चे बड़े होंगे तब सम्मुखलाल का नाम अभिमान के साथ लेकर कहेंगे कि जब हमारे ताल्लुके ने सल्तनत के साथसंग्राम छेड़ा तब जेल में जाने वाला पहिला मर्द हमारा था। इसलिये सम्मुखलाल को निर्भय करो और उसे वचन देकर निश्चिन्त करदो।"

इसके बाद महादेव देसाई ने गाना गाया—

"शूर संग्राम को देख भागे नहीं,
देख भागे सोई सूर नाहीं।"

सरकार सारे ताल्लुके में साम, दाम, दण्ड और भेद चारों प्रणालियों का उपयोग दिल खोल कर रही थी। पर एक प्रणाली उसके लिये कठिन अवश्य थी, वह थी "दाम"। वह दाम कहाँ से देती ? इसलिये उसने दण्ड और भेद की प्रणालियों पर अमल करने में लज्जा को भी एक बार लज्जित कर दिया। गाँवों में शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता था जब कि पठानों ने किसानों के घरों पर धावा न बोला हो, किसी की बाड़ न तोड़ी हो, दरवाजा न तोड़ा हो, कोड़े न मारे हों, सेंध न लगाई हो या भैंसों को नहीं ले गये हों। अफीमरों में होड़ें लगतीं कि आज लूटका माल कौन अधिक लाता है। भैंसों को इकट्ठा करके सरकार ने एक भैंसशाला कर रखी थी। भैंसों को न तो वहां घास डाला जाता और न पानी पिलाया जाता। जब मरण प्रायः हो जातीं तो कसाइयों को बेच दी जाती थीं। डाका डालते समय अधिकारी यह भी नहीं देखते थे कि इस भैंस के मालिक से हमें लगान वसूल करना भी है या नहीं। "अंधेर नगरी और बेबूझ राजा" की कहावत चरितार्थ हो रही थी। पूरे बारडोली तालुके में पठानों का राज था। रात को १–२ बजे पठान किसानों के दरवाजे खटखटाते। जब बारडोली के किसानों ने पठानों के घृणित आचरण की शिकायत सरकार से की तो सरकार ने कहा कि "यह बात अनहोनी है, उनका बर्ताव अनुकरणीय है।"

इन सरकारी 'अनुकरणीय आचरण' सम्पन्न पठानों के कुछ कारनामे भी देखिये ता० ७ मई १९२८ को तहसीलदार पुलिस तथा पठानों को लेकर बालोड़ में जब्ती के लिये गये। कुम्हारवाड़े में एक दरवाजा खुला देख कर तहसीलदार ने मकान पर धावा बोल दिया। उनके पीछे पुलिस और पठान भी मकान में घुस गये। और पूरा

सामान लेकर बाहर आ गये। मकान मालकिन प्रमा बेन ने हल्ला सुना तो वह घर में आई। उसने पुलिस वालों को खूब डांटा। प्रमा बेनने कहा कि "न मेरा खाता न पोता फिर यहाँ क्या लेने आये हो ?" तहसीलदार ने कड़क कर कहा—"खातेदार भले ही न हो, हमें सामान से मतलब है।" पटवारी बोला—"कैसे कहती है, खाता नहीं है, तेरे नाम १५।—) निकल रहे हैं।" प्रमाबेन ने कहा—"मैं तो पांच साल से जमीन नहीं हांकती फिर यह रुपये कैसे ?" तब पटवारी को होश आया और उसने प्रमाबेन से पूछा "केशव ऊदा का मकान कौनसा है ?" "मुझे पता नहीं"—"प्रमा बेन ने जवाब दिया। "तो इस घरवाले का क्या नाम है ?" पटवारी ने पूछा। "नाम मैं नहीं बताऊंगी, पर मुझे तुम्हारा कुछ भी नहीं देना"—प्रमाबेन ने जवाब दिया।

इस पर तहसीलदार तमाम सामान छोड़कर मकान के पीछे के रास्ते से बाहर निकलने लगे तो प्रमाबेन दरवाजे पर अड़ कर खड़ी हो गयी बोली—"पीछे से क्यों जाते हो ? जिधर से आये हो उधर से ही जाओ।" आखिर नीची गरदन किये तहसीलदार मय अपने अमले के सामने के दरवाजे से चुपचाप बाहर चले गये।

"कल श्री० बरजोरजी भारूचा, श्रीमती मीठू बहन पेटिट और मैं अपने निश्चत कार्यक्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न गांवों में घूमते घूमते दोपहर के ढाई बजे मढ़ी पहुँचे। यहाँ मालूम हुआ कि आज बड़े सबेरे जब्ती आफीसर पठानों को लेकर आये थे। इनमें एक पठान ने खातेदार सीताराम बरसी की स्त्री के साथ बड़ा ही घृणित व्यवहार किया। इस विषय में रूबरू जांच करने के लिये मैं तथा मीठूबेन स्थानीय विभागपति श्री फूलचन्द बापूजी शाह को लेकर उस खातेदार के मकान पर गये और मणीबाई सीताराम खातेदार की पत्नी से सब हाल पूछा। उसने कहा कि सबेरे एक पठान एक काश्त-

कार के पिछवाड़े में घुसा, पर जब वहाँ उसे कुछ न मिला तो वह सीताराम के बाड़े में कूद पड़ा। हथियारबन्द पुलिस का एक युवक भी दूसरी तरफ से इसी समय बाड़े में घुसा। उस समय मणी बाई किसी कार्यवश बाड़े ही में थी। पठान को देखते ही वह घबरा कर मकान के भीतर दौड़ी और दरवाजा बन्द करने लगी, पर पठान उसके पीछे ही दौड़ा। मणीबेन सांकल भी नहीं चढ़ा पाई थी कि पठान ने जोर से दरवाजे को धक्का दिया और दरवाजा खुलते ही मणीबेन का हाथ उसने पकड़ लिया। और उसे घसीटता हुआ बाड़े में छोड़ आया और खुद मकान के भीतर घुस गया। अन्दर से दो भैंस दो भोंटी और १ पाड़ी लेकर चलता बना। विशेष ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि उस समय जब्ती आफीसर मि० बैंजामिन सालोमन वहाँ नहीं थे इस घटना की जांच करने पर मुझे निश्चय हो गया कि यह कार्य न केवल गैर कानूनी ही है बल्कि निर्दयता पूर्ण भी है। पठान जैसे असभ्य जंगली जाति के लोगों में से एक आदमी इस तरह प्रजा के जान व माल पर अकेला छोड़ देना तथा किसी भी जिम्मेदार अधिकारी का वहाँ न रहना, यह सरकार का एक अक्षम्य अपराध है। यह बर्ताव ऐसा था जिससे मामूली हालत में भी किसी का खून खौल सकता था। लेकिन वल्लभभाई के पढ़ाये शान्ति पाठ के कारण लोगों ने पूर्ण शान्ति और धीरज से काम लिया। सचमुच यह उज्वल भविष्य की आशा दिलाने वाली बात थी।"

—मणिलाल कोठारी

उपरोक्त घटना पर रोष प्रकट करने के लिये १८ मई को ५०० बहिनों की एक सभा हुई जिसमें एक प्रस्ताव के द्वारा सरकारी लोगों के इस कार्य पर तिरस्कार प्रगट किया गया व मणीबेन को बधाई दी गई। इसके साथ ही यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि जब हमारे भाई जेल जा रहे हैं तो हमें भी जेल जाना जरूरी है। इसी प्रकार की स्यादला में भी एक सभा हुई।

सरभण की एक मुसलमान महिला ने अपना हलफिया बयान देते हुए कहा—

"ता० ३ जून को दिन के लगभग ११ बजे उपरोक्त बहिन बारडोली से सरभण जा रही थी। डभोई की खाड़ी के पुल के पास पहुँची कि वहाँ उसे एक पठान मिला। पठान ने उसे ठहरने के लिये कहा। जब उसने नहीं सुना तो पठान ने दौड़ कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे खाड़ी की तरफ घसीटने लगा। वह बहन चिल्लाकर रोने लग गई। उसी समय बारडोली की तरफ से एक गाड़ी आती हुई दिखाई दी। उसे देखते ही पठान भाग गया। रास्ते में उस बहिन को सरभण से आता हुआ एक गाड़ी वाला मिला। उसे उस बहिन ने सारा किस्सा सुनाया। गाड़ीवाले ने पहिले उस बहिन को घर पर पहुँचाया और उसके बाद वह लौटा। रास्ते में उसे एक पठान मिला। उसकी शक्ल सूरत व कपड़े सभी वैसे ही थे जैसे बहिनने उसे बताये थे। गाड़ीवाला उस पठान को जानता था कि वह बारडोली में जब्ती के लिये लाये गये पठानों मे से ही एक है।"

उन दिनों अधिकारियों की हालत देखकर पठान ताड़ गये थे कि उनके अफसर बहुत ही कमजोर और बोदे हैं इसलिये स्वभावतया वे बहुत ही ढीठ होते जा रहे थे। अब वे कुए और नदी पर आने जाने वाली स्त्रियों तक से छेड़-छाड़ करने लगे थे। नदियों और पनघट की तरफ पेशाब करने बैठने के बहाने नंगे हो जाना उनके लिये एक मामूली-सी बात हो गई थी।

दिन के एक बजे के करीब सिगोद गाँव से एक मोटर आई। उसमें जब्ती अफीसर मि० करसन जी थे। उनके पठान एक के बाद एक कूद कर नानाबाई नामक एक बहिन के मकान में घुस गये। उन्हें देख बाई दरवाजा बन्द करने को आगे बढ़ी। पठानों ने उसे धक्का मार कर गिरा दिया।

बारडोली के महम्मदसाले नामक एक किसान ता० ६ जून गुरुवार को अपनी आंखों देखे एक दृष्य का वर्णन करते हैं—

"दिन के प्रायः १ बजे का वक्त था। बारडोली से सरभण जाते हुए जो नदी पड़ती है, उस पर दस बारह स्त्रियां कपड़े धो रहीं थीं। नदी के दूसरे किनारे पर तीन-चार पठान नहाने के लिये नदी में उतरे। दूसरे तीन-चार पठान सुथने पहिने हुए नंगे बदन नहाने की तैयारी में थे। स्त्रियों ने इन पठानों को समझाया था कि वे इस तरह की हरकतों से बाज आयें पर "अनुकरणीय आचरण" वाले पठानों ने एक न मानी। आखिर स्त्रियाँ अपने कपड़ों को छोड़ कर दूर जाकर खड़ी हो गईं और पठानों के नहा कर जाने की राह देखने लगीं।"

सुलेमान मूसा ने उसी दिन का हाल सुनाते हुए बताया कि जब वे नदी के 'ओवारे' पर पहुँचे तब वहाँ तीन पठान नहा रहे थे। एक पठान दूसरे पठान को उठा कर पानी में डालने के खेल में मश-गूल था। यह पठान कतई नंगा था। कितनी ही 'दुबली' तथा मुसल-मान बहनें दूसरी तरफ कपड़े धोरहीं थी। उनसे वे पठान छेड़-छाड़ भी करते जाते थे। जब घबरा कर वे स्त्रियां घर जाने लगीं तो पठानों ने इशारे करते हुए कहा—"हमें भी अपने घर लिये चलो।"

वीर चेनाजी की समस्त जमीन खालसा करने के बाद भी इनके मकान पर डाका डाला गया। उनके सब वर्तन भांड़े उठा कर पुलिस वाले ले गये और उनका नौकर घोड़े को पानी पिलाकर ला रहा था, उससे रास्ते में ही घोड़े छीन लिये गये। जब ये घोड़े रेल पर चढ़ाने को लाये गये, तो पास में ही कुछ नमक की बोरियां पड़ी हुई पठानों ने देखीं। वे समझे शक्कर की बोरियां हैं। एक पठान ने चाकू से एक थैली को काटा और उसमें से डेढ़ सेर के करीब नमक निकाल लिया। यह कार्य करते हुए रेल्वे की पुलिस के आदमी ने उसे भांप लिया और चोरी के माल के सहित उसे रेल्वे पुलिस के थाने में रख दिया।

कुछ लोगों ने उस नमक चोर पठान का फोटो भी ले लिया।

जब ये पठान दिन दहाड़े चोरी करते थे तो लोगों के यहाँ जब्ती के लिये घुसते समय क्या करते होंगे, यह सोचनीय बात है। इस पठान पर मुकदमा चला और उसे सजा भी हुई। चेनाजी के घोड़े पानी के मोल खानदेश में बेचे गये। पर सत्याग्रह की आग बारडोली ताल्लुके तक ही सीमित नहीं थी। जिस मुसलमान ने ये घोड़े खरीदे थे। उसे खानदेश के लोगों ने बहुत लज्जित किया और अन्त में उस आदमी ने ये घोड़े चेनाजी को लौटा दिये।

सरभग में पुलिस ने एक मकान पर पूरे १८ घन्टे पहिरा दिया। इसके कारण घर के लोग मामूली जीवन की आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर सके। पानी उन्हें स्वयंसेवकों ने वाड़े की दीवार पर चढ़ा कर दिया। मकान मालिक वृद्ध पेन्शनर थे। उसी दिन सरदार पटेल उधर से निकले और उन्होंने वृद्ध महाशय से समाचार पूछा—"आप घबड़ाये तो नहीं?"

> "इसमें ऐसा कौनसा संकट है? इनके चरण हमारे यहाँ और कब पड़ने वाले थे?"—वृद्ध पेन्शनर की पत्नी ने उत्तर दिया।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि सरकार के "अनुकरणीय आचरण" वाले पठान किस तरह के घृणित आचरण वाले थे। ये सब वे पठान थे जो बम्बई सरकार के पुलिस विभाग के दफ्तरों में मशहूर गुण्डे थे। परन्तु युद्ध के समय एक दूसरे के अत्याचारों का जिक्र करना बेकार-सी बात है। जब किसी सरकार को अपने अस्तित्व का ही खतरा हो जाता है तो वह हर प्रकार से अपने संरक्षण का प्रयास करती है। ऐसे समय वह शांति, कानून और धर्म को ताक में रख देती है, और जब सरकार विदेशी होती है तब देशद्रोही कायर लोगों और देश-भक्त तेजस्वी लोगों में भेद उत्पन्न करने के लिये वह भ्रम उत्पन्न करते तथा आपस में फूट पैदा

कर देने के हर उपाय काम में लाती है, ऐसे समय गुण्डों तथा कायरों को वह शान्तिप्रिय और कानून का आदर करने वाला बताती है और ईमानदार और देश-भक्तों को कानून तोड़ने वाला- द्वेष, फलाने वाला तथा सार्वजनिक शांति का भंग करने वाला दल कह कर उसे जीजान से नष्ट करने को उद्यत हो जाती है। उस समय वह चोर, डाकू और लुटेरों से भी आगे कदम रखने लगती है। सरकार चाहती थी कि बारडोली के किसान किसी तरह उत्तेजित हो जाँय तो फिर तो इन्हें भून दिया जा सकता है पर सरकार को यह पता नहीं था कि उन किसानों का सेनापति साधारण व्यक्ति नहीं. सरदार पटेल थे। ऐसे सेनापति के सैनिक उत्तेजित हो जायँ, इसकी कल्पना करना भी बेकार है। सरकार ने यहाँ तक अफवाहें फैलाई कि किसान तो सभी लगान देने को तैयार हैं पर उन्हें अपनी जान का खतरा है, जाति तथा गाँवों से बाहर निकाल देने का भय है सरदार इन सरकारी चालों को खूब जानते थे अतः उन्होंने ताल्लुके में पहिले से ही यह घोषणा करदी थी कि "जो लगान जमा करा देना चाहता हो, उसे मैं खुद तहसील में ले जाऊंगा और वह शौक से लगान जमा करा सकता है।" सरदार पटेल ने इस कार्य को बुरा इसलिये बताया कि कायरता एक संक्रामक बीमारी है और इसके फैल जाने का हमेशा भय है।

सरकार की काली करतूतें

इधर सरकार हर प्रकार के घृणित उपायों से आन्दोलन को मिटा देने के लिये कार्य कर रही थी और दूसरी ओर सरकार विदेषों में विषाक्त प्रचार भी कर रही थी। इंगलैंड में सिर्फ बारडोली के आन्दोलन के विषय में यही छपा था कि बारडोली में लगान न देने का आन्दोलन जारी है और यह करतूत बोल्शेविकों के दूतों की है। इसी जहरीले प्रचार के द्वारा सरकार यहाँ देश की आँखों में भी धूल

झोंकने का प्रयत्न कर रही थी। सत्याग्रह के पूर्ण यौवन के दिनों में इसी प्रकार का एक नाटक सूरत में भी हुआ।

सूरत के डाक्टर एदुल बहरामजी ने अपनी जवानी में थोड़ी बहुत सार्वजनिक सेवा में भाग लिया था। उत्तरी विभाग के कमिश्नर मि० स्मार्ट जब सूरत पहुँचे तो उन्होंने एदुल जी पर हाथ फिरा दिया। इन डाक्टर साहब को स्मार्ट की कृपा से यह तक मालूम था कि किसानों ने रुपया दे दिया था और किन किसानों ने नहीं दिया। जो बातें सरकारी अधिकारियों को भी मालूम नहीं थीं वे बातें एदुल जी से छिपी नहीं थीं। डाक्टर साहब किसानों के सच्चे हमदर्द बन कर उनको यही सलाह देते थे कि सरकार का लगान जमा करा देना चाहिये। उनका यह भी भीतरी इरादा था कि सरकार यदि लगान वसूल न कर सके तो जितना भी लगान ताल्लुके पर हो किसी पारसी फर्म से जमा करवा कर सारा ताल्लुका पारसियों के हाथ में आजाय। वे प्रचार इस प्रकार करते थे कि हम सारा लगान जमाकर सरकार के साथ का झगड़ा मिटवा देते है और फिर जो किसान हमें लगान अदा कर देगा, उसकी जमीन उसको देदी जायगी। बाहरी तौर पर किसानों के लिये वे बड़े ही दुखी हो रहे थे, इस कष्ट में कमिश्नर साहब भी उनका साथ देरहे थे। सूरत से कमिश्नर साहब ने एदुलजी को एक पत्र लिखा—

कैम्प सूरत
ता० ८ मई १९२८

"प्रिय डाक्टर एदुल बाहराम जी,

आपके पत्र के लिये अनेक धन्यवाद। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप ने जो लेख लिखे थे वे किसी सरकारी अधिकारी की प्रेरणा से नहीं, अपने सौजन्य के कारण ही लिखे थे जिसने कि आपको दीन-हीन कुष्ट पीड़ितों की सेवा में अपना जीवन अर्पण करने में लगा दिया है।

सरकारी लगान वसूल करने में कठोर उपायों का अवलम्बन करने से पूर्व मैं खेड़ा के उन उपद्रवियों को अपनी करतूतों से बाज आने के लिये राजी करने में अपनी शक्ति भर कोशिश कर चुका। उनके आन्दोलन, गुप्तचरों तथा सभाओं आदि अनेक बेहूदगियों के कारण सरकारी अधिकारीगण को सरकार का पक्ष जनता के सामने पेश करने का अवसर ही नहीं मिला। जो कोई भी अधिकारियों के पास जाता, उसे संदेह की नजर से देखा जाता, और उसे बहिष्कार की धमकियाँ दी जातीं। जनता को सरकार की उन दलीलों को सुनने का अवसर ही नहीं दिया जाता, जिन्हें हमने कौंसिल मे पेश किया था और जिनके कारण वहाँ वह निन्दा का प्रस्ताव ३५ के विरुद्ध ४४ मत से गिर गया था। इन उपद्रवियो से जो जनता के धन पर अपना पेट पाल रहे हैं और उसे बुरे रास्ते लेजा रहे हैं, जनता को बचाने की मुझे जितनी चिन्ता है उतनी और किसी को नहीं है। रायबहादुर भीमभाई नाइक को मैंने साफ-साफ कह दिया कि मैं ऐसे किसी भी गाँव की जांच करने के लिये तैयार हूँ जो इस बात के लिये युक्ति संगत कारण पेश करदे कि उसे ऊपर के वर्ग मे शामिल करने से उसके साथ अन्याय हुआ है। पर यह मैं तब करूँगा जब समस्त ताल्लुके पर की गई २० प्रतिशत वृद्धि का लगान न देने का आन्दोलन बन्द कर दिया जाय। लगान वसूल करने के जितने भी उपाय हैं, उनका अवलम्बन करने से सरकार अपने आपको रोक नहीं सकती। इस तरह तो कानून के अनुसार किये गये प्रत्येक बन्दोबस्त का विरोध होने लगेगा। आज बारडोली में वही उपद्रवी लोग हैं जिन्होंने सन् १९१८ में खेड़ा जिले में कर न देने का आन्दोलन खड़ा किया था। और लगान अदा करने की इच्छा रखने वाली जनता को रोकने के लिये ये यहाँ भी उन्हीं उपायों का अर्थात् जाति बहिष्कार, दण्ड वगैरा का अवलम्बन कर रहे हैं जिनका खेड़ा में उन्होंने उपयोग किया था।

खेड़ा के उन्हीं ५ ताल्लुकों से ये लोग आये हैं जिनका बन्दोबस्त बाढ़ के कारण दो साल से आगे ढकेला जा रहा है। पिछले सात-आठ महीनों में उन ताल्लुकों में सरकार ने ५० लाख के करीब रुपये बाढ़ सहायतार्थ ऋण में दिये हैं। अगर आज उन्हें बारडोली में कहीं सहायता मिल गई तो उस जिले का लगान और ऋण वसूल करना सरकार के लिये और भी कठिन हो जायेगा।

आप इस पत्र का जैसा चाहें उपयोग कर सकते हैं। मैंने इस पत्र में कोई भी ऐसी बात नहीं लिखी है जिसमें किसी छिपाव की जरूरत हो। यह तो वे ही बातें हैं जिन्हें सभी जानते हैं।

आपका विश्वस्त
डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्मार्ट०

यह पत्र डाक्टर साहब ने समाचार पत्रों में छापने के लिये भेज दिया। पर इसका असर उनके अनुमान के ठीक विपरीत हुआ। इन दोनों शुभेच्छुओं के प्रति जनता में जबरदस्त असंतोष की लहर फैल गई। बारडोली में जब यह खबर पहुँचा तब तो लोगों को असह्य वेदना हुई।

वैसे तो कमिश्नर साहब के आक्षेपों के कई समाचार पत्रों में उत्तर दिये गये पर स्वयं वल्लभभाई ने उत्तर देते हुए एक भाषण में कहा था—

यदि मि० स्मार्ट अपना पत्र जनता के सामने रखना चाहते हों तो मैं ताल्लुके के १७००० काश्तकारों को एक जगह एकत्रित करने के लिये तैयार हूँ। वे शौक से आवें और किसानों को समझावें। पर उनके अधिकारियों के सम्पर्क से तो मुझे जनता को सुरक्षित ही रखना पड़ेगा। जिनकार्य कर्त्ताओं को वे इन शब्दों में याद करते हैं, उनके उपकारों को भी तो वे याद करें। अगर वे "उपद्रवी" खेड़ा की सहायता के लिये दौड़ न जाते, तो जनता जमीन से इस साल नई फसल न ले पाती और न सरकार उनसे लगान ही वसूल कर पाती।"

महात्मा गांधी ने "यंग इंडिया" में एक लम्बा लेख लिखते हुए बारडोली को मुख्य-मुख्य सेना नायकों का नाम गिना कर बताया कि वे कितने प्रतिष्ठित हैं। उनको उपद्रवी कहना ऐसा अपमान है जिसे दूसरी परीस्थित में जनता कभी बरदाश्त ही नहीं कर सकती। महात्माजी ने कमिश्नर के एक-एक आरोप का जोरों से खण्डन किया और कमिश्नर को आह्वान किया कि उन्हें यदि कुछ भी लज्जा और हया है तो वे इन घृणित आक्षेपों के लिये प्रकट रूप से क्षमा याचना करें।

सरकार के और भी कई ऐजन्ट जनता में भ्रम फैलाने की चेष्टा कर रहे थे। परन्तु बारडोली के लिये सरकार ने जितनी भी गलत फहमी फैलाने की चेष्टा की, सत्याग्रह का प्रकाशन-विभाग अपनी चेष्टाओं से उसे विफल करता चला गया। सत्याग्रहियों में कई कुशल फोटोग्राफर भी थे जो सरकार के ईमानदार पठानों के व्यवहारों के तत्काल फोटो लेकर अखबारों को भेजा करते थे जिससे सरकार का सारा प्रचार विफल होजाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार का तत्कालीन मुखपत्र टाइम्स ऑफ इंडिया तथा कमिश्नर और कलक्टर को छोड़ कर देश के तमाम पत्रों तथा सभी दलों की बारडोली के सत्याग्रह से गहरी सहानभूति होगयी। सरदार वल्लभभाई नहीं चाहते थे कि बारडोली सत्याग्रह अखिल भारतीयरूप दिया जाय,इसीलिये उन्होंने अभी तक किसीभी अखिल भारतीय ख्याति के नेता को बारडोली आने का निमंत्रण नहीं दिया था और जिन्होंने आने के लिये लिखा, उन्हें भी उन्होंने सखेद इन्कार कर दिया। स्वंय गांधीजी को उन्होंने इसलिये निमन्त्रित नहीं किया कि उनके बारडोली में पदार्पण करते ही सत्याग्रह का स्वरूप अखिल भारतीय हो जायेगा। और महात्माजी भी स्वयं इसी कारण वहाँ नहीं जा रहे थे। जब वल्लभभाई ने गांधीजी को लिखा कि मैं अहमदाबाद आना चाहता हूँ तो महात्मा जी ने स्पष्ट ही उन्हें लिखा था कि

"दुःख तो भारी आ पड़ा है, पर उसके लिये आप अपना स्थान छोड़ कर यहाँ न आवें।" वल्लभभाई ने यह पत्र स्वर्गीय मगनलाल भाई गांधी की मृत्यु पर गांधीजी को लिखा था। गांधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि "जब कभी आपको मेरी जरूरत हो, लिखदो इसी मौके पर कार्यवश वल्लभभाई बम्बई पहुँचे, वहाँ उनकी भेंट श्री राजगोपालाचार्य तथा देशभक्त गंगाधर राव देश पाण्डे से हो गयी। राजगोपालाचार्य तथा देशपाण्डे ने बारडोली देखने की इच्छा वल्लभभाई से प्रकट की पर वल्लभभाई ने दुखपूर्वक उन्हें भी इन्कार कर दिया।

पठानों के अत्याचार बढ़ जाने से वल्लभभाई को सत्याग्रह के इस मास में ८ मई १९२८ को चन्दे के लिये देशवासियों से अपील करनी पड़ी। गांधीजी ने भी इस अपील को दोहराया। गांधीजी की अपील के बाद देश से धन बारडोली की ओर खिंचने लगा। केवल भारत से ही नहीं, बेलजियम, फ्रान्स, जापान, चीन, स्वीजरलैण्ड तथा मलाया स्टेट्स आदि संसार के दूरस्थ देशों से भी चन्दा प्राप्त हुआ। मजदूरों ने अपनी मजदूरी में से तथा विद्यार्थियों ने अपने खर्च से धन बचा कर सत्याग्रह के लिये चन्दा भेजा। विद्यार्थियों ने बारडोली के लिये नाटक खेले और उसकी पूरी आमदनी चन्दे में दे दी। स्त्रियों ने अपने गहने दे दिये।

बम्बई की धारासभा के ८ सदस्यों ने सरकार के दमन के विरोध में धारासभा से इस्तीफे दे दिये। देश के नेताओं ने सत्याग्रह में अपनी सेवायें भेंट करने के लिये सरदार पटेल को सूचित किया। सरदार साहब ने सभी को धन्यवाद देते हुए लिख दिया कि—

> "अभी इन सब बातों की कोई आवश्यकता नहीं। सिर्फ आर्थिक सहायता से ही फिलहाल काम चल जायेगा। स्वयंसेवक अभी यहाँ काफी हैं। सरकार की जेलें भरने के लिये हम काफी खुराक सरकार को दे सकते हैं।"

पर वल्लभभाई के रोकने पर भी देश के नेता कैसे रुक सकते थे ? सब से पहिले मि० बरजोरजी फरामजी भरूचा तथा श्री० नरीमैन बारडोली आये। दोनों ताल्लुके के किसानों का संगठन देखकर दंग रह गये। मि० भारूचा ने किसानों से रूबरू बातचीत करके यकीन कर लिया कि वे निर्भर और संगठित हैं। अंत में उन्होंने कहा—

"इंग्लैण्ड के लोग अब इस बात पर विचार कर रहे हैं कि इस तरह यदि सत्याग्रह की लड़ाइयाँ आरंभ हो जायेंगी तो हम तोप, बन्दूक और विमानों को क्या करेंगे ?

श्री नरीमैन ने किसानों की सभा में भाषण देते हुए कहा—

"मैं तो आपकी टीका करने वालों से कहूँगा कि पहिले यहाँ आकर किसानों की हालत देखो, तब आपको सच्ची हालत मालूम होगी। चन्द घण्टों में ही मैंने यहाँ की हालत को देख लिया है। सारा ताल्लुका जेल बन गया है। बिचारे किसान दिन-दिन भर अपने जानवरों को लेकर घरों में बन्द रहते हैं। लोग कहते हैं कि चोर डाकुओं और पिंडारियों को निकाल कर आजकल अंग्रेज यहां राज कर रहे हैं। पर मैं तो कहूँगा कि और कहीं चाहे जो कुछ हो, बारडोली में तो आज पिंडारियों, पठानों और बम्बई के गुण्डों का ही राज है। इस ताल्लुके में घूमने वाले पठान वही बम्बई के पठान हैं जिनके पीछे रात-दिन पुलिस घूमती रहती है, जो रात,दिन लोगों के गले काटते फिरते हैं। अब ये बदमाश किसान बहिनों से भी छेड़-छाड़ करने लगे हैं। मैं कहता हूँ, सरकार के लिये इससे लज्जाजनक और कोई दूसरी बात नहीं हो सकती।"

यह लड़ाई तो मामूली लगान वृद्धि की लड़ाई है पर सरकार ने इसे बहुत विशाल रूप दे दिया है। इसलिये अब कहा जा सकता है

कि आप तो सारे देश के लिये लड़ रहे हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि देश के बड़े-बड़े नेताओं की परिषदें और-और प्रस्ताव तो पास करती रहती हैं, पर उनका ध्यान बारडोली की तरफ क्यों नहीं जाता! मेरा तो ख्याल है कि पिछले सौ वर्ष में सरकार की जालिम नीति का सामना करने के लिये यदि कोई सच्चा आन्दोलन हुआ है तो वह बारडोली का सत्याग्रह है। मैं कहता हूँ कि अगर एक दर्जन ताल्लुके भी इस तरह संगठित हो जाँय तो उसी क्षण स्वराज्य हमारे हाथों में आजाय। मैं तो बम्बई के लोगों से कहूँगा कि धारासभा में प्रस्ताव पास करने से कुछ भी होना जाना नहीं। सरकार से कैसे लड़ना चाहिये तथा लोगों का किस प्रकार नेतृत्व करना चाहिये, यह अगर देखना हो तो बारडोली जाकर देख लो, शेष सारी लड़ाइयां और नेतापन व्यर्थ है।"

बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक हुई। जिसमें उसने उत्तरी विभाग के कमिश्नर के उपर्युक्त पत्र की निंदा करते हुए बारडोली सत्याग्रह का पूर्ण समर्थन किया और देश से अपील की कि वह इस युद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करे।

ता० २७ मई को सूरत बारडोली सत्याग्रह के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने के लिये सारे जिले की एक जबरदस्त परिषद हुई। वह बारडोली के बलिदान की पवित्रता और गुजरात की श्रद्धा का ज्वलंत प्रमाण कही जा सकती है। सभा मंडप में दस पन्द्रह हजार मनुष्यों से कम न होंगे और हजारों की तादाद में लोग बाहर भी खड़े थे। सभा भवन में बारडोली के पठान राज्य के अनेक अवसरों के खून प्रज्वलित करने वाले चित्र भी टांगे गये थे। सभापति श्री जयरामदास दौलतराम ने बहुत ही उत्कृष्ट भाषण दिया क्योंकि सभापतित्व करने के पहिले वे बारडोली जाकर सत्याग्रह का अध्ययन करके ही आये थे। भाषण में उन्होंने कहा था—

"सरकार साफ-साफ क्यों नहीं कह देती कि वह निरे पशु बल और सत्ता पर ही जी रही है, जिन बातों का नीति की दृष्टि से वह क्षण भर भी बचाव नहीं कर सकती, उनका भ्रामक दलीलों और असत्य बातों से वह क्यों प्रचार कर रही है ? दिन दहाड़े चोरी करने वाले पठानों को एक दिन भी बारडोली में रखना सरकार के लिये अत्यन्त ही लज्जाजनक है।"

"सरकारी चश्मा उतार कर आप किसी भी गांव में जाकर देख आइये। अपनी आंखों देखकर इस बात का विश्वास कर लीजीये कि बारडोली के किसान, स्त्रियां, और बालक सब कोई किस तरह अपने अगुओं के लिये मर मिटने को तैयार हैं। बम्बई सरकार की इस जालिम नीति का कलंक जिस तरह उसके शासन पर कायम रहेगा उसी प्रकार उसके जिम्मेदार और ऊंचे अधिकारियों ने इन प्रजासेवकों को बाहर के उभाड़ने वाले लोगों के धन पर जीने वाले इत्यादि कह कर जो उद्धतता प्रकट की है, यह कलंक का टीका भी उसके सिर से कभी भी धोया नहीं जा सकता।"

"आज जिस बारडोली की पूजा सारा देश कर रहा है, जहां वीरता और आत्मोत्सर्ग के पाठ पढ़ाये जा रहे हैं, उस ताल्लुके के विषय में होने वाले परिषद का क्या अध्यक्ष होना ? इस समय तो वहाँ जाकर युद्ध में शामिल हो जाना ही हमारा एकमात्र धर्म है।"

"आगामी १२ जून को सारे देश में बारडोली दिवस मनाया जाय। उस दिन सभी जगह सभाऐं हों और सत्याग्रह के लिये चन्दा एकत्रित किया जाय।

इसके बाद सरदार पटेल से कुछ बोलने के लिये प्रार्थना की गई। उनके उठते ही सारी सभा कई मिनिटों तक करतल ध्वनि करती रही। कितने ही लोगों ने उस भाषण को सुनकर अपने को कृतार्थ

कि जिससे वह मामूली-से-मामूली आदमी की समझ में आ जाय। उन्होंने कहा—

"दो और दो चार कहने के बदले दो और दो चौदह कहने वाले अधिकारी चाहें कितना ही दबावें, डरावें, जमीनें छीनलें और किसान राहके भिखारी बन जायें, फिर भी बारडोली के किसान अपनी टेक नहीं छोड़ेंगे। बारडोली में आज आबरूदार सरकार का नहीं, गुण्डों और लुटेरों का राज्य है।"

स्वागताध्यक्ष रायबहादुर भीमभाई नाइक ने अपने भाषण में कहा था कि सरकार गरीब किसानों पर दया करे। इसका उत्तर देते हुए गरज कर वल्लभभाई ने जवाब दिया कि "किसान गरीब और बैल की तरह मूक पशु हैं? वे तो वीर पुरुष हैं, वे ही तो सब के आधार हैं। उनका न्याय किये बिना सरकार के लिये कोई चारा नहीं। यदि वह किसानों के साथ न्याय न करेगी तो उसका सारा राज्य ही मिट्टी में मिल जायेगा।"

परिषद् ने अपने प्रस्ताव में बारडोली के वीर किसानों का अभिनन्दन किया, वीर श्रेष्ठ वल्लभभाई के एहसान माने, सरकार की निंदा करते हुए उसे आँखें खोल कर काम करने की सलाह दी और बारडोली की सहायता के लिये सारे जिले को ही नहीं बल्कि गुजरात को तैयार रहने को सलाह दी।

उसी समय दूसरी ओर गुजरात के श्रेष्ठतमों में से एक सुपुत्र, केन्द्रीय धारासभा के प्रेसीडेन्ट तथा सरदार पटेल के अग्रज श्री० विठ्ठल भाई पटेल यह विचार कर रहे थे कि बारडोली सत्याग्रह में किस प्रकार सहायता पहुँचाई जाय। वे रात-दिन होने वाले बारडोली के अत्याचारों तथा किसानों के अपूर्व संयम और दृढ़ता के किस्से सुन रहे थे। ये सब हाल वे, भारत में शान्ति रक्षा और व्यवस्था के सर्वोपरि ठेकेदार वायसराय को रोज ही सुनाते रहते थे। जब वे दमन

और अत्याचारों की खबरें पढ़ते-पढ़ते त्रस्त हो गये तो उन्होंने महात्माजी को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा कि—

"ऐसी परिस्थिति में मैं चुपचाप नहीं बैठ सकता, न मैं उदासीन ही रह सकता हूँ। इसलिये आपने जो आर्थिक सहायता मांगी है, उसके लिये आपको अभी सिर्फ एक हजार रुपये भेजता हूँ पर मुझे दुख है कि बारडोली के सत्याग्रहियों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करने के लिये तथा सरकार की जालिम नीति एवं गुजरात के कमिश्नर के प्रति अपनी सख्त नाराजगी जाहिर करने के अतिरिक्त इस समय मेरे हाथोंमें कुछ भी नहीं है। जबतक यह युद्ध जारी रहेगा मैं आपको प्रतिमास १ हजार रुपये भेजता रहूँगा। पर मैं आपको यह विश्वास तो फिर भी दिलाये देता हूँ कि जिन्हों ने मुझे यह महानु पद दिया है उनसे जितनी जल्दी हो सकेगा मैं सलाह करूँगा। जिस अधिकार का सम्मान आजकल मुझे प्राप्त है, वह तो जहां तक मेरा खयाल है एक सेवा धर्म है। और यदि मुझे यह विश्वास हो गया कि बारडोली के सत्याग्रहियों के दुख में आर्थिक सहायता करने के अतिरिक्त भी मैं कुछ अधिक परिणामजनक कार्य कर सकता हूँ तो आप विश्वास कीजिये कि मैं पीछे नहीं हटूंगा।

इसी बीच गवर्नर से बातचीत करने के लिए कमिश्नर महाबलेश्वर गये। मुलाकात के बाद ही सरकार की ओर से एक निवेदन पत्र प्रकाशित हुआ जिसमें लगान अदा करने की मियाद १६ जून तक बढ़ा दी गई थी, साथ ही यह भी धमकी दे दी गई थी कि यदि उपरोक्त तारीख तक लगान जमा नहीं कराया गया तो समस्त जमीनें खालसा कर दी जावेंगी और फिर वे कभी किसानों को लौटायी नहीं जायेंगी। इसी घोषणा में किसानों को फुसलाने के लिये चौथाई दण्ड माफ कर देने की भी छूट घोषित की गई थी।

इस घोषणा से यह साफ था कि गवर्नर अभी तक बारडोली की वास्तविक हालत से नावाकिफ ही थे। इससे यह सिद्ध था कि कमिश्नर जो पट्टी गवर्नर को पढ़ाता वही तोते की तरह गवर्नर रट लेते और वही उपरोक्त घोषणा में उन्होंने उगला भी। सरकार बारडोली से पठानों को हटाना नहीं चाहती थी क्योंकि हटाने के बाद उसकी प्रतिष्ठा ही क्या रह जाती? इसलिये सरकार ने पठानों का पक्ष समर्थन करते हुए यही कहा कि बारडोली के लोग यदि लगान जमा करदें तो पठान हटाये जा सकते हैं। असली बात तो दूसरी थी। सरकार किसनों के सङ्गठन से नाराज थी, वह सङ्गठन उसे खटक रहा था! अभी तक किसानो ने अलग-अलग दरख्वातें पेश नहीं की थीं बल्कि जो कुछ भी शिकायतें सरकार को गईं वे सामूहिक रूप से नेताओं द्वारा ही की गई थीं अब सरकार ने शिकायतें दूर करने के बजाय यह आड़ ली कि लोग अलग-अलग व्यक्तिगत रूप से हमें लिखें तो हमारे यहाँ उन पर विचार किया जा सकता है। इसका उत्तर देते हुए तथा घोषणापत्र का उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

भला ऐसा भी कोई मूर्ख होगा जो इतनी बड़ी सुसंगठित सरकार से अलग अलग लड़कर सफलता की आशा करे? सरकार के पास इतनी सारी फौज है, बन्दूकें हैं, तोप हैं, फिर भी वह अपने सारे काम सुसंगठित रूप से करती है। प्रजा को सिर्फ रेवेन्यू डिपार्टमेंट से शिकायत है और उसी से उसने लड़ाई छेड़ी है! परन्तु सरकार ने तो इसके लिये जनता पर जुल्म करने के लिये न्याय विभाग को कलंकित किया, कृषि विभाग को भी न छोड़ा और आबकारी विभाग को तो प्रत्यक्ष अपना शस्त्र ही बना लिया। कितने ही मास्टरों को इस युद्ध में दिलचस्पी लेते देखकर उन्हें भी बदल दिया और इस तरह विद्या विभाग जैसे निर्दोष और पवित्र विभाग को अपवित्र कर दिया। पुलिस विभाग तो सब से आगे है ही इस तरह वह तो सुसंगठित रूप

से हर तरफ से लोगों पर जुल्म कर रही है और किसानों से कहती है कि तुम अकेले रहो।"

किसानों से मैं साफ कहूँगा कि जो तुम्हारे साथ जो विश्वास घात करे उसे तुम कभी भी माफ न करना। माफ न करने के मानी यह नहीं कि आप उसे मारो या पीटो। यह न करो। आप तो उसे यह कह दो कि हम सब को एक नाव में बैठकर जाना है। अगर किसी को नाव में सूराख़ करना है तो वह नाव से उतर जावें। हमारा उसका कोई सम्बन्ध नहीं। यह संगठन आत्म-रक्षा के लिये है, किसी को दुख देने के लिए नहीं। आत्म रक्षा के लिए भी सङ्गठन न करना तो आत्म-हत्या करने के सामान है। हम तो पौधों को भी जानवरों से बचाने के लिये बाढ़ वगैरा लगाकर सुरक्षित रखते हैं। जब इतनी बड़ी सरकार से लोहा लेना है तो अपना सङ्गठन भी हम न करें? किसान की रक्षा भी न करें? पर हमारी सरकार को बस यही तो खटकता है कि हम एक छोटा-सा युद्ध छेड़ कर सरकार से न्याय क्यों मांग रहे हैं?"

"सरकार कहती है, पहले लगान अदा करदो। देखो. चौर्यासी ताल्लुके ने लगान अदा कर दिया है। हम कहते हैं, अच्छा, दे दिये होंगे उसने पैसे! पर इसमे हमें क्या? और यह बताओ कि सरकार के कहने में आकर उसने लगान दे दिया तो सरकार ने उसके साथ क्या न्याय कर दिया? अगर पहिले लगान दे देने से आप इन्साफ करने का वादा करते हो तो अभी तक उसके साथ क्यों न्याय नहीं किया? पर सरकार को इन बातों की परवाह ही कहां है? उसे किसानों के बचनों की कीमत ही कहां है सरकार को न तो धारासभा के सभ्यों की ही परवाह है और न अपनी व्यवस्थापिका सभा [Executive Body] के भारतीय सदस्यों की ही परवाह है"

"सरकार कहती है जमीन लेने वाले हमें बहुत से मिल गये हैं, मिले होंगे। उन जमीन लेने वालों को यदि सामने आने की हिम्मत

हो तो आवें। नीलाम का माल रखने वाले या तो चपरासी और पुलिस के होंगे या वे खटीक जिन्होंने भैंसों को रख लिया है। भला इसमें सरकार की कौन इज्जत है!"

"कहा जाता है कि बहुत से लोग चुपचाप आकर लगान दे जाते हैं, अगर देते हैं तो ले लिया करो न? पर आप यह नहीं बता सकते कि वे कौन हैं? क्या वे नहीं चाहते कि उनके नाम प्रकट हो जायँ? यह डर क्यों? शान्त निःशस्त्र जनता से डरना चाहिए या तोप बन्दूक वाली सरकार से? पर यह सब झक मारना है। सरकार अब जुल्म करते करते शायद थक गई और उसे मालूम होता है कि अब उसकी दाल नहीं गल सकती। फिर भी जब तक उसे विश्वास नहीं हो जाता कि बारडोली के लोग सब तरह का जुल्म सहने के लिए तैयार हैं, यहाँ कोई उपद्रव मचाने वाला नहीं है और इसलिये तोप बन्दूक चलाने का उसे मौका नहीं मिल सकता, तब तक वह भले ही जितना चाहे जुल्म करती रहे। बारडोली की प्रजा उसे शांतिपूर्वक सहती जायगी। अन्त में सरकार की आंखें खुलेंगी और उसे मालूम हो जायगा कि ऐसे लोगों पर जुल्म करना तो साक्षात ईश्वर का विरोध करना है। जिसने सत्य का आश्रय ग्रहण किया है उसकी ईश्वर जरूर सहायता करता है।".

जून के महीने मे सेठ जमनालाल बजाज व श्री शंकरलाल बैंकर भी बारडोली पहुंचे। सेठजी बारडोली में लगभग १ सप्ताह रहे और उन्होंने ताल्लुके के मुख्य-मुख्य स्थानों को घूम-घूम कर देखा। इसके बाद एक सभा मे भाषण देते हुए उन्होंने कहा—

"इस देश में सत्याग्रह के अनेक आन्दोलन मैंने देखे पर यह युद्ध सबसे अलग प्रकार का है मेरा तो खयाल है कि यदि कोई अंग्रेज भी इस युद्ध का अध्ययन करनेके लिये निकले तो उसकी भी सहानुभूति लड़ने वाली प्रजा की ओर ही होगी।"

डाक्टर सत्यपाल तथा सरदार मङ्गलसिंह भी बारडोली आये थे। दोनों किसानों की बहादुरी, धीरज, शान्ति तथा संगठन को देखकर दङ्ग रह गये। पंजाब ने सरदार पटेल से कई बार स्वयंसेवक भेजने की इजाजत मांगी पर पटेल साहब ने सहायता प्राप्त करने से सधन्यवाद इन्कार कर दिया।

महाराष्ट्र के धारासभाई मि० जोशी और पारसकर भी बारडोली के गाँव-गाँव घूमे और जाते वक्त कहते गये कि "हम तो हँसी उड़ाने आये थे पर अब भक्त बनकर जारहे हैं।"

जब डिप्टी कलक्टर ने लगान वसूली के सिलसिले में सरकारी कर्मचारियों पर सख्ती करना आरम्भ किया तो पठान भी थकने लगे और पटवारियों ने भी थक और परेशान होकर नौकरियों से इस्तीफे देने आरम्भ कर दिये। ११ जून तक ६० पटेल और ८ तलाटियों ने अपने इस्तीफे पेश कर दिये। यह खयाल रखने की बात है कि इनमें से कई तो सरकार के बहुत ही पुराने सेवक थे।

पटेलों ने अपने इस्तीफे में प्रधानतया जो बातें लिखी थीं, उनका सार नीचे के एक इस्तीफे में इस प्रकार दिया गया है—

"लगान वसूल करने के लिये सरकार इन दिनों जिन उपायों का अवलम्बन कर रही है, जब्ती की गई भैंसों पर जिस तरह की मार पड़ती है और इन पिछले एक दो महीने में लोग जिस तरह का भय और सङ्कटमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसे मैं देख रहा हूँ। मेरा खयाल था कि अन्त में सरकार प्रजा के साथ इन्साफ करेगी। पर अब तो सरकार ने एक नयी घोषणा प्रकाशित करके किसानों को बरबाद करने वाली नीति इख्तयार करना आरम्भ कर दिया है। फिर इस घोषणा में पठानों को नमूनेदार चाल चलन वाला बताया है। सरकार की इस नीति से लोगों को जो कष्ट होगा, उसका विचार आते ही मेरा हृदय काँप जाता है। ऐसे कष्ट का साथी और साधन

बनने के बजाय तो अपनी नौकरी का इस्तीफा पेश कर देना ही मुझे बेहतर मालूम होता है।"

अब पटवारियों का भी रोना सुनिये—

मेहरबान डि० डि० कलक्टर साहब,

उत्तर विभाग, सूरत

"नम्रता पूर्वक बन्दे के बाद विदित हो कि मैं सरभण का तलाटी हूँ। हाल में लगान वसूल करने का काम ताल्लुके में होरहा है। पर आज सारे ताल्लुके की प्रजा बिगड़ गई है। सन् १६११ में मैं सर्विस में दाखिल हुआ, तब से अब तक एक से लगन के साथ मैं सरकार की सेवा करता आया हूँ। सन् १६२१ के उन दिनों में भी मैं सरकार के प्रति वफादार ही रहा। जब कि सारे देश में दूसरी तरह की हवा चल रही थी। बल्कि उस आन्दोलन को शान्त करने तथा समय-समय पर सरकार को महत्वपूर्ण खबरें पहुँचाने में मैंने कभी गफलत नहीं की। इस साल बढ़ा हुआ लगान न भरने की झंझट शुरू हुई तब भी मैं नेताओं के भाषणों के समाचार तथा रिपोर्ट समय-समय पर पेश करता रहा हूँ।"

"लगान भरने की मियाद खत्म होजाने पर भी जब लोगों ने लगान जमा नहीं कराया, तो उन्हें दस दिन में लगान जमा करा देने के नोटिस दिये गये। पर जब इतने पर भी लगान नहीं आया तो जब्ती करने गये, पर लोगों ने अपने मकानों को ताले लगा दिये। मैंने इस बात की भी रिपोर्ट सरकार की सेवा में पेश करदी। अन्त में विशेष जब्ती आफीसरों की नियुक्ति हुई। पर जब्तियाँ न होसकीं। तब खालसा को नोटिसें जारी कीं। ढेड़ और वेठियाओं ने जब्ती का काम बन्द कर दिया। पटेलों ने हमारी सहायता करना बन्द कर दिया। तब खालसा के नोटिसें चिपकाने से लेकर डुग्गी पीटने और ढेड़ तथा बेठियाओं की तरह सर पर बस्ता लेकर भी हमें घूमना पड़ा। इस तरह जब हम जब्ती करने जाते तब गाँव के लड़के हमें

"'पागल कुत्ता" कह-कह कर चिढ़ाने लगे और हमारी मखौल उड़ाने लगे।"

"जब्ती अधिकारी जब जब्ती करने जाते तब उनके लिये खाना पकाने का काम भी हमीं को करना पड़ा। यद्यपि यह कार्य ब्राह्मणों के लिये लज्जास्पद समझा जाता है। तथापि पेट के खातिर वह भी करना पड़ा और जाति में हमने अपनी प्रतिष्ठा खोई। आसपास के गांवों का चार्ज भी मेरे ही जिम्मे होने के कारण वहां जाकर जब्ती के काम में भी अधिकारियों की सहायता की। चूंकि मैं इंचार्ज था, वहां के खातेदारों को भी नहीं पहिचानता था, फिर भी खुफिया तौर से खातेदारों के नामों का पता लगा-लगा कर मैंने जब्ती-अधिकारियों की सहायता की है। सरकार के प्रति नमक-हलाल बने रहने की खातिर मैं सदा जब्ती-आफीसरों की आज्ञाओं को सिर-आंखों पर रखता था। रात को सरकारी मकानों में ठहर कर, दिन-रात एक करके, खालसा की नोटिसें जारी की और काम को निबटाया। पर इतने परिश्रम और निष्ठापूर्वक नौकरी करने पर भी सरकार के यहां उसकी कोई कद्र नहीं।"

"जब्ती किये गये निरपराध और भूखे जानवरों पर इतनी सख्त मार पड़ती है कि उनके शरीर से खून बहने लग जाता है, वे जमीन पर गिर पड़ते हैं और तड़पते-चिल्लाते हैं। यह सब देखकर मेरा हृदय कांपता है, आत्मा भीतर से काटती है। यह अब मुझसे नहीं देखा जाता।"

फिर इस समय तलाटी की स्थिति सरकार और लोग दोनों के बीच बड़ी विचित्र है। एक छोटा-सा बच्चा भी आज हमारी खिल्ली उड़ाता है। सरकार और लोग दोनों हमें सन्देह की नजर से देखते हैं। लोगों को बुलाते हैं तो वे आते नहीं। इस हालत में मेरे लिए काम करना असम्भव हो रहा है। तलाटी बिना रौब के कोई काम नहीं

कर सकता, पर उसके रौब का नाम भी नहीं रहा। अब तो लोगों की नजर में तलाटी कुत्ते से भी गया-बीता समझा जाने लग गया है।"

"१७ वर्षों से सरकार की सेवा करता हूँ। अब मेरी उम्र ३६ वर्ष की है। तथापि उपर्युक्त कारणों से अब हृदय सरकारी नौकरी करने पर तैयार नहीं होता। ये सब बातें अब हृदय से सही नहीं जातीं। फिर अब सरकारी नौकरी में न तो प्रतिष्ठा है और न सरकार हमारी नौकरी की कद्र ही करती है। इन हालतों में तो इस्तीफा ही पेश कर देना उचित है। मेरी प्रार्थना है कि सरकार इसे स्वीकार कर ले!"

जिन कर्मचारियों के बल पर सरकार इतने जुल्म कर रही थी वे ही सरकार के स्तम्भ अब सरकारी दमन व अत्याचारों के कारण एक के बाद एक करके खिसकने लगे।

१२ जून को सारे देश में बारडोली-दिवस मनाया गया। सभाओं द्वारा जनता को बारडोली-सत्याग्रह का रहस्य समझाया गया तथा सरकार की निन्दा के प्रस्ताव भी पास किये गये।

१२ जून तक ३६१२ खालसा नोटिसें जारी की जा चुकी थीं।

इधर तो युद्ध जोरों पर था और दूसरी ओर समझौते की चेष्टाएं भी जारी थीं। मई माह में दीवान बहादुर हरिलाल देसाई ने सरकार को समझाने की चेष्टा की। सरकार का यह कहना था कि किसान पहिले लगान अदा कर दें, फिर सरकार जांच करने के लिये राजी हो सकती है। सरकार झुकने को तैयार नहीं थी, फिर भी हरिलाल देसाई ने उपरोक्त आशय का पत्र सरदार पटेल को लिखा—

महाबलेश्वर वैली व्यू
२५ मई १९२८

प्रिय वल्लभभाई,

मैं अपना तुरुप फेंक चुका और मालूम होता है वह बेकार

न गया। यदि सोमवार को आपको मेरा तार मिले तो आप यहाँ आने के लिये तैयार रहें। अगर सरकार को इस बात के लिये राजी किया जा सके कि लोगों के लगान पहिले अदा कर देने पर वह एक निष्पक्ष अधिकारी द्वारा इस बन्दोबस्त की जांच करे, तो क्या लोग अपना लगान विरोध न प्रकट करते हुए अदा कर देंगे ? हां, यह तो हमारी छोटी से छोटी शर्त होगी। मैं इस बात के लिये कोशिश कर रहा हूँ कि खालसा या बेची हुई जमीनें भी किसानों को लौटा दी जायँ। मैं अपनी तरफ से तो कोशिश करूँगा ही। पर यदि आपको उपर्युक्त शर्त स्वीकार हो तो तार द्वारा अपनी स्वीकृति भेजियेगा और पृथक रूप से पत्र में भी अपने विचार लिख भेजियेगा। बहुत खीच न कीजिये। दूर सही, पर मैं आपके साथ ही हूँ।

आपका स्नेहाधीन—
हरिलाल देसाई।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने उपरोक्त पत्र का उत्तर तार द्वारा देते हुए लिखा था—

तार

"पत्र मिला। बढ़ाया हुआ लगान जाँच के पहिले देना असम्भव। यदि स्वतन्त्र जाँच की माँग मंजूर हो; उसमें सुबूत पेश करने, सरकारी गवाहों से जिरह करने, खालसा जमीनें लौटाने और सत्याग्रही कैदियों को छोड़ने की शर्त मंजूर हो तो पुराना लगान दिया जा सकता है। लोग निष्पक्ष पंच का फैसला ही स्वीकार करेंगे। उत्तर बारडोली के पते पर।"

वल्लभभाई, नवसारी।

पत्र

बारडोली
२८ मई १९२८

प्रिय हरिलाल देसाई,

नवसारी से भेजा तार मिला ही होगा। उसकी एक और नकल भेजता हूँ। आप तो जानते ही हैं कि हमारी कार्यशैली और सेवा करने का तरीका एक दूसरे के विरोधी हैं, इसलिये जो मेरे लिये मामूली से मामूली शर्त होगी, शायद आपकी नजर में बहुत ही अधिक समझी जाय। यह जांच किस काम की, जिसके पहिले बढ़ाया हुआ लगान अदा कर देना जरूरी हो। अगर किसानों के विपक्ष में फैसला हुआ और लोगों की तरफ से लगान अदा करने में देरी हुई तो सरकार के पास तो इसे वसूल करने के काफी साधन हैं। कृपया नोट कर लीजिये कि जाँच-समिति में किन-किन बातों पर विचार हो, यह भी दोनों पक्षों को ही मिलकर तय करना होगा। मनमानी शर्तें रखने से काम न चलेगा।

जनता के प्रत्येक स्वाभिमानी प्रतिनिधि का यह कर्तव्य है कि वह सत्याग्रही कैदियों को छोड़ने तथा जमीनों को लौटाने पर भी, खासकर जबकि वे गैर कानूनी ढंग से खालसा कर ली गई हैं, जोर दे।

अन्त में मैं आपसे यही कहूँगा कि यदि आप इस मामले में जोर नहीं दे सकते अथवा लोगों की शक्ति को आप अनुभव नहीं कर सकते, जैसा कि मैं कर रहा हूँ, तो आपके मौन से इस मामले की अधिक सेवा होगी।

यद्यपि मैं किसी भी सम्माननीय समझौते के लिये दरवाजा बन्द नहीं करना चाहता, तथापि बिना ऐसे समझौते के अथाव लोगों की कठोर परीक्षा करने के पहिले मुझे इस युद्ध को बन्द करने की कोई जल्दी भी नहीं है। मेरे नजदीक एक अपमानजनक समझौते के बजाय वीर-पराजय का मूल्य कहीं अधिक है। अब शायद आप समझ गये होंगे कि मुझे पूना अथवा महाबलेश्वर की दौड़-धूप करने की कोई उतावली नहीं है। इसलिये जब तक कि आप वहां मेरी उप-

स्थिति को अनिवार्य न समझें, मुझे बुलाने का कष्ट न कीजियेगा।

आपका—
वल्लभभाई।

दूसरी ओर धारासभा के सभ्य श्री कन्हैयालाल मुंशी बारडोली में आकर किसानों की वास्तविक हालत को आंखों देखकर सीधे बम्बई गये और गवर्नर को उन्होंने कई खानगी मर्मस्पर्शी पत्र लिखे। इधर उनकी गवर्नर से लिखा-पढ़ी चल रही थी, उधर उन्होंने अत्याचारों की जांच के लिये निम्नलिखित सदस्यों की एक कमेटी बनाई—

सभापति—श्री कन्हैयालाल मुंशी।
सदस्य—१—रायबहादुर श्री भीमभाई नाइक।
२—श्री शिवदासानी।
३—डाक्टर गिल्डर।
४—श्री चन्द्र चूड़।
५—श्री हुसैनभाई लालजी।
मंत्री—श्री बी० जी० खेर।

इधर अत्याचारों की जाँच के लिये एक कमेटी का निर्माण हुआ, किन्तु इसी बीच श्री मुंशी को उत्तर देते हुए गवर्नर ने अपने एक पत्र में उन्हें लिखा कि—"सत्याग्रह के शस्त्र द्वारा सरकार को झुका कर मजबूर करने का निश्चित रूप से प्रयत्न किया जारहा है। मुझे निश्चित रूप से यकीन हो गया है कि कोई भी जांच अधिक बातों को प्रकट नहीं कर सकती। इस मामले में मैंने स्वयं तहकीकात करके देख लिया है। बात यह है कि रेवेन्यू मेंबर मि० रियू आजकल छुट्टी पर गये हुए हैं और उनके स्थान पर मि० हैवी काम कर रहे हैं, वे बड़े अनुभवी व्यक्ति हैं। उनका चित्त इस समय निष्पक्ष भी है। उन्होंने सारे कागजात निष्पक्ष हृदय से देखे और वे इसी नतीजे पर पहुँचे हैं

कि सरकार द्वारा बढ़ाया हुआ लगान बहुत ही कम है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सरकार का एक भी ऐसा सभ्य नहीं है जिसको लगान-वृद्धि की न्याय्यता के, बल्कि उदारता के विषय में सन्तोष न हो। अगर लगान की जाँच के लिये कोई समिति बनाई जायगी तो वह तो इससे भी अधिक लगान की सिफारिश करेगी।"

गवर्नर का यह रुख देखकर श्री मुंशी ने उन्हें अन्तिम पत्रों में साफ-साफ लिख दिया कि—"यदि सरकार ने अपनी नीति नहीं बदली तो या तो बारडोली के वर्तमान काश्तकारों के हाथों से जमीनें निकल जायँगी या फिर बारडोली में खून-खच्चर होकर रहेगा। यदि सरकार को यह विश्वास है कि लगान-वृद्धि उदारतापूर्ण है तो लोगों को क्यों न बता दिया जाय कि वह उदारतापूर्ण ही है। उसे यह कुबूल करने का मौका क्यों न दिया जाय ?"

जिस प्रकार मुंशी ने गवर्नर को अपने अन्तिम पत्र में अन्तिम चेतावनी दी थी उसी प्रकार गवर्नर ने भी पत्र-व्यवहार को बन्द करने के लिये साम्राज्यवादी ढंग का ऐसा उत्तर दिया कि उसके बाद दोनों को लिखने की कोई जरूरत ही नहीं रह गई। गवर्नर ने लिखा—

"सरकार किसी स्वतन्त्र जांच-समिति को अपना निश्चित अधिकार कैसे सौंप दे। मैं इस परिस्थिति को सुधारने के लिये वह सब कुछ करने को तैयार हूँ जो मुझसे हो सकता है। पर कोई भी सरकार अपना काम खानगी व्यक्तियों को अर्पण नहीं कर सकती। और कोई सरकार जो ऐसा करेगी वह इस नाम के योग्य नहीं समझी जायगी।"

महात्मा गान्धी तक को इसका उत्तर देते हुए लिखना पड़ा कि—"शासन करने के उस निश्चित अधिकार के मानी हैं प्रजा को तब तक चूसने का अनियन्त्रित परवाना, जब तक कि वह भूखों नहीं

मर जाती ! अगर कहीं जनता और शासक संस्था के बीच होने वाले मतभेद की निष्पक्ष जाँच के लिये एक निष्पक्ष स्वतन्त्र जाँच-कमेटी की नियुक्ति हो जाय तो इस परवाने की अनियन्त्रितता में बाधा न पड़ जाय। पर यह स्मरण रहे कि स्वतन्त्र कमेटी के माने यह नहीं कि उस सरकार से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। उसके मानी तो सरकार द्वारा नियुक्त ऐसी कमेटी से है जिसमें स्वतन्त्र निर्णय रखने वाले सदस्य हों, जिन पर किसी प्रकार का सरकारी दबाव न हो। जो खुले आम जाँच कर सकें और जिसमें दुखी लोगों का पूर्ण और सक्रिय प्रतिनिधित्व हो। पर ऐसी कमेटी के तो मानी हैं सरकार की निरंकुश, गुप्त लगान-नीति की मृत्यु का घण्टा ! लोगों की इस विनम्र मांग में "सरकार के कर्तव्यों को कहीं छीना जा रहा है ?" पर ऐग्जीक्यूटिव अधिकारियों के निरंकुश व्यवहारों पर कहीं जरा सा भी नियन्त्रण आ जाता है तो सरकार के रोष का ठिकाना नहीं रहता। और जब ब्रिटिश शेर ब्रिटिश भारत में बिगड़ता है तब तो बिचारे गरीब हिन्दू की भगवान् ही रक्षा करें। हां, भगवान तो असहाय की रक्षा करते ही हैं, पर वे तभी रक्षा करते हैं जब मनुष्य बिलकुल ही असहाय हो जाता है। भारत की जनता को सत्याग्रह क्या मिला, एक अमोघ गांडीव हाथ लग गया है। उसके स्फूर्तिप्रद प्रभाव से लोग युगों की तन्द्रा से जागने लगे हैं। भारत के किसान दिखा रहे हैं कि वे यद्यपि कमजोर तो हैं पर उनमें अपने विश्वासों और मतों के लिये कष्ट सहने की शक्ति और धीरज है।"

इस पत्र के पढ़ने के बाद कन्हैयालाल मुंशी पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने फौरन ही अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उनके बाद ही श्री जयरामदास दौलतराम तथा श्री जिनशाला ने भी इस्तीफे दे दिये। इस प्रकार बम्बई धारासभा के १६ सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये, जिनमें रायबहादुर दादूभाई देसाई, रायबहादुर भीमभाई नाइक, शिवदासानी, श्री नरीमैन, श्री जयरामदास दौलतराम, श्री अमृतलाल सेठ

आदि मुख्य हैं।

श्री कन्हैयालाल मुंशी ने बारडोली में भाषण देते हुए कहा—

"मुझसे एक मित्र ने पूछा कि क्या गुजरात में वल्लभभाई का राज है जो उनके कहने से आप इस्तीफा देरहे हैं? मैंने कहा—वहाँ वल्लभभाई का नहीं किसानों का राज है। वह गुजराती नहीं जो उनकी बात नहीं मानता। उसे गुजरात के गौरव का अभिमान नहीं।"

ता० २७ जून को भारत सेवक संघ—Servants of India Society—के प्रतिष्ठित सदस्य पं० हृदयनाथ कुंजरू, श्री वझे तथा अमृतलाल ठाकुर सेठ जमनालाल जी के साथ बारडोली का दौरा करने गये। उन्होंने जनता की वास्तविक स्थिति का गहरा अध्ययन किया और वहां से लौटने बाद अपनी जांच-रिपोर्ट शीघ्र ही प्रकाशित कर दी। इस निष्पक्ष रिपोर्ट में तीनों सभ्यों ने किसानों की निष्पक्ष जांच वाली मांग का जोरों से समर्थन करते हुए कहा—

"हमने ताल्लुके में कई मौजों में घूम-घूम कर जांच की और पाया कि उन मौजों में असिस्टेण्ट सेटलमेण्ट आफीसर भी घूमे तो थे पर उनमें से किसी भी स्थान पर उक्त अधिकारी ने किसानों से कोई तहकीकात नहीं की, जिनसे कि इस बात का प्रत्यक्ष हित-सम्बन्ध था। जमीन के मुनाफे तथा काश्त की हुई जमीनों के अङ्क तो तलाटियों से ही तैयार कराये गये थे। उन्हें बिना छानबीन किये सेटलमेण्ट आफीसर ने ज्यों का त्यों मान लिया। स्पष्ट ही सेटलमेण्ट आफीसर ने काश्त जमीन के बहुत थोड़े हिस्से के मुनाफे के अङ्क एकत्रित किये थे। और जांच उन अङ्कों की भी नहीं की गई। सेटलमेण्ट आफीसर ने अपना सारा दारोमदार १९१८ से १९२५ तक के अङ्कों पर रखा है। पर ये वर्ष तो अजहद मँहगाई के थे। क्योंकि महायुद्ध के कारण तमाम चीजों के भाव आस्मान पर जा पहुँचे थे। अतः वे असाधारण

वर्ष कहे जाते हैं, जिनको लगान का विचार करते समय वास्तव में नहीं गिनना चाहिये। जमीन के किराये के अङ्कों के आधार पर जमाबन्दी करना, बम्बई सरकार चाहे इसे पसन्द करती हो या न भी करती हो, सेटलमेण्ट मैन्युअल के नियमों की मंशा और शब्दों के खिलाफ है। किराये पर तो बहुत ही थोड़ी जमीन दी जाती है, शेष तो किसान स्वयं काश्त करते हैं। अतः उस थोड़ी-सी जमीन के आधार पर ताल्लुके की जमीनों के लगान में वृद्धि करना नितान्त अनुचित है। अतः न्याय को देखते हुए बारडोली के इस लगान-वृद्धि के मामले की पुनः जांच होना निहायत जरूरी है। फिर जब सरकार वीरमगाँव ताल्लुके की जमाबन्दी पर पुनर्विचार करने का निश्चय कर चुकी है, तब तो बारडोली के किसानों की मांग का इन्कार करने के लिये उसके पास कोई कारण ही नहीं है।"

भारत सेवक संघ ने इस रिपोर्ट को यथासमय प्रकाशित करके बारडोली की बड़ी सेवा की। अब तो देश के उदार माने जाने वाले दलों में भी खलबली पैदा हो गई। सर अब्दुलरहीम, सी० वाई० चिन्तामणि, सर अलीइमाम जैसे उदार दली और सरकार के प्रशंसकों ने भी पत्रों में सरकार की दमन-नीति की भर्त्सना की और बारडोली के किसानों के प्रति न्याय करने के लिये सरकार से जोरदार प्रार्थना भी की। पर सरकार को अपने पठानी-राज्य पर गर्व था और उसे अपने किये पर जरा भी शरम नहीं थी। यहाँ तक कि श्री कन्हैयालाल मुंशी की जांच-कमेटी ने अपनी जाँच के लिये सरकार से सहयोग चाहा तो उन्हें सूखा जवाब दे दिया गया। मुंशी-जांच-कमेटी का सार इस प्रकार है—

"कमेटी ने अपनी बीस बैठकों में २०० गवाहों से सुबूत एकत्रित किये। जिन लोगों को कैद या अन्य प्रकार की सजाएँ हुई थीं, उनके अदालती फैसले भी कमेटी ने पढ़ लिये हैं और उनके आधार

पर ही यह रिपोर्ट तैयार की गई है।"

"यह स्मरण रहे कि सरकार का इस कमेटी से अथवा इसकी जांच से कोई सम्बन्ध नहीं था, इसलिये इसके निर्णय इकतरफा हैं।

"अच्छी तरह जांच करने के बाद कमेटी नीचे लिखे निर्णयों पर पहुँची है—

"खालसा नोटिस कानून के अनुसार नहीं बनाये गये थे और न चिपकाये गये थे। यह सिद्ध करने के लिये कमेटी के पास काफी सुबूत हैं कि जो नोटिस जारी किये गये थे वे नियम के विरुद्ध थे। उनमें से अधिकांश गलत जगहों पर लगाये गये थे और कई उनमें निर्दिष्ट तारीख के बहुत समय बाद।"

"जो जमीनें खालसा की गईं उनका न नीतिक दृष्टि से समर्थन किया जा सकता है न शासन की दृष्टि से ही। कई ऐसे उदाहरण हैं जिनमें आवश्यकता से कहीं अधिक कीमत की स्थावर सम्पत्ति खालसा कर ली गई है। कार्यवाहक (Executive) विभाग को जमीनों का फैसला करने के लिये बहुत सख्त अधिकार दे दिये गये थे। ३० लाख रुपये की कीमत की जमीनें कुल ११ हजार रुपये में बेच दी गई थीं। जब्तियां और जंगम सम्पत्ति के नीलाम जिस तरह हुए थे, गैर कानूनी थे। दरवाजे तोड़कर मकानों के अन्दर घुसने की तो रेवेन्यू अधिकारियों ने अपनी मामूली नीति बना ली थी। जिन लोगों के पास कोई जमीन नहीं थी और फलतः जिन्हें कोई लगान नहीं देना था, उनकी भी सम्पत्ति जब्त और नीलाम कर दी गई है। नीलाम में सरकारी अधिकारी, पुलिस और रेवेन्यू विभाग के चपरासियों तक को बोली लगाने और नीलाम की चीजें खरीदने दिया जाता था, प्रायः तमाम नीलामों में ये चीजें बेहद कम कीमत में बेची गई हैं।"

"नीलाम के लिये पकड़े गये बहुत से जानवरों को बहुत ही बेरहमी से पीटा गया। उन्हें घास या पानी भी ठीक तरह नहीं दिया

गया। पठानों की नियुक्ति का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। उनका व्यवहार अत्यन्त ही लज्जाजनक था और एक घटना तो ऐसी भी हुई जिसमें एक स्त्री के सतीत्व पर आक्रमण भी किया गया था।"

"सत्याग्रही कार्यकर्ताओं का दमन करने तथा बारडोली के आन्दोलन को बिगाड़ने के लिये सरकार ने फौजदारी कानून का उपयोग करने में अत्यन्त गैर कानूनी और द्वेषपूर्ण उपायों का सहारा लिया। एक मातहत रेवेन्यू अफसर को मुकदमों की निगरानी करने और उनका फैसला देने के मजिस्ट्रेटी अधिकार देकर सरकार ने बहुत ही अनुचित काम किया। सरकार जिन मामलों में मुद्दई थी, उनमें उसने ठीक-ठीक सुबूत तक नहीं लिये। अपराधी बताये गये लोगों को पहिचानने का तरीका विश्वसनीय नहीं था। जिस सुबूत पर सत्याग्रहियों को सजाएँ दी गईं वह इकतरफा और अविश्वासनीय था। जिन अभियोगों पर सजाएँ दी गई थीं वे तुच्छ और केवल नाममात्र के थे।"

"बारडोली जैसी परिस्थिति फिर कहीं पैदा न हो इसलिये कमेटी निम्नलिखित सूचनाएँ पेश करती है—

१—जमीन की लगान-नीति को बिलकुल ही बदल देना चाहिये।

२—सरकार और किसानों के बीच के सम्बन्धों को निश्चित शब्दों में प्रकट कर देना चाहिये।

३—पश्चिम के सुधरे हुए देशों में लगान निश्चित या कायम करने या बढ़ाने के जो नियम हैं, भारत में भी वही अथवा उन्हीं के समान नियम हो जाने चाहियें।

४—यदि लगान-वृद्धि असन्तोषप्रद हो तो दीवानी अदालतों में न्याय प्राप्त करने की सुविधा होनी चाहिये।

५—सरकार के कार्यवाहक विभाग (Executive Dept.) को नियम बनाने व निर्णय (Resolution) करने का जो अधिकार है वह उसके हाथसे निकाल लिया जाय और कानूनमें ऐसे नियमों का समावेश किया जाय, जिससे किसानों की स्वतन्त्रता और अधिकार सुरक्षित रहें।

उपरोक्त दोनों कोशिशों के सिवाय बंबईका इंडियन चेंबर्स आफ कामर्स भी कोशिश कररहा था। जून महीनेमें सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास कमिश्नरसे मिले। उन्होंने यह भी चेष्टा की कि यदि सरदार पटेल भी आजायँ तो दोनों के बीच खानगी बातचीत भी हो जाय। पर सरदार पटेल उन दिनों इतने कार्यव्यस्त थे कि वे बारडोली से हिल भी नहीं सकते थे। फिर भी उन्होंने अपनी तरफ से श्री महादेवभाई देसाई को सूरत भेज दिया। देशाई जी की मि० स्मार्ट से खूब बातें हुईं इन बातों से यही समझ में आया कि सरकार सत्याग्रह को हर तरह खत्म कर देने पर ही तुली हुई है। स्मार्ट का विश्वास था कि तीन चौथाई किसान जून के उतरते-उतरते आत्म-समर्पण कर देंगे। सर पुरुषोत्तमदास ने स्मार्ट को बताया कि—"आपका यह विश्वास गलत है, आपको सत्याग्रहियों की सहनशक्ति का रत्ती भर भी पता नहीं है। जब्ती अफसरों तथा पठानों के व्यवहार ने सरकार को काफी बदनाम कर दिया है।"—आखिर को सरकार के प्रति नाराजगी जाहिर करने के लिये चेम्बर्स ने अपने प्रतिनिधि लालजी नारणजी को धारासभा से हटा लिया और सरकार का वास्तविक रुख जानने के लिये चेम्बर्स के अध्यक्ष मि० मोदी ने सरकार से पत्रव्यवहार जारी किया। गवर्नर ने मोदी को जो उत्तर दिये उनमे मुंशी को दिये गये उत्तरों से ज्यादा अभिमान टपकता था। अन्त में मि० मोदी एक शिष्टमण्डल लेकर गवर्नर से मिलने गये, पर इसके पहिले उन्होंने साबरमती आश्रम में गान्धी जी से मिलना और आवश्यकता हो तो

वहीं सरदार पटेल को भी बुलवा लेना उचित समझा। महात्मा जी से मुलाकात करके वे सीधे मि० मोदी व लालजी नारणजी को लेकर गवर्नर से मिले। गवर्नर पूना में थे, उनसे मिलकर सर पुरुषोत्तमदास को बेहद निराशा हुई। पुरुषोत्तमदास की इच्छा थी कि गवर्नर सरदार पटेल को एक राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस में बुलावें और आपस में समझौता कर लें। भला यह बात गवर्नर कहीं स्वीकार कर सकता था? गुलामों को खुद बुलाकर उनसे समझौता करना? यह बात तो उनके लिये जहर खा लेने जैसी थी। गवर्नर ने यह बात नामंजूर कर दी। आखिर पुरुषोतमदास खानगी तौर पर ही गवर्नर से मिले। गवर्नर की यह शर्त थी कि सत्याग्रही पहिले बढ़ा हुआ लगान अदा कर दें या पुराना लगान जमा करा कर वृद्धि की रकम किसी तीसरे पक्ष के पास जमा करा दें, तब जाँच के सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। इस शर्त को लेकर पुरुषोत्तमदास पूना से बम्बई आये और वल्लभभाई से मिले। सरदार पटेल ने गवर्नर की शर्तें किसी भी तरह स्वीकार नहीं कीं। अन्त में लालजी नारणजी ने सरकार की हठ को अनुचित बताते हुए धारासभा से इस्तीफा दे दिया।

जुलाई में सत्याग्रह का समर्थन करने के लिये भड़ौंच में एक जिला परिषद् हुई। स्वागताध्यक्ष श्री कन्हैयालाल मुन्शी थे और अध्यक्ष श्री खुरशेद नरीमैन थे। नरीमैन ने अपने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए बताया कि—

"बीस साल पहिले का किसान अब नहीं रहा। बारडोली में अंग्रेजों को अब पूछता ही कौन है? उनकी अदालतों में कौन जाता है? उनके अधिकारी जोर-जुल्म से जबरदस्ती घसीट कर ले जायँ तो बात दूसरी है। नहीं तो वहाँ तो अब कौए उड़ते हैं। लोगों की सच्ची न्याय सभा तो, स्वराज्य आश्रम है और उनकी सरकार है सरदार वल्लभभाई। पर वल्लभभाई के पास बन्दूकें थोड़े ही हैं। वह

तो आज सिर्फ प्रेम और सत्य के बल पर बारडोली में राज्य कर रहे हैं। अब तो सारे गुजरात को बारडोली बन जाना चाहिये और जब सारे भारत में यह भावना फैल जायेगी तो स्वराज्य स्वयं दरवाजा खटखटाता हुआ नजदीक आजायेगा।"

बारडोली के प्रति ज्यों-ज्यों लोकमत शक्तिशाली होता गया त्यों-त्यों सरकार की स्थिति नाजुक होती चली गई। यदि वह दमन करे तो उसकी बदनामी होती है क्योंकि किसान तो अहिंसक थे। यदि मांग के सामने सिर झुकाती है तो उसकी सार्वभौमता में बट्टा लगता है। यदि सरकार झुक कर समझौता करले तो उसका सारा आतंक, प्रभाव और प्रतिष्ठा ही खत्म हो जाती है। सवाल केवल बारडोली का ही नहीं था। कोई भी ताल्लुका यदि बारडोली का अनुकरण करने लगे तो सरकार की तो फजीहत हो जाय। सरकार ने जितने भी उपाय काम में लाये जा सकते थे, सभी का डटकर और दिल खोलकर प्रयोग कर लिया था और सभी में सरकार के पल्ले असफलता ही पड़ी थी। ऐसे समय सरकार का देश भर में यदि कोई समर्थक था, तो वह केवल टाइम्स ऑफ इण्डिया-पत्र। सत्याग्रह के दिनों में वह सरकारी पक्ष के समर्थन में हमेशा ही, कमर कसकर तैयार रहा। इस कार्य द्वारा टाइम्स बदनाम भी बहुत हुआ पर वह सरकार का आदि से अंत तक ही पक्षपाती रहा। यही तक नहीं बीच-बीच में वह सरकार को नवीन रास्ते भी सुझाता रहा। उसकी बिक्री बढ़ने का कारण यही था कि वह जिन टिप्पणियों में विचार प्रकट करता था, आम जनता व नेता उन विचारों में शिमला, बम्बई, दिल्ली आदि की प्रतिध्वनि पाते रहते थे। इस पत्र का एक विशेष सम्वाददाता बारडोली में ही रहता था। उसने बारडोली पर तीन सनसनीखेज लेख लिखे। इन लेखों के बाद संसार में खबर फैल गई कि "भारतवर्ष के बम्बई इलाके में बारडोली नाम का एक ताल्लुका है। वहाँ महात्मा गांधी ने बोलशेविज्म का प्रयोग आरंभ कर दिया है।

प्रयोग बहुत हद तक सफल भी हो गया है। वहाँ सरकार के सारे कल-पुर्जे बन्द हो गये हैं, गांधी के शिष्य पटेल का वहाँ बोल-बाला है। वही वहाँ का लेनिन है। स्त्रियों, पुरुषों और बालकों में एक नयी आग सुलग रही है और इस दावानल में राजभक्ति की अन्त्येष्टिक्रिया हो रही है। स्त्रियों में नवीन चैतन्य भर गया है। अपने नायक वल्लभभाई पटेल में वे असीम भक्ति रखती हैं, पटेल उनके गीतों का वीर बन रहा है। इन गीतों में राजद्रोह की भयंकर आग है। सुनते ही कान जल उठते हैं। यदि यही हाल रहा तो निःसन्देह यहाँ खून की नदियाँ बहने लगेंगी।"

आगे चलकर इसी लेख माला में यह भी लिखा था—

"सम्राट की सत्ता का जो अपमान कर रहा हो उसकी मरम्मत करने के लिये साम्राज्य की सारी शक्ति लगा दी जायेगी।"

इसके बाद ही खबर फैलने लगी कि सरकार की फौजें बारडोली भेजी जा रही हैं। वातावरण एकदम गरम और सनसनी पूर्ण हो गया। सरकार की ऐसी इच्छा देख कर देश के बड़े-बड़े नेता बारडोली के लिये अपनी सेवाएं अर्पित करने लगे। सरदार पटेल की गिरफ्तारी की अफवाहें भी खूब ही फैलने लगीं। अन्त में इस खबर को सुनकर गांधीजी को भी लिखने को वाध्य होना पड़ा कि जब मेरी सेवाओं की आवश्यकता हो मुझे बुलवा लेना। डाक्टर अन्सारी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरू व लाला लाजपतराय तक ने पटेल साहब को इसी आशय के पत्र भेजे। सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर ने तो पटेल साहब को सहानुभूति के लिये व्यक्तिगत सत्याग्रह तक छेड़ देने की सलाह दी। शिरोमणि अकाली दल ने तमाम पंजाब में इस आशय के पत्र भेजे कि जब जरूरत पड़े सत्याग्रही बारडोली जाने के लिये तैयार रहें।

अब सरकार ने संग्राम करने के ढंग में परिवर्तन किया। पठान बारडोली से हटा लिये गये और उनकी जगह सशस्त्र पुलिस

तैनात कर दी गई। मि० स्मार्ट भी समझौता न हो सकने के कारण अहमदाबाद चले गये। चौपायों की पिछले चार पांच महीने से देख भाल न हो सकने के कारण उनके शरीरों में कीड़े लग गये थे। भैंसों की चमड़ा लून के न रहने से अंग्रेजों की तरह सफेद हो गई थीं। बरसात के आरंभ होते ही चौपायों के दिल भी हरे होगये। किसानों ने अपनी बची हुई जमीनों पर हल चलाना आरम्भ कर दिया। कुमारी मणिबेन पटेल तथा मीठूबेन पेटिट वहीं कुटिया डाल कर रहने लगीं। सरकार की ओर से शिथिलता देख कर स्वयंसेवक रचनात्मक कार्यों में लग गये। सरभण आश्रम में गांव की सफाई, चरखा चलाना आदि कार्य आरंभ हो गये। इसी तरह बारडोली में भी कार्यारंभ हो गया। बाजीपुरा में शिक्षा कार्य आरंभ हुआ। भजन प्रार्थनाएँ, राष्ट्रीय गीत तथा राष्ट्रीय साहित्य का प्रचार तो हर जगह ही आरंभ हो गया। मीठूबेन पेटिट ने खादी का प्रचार आरंभ कर दिया।

सरकार ठण्डी तो थी पर उसे जनता को सताये विना चैन कहां था? दुर्भाग्य से इन्हीं दिनों आबकारी के ठेके खत्म हुए। नये वर्ष के लिये खजूर के पेड़ों के ठेके देने थे। गये वर्ष सरकार ने पारसियों को ठेके देकर जनता को खूब ही परेशान किया था, इसलिये इस साल सरदार पटेल ने आज्ञा प्रचारित करदी कि कोई भी आदमी नीलाम में बोली न लगाये और अपने खजूरों के पेड़ किसी को न दे। इस आज्ञा के प्रचारित होते ही आन्दोलन का रूप देश व्यापी हो गया। बाहर से दर्शकों के झुण्ड-के-झुण्ड बारडोली आने लगे। धन की कमी भी नहीं रही। १२ जुलाई तक ३ लाख रुपये के लगभग धन एकत्रित हो गया। साथ ही खालसा नोटिसों की तादाद भी ६००० तक पहुँच चुकी थी। जेल में एक स्वयंसेवक मगनलाल भाई (रानी-परज) चल बसा। जानवर भी बीमारी के कारण कितने ही मर गये। मुन्सी कमेटी की राय में जानवरों के मरने का मुख्य कारण उनका

लम्बे अरसे तक गन्दगी और अन्धेरे में रखना था। पशुओं की बीमारी और मौत की फेहरिस्त जून के अन्त तक इस प्रकार है—

कुल भैंसें	—१६६११	ये अङ्क बारडोली के कुल ८७ गांवों के हैं। सरकार ने कसाइयों के हाथ बेच कर जितने चौपायों को कटवाया उनसे कहीं अधिक भैंसों को अस्वच्छ और बन्द मकानों में घेर कर मार डाला।
बीमार भैंसें—	३८०१	
कुल बैल—	१३०६१	
बीमार बैल—	४२४	
जिनकी चमड़ी गलगई—	६६०	
"बेसामगा पड़या"—	६२	
चट्ठे और कीड़े पड़ गये—	२१५५	
बीमारियाँ—	१०१८	
कुल मृत्यु—	६३	

जुलाई के मध्य में बड़ी धारासभा के तीन सदस्यों—श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर, श्री जमनादास मेहता तथा श्री ब्रेलवी ने एक मैनिफेस्टो तैयार किया उसमें सरकार से कहा गया था कि वह अब बारडोली के मामले को अपने हाथों में ले क्योंकि इसने अब देश व्यापी रूप धारण कर लिया है। इधर यह मैनिफेस्टो प्रकाशित भी नहीं हो पाया था कि कुछ सुराग लग जाने से वायसराय ने एकाएक बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विलसन को शिमले में बुलवाया और गवर्नर भी एकाएक ही चले गये।

समझौते का प्रयास

गवर्नर के एकाएक शिमला चले जाने से लोगों ने कई अटकल लगाये पर पते की बात तो टाइम्स ही बता सकता था। उसने गवर्नर के शिमला रवाना होने के तीन कारण प्रकट किये—

१—बारडोली का सत्याग्रह धीरे-धीरे अखिल भारतीय रूप धारण करता जा रहा था क्योंकि दूसरे प्रान्तों से भी

बारडोली के अनुकरण की ध्वनियां सुनाई देने लगीं। अब सरकार को पूरा भय हो गया कि यदि इस आन्दोलन का शीघ्र निबटारा नहीं किया तो यह आग सारे देश में आच्छादित हो जायेगी।

२—गवर्नर इस झगड़े से परेशान हो चुके थे। वे इसका अन्त सरकार की शान रखते हुए कर देना चाहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि संसार उन्हें कहे कि सरकार किसानों के आगे झुक गयी। इसलिये शिमला जाते समय गवर्नर खुद कुछ ऐसे प्रस्ताव भी साथ लेते गये थे जिन पर वे वायसराय की स्वीकृति चाहते थे। यद्यपि उन प्रस्तावों के कार्यान्वित होने पर सरकार की प्रतिष्ठा में न्यूनता आने की तो संभावना निश्चित ही थी पर उसे सहकर भी वे उन प्रस्तावों को नेताओं के सामने रख देना चाहते थे।

३—यदि इतने पर भी नेता नहीं मानें तो आगे क्या करना चाहिये, यह सलाह वे वायसराय से लेना चाहते थे। यही उनके प्रवास का तीसरा कारण था।

यह समय बारडोली के युद्ध में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं बेहद नाजुक था। जब्ती, खालसा और सजाएँ दे दे कर सरकार थक गई थी, अब लोगों का ख्याल था कि सरकार फौजों से काम लेगी। गवर्नर के शिमला जाने की खबर सुनते ही वल्लभभाई ने जनता में निर्भयता का पाठ पढ़ाना आरंभ कर दिया। बारडोली सत्याग्रह का समर्थन करने के लिये जो अहमदाबाद जिला परिषद् हुई उसमें सरदार ने लोगों में जान फूंक देने वाला भाषण दिया था—

"मैंने तो सरकार के सामने केवल यही मांग रखी है कि इस मामले की पुनः जांच हो जाय। पर सरकार इस छोटी-सी बात से भी इंकार करती है और पांच लाख रुपये वसूल करने के लिये यहाँ पर फौज लाकर पचास लाख खर्च करने

की बात कर रही है। उसके पास वह गोरी फौज है न, जो बैठे-बैठे खा रही है, उसे ही बारडोली लाना चाहती है। पर गुजरात के किसान अब सब समझने लग गये हैं। मैं किसानों से कहता हूँ कि अब डरने की क्या जरूरत है? सरकार मराठे, मुसलमान, सिख, गुरखा आदि के १८-२० साल के लड़कों को पकड़ कर ले जाती है और छः महीने में ही उन्हें मरना और मारना दोनों सिखा देती है। तब क्या मै आपको छः महीने मे मरना भी न सिखा सकूंगा? हां, लड़को को यह सीख लेने दो, आखिर हमारी संतति जो सुधरेगी। जब तक हम मिथ्या डर नहीं छोड़ देंगे, हिन्दुस्तान का कभी भी भला नहीं हो सकता। आप बारडोली जावेंगे तो देखेंगे कि वहाँ के किसान तो मौत को जेबों में लिये घूमते हैं। बारडोली की स्त्रियों के विषय में तो टाइम्स ने लिखा ही है कि यदि कहीं गोलियां चलेंगी तो स्त्रियां सब के आगे रहेंगीं। इन बहिनो ने उस सम्वाददाता को पत्र लिखा है कि उस समय तू भी हमारे साथ तोपों के सामने खड़े रहने को आ जाना। अगर तुझमें इतनी हिम्मत न हो तो हम तुझे पहिनने को चूड़ियाँ और ओढ़ने को ओढ़नी दे देंगी।

परिषद् से वल्लभभाई रवाना होने ही वाले थे कि कमिश्नर मि० स्मार्ट के मारफत उन्हें गवर्नर का आमंत्रण मिला। सरकार ने इधर तो पटेल साहब को बुलवाया पर दूसरी तरफ किसानों में फूट डालने की क्रिया भी जारी थी। इधर सूरत के कलक्टर ने बारडोली के किसानों के नाम एक घोषणापत्र बारडोली में हर जगह चिपका दिया था। गवर्नर के सूरत आने का कारण स्पष्ट करते हुए उनसे कहा गया था कि वे १६ तारीख सोमवार को दिन के ग्यारह बजे से पहिले अपनी अर्जियां कलक्टर साहब के पास भेज दें। पर किसान

तो सरदार पटेल के सैनिक थे ! ८८००० जनता में से एक की भी अर्जी कलक्टर के पास नहीं पहुँची। गवर्नर की इच्छा का आदर भर करने के लिये पटेल साहब ने गवर्नर से मिलने का तै किया और और कमिश्नर को कह दिया कि गवर्नर से बातचीत करते समय निम्नलिखित व्यक्ति भी मेरे साथ रहेंगे—

१—श्री अब्बास तैय्यब जी
२—श्रीमती शारदाबेन सुमन्त मेहता
३—श्रीमती भक्ति लक्ष्मी गोपालदास देसाई
४—श्रीमती मीठू बेन पेटिट
५—श्री कल्याण जी विट्ठलभाई मेहता

सरदार पटेल ने इस सूची में ऐसे व्यक्तियों के नाम रखे थे जो शुरू से आखिर तक सत्याग्रह में साथ रहे थे और बारडोली में जिनके नाम आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से लिये जाते हैं। शिष्ट मण्डल में अब्बास तैय्यब जी बुजुर्ग और सम्माननीय नेता मुसलमानों के प्रतिनिधि स्वरूप थे। मीठू बेन पारसी समाज की प्रतिनिधि थीं। और यह भी साफ ही था कि इस सत्याग्रह में सब से अधिक वीरता महिलाओं ने ही दिखाई थी। इसलिये महिलाओं को अधिक संख्या में लेकर सरदार साहब ने उनकी वीरता का ही सम्मान किया था। इन साथियों को लेकर सरदार साहब सूरत के किले में गवर्नर साहब से मिलने गये। समस्त भारत की आंखे इस शिष्ठ-मण्डल की ओर लगीं थीं। ग्यारह बजे से लेकर डेढ़ बजे तक गवर्नर साहब से बातचीत होती रही। गवर्नर के साथ कमिश्नर मि० स्मार्ट और सूरत जिले के कलक्टर मि० हार्ट शोर्न भी थे। बातचीत दिल खोलकर हुई। बीच में गवर्नर ने एक घन्टे तक सरदार पटेल से गुप्त रूप से भी बातचीत की। इसमें गवर्नर ने पटेल साहब से कहा कि स्वयं वायसराय भी इस दुखद स्थिति से बहुत ही परेशान हैं और वे इसका निबटारा करने के लिये बहुत ही उत्सुक हैं। जमीनें किसानों को लौटाना सत्याग्रही

कैदियों को छोड़ना आदि गौण बातों पर तो कोई मतभेद नहीं था परन्तु रुकावट हुई लगान पहिले अदा करने के विषय में। इसका अंत तक कोई हल नहीं नज़र आया। आखिर को भीमभाई नाइक की भी गवर्नर से बातें हुई। यहाँ पर भीमभाई को पता चला कि अभी तो गौण बातों का भी निर्णय नहीं हो सका है। उन्होंने गवर्नर साहब को सुझाया कि वे सरदार को एकबार और बुलवाकर जो गलत फहमियाँ हों उन्हें दूर कर लें। वल्लभभाई फिर शाम को दुबारा गवर्नर के पास गये और उन दोनों की काफी देर तक बातें होती रहीं। गवर्नर अपनी शर्तों पर चट्टान की तरफ दृढ़ था फिर समझौता कैसे हो सकता था? वह चाहता था कि पहले किसान लगान जमा कर दें या कम से कम बढ़ा हुआ लगान तो दे ही दें। समय ज्यादा खराब करना उचित न समझ, गवर्नर से उनकी कम-से-कम मांगें लेकर वल्लभभाई ने उनसे यह कह कर विदा ली कि "अपने साथियों से सलाह कर के मैं इनका जवाब आपको भेज दूंगा।"

सरकार के पक्ष की शर्तें

१—सब से पहिले जमीन का लगान कुछ खास शर्तों के अनुसार सरकारी खजाने में जमा करा दिया जाय।

२—लगान अदा न करने के आन्दोलन का प्रचार रुक जाना चाहिये।

यदि ये दोनों शर्तें स्वीकार हों तो अधिकारियों द्वारा किये गये हिसाब या गिनती तथा उन घटनाओं की भी जांच के लिये कि जिन्हें गलत बताया जा रहा है, एक खास जांच का आवश्यक प्रबन्ध करने के लिये सरकार तैयार है। इसमें किसानों को अपना पक्ष पेश करने के लिये पूरा-पूरा अवसर दिया जायेगा। सरकार किसी भी प्रकार की जांच का तब तक वचन नहीं दे सकती जब तक कि उसे इस बात का विश्वास न दिला दिया जाय कि—

१—पुराना लगान जमा कर दिया जावेगा।

२—नये पुराने लगान के फरम को रकम भी सरकारी खजाने में जमा करा दी जायेगी

साथ ही सरकार को इस बात का विश्वास भी दिला दिया जाना जरूरी है कि यह वर्तमान आन्दोलन कतई तौर से बन्द कर दिया जावेगा।

उपरोक्त शर्तों के विषय में यदि सरकार को वचन दे दिया जाय तो किसानों के सन्तोष के लिये सरकार सिर्फ जांच कमेटी की नियुक्त का आश्वासन देती है। वह कमेटी किसानों की जमीन के लगान सम्बन्धी सिद्धान्तों की जांच करने का, तथा मामले की हकीकतों की ही जांच करेगी। सरकार की दृष्टि में सुलह के लिये सब से महत्वपूर्ण शर्त यह थी कि बकाया लगान पहिले दे दिया जाय। और बढ़ाये हुए लगान के फरक की रकम भी खजाने में जमा कर दी जाय। सरकार ने यह सुविधा अवश्य दी थी कि चाहे इसे किसान जमा करा दें या फिर उनकी तरफ से कोई एक आदमी ही जमा करादे। सरकार इसे लगान की तरफ नहीं वरन् बतौर अमानत के जमा करना चाहती थी। सरकार किसी भी दशा में गैर सरकारी जांच को पसन्द नहीं कर सकती क्योंकि जमीन पर लगान बढ़ाना सरकार का अधिकार है। अपनी इस सत्ता को वह किसी गैर सरकारी दल के हाथों में नहीं सौंप सकती। जांच निष्पक्ष और सम्पूर्ण होगी इसका विश्वास दिलाने के लिये सरकार ने स्पष्ट कर दिया कि वह किसानों की उचित इच्छा पूर्ति के लिये हर समय तैयार है। और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कार्य के लिये सब से अधिक योग्य व्यक्ति तथा कानूनों का अनुभवी जानकार केवल रेवेन्यू विभाग ही होगा। सरकार ने किसी प्रकार का भी लोगों के दिलों में सन्देह न होने देने के लिये यह भी ईमानदार व्यक्ति की तरह स्पष्ट ही कर दिया था कि यदि किसी बात के विषय में कोई सन्देह खड़ा हो जाय तो न्याय विभाग के

अधिकारी के सामने उसे पेश करके उस पर निर्णय भी ले लिया जायेगा। सरकार का यह भी कहना था कि सम्पूर्ण जांच में एक रेवेन्यू आफीसर और एक जुडिशियल अफसर साथ साथ रहें। इस परिस्थिति में हकीकत तथा हिसाब सम्बन्धी बातों में उपस्थित होने वाले विवादों में निर्णय देना उनका कर्तव्य होगा।

सरदार पटेल की शर्तें

सरदार पटेल ने भी अपनी निम्न लिखित शर्तें गवर्नर को दे दीं—

अ—पुनः स्वतंत्र जांच हो, या तो वह दोनों पक्षों द्वारा चुने गये किसी न्याय विभाग के अधिकारी द्वारा खुले तौर पर जुडीशियल पद्धति के अनुसार होनी चाहिये या एक सरकारी अधिकारी और दो गैर सरकारी सभ्यों की समिति द्वारा उसी तरह खुली रीति से हो। समिति को यह भी अधिकार हो कि पेश किये गये सुबूत में कौन-सी बात विचारणीय है तथा कौन-सी नहीं किस पर अधिक विचार किया जाय, किस पर कम, तथा कौन-सी बातों को सुबूत में शामिल किया जाय। समिति के सभ्य दोनों पक्षों की राय से चुने जाएं। इन दोनों में से जिस तरह की भी जांच हो, उसमें नीचे लिखी बातों पर विचार हो—

१—बारडोली का नया बन्दोबस्त न्याय्य है अथवा नहीं।

२—अगर न्याय पूर्ण नहीं है तो न्याय युक्त लगान क्या हो सकता है?

३—लगान के वसूल करने में जिन-जिन उपायों का अवलम्बन किया गया, क्या वे न्याय संगत थे? अगर न थे तो उनके शिकार बने हुए लोगों को क्या मुआविजा दिया जाना चाहिये?

इस तरह नियुक्त जांच समिति के निर्णय दोनों पक्षों के लिये एक से लागू होंगे।

आ—केवल पुराना लगान अदा कर दें।

इ—तमाम खालसा जमीनें, अगर उनमें से कुछ बेच दी हों तो वे भी मूल मालिक को लौटा दी जांय।

ई—कैदियों को छोड़ दिया जाय। और भी जो-जो सजाएँ दी गई हों—मसलन तलाटियों की बरतरफी, छीने गये लायसैन्स आदि—इन सबको रद्द कर दिया जावे।

सरदार पटेल ने ये शर्तें अपने साथियों से परामर्श करके भेजी थीं। पर ये शर्तें भी ऐसी थीं जिन्हें सत्याग्रही कभी स्वीकार कर ही नहीं सकते थे। इसीलिये सरदार पटेल ने सभी की सलाह लेकर गवर्नर को इस आशय का एक पत्र भेज दिया कि आपकी शर्तों को सत्याग्रही स्वीकार नहीं कर सकते। सत्याग्रहियों की मांगों से औचित्य तथा गवर्नर साहब द्वारा पेश की गई शर्तों की अपूर्णता एवं अन्याय को स्पष्ट करते हुए वल्लभभाई ने लिखा था—

"अन्त में मैं अपनी हार्दिक इच्छा फिर प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं सरकार को किसी प्रकार सताना या उनकी प्रतिष्ठा कम करना नहीं चाहता। मैं तो इसी बात के लिये प्रयास कर रहा हूँ कि सुलह की कोई ऐसी सूरत निकल आवे जो दोनों पक्षों के लिये सम्मान युक्त हो। इसलिये यदि सम्माननीय गवर्नर साहब का यह खयाल हो कि मुझे उनसे एक बार फिर मिल लेना चाहिये एवं उसका कुछ उपयोग हो सकता है तो, वे मुझे सूचना करें। मैं निश्चत समय पर उनसे मिल सकूंगा।"

सरकार ने भी इस आशय की सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित कर दी कि सूरत की सुलह की बातचीत नाकामयाब रही। साथ ही आगामी २३ जुलाई को धारासभा में दिये जाने वाले भाषण में गवर्नर साहब सुलह सभा की सारी बातें प्रकट करके यह भी सुना देना चाहते हैं कि सरकार ऐसी दशा में आगे क्या करेगी?

सूरत सभा के असफल हो जाने पर देश का वातावरण बहुत क्षुब्ध हो गया। नरम और गरम दोनों दलों के नेताओं ने सरकार की अदूरदर्शिता और हठ की निन्दा की। इस असफलता का सम्मिलित राष्ट्रीय दल [Coalition National Party] पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इस पार्टी की बैठक पूना में कन्हैयालाल मुन्शी के मकान पर हुई और सर्वसम्मति से यह स्वीकृत हुआ कि जब तक बारडोली की मांगों को सरकार स्वीकार नहीं करती उसका न सुरक्षित (Reserve) और न हस्तान्तरित (Yransferred) विभागों के संचालन में साथ दिया जाय।

बारडोली के कारण स्वयं बारडोली तथा सम्पूर्ण देश की हालत चिन्ता जनक हो रही थी फिर भी पटेल साहब ने गांधीजी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दिया। जब उन्हें कोई खास सलाह लेनी होती तो वे रूबरू में या पत्रों के द्वारा पूछ लेते थे। इन बातों का फायदा उटाते हुए सरकार ने यह प्रचार कराना आरंभ कर दिया, कि गांधीजी तो पटेल साहब से नाराज हैं और अकेले पटेल ही इस सत्याग्रह का श्रेय लेना चाहते हैं। इस भ्रम को दूर करने के लिये महात्मा गांधी को लिखना पड़ा।

"अभी जो भयंकर अफवाहें उड़ रही हैं, उनको ध्यान में रख कर मुझे यह स्पष्ट कर देना आवश्यक मालूम होता है कि बारडोली से मेरा क्या सम्बन्ध है। पाठक जान लें कि बारडोली सत्याग्रह के आरम्भ से ही मैं उसमें शामिल हूँ। उसके नेता वल्लभभाई हैं, उन्हें जब कभी मेरी जरूरत हो, वे मुझे वहाँ ले जा सकते हैं। यह कोई बात नहीं कि उन्हें मेरी सलाह की आवश्यकता हो, तथापि कोई भी भारी कार्य करने से पहिले वे मुझसे मशविरा करते हैं। पर वहाँ का सारा काम चाहे वह छोटे-से-छोटा हो, या बड़े-से-बड़ा, वे अपनी जिम्मेदारी पर ही करते हैं। इसके लिये मैंने उनसे पहिले से ही समझौता कर लिया है कि मैं सभाओं वगैरा में नहीं आऊंगा। मेरा

शरीर अब इस लायक नहीं रहा कि मैं हरएक काम में दिलचस्पी ले सकूं। इसलिये उन्होंने यह प्रतिज्ञा करली है कि अहमदाबाद में या गुजरात में अन्यत्र बिना कारण वे मुझे नहीं ले जायेंगे, और इस प्रतिज्ञा का उन्होंने अक्षरशः पालन भी किया है, इस सत्याग्रह में मेरी उनके साथ सम्पूर्ण सहानुभूति रही है। अब तो गंभीर स्थिति खड़ी होने की संभावना है, और उसका सामना करने के लिये वल्लभभाई जो कुछ भी करेंगे, उसमें भी उनके साथ मेरी पूरी सहानुभूति रहेगी। यदि वे कहीं पकड़े गये तो मैं बारडोली जाने के लिये पूरी तरह तैयार हूँ। उनके बारडोली में रहते वहाँ जाने अथवा अन्य किसी प्रकार सक्रिय भाग लेने की न मुझे कोई जरूरत दिखाई दी न उन्हें। जहाँ आपस में पूरा विश्वास है वहाँ शिष्टाचार अथवा किसी प्रकार के बाह्य आडम्बर की जरूरत नहीं होती।"

ऊपर कहा जा चुका है कि खजूर के पेड़ों के नीलाम का समय भी इसी अवसर पर आ गया था और सरदार पटेल ने एक विज्ञप्ति द्वारा समस्त किसानों को उसमें भाग न लेने का आदेश भी देदिया था, सरदार पटेल ने ऐन समय पर फिर एक आदेश निकालते हुए समस्त किसानों तथा व्यापारियों से निवेदन किया कि वे नीलामों में किसी भी प्रकार भाग न लें। यह आश्चर्य जनक बात थी कि व्यापारियों तक ने सरदार पटेल की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। गाँव-गाँव में व्यापारियों ने सभाएं कीं और प्रतिज्ञाएं लीं कि वे ताड़ी के नीलाम में भाग न लेंगे। किसानों ने अपने खेतों में खड़े हुए पेड़ों में से ताड़ी निकालने नहीं दी। इससे तो सरकार का आसन ही डांवाडोल हो गया। सरकार एक तो सत्याग्रह से ही घबरा गयी थी, दूसरे इस आन्दोलन ने तो उसके होश ही खट्टे कर दिये।

आग में घी—

सोमवार ता० २३ को धारासभा का अधिवेशन आरम्भ हुआ और उसमें बम्बई के गवर्नर का भाषण भी हुआ। उस भाषण से

लोगों तथा जननायकों का पारा और भी बढ़ गया। गवर्नर का भाषण कौशलपूर्ण होते हुए भी इतना कठोर और सत्ता के मद से भरा हुआ था कि धारासभाके नरम से नरम विचार वाले सदस्यों तक को उससे महान् दुःख हुआ। गवर्नर के भाषण का आवश्यक अधिकांश यहां इसी लिये दिया जारहा है—

"हम पिछली बार यहां एकत्रित हुए थे, उसके बाद बड़ी गंभीर और महत्वपूर्ण घटनाएँ हो चुकी हैं। अतः इस अधिवेशन के आरम्भ में उन पर आपके सामने कुछ कहना मेरे लिये लाजिमी है। इस इलाके की भलाई के काम में मैं आपके सहयोग की आशा कर सकता हूँ, यह मेरे लिये प्रसन्नता की बात है। पर निःसन्देह एक बात में सरकार और धारासभा के कुछ सभ्यों के बीच गहरा मतभेद है, जो कि पिछले महीनों में दिये गये इस्तीफों से प्रकट होता है। कहने की जरूरत नहीं कि मेरा संकेत बारडोली की वर्तमान परिस्थिति की ओर है। पर सबसे पहिले यह जरूरी है कि मैं सम्माननीय सभ्यों के सामने इस दुखद विवाद का, जोकि अपनी हद से कहीं अधिक बढ़ गया है, आरम्भ से अब तक का इतिहास रख दूं। ता० ६ फरवरी को श्री वल्लभभाई पटेल का मुझे एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था कि यदि इस नये बन्दोबस्त के प्रश्न की निष्पक्ष और सम्पूर्ण जाँच के लिये एक ऐसी समिति की नियुक्ति न होगी जिसे अपने कार्य से संबंध रखने वाले आवश्यक अधिकार भी हों, तो किसान नये लगान में से कुछ भी जमा नहीं करायेंगे। श्री वल्लभभाई ने लिखा था कि उन्होंने किसानों से यह भी कह दिया था कि लड़ाई जल्दी खत्म नहीं होगी और उसमें शायद उन्हें अपना सर्वस्व तक निसार कर देना पड़े। पर किसानों ने यह सब स्वीकार करते हुए भी लगान देने से इन्कार कर दिया और यह निश्चय, उनका यह पत्र मिलने के बाद ही छः दिन में उन्होंने कर लिया। इतने थोड़े दिनों में सिवाय एक बाकायदा पत्र की स्वीकृति भेजने के और कुछ हो भी तो नहीं सकता था। उनके

पत्र में ऐसे कई प्रश्न थे जिनका उत्तर रेवेन्यू विभाग द्वारा बहुत विचार पूर्वक देना जरूरी था, पर बिना किसी विलम्ब के यह उत्तर भी भेज दिया गया। इसके बाद जमीन के लगान अदा न करने वालों को कुछ दण्ड दिये गये, जिनके लिये भी श्री वल्लभभाई ने किसानों को पहिले ही से तैयार कर रखा था। सम्माननीय सभ्यों को याद होगा कि बजट सेशन के अन्त में इस बात की सरकार को चुनौती दी गई थी, जिसे सरकार ने स्वीकार भी किया था और इस गौरवशाली सभा ने बहुमत से इस विषय की नीति का समर्थन ही किया था।"

इस प्रश्न का दूसरा अध्याय उस समझौते की चर्चा से आरम्भ होता है जो महाबलेश्वर में हुई थी। इसी सभा के कुछ मान्य सभ्य महाबलेश्वर में समझौते के लिये आये थे। उनमें से छः सभ्यों के साथ बातचीत करते हुए मैंने उनसे कहा था कि बारडोली के किसानों ने जो मार्ग ग्रहण किया है, उसे देखकर मुझे बड़ा दुख हो रहा है। मैंने उनसे यह भी कहा था कि मेरा खयाल है कि इस बारे में लोग सरकार की स्थिति को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये हैं। मैंने उन सज्जनों को समझाया कि सरकार के दिल में प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय करने की कल्पना तक नहीं है। सरकार ने इस मामले की खूब अच्छी तरह तहकीकात कर ली है और निश्चय हो गया है कि नया लगान केवल न्याय्य ही नहीं बल्कि उदारतापूर्ण है। माना कि कुछ खास-खास उदाहरणों में थोड़ी-बहुत गलती होना असम्भव नहीं। मैंने भी खूब जाँचपूर्वक अध्ययन करके देख लिया है, पर मेरी समझ में नहीं आया कि यह कैसे हो सकती है? फिर भी मैंने माननीय सभ्यों से कह दिया कि किसी काश्तकार का या काश्तकारों का यह खयाल हो कि सरकार ने उनके साथ अन्याय किया है तो वे कलक्टर और कमिश्नर से अर्ज करें। सरकार ने यह तय कर लिया है कि यदि ये लोग नया लगान भी जमा करा देंगे तो उनके मामलों पर पुनर्विचार हो सकेगा। कमिश्नर के पास इस आशय की सूचना भी

भेज दी गई है। जहाँ तक मेरा खयाल था इस बात पर वे सम्माननीय सभ्य सम्पूर्णतया सन्तुष्ट हो गये थे, पर फिर पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। जब ये सभ्य महाबलेश्वर से रवाना हुए तब सरकार को यह देखकर सन्तोष हुआ कि वे सरकार की सूचनाओं से सहमत थे और उसकी स्थिति को महसूस करते थे। अर्थात् सरकार मामले की पुनः जाँच करने को तैयार थी, बशर्ते कि लोग नया बढ़ा हुआ लगान पहिले अदा कर दें। पर दुर्भाग्य से महाबलेश्वर से चले जाने पर उनके विचारों में किसी कारण परिवर्तन होगया।"

"खैर मई महीने में भी किसानों को सन्तुष्ट करने के लिये तथा इसलिये कि कहीं उनके साथ कोई अन्याय न हो, हमने तो हमारे सम्माननीय मित्र शिक्षा विभाग के मन्त्री के द्वारा फिर यह कहलवा दिया था कि हम किसानों के मामले की फिर जाँच करने को तैयार हैं। सचमुच मेरी समझ में नहीं आता कि सरकार इससे अधिक और क्या कर सकती थी? इसके बाद मैं और सरकार के अधिकारी लोग किसी तरह इस मामले को सुलझाने के लिये बराबर प्रयत्न कर रहे हैं। सम्माननीय सज्जनो! आप जानते हैं कि इस बुधवार को मैं स्वयं ही इस आशा से सूरत गया था कि समझौते की कोई सूरत दिखाई दे। पर वहाँ कोई नतीजा नहीं निकला और अब सरकार अपने अन्तिम निश्चय प्रकट करने में देर करना ठीक नहीं समझती। सरकार का यह खयाल है और मैं समझता हूँ कि इससे आप भी सहमत होंगे कि इस महत्वपूर्ण मामले के बारे में सरकार जो कुछ भी कहे-सुने, इस इलाके के चुने हुए प्रतिनिधियों से कहे। बजट-सेशन में जो मत लिये गये थे उन्हें तथा इन पिछले चन्द महीनों में जो कुछ होता जारहा है, उसे ध्यान में रखकर चुने हुए सभ्यों को ही इस विषय में सरकार अपना निर्णय सुनावे, यह अधिक उचित है। इस सम्मान्य सभा के सन्मुख मौजूदा परिस्थिति पर सरकार के विचार और निर्णय मैं प्रकट कर देना चाहता हूँ।"

"मैं कहता हूँ और सोच समझकर कहता हूँ कि इन निर्णयों पर भारत-सरकार की भी स्वीकृति है। क्योंकि बारडोली में जो प्रश्न उठाये गये हैं उनका महत्व अत्यधिक व्यापक है और सचमुच इस बात पर सभी सहमत है कि इस प्रश्न ने अखिल भारतीय महत्व प्राप्त कर लिया है। इस प्रश्न पर गत कुछ सप्ताहों में इतने भाषण दिये गये हैं कि यदि उनके कारण कुछ विचार-भ्रम पैदा हो गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मेरी सरकार को तो इस विषय में कोई विचार-भ्रम नहीं है। उसके लिये तो यह प्रश्न बिलकुल ही सरल है। प्रश्न यही है कि बारडोली ताल्लुके का नया बन्दोबस्त न्याय्य है अथवा अन्यायपूर्ण ? पर इन दिनों जो भाषण दिये जारहे हैं और पत्र लिखे जाते हैं तथा जिले की शासन-व्यवस्था में रुकावटें डालने के लिये जो-जो कार्रवाइयां की जाती हैं, उनपर खयाल करके सरकार यदि सोचे तो उसे मामला कुछ और ही दिखाई दे। परिणाम भी वैसे ही व्यापक दिखाइ दे। एक ही वाक्य में यदि कहना चाहें तो प्रश्न यह दिखाई देता है कि साम्राज्य के एक भाग में सम्राट का कानून माना जाय या कुछ गैर सरकारी लोगों की आज्ञाएँ मानी जायँ ? यह बात तो ऐसी है—अगर बात दरअसल यही है तो—कि उसका मुकाबला करने के लिये सरकार अपनी सारी ताकत लगा देना चाहती है। किसी भी प्रकार की जांच करने का वचन देने से पहिले सरकार यह जानना चाहती है कि इस जिले के प्रतिनिधि सरकार की शर्तों को कुबूल करते है या नहीं ? पर हाँ, यदि यह बात न हो और सवाल केवल यही हो कि नया बन्दोबस्त न्याययुक्त है या अन्यायपूर्ण तो जैसा कि घोषित किया जा चुका है, सरकार इस मामले की निष्पक्ष, स्वतन्त्र और पूर्ण जांच करने के लिये तैयार है बशर्ते कि लोग नया लगान पहिले जमा कर दें और यह कि यह आन्दोलन बन्द कर दिया जावे।"

"कर देने के आन्दोलन के कारण बारडोली के किसान जिन

कष्टों में फंस गये हैं, उनसे उन्हें छुड़ाने के लिये सरकार बहुत ही उत्सुक है। और सम्माननीय सज्जनो ! ये समझौते के प्रस्ताव मैं उन्हीं को ध्यान में रखकर, आपके सामने पेश कर रहा हूँ। सरकार चाहती है कि इस दुख से ताल्लुका जितनी जल्दी मुक्त हो, अच्छा है। इसलिये अपनी सरकार की तरफ से मैं आपके सामने वही प्रस्ताव रखता हूँ जो मैंने सूरत में उन लोगों के सामने रखे थे जो बारडोली के किसानों के प्रतिनिधि की हैसियत से मुझसे मिलने के लिये आये थे। प्रस्ताव प्रकाशित हो ही चुके हैं इसलिये उन्हें यहां दुहराने की कोई जरूरत नहीं। पर मुझे यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि आप उन्हें समझौता करने के लिये विचाराधीन आधाररूप प्रस्ताव न समझें। वे तो सरकार के निश्चित निर्णय और अनिवार्य शर्तें हैं। वे न्याययुक्त हैं इसलिये कोई भी विवेकशील पुरुष उन्हें स्वीकार कर लेगा। उनमें कुछ शर्तें भी हैं। सरकार तभी पुनः जांच करने का वचन दे सकेगी, जब उन शर्तों की पूर्ति हो जायेगी। वे शर्तें अटल और अनिवार्य हैं।"

नया लगान अदा करने के सम्बन्ध में जो शर्तें हैं उसके सम्बन्ध में मैं एक बात और कह देना चाहता हूँ। स्पष्ट ही वह अत्यन्त महत्वपूर्ण शर्त है। वह एक कानून सम्मत और वैध मांग है। सूरत में मुझसे कहा गया था कि बढ़ा हुआ लगान अदा करने वाली शर्त को किसान स्वीकार नहीं कर सकते, और इसी पर समझौता होते-होते रुक गया। तथापि मैं सम्माननीय सभ्यों को खासकर उन्हें जो कि बारडोली ताल्लुके के चुने हुए प्रतिनिधि हैं, यह याद दिला देना चाहता हूँ कि अपने मतदाताओं की तरफ से अपने विचार प्रकट करने का उन्हें अधिकार है और उनके हितों को ध्यान में रखकर अपना निर्णय सुनाना उनका धर्म है।"

"इसलिये सरकार उन सभ्यों से कह देना चाहती है कि वे विचार करके सरकार को १४ दिन के अन्दर अपने मतदाताओं की

तरफ से इस बात की सूचना करदें कि सरकार पुनः जांच करने के लिये तो तैयार है पर इससे पहिले वे सरकार द्वारा पेश की गई शर्तों को पूरी कर सकते हैं या नहीं ? मैं नहीं विश्वास कर सकता कि इन शर्तों को अस्वीकृत करने का जो परिणाम होगा, किसानों को जो घोर कष्ट उठाने पड़ेंगे, जो मनो-मालिन्य पैदा होगा और सरकार तथा प्रजा के बीच लड़ाई छिड़ जाने से जो अनिवार्य परिणाम होता है, उन सब का विचार करने पर भी वे सरकार के प्रस्तावों को नामंजूर करेंगे। तथापि मेरा यह धर्म है कि मैं इस बात को साफ साफ समझा दूँ। यदि इन शर्तों की पूर्ति न हुई और इसके फल-स्वरूप समझौता भी न हो सका तो अपने कानून का पालन करने के लिये सरकार को जो कुछ आवश्यक और उचित प्रतीत होगा वह करेगी और कानून बनाने तथा उसका पालन करने के अपने अधिकार की रक्षा के लिये वह अपनी सारी शक्ति का प्रयोग करेगी। बम्बई की सरकार ही नहीं, कोई दूसरी सरकार भी इस परिस्थिति को गवारा नहीं कर सकती कि जिसमें गैर सरकारी व्यक्ति अपने आप को कानून से परे समझने लगें या ऐसे सङ्गठनों में भाग लें जिनके कारण दूसरे भी इसी तरह कानून की अवज्ञा करने लगें। सरकार के लिये इस परिस्थिति को बरदाश्त करना अपने अस्तित्व को मिटाना है। यह तो कल्पना करना ही असंभव है कि किसी भी देश की सरकार, जो कि सचमुच सरकार है, ऐसी हलचलों और आन्दोलनों को अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर रोके या बन्द नहीं करे। वह सबसे पहिले इन आन्दोलनों को बन्द करने की कोशिश करेगी, परवाह नहीं, फिर जो कुछ भी हो।"

"कोई मेरे इन उद्गारों को किसी प्रकार भी धमकी न समझें, नहीं, यह मेरा उद्देश्य कदापि नहीं। यह तो वास्तविक कथन है। सरकार की स्थिति को समझने में फिर कहीं गलती न हो, इसलिये वास्तविकता को प्रकट कर देना इस सभा के सदस्यों तथा बारडोली

के किसानों के प्रति मेरा कर्तव्य था। कोई इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि आजकल बारडोली में सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चल रहा है। और आपसे यह कहने की तो आवश्यकता नहीं कि सविनय अवज्ञा तो कानून के विरुद्ध चीज़ है, फिर आन्दोलन कर्ताओं को इस बात का चाहे कितना ही विश्वास और निश्चय हो कि उनका पक्ष न्याय्य है। कानून की विपरीतता कहीं इसलिये बुराई से भलाई में परिवर्तित नहीं हो जाती कि आन्दोलन कर्ताओं को अपने सत्य में निश्ठा है अथवा उनमें कई ऐसे सद्गुण हैं जो किसी भी महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है।

"अच्छा हो, अगर जनता इस बात को समझ ले कि राजनीतिक दृष्टि से सुसंगठित समाज में यदि कानून की प्रतिष्ठा उठ जाती है तो उसकी कितनी बुरी व्यवस्था हो जाती है। अगर कहीं एकबार लोगों के दिमाग में यह समा जाय कि कानून के द्वारा प्रतिष्ठित शासन सत्ता की अवगणना करना उचित है, तब तो कानून के बनाने वाली धारासभा के अधिकार को मानने अथवा कानून का अर्थ लगाने वाली न्याय सभा की निष्पक्षता को स्वीकार करने से इन्कार करना कोई बहुत दूर की बात नहीं है। और इसके मानी क्या हैं? अराजकता! अतः सामाजिक जीवन की सुरक्षा के लिये कानून की प्रतिष्ठा परम आवश्यक है। कुछ व्यक्तियों या समाज द्वारा उसकी अवगणना की चेष्टा करना अराजकता को निमंत्रण देना है।"

एक दूर के देश के स्वार्थी लोगों के स्वार्थ के लिये, दीन और गरीब देश के किसानों को ठोकरों से कुचलते हुए, रात दिन प्रजा को जकड़े रहने वाली सत्ता के उच्च अधिकारी, अपने बनाये मनमाने कानूनों की जड़ प्रतिमा की पूजा करते रहते हैं या कहिये कि जानबूझकर कानून की प्रतिष्ठा के लेक्चर देकर जनता को धोखा देते रहते हैं। कानून वास्तव में सामाजिक व्यवस्था के लिये निश्चित की गई मर्यादा है और न्याय समाज का इष्ट-देवता है। समझदार

आदमी कानून का इसलिये अनादर नहीं करता कि वह विदेशी सत्ता का कानून है। न वह यह ही चाहता कि उसके पूर्वजों ने उसे बनाया है इसलिये हमेशा उसके सम्मुख नतमस्तक रहे। जनता न्याय ढूंढती है और वह जहाँ प्राप्त होता है उसकी इज्जत करती है। जहाँ न्याय प्राप्त नहीं हो सकता, उसे जड़ वस्तु समझकर जनता उस बोझ को अपने सिर से फेंक देती है। उस राष्ट्र को मृतक ही मानना चाहिये जहाँ सामाजिक अव्यवस्था के भय से अन्यायपूर्ण कानूनों के सामने जनता सिर झुका दे, ऐसे राष्ट्र की शान्ति और व्यवस्था सब की अन्त्येष्टिक्रियामात्र है। एक जागृत राष्ट्र कभी आंखें बन्द कर कानून की निर्जीव प्रतिमा की पूजा नहीं कर सकता। वह उसे ठीक इसी तरह ठुकरा देगा जिस तरह निरंकुश शासक प्रजा की न्याययुक्त मांगों को ठुकरा देते हैं। विदेशी सत्ताधारियों के कानूनों में कभी भी न्याय-देवता के दर्शन नहीं मिल सकते।

गवर्नर साहब के चालाकी से भरे हुए भाषण को सुनकर धारा सभाइयों पर कोई भी असर नहीं हुआ, क्योंकि धारासभा के सदस्यों को पहिले से ही यह ज्ञात था कि गवर्नर साहब क्या बोलेंगे? बल्कि समस्त धारासभा के सदस्य आग बबूला हो उठे। इस भाषण से देश भर में एक घृणा की भावना फैल गयी और सत्याग्रही और भी दृढ़ निश्चयी होगये। गवर्नर साहब का भाषण, पहिले ही कहा गया है कि बेहद कूटनीति से भरा हुआ था, उससे जनता में भ्रम फैल जाने का अन्देशा था। अतः सरदार पटेल को उसके जवाब में एक वक्तव्य प्रकाशित करना आवश्यक होगया। उन्होंने लिखा था—

"मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मुझे यह कल्पना तक नहीं थी कि गवर्नर साहब ऐसा रोब गाँठने वाला भाषण देंगे। उसमें जो धौंस बताई गई है उसे छोड़ भी दें तो भी जान में या अनजान में कुछ ऐसी बातें वे कह गये हैं जिनके कारण जनता में कुछ भ्रम फैलने की संभावना है। इसलिये मैं इसे दूर कर देना चाहता हूँ। मैं गवर्नर

साहब के जवाब में यह कह देना चाहता हूँ कि महज सविनय भङ्ग कभी इस युद्ध का उद्देश्य रहा ही नहीं। बारडोली ने तो लड़ने का यह तरीका—इसे चाहे जिस नाम से पुकारिये—इसलिये इख्तयार किया है कि या तो सरकार बढ़े हुए लगान को रद करदे, और यदि वह इसे अन्यायपूर्ण नहीं समझती तो, सत्य का निर्णय करने के लिये निष्पक्ष स्वतन्त्र जाँच समिति की नियुक्ति करे। मतलब यह कि खास प्रश्न यही है कि नया बन्दोबस्त न्याययुक्त है या अन्याययुक्त, इसी की जांच हो। सरकार यदि इस मांग को स्वीकार करती है तो उससे एक दूसरी बात फलित होती है अर्थात् यह कि बढ़ा हुआ लगान, जो विवाद का मुख्य विषय है, वह न ले और किसानों को उसी स्थिति में रहने दे जिसमें वे थे। गवर्नर साहब ने "पूर्ण स्वतन्त्र और निष्पक्ष जांच समिति" नियुक्ति करने की जो बात कही है, उसके विषय में मैं जनता को सावधान कर देना चाहता हूँ। गवर्नर साहब ने जिन शब्दों में इस पूर्व प्रकाशित समिति का जिक्र किया है, वे धोखा देने वाले हैं। सूरत की शर्तों में जिस समिति का जिक्र किया है वह सम्पूर्ण, स्वतन्त्र और निष्पक्ष नहीं। उसमें तो इस मर्यादित जांच की ही बात कही गई है जिसमें एक रेवेन्यू आफीसर होगा और उसकी सहायता के लिये एक जुडीशियल आफीसर भी होगा। हिसाब या हकीकत में जहाँ कहीं गलती होगी, उसकी जांच करके निर्णय देने का काम तो वह जुडीशियल अफसर ही करेगा। यह वस्तु "सम्पूर्ण, स्वतन्त्र और निष्पक्ष जाँच" तो कदापि नहीं कही जा सकती। मैं आशा करता हूँ कि कोई गवर्नर साहब के शब्दाडम्बर मे न पड़ जाय। जनता मेरी बताई हुई बातों पर ही डटी रहे!"

इसी बीच धारासभा के एक सदस्य श्री रामचन्द्र भट्ट के दिल में बढ़ा हुआ लगान जमा कर देने की इच्छा उत्पन्न हुई। पिछले अकाली सत्याग्रह के समय भी इसी तरह सर गंगाराम "गुरु का बाग" की जमीन रहन रखने को राजी होगये थे। यह दुर्भाग्य मानिये

या और कुछ कि जब देश अपनी आन पर डट जाता है और सरकार और जनता की शक्ति के नापने का समय आजाता है तभी देश मे कोई ऐसा व्यक्ति प्रकट होजाता है जिसके हृदय में एकाएक देशभक्ति और भ्रात्र-प्रेम का उदय होजाता है। रामचन्द्र भट्ट ने भी सच्चे अर्थों में लगान की बढ़ी हुई रकम जमा करने की इच्छा प्रकट करके संसार की आंखों में सरकार की प्रतिष्ठा की ऐन मौके पर रक्षा करली। क्योंकि यही एकमात्र रुकावट थी जिसमे समझौता हो नहीं रहा था।

गवर्नर साहब के भाषण तथा रामचन्द्र भट्ट के इस कार्य की आलोचना करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा था—

"जिस बढ़े हुए लगान को अदा न करने के लिये सत्याग्रह छेड़ा गया था, उसे बम्बई के किसी गृहस्थ ने सरकार में जमा करा दिया है, ऐसा अखबारों में छपा है। यदि सरकार को इतनी बड़ी रकम भेट करने का वह विचार ही कर चुके हों तो उन्हें कौन रोक सकता है ? यदि ऐसी भेट से सरकार अपने मन को सन्तुष्ट करले तो हम उसका द्वेष न करें। बम्बई में रहने वाले बारडोली ताल्लुके के इस गृहस्थ ने ये रुपये जमा कराके अपना नुकसान किया या जनता का, इसका निर्णय आज नहीं हो सकता। पर यह रकम सरकार के लिये तो तुच्छ ही है। यदि इससे सरकार को सन्तोष होजाय और वह सुलह करने पर राजी होजाय तो सुलह होने देना सत्याग्रही का धर्म है।"

पर कहीं कोई यह खयाल न करले कि सरकार झुक गई है। अतः लन्दन से उसी समय भारतमंत्री के सहायक अर्ल विन्टरटन ने भी गवर्नर के भाषण की जोरदार पुष्टि कर दी। पार्लियामेंट में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

"आज बम्बई की धारासभा में बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विलसन ने बारडोली के सम्बन्ध में जो शर्तें पेश की हैं, वे यदि पूरी न की गईं तो बम्बई गवर्नमेंट को पूर्ण अधिकार है कि वह आन्दोलन

को कुचल दे और जनता को कानून का आदर करने को मजबूर करे। इससे भारत सरकार और साम्राज्य सरकार पूर्णतया इसके साथ हैं। शर्तों को न मानने के साफ मानी यह होंगे कि आन्दोलन कर्ताओं के दुख असली दुख नहीं हैं। वे बेकार ही सरकार को झुका कर अपनी बातें मनवाने पर मजबूर करते हैं।"

अधिकारियों की नजर में वही प्रजा भली होती है जो सरकार के प्रत्येक हुक्म का नीचा सर करके पालन करती चली जाय। जब उसे तकलीफ हो तो गिड़-गिड़ा कर प्रार्थना भर कर ले। आंखें बता कर, सिर ऊंचा करके, जोरदार आवाज मे मांग पेश न करे, सरकार जो दे दे, उसी में सन्तोष करे। यदि प्रजा ऐसा नहीं करती तो वह सरकार की नजर में बदमाश है अतः दमनीय है।

समझौता

गवर्नर के भाषण और अर्लविटंरटन की धौंस का असर, जैसा उन्होंने सोचा होगा, बिल्कुल ही उसके विरुद्ध रहा। सत्याग्रही तो इस धौंस की परवाह ही क्या करते थे? सारे देश की सहानुभूति अब और भी सत्याग्रहियो के साथ हो गयी। सारा देश ही अब तो सत्याग्रहियों की सहायता के लिये कटिबद्ध हो गया। सारे देश के पत्र जहाँ बारडोली का पक्ष समर्थन कर रहे थे वहां टाइम्स ही एक ऐसा पत्र था जो सरकारी नीति की पुष्टि कर रहा था। धारासभा के लोगों को भी यह भाषण बहुत खटक गया। कोई भी धारासभाई यह नहीं सोचता था कि सरकार अपनी शर्तों के लिये इस तरह दुराग्रह करेगी। कोए-लिशनिस्ट नेशनल पार्टी ने अपने ५० सदस्यों के हस्ताक्षरों से एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने बारडोली सत्याग्रह जैसे शान्ति और वैध आन्दोलन को गैर-कानूनी हलचल साबित करने के प्रयत्न का जोरों से विरोध किया। मामला बढ़ता देख कर गवर्नर ने अपनी धौंस से पैदा होने वाली स्थिति की जिम्मेदारी उनके और खासकर

सूरत के प्रतिनिधियों के माथे पर पटक दी। और बहुत ही खेद प्रकाशित करते हुए लिखा कि इस परिस्थिति में यदि सरकार के शासनाधिकारियों और जनता के बीच कोई संघर्ष उत्पन्न हुआ भी इसके लिये वह जिम्मेदार नहीं है। देश के गरम दली लोगों को तो इस बात से बेहद खुशी हुई। उन्होंने सोचा कि अब तो देश व्यापी आन्दोलन को जारी करने का समय आ गया। स्वराज्य के लिये अपनी जान लड़ाने का सुन्दर अवसर आ गया है। सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर ने तो महात्माजी को यह भी सुझाया कि अब बारडोली के साथ सहानुभूति प्रगट करने के लिये देश भर में सविनय भंग शुरू कर देने का वक्त आ गया है। इधर नरमदली श्री० नटराजन महात्माजी से यह कह रहे थे कि अब अधिक खींचना हानिप्रद भी हो सकता है। इनके अलावा एक ऐसा भी दल था जो किसानों की मांगों की न्याय्यता को तो मानता था, पर साथ ही यह भी चाहता था कि उन्हें अधिक कष्ट न हो और सरकार की प्रतिष्ठा में भी बट्टा न लगे। श्री लालजी नारणजी, सर चुन्नीलाल मेहता, रायबहादुर भीमभाई नाइक, श्री बेचर, श्री जयरामदास दौलतराम और श्री मुन्शी इसी दल में थे। वे समझौते के सब से अधिक इच्छुक थे। अतः वे सब से पहिले यह जान लेना चाहते थे कि सरकार अपनी शर्तों में कुछ कमीवेशी कर सकती है या नहीं? तहकीकात करने पर यह प्रकट हो गया कि सरकार कमीवेशी के लिये इन्कार नहीं करेगी। "सरकार स्वयं ही समझौता करने की कोशिश में थी"—यह स्वयं खजाने में लगान जमा करने वाले बम्बई के धारासभाई गृहस्थ के उद्‌गार थे। यद्यपि उस समय उपरोक्त दल को यह जवाब दे दिया गया था कि उन्हें सूरत के प्रतिनिधियों के द्वारा अपनी बातें पेश करना चाहिये तथापि बाद की परिस्थिति इस बात का पूर्ण समर्थन करती है कि रामचन्द्र भट्ट के इस कार्य में सरकार की पूर्ण प्रेरणा थी। जब सरकार का असली रुख समझ में आ गया तो सर चुन्नीलाल मेहता, श्री मुन्शी तथा भीम-

भाई नाइक ने यह ठीक समझा कि गवर्नर के भाषण पर गांधीजी के भी विचार जान लिये जायें। श्री मुन्शी इस कार्य के लिये बारडोली और अहमदाबाद भी गये। वल्लभभाई तथा गांधीजी ने उनके सामने वही शर्तें रखीं जिन्हें हम ऊपर लिख चुके हैं। गांधीजी ने एक विशेष रियायत सरकार को देते हुए यह और स्पष्ट कर दिया कि यदि सरकार सत्याग्रहियों पर किये गये अत्याचारों की जांच करने पर राजी न हो तो इसे भी छोड़ा जा सकता है। इन शर्तों के साथ श्री मुन्शी गवर्नर से मिले। गवर्नर की इस मुलाकात से श्री मुन्शी को घोर निराशा हुई। गवर्नर ने अब की बार उन्हें फिर यह साफ-साफ कह दिया कि समझौते के विषय में वे सिवाय सूरत के प्रतिनिधियों के किसी से भी मिलना पसन्द नहीं करते। वहाँ से लौट कर मुन्शी गुजरात के कुछ सभ्यों से मिले और उन्हें पटेल साहब, गवर्नर तथा गांधीजी की मुलाकातों का ब्यौरा सुना दिया।

इसी बीच में रामचन्द्र भट्ट की प्रार्थना गवर्नर ने स्वीकार करली और उसके मुताबिक भट्टने लगानकी बढ़ी हुई कुल रकम खजाने में जमा भी कर दी। इस प्रकार सुलहके मार्गकी सबसे बड़ी रुकावट दूर हो गई।

इसके बाद फिर महात्माजी के विचार जानने के लिये धारा-सभा के दो सदस्य श्री हरिभाई अमीन और वीर नरीमैन फिर साबरमती गये। महात्माजी ने उनके सामने भी वही शर्तें रखीं जो श्री मुन्शी से कहीं थीं और अत्याचारों की जांच सम्बन्धी बात भी उठा लेने की कही। गांधीजी ने कहा कि यदि समझौते के लिये पटेल साहब को पूना जाने की जरूरत हो तो वे जा सकते हैं। वे दोनों सज्जन पूना पहुँचे वहां सर चुन्नीलाल मेहता के साथ मशविरा करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि सरदार वल्लभभाई को बम्बई बुला लिया जाय। इस आशय का उन्हें तार भी दे दिया गया। इसी बीच इनमें से कुछ सभ्य दीवान बहादुर हरिलाल देसाई के पास पहुंचे और सुलह की कुछ शर्तें देकर सरकार की शर्तें जानने की इच्छा प्रकट की। दीवान

बहादुर ने इस काम की जिम्मेदारी प्रसन्नता से स्वीकार करली। इधर रावबहादुर भीमभाई नाइक, श्री लालजी नारणजी तथा श्री नरीमैन सरदार पटेल से मिलने को बम्बई पहुँचे पर वल्लभभाई अस्वस्थ होने के कारण बम्बई नहीं पहुँच सके अतः श्री नरीमैन ही बम्बई से बारडोली गये। शेष दोनों सभ्य सर चुन्नीलाल मेहता से बात-चीत करने के लिये बम्बई में ही ठहर गये। इसी बीच श्री हरिलाल अमीन, दीवान बहादुर श्री हरिलाल देसाई का पत्र लेकर बम्बई आ पहुँचे। इसमें श्री देसाई ने वे शर्तें लिख दी थीं जिनके अनुसार, जहां तक उन्हें ज्ञात था, सरकार सुलह करने को राजी थी। इस पत्र के साथ श्री अमीन को भी सीधा बारडोली भेज दिया गया।

ये दोनों सज्जन शीघ्र ही वल्लभभाई के सहायक श्री स्वामी आनन्द को लेकर आ पहुँचे और उन्हें सर चुन्नीलाल से मिलाया। स्वामी आनन्द ने सुलह की शर्तों पर वल्लभभाई के विचार उन्हें सुना दिये। इसके बाद सभी गैर-सरकारी सदस्यों की एक बैठक हुई जिसमें विचार करने पर पाया गया कि सरदार वल्लभभाई द्वारा निर्दिष्ट की गई दशा में सुलह होना कोई मुश्किल नहीं है। सर चुन्नीलाल मेहता और तथा गुजरात के सभ्यों की राय से फिर वल्लभभाई को तार दिया गया कि वे पूना चले आवें।

यह प्रायः सभी समझ गये थे कि सरदार पटेल इस हालत में ज्यादा समय तक बाहर नहीं रह सकते। अतः गांधीजी ने यही उचित समझा कि वल्लभभाई के पूना जाने से पहिले वे स्वयं बारडोली पहुँच कर उनका कार्य संभाल लें। इसीलिये गांधीजी २ अगस्त को बारडोली जा पहुँचे। महात्माजी बारडोली पहुँचे ही थे कि वल्लभभाई को सर चुन्नीलाल मेहता का तार मिला। स्वास्थ्य खराब होते हुए भी वल्लभभाई पूना के लिये रवाना हो गये इसके बाद तारीख ३ और ४ अगस्त को सर चुन्नीलाल और वल्लभभाई के बीच जो कुछ हुआ उसका वर्णन करना उचित नहीं है। सरकार इस बात को जान

गयी थी कि यद्यपि उसने अन्तिम चेतावनी सूरत के सभ्यों को दी थी तथापि उसे दरअसल काम तो वल्लभभाई से ही था। सूरत के तथा अन्य सभी सभ्यों के विषय में, जो उनके साथ काम कर रहे थे, यह कह देना उचित है कि उन्होंने अन्त तक वल्लभभाई की तरफ से सरकार को कोई वचन नहीं दिया और न उन्हें किसी प्रकार के बन्धन ही में डाला। जिस समय सर चुन्नीलाल के मकान पर समझौते के संबंध में बाद-विवाद हो रहे थे, सब लोग यह देखते थे कि सरकार भी समझौते के लिये उतनी ही उत्सुक थी जितने कि स्वयं सूरत के सभ्य। पर किसी को भी ऐसा मार्ग नहीं नजर आ रहा था कि समझौते के साथ-साथ सरकार की प्रतिष्ठा की भी रक्षा हो सके। एक मसविदा तैयार किया गया पर वह सर चुन्नीलाल को पसन्द नहीं आया। सर चुन्नीलाल की सरकारी पक्ष से सारे दिन बातें हुईं। अन्त में वे एक मसविदा बनाकर लाये और यह तै हुआ कि सूरत के सभी सभ्य उस पर दस्तखत करके रेवेन्यू मेम्बर के पास भेज दें। पत्र का मसविदा इस प्रकार था—

> "हमें हर्ष होता है कि ता० २३ जुलाई को गवर्नर ने अपने भाषण में जो शर्तें रखी थीं, उनके सम्बन्ध में हम यह कहने योग्य परिस्थिति में पहुँच गये कि वे पूरी हो जायेंगी, इस बात की सूचना हम दे सकते हैं।"

सरदार वल्लभभाई को इस पत्र पर यह आश्चर्य हुआ कि "इस पत्र पर हस्ताक्षर करने वाले सभ्य यह कैसे कह सकते हैं कि वे शर्तें पूरी हो जायेगी, जब कि वे जानते हैं कि जांच की मन्जूरी होने के पहिले इन शर्तों का पूरा कराना जरूरी है। फिर इन शर्तों को पूरा करानेवाले तो हम हैं और हम तो कह रहे हैं कि जब तक पुनः जांचकी घोषणा नहीं की जाती हम पुराना लगान भी अदा नहीं कर सकते।"

सर चुन्नीलाल ने जवाब देते हुए कहा कि—"इससे आपका कोई सम्बन्ध नहीं। अगर सूरत के सभ्य वह पत्र भेजने पर राजी हैं

तो आप इस बात पर विचार न करें कि उन शर्तों को कौन, कब और कैसे पूरी करेगा ? आपका तो काम यह है कि जब सरकार पुनः जांच करने की घोषणा कर दे तो आप पुराना लगान भर दें।

पर वल्लभभाई की समझ में यह सब नहीं आया। उन्होंने आगे कहा कि—माना कि यदि सूरत के सभ्य सरकार को यह खबर करने पर राजी भी हो जांय कि फलाँ-फलाँ शर्तों की पूर्ति हो जायेगी—जिनमें न तो सार है और न अर्थ—तथापि स्वयं सरकार कब ऐसे समाचार पर ध्यान देगी ? यह सब तो सत्य के साथ खिलवाड़ हुआ।" जिस क्षण ही सरदार पटेल ने कहा कि अगर सूरत के सभ्य एक ऐसे पत्र पर हस्ताक्षर करने को तय्यार हैं जिसके कोई भी मानी नहीं निकलते और जिसे वे झूठा समझते हैं, तो उन्हें इस पर कुछ भी कहना नहीं है। पर अगर सरकार के लिये तिनके का सहारा काफी था तो श्री वल्लभभाई कब ऐसी बेकार वस्तु से सन्तोष मान लेने वाले थे ? उन्हें तो पूर्ण, स्वतंत्र और निष्पक्ष जुडीशियल जांच की आवश्यकता थी और यह भी सख्त जरूरत थी कि वहाँ पहिले की सी स्थिति उत्पन्न हो जाय। अर्थात् अत्याचारों के कारण जनता की जो हानि हुई है उसकी भी क्षति पूर्ति कर दी जाय। पर सरकार तो इस बात के लिये भी तैयार थी बशर्ते कि उसकी प्रतिष्ठा ज्यों-की-त्यों बनी रहे। यही तै हुआ कि राजनीतिक चातुर्य से भरा हुआ यह पत्र सूरत के सभ्यों द्वारा भेजते ही अत्याचारों की जांच वाली बात को छोड़ कर नये बन्दोबस्त की पुनः जांच की घोषणा ठीक उन्हीं शब्दों में कर दी जाय जो वल्लभभाई ने सुझाये थे। तलाटियों को अपनी नौकरी पर फिर रख लेना, जमीनें लौटा देना, तथा सत्याग्रही कैदियों को छोड़ देना आदि शर्तों की पूर्ति तब की जाय जब वे सभ्य उसी आशय का एक पत्र रेवेन्यू मेम्बर को भेज दें। सत्याग्रहियों को जो दण्ड दिये गये थे तथा बालाड़े के शराब के व्यापारी सेठ दोराबजी के नुक्सान की पूर्ति आदि बातें बाकायदा सरकारी हुक्म से होने वाली थीं,

इसलिये उनका इस पत्र में जिक्र करने की जरूरत नहीं थी। खैर वल्लभभाई के लिये इतना काफी था। वह वहाँ अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये गये थे, सो हो गया और वे बारडोली वापस आ गये।

उस पत्र पर सूरत के अलावा २-४ अन्य सभ्यों ने भी दस्तखत कर दिये। इसके बाद चुन्नीलाल मेहता गवर्नर से मिलने गये। उनसे आवश्यक बात चीत करके उन्होंने श्री मुन्शी, केरवाड़ा के ठाकुर साहब, और भीमभाई नायक से कहा कि वे सूरत जावें और वहाँ के कमिश्नर की सहायता से बेची हुई जमीनें वापस लेने की कोशिश करें। ये तीनों सज्जन सूरत पहुँचे। इसी बीच सरकार ने वातावरण साफ रखने के लिये सूरत के कलक्टर मि० हार्ट शोर्न का, जो कई बार डंके की चोट यह घोषणा कर चुके थे कि खालसा की गई तथा बेची हुई जमीनें किसानों को कभी लौटायी नहीं जायेंगी, वहाँ से तबादला कर दिया था। उनके स्थान की पूर्ति मि० गैरेट ने की थी। छोटे बड़े कुल मिलाकर जमीन के खरीददार ६ थे। उन्हें ढूंढ़कर १४ दिन की मियाद खत्म होने के पहिले, ता० ६ के भीतर ही यह सब करना था और यह काम उतना आसान नहीं था, जितना समझा गया था। खरीददारों में एक मि० गाडी थे। सत्याग्रहियों की जमीनें खरीदने के दण्ड स्वरूप उधर के तमाम किसानों, मजदूरों और मेहतरों तक ने उनका बहिष्कार कर दिया था। इस लिये वह चिढ़े हुए थे। श्री वल्लभभाई ने भी अपने भाषणों में ऐसे खरीददारों को खरी-खरी सुनाई थीं। इसलिये मि० गाडी इस बात पर अड़ गये कि वल्लभभाई उनसे क्षमा मांगें। यह तो त्रिकाल भी नहीं हो सकता था। लोह पुरुष वल्लभभाई से ऐसा कौन कहने की हिम्मत कर सकता था कि वे गाडी से क्षमा मांग लें। अन्त में कलेक्टर मि० गैरेट तथा धारा-सभाओं के सभ्यों द्वारा खूब समझाने बुझाने पर मि० गाडी पसीजे। जमीनें रायबहादुर भीमभाई नाइक के नाम पर खरीदी गईं और

किसानों को लौटा दी गई। इस खरीद सम्बन्धी सारी कार्रवाई श्री मुन्शी ने की।

इतना काम पूरा करके ये तीनों सभ्य पूना गये। वहाँ लालजी नारणजी श्री मुन्शी तथा भीमभाई नाइक ने सर चुन्नीलाल की सहायता से वे पत्र और आवश्यक कागजात तैयार किये जो गवर्नर के भाषण के उत्तर में सूरत के सभ्यों को भेजना थे। सर चुन्नीलाल इन पत्रों को लेकर गवर्नर के पास गये और उन पर उनकी स्वीकृति ले आये। इसके बाद सूरत के सभ्यों ने उन पत्रों पर अपने हस्ताक्षर कर दिये। इस तरह सर लेस्ली विलसन के उपरोक्त भाषण के ठीक १४ दिन बाद ता० ६ अगस्त को बारडोली और सूरत के प्रतिनिधियों ने वही पत्र रेवेन्यू मेम्बर के नाम भेज दिया जिसकी नकल निम्नलिखित है—

मानननीय रेवेन्यू मेम्बर साहब,

महाशय,

आपके तारीख ३ अगस्त के पत्र के उत्तर में यह कहते हुए हमें हर्ष होता है कि ता० २३ जुलाई को गवर्नर ने अपने भाषण में जो शर्तें रखी थीं, वे पूरी हो जायेंगीं, यह कहने योग्य परिस्थिति में हम पहुँच गये हैं और इस बात की सूचना हम आपको दे सकते हैं।

भवदीय
ए० एम० के० देहलाती
भा साहब केरवाड़ा के ठाकुर
दाऊद खाँ सलेभाई तैयबजी
जे० बी० देसाई
के० दीक्षित
बी० आर० नाइक
एच० बी० शिवदासानी

उसी दिन नये बन्दोबस्त की पुनः जांच की घोषणा भी

ठीक उन्हीं शब्दों में करदी गई, जो सत्याग्रहीयों ने सुझाये थे और जब धारासभा के सदस्यों ने शेष बातों की पूर्ति के लिये लिखा तब सरकार ने यह भी घोषणा करदी कि सरकार सभी जमीनें लौटा देगी, कैदियों को छोड़ देगी और तलाटियों के उचित रीति से दरख्वास्त करने पर उन्हें उनकी पुरानी जगहों पर नियुक्त कर दिया जायेगा। अब शेष रह ही क्या गया था ? इसलिये सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक घोषणा पत्र द्वारा अपना सन्तोस व्यक्त कर दिया और जिन-जिन सज्जनों ने इस समझौते में भाग लिया था उन सब के तथा सरकार के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की।

सरकार की घोषणा

"जांच का कार्य एक रेवेन्यू अफसर और एक जुडीशियल अफसर के सिपुर्द होगा। जहाँ दोनों में मतभेद होगा, उन सब मामलों में जुडीशियल अफसर की राय को ही महत्व दिया जावेगा। जांच समिति के कार्य ये हैं—

वह जांच करके इस बात की रिपोर्ट भेजेगी कि हाल ही में जो लगान बढाया गया है, वह लैण्ड रेवेन्यू कोड-(अ) के अनुसार ठीक है या नहीं ?

जनता को जो रिपोर्ट मिलने योग्य है, उसमें जो अंक और हकीकतें दी गई हैं, वह इतनी काफी नहीं हैं, जिसके आधार पर लगान बढ़ाया जा सके। इसमें कुछ गलत बातें भी लिख दी गई हैं। यदि जनता की शिकायत सच्ची है तो पुराने लगान में क्या वृद्धि अथवा कमी होनी चाहिये ?

चूंकि जांच पूर्ण, स्वतंत्र और निष्पक्ष होगी, लोगों को यह अधिकार होगा कि वे अपने प्रतिनिधियों अथवा कानूनी सलाहकारों के द्वारा जांच-जांच कर सुबूत पेश करें और उचित गवाही दें। सरकार ने तमाम सत्याग्रही कैदियों को छोड़ने की आज्ञाएं भी जारी कर दी हैं।

"खालसा की गई तथा बेची गई जमीनें भी उनके पुराने मालिकों को लौटा दी गई। खरीददारों को समझा बुझाकर इस बात पर राजी कर लिया गया कि एक तीसरे पक्ष द्वारा जमीनों की कीमतें मिल जाने पर वे उन जमीनों को उन पुराने काश्तकारों को लौटा दें।"

इस घोषणा के प्रकाशित होते ही सरदार वल्लभभाई ने भी निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—

सत्याग्रह के सेनापति का वक्तव्य—

"बारडोली और वालोड़ के भाइयों और बहिनों के प्रति,

परम कृपालु ईश्वर की कृपा से हमने जो प्रतिज्ञा की थी उसका पूर्ण पालन हो चुका है। हम लोगों पर बढ़ाये गये लगान के बारे में हम जैसी जांच चाहते थे सरकार ने वैसी ही जांच-समिति नियुक्त करना कुबूल कर लिया है। खालसा जमीनें किसानों को वापस मिलेंगी, जेल में भेजे गये सत्याग्रही छोड़ दिये जायँगे, पटेल और तलाटियों को फिर नौकरियों पर रख लिया जायगा, और भी जो छोटी-छोटी माँगें हमने पेश की थीं उनकी भी स्वीकृति हो गई है। इस तरह हमारी टेक पूरी करने के लिये हमें परमात्मा का उपकार मानना चाहिये।"

"अब हमें पुराना लगान अदा कर देना चाहिये, बढ़ा हुआ लगान नहीं। मैं आशा करता हूँ कि पुराना लगान अदा करने की सारी तैयारी आप करके रखेंगे। लगान जमा कराने का समय आते ही मैं सूचित कर दूंगा।"

"अब सब लोग अपने-अपने काम में लग जावें। अभी तो हमें बहुत-सा उपयोगी काम करना है। जांच-समिति के सामने हमें जो सुबूत पेश करना है, उसे इकट्ठा करने की तैयारी तो हमें आज ही से करनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त सारे ताल्लुके में रचनात्मक कार्य

करने के लिये भी हमें खूब प्रयत्न करना पड़ेगा। इस विषय में तफसीलवार सूचना फिर दी जायगी।"

"संकट के समय आत्म-रक्षा के लिये जिन खास लोगों से हमें सम्बन्ध तोड़ना पड़ा तथा दूसरी तरह के व्यवहार भी पंचों की आज्ञा से बन्द करना पड़े उनपर पंचों को चाहिये कि वे फिर विचार करें। जिन्होंने हमारा विरोध किया, उनका भी हमें तो विरोध नहीं करना चाहिये। सारी कटुता को भुलाकर अब हमें सबसे प्रेमपूर्वक हिलना-मिलना चाहिये। बारडोली के किसानों को अब इस बात के समझाने की जरूरत तो नहीं होनी चाहिये।"

सरदार पटेल ने उपर्युक्त निवेदन इसी आशा से प्रकट किया था कि सत्याग्रही कैदी मुक्त कर दिये जायँगे, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि समझौता हो जाने के बाद दो-तीन दिन बीत जाने पर भी कैदियों के छूटने के कोई आसार ही नजर नहीं आये। बात यह हो गई थी कि सरकार को अभी तक यही सन्देह था कि सरदार पटेल ने सरकार की सुलह की शर्तों को पसन्द किया या नहीं। इसलिये इस बात का निश्चय करने की मंशा से सरकार ने कलक्टर को सरदार साहब के पास भेजा। जब सरदार पटेल ने कलक्टर से कहा कि वह तो सत्याग्रह-खबर पत्र में कभी से अपना सन्तोष व्यक्त कर चुके हैं, तो कलक्टर ने सरकार को तार द्वारा इसकी सूचना दे दी और उस गलती को दुरुस्त करने के लिये कहा।

दूसरे ही दिन सारे सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। तलाटियों के लिये सरदार पटेल ने एक दरख्वास्त का मसविदा बना कर दे दिया जिसे कलक्टर ने कबूल कर लिया और उन्होंने तत्काल सारे सत्याग्रहियों को अपनी-अपनी नौकरी पर वापस ले लिया। अब तो केवल लगान जमा कर देने की बात रही। श्री वल्लभभाई की आज्ञा होते ही किसानों ने इतनी तेजी से लगान अदा करना आरम्भ कर दिया

कि लगान जमा करने वाले कारकुन थक गये। १ माह में सारा लगान अदा कर दिया गया।

समझौता हो जाने के बाद ही सरकार के पक्षपातियों ने वल्लभभाई और सत्याग्रह के विषय में अनर्गल प्रलाप करना आरम्भ किया। उनका इरादा यह था कि जाँच-समिति के सदस्यों के दिमाग यदि अभीसे खराब कर दिये तो जाँचमें सरकारकी ही जीत रहेगी। इस झूठे प्रचार के परिणामों को देखते हुए वल्लभभाई ने रेवेन्यू मेम्बर से पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। सरकार मि० डेविस को—जो सरकारी जुडीशियल सर्विस से सम्बद्ध थे—जाँच-समिति का अध्यक्ष नहीं बनाना चाहती थी। वल्लभभाई चाहते थे कि अध्यक्ष वे ही रहें। सरकार ने अन्त में श्री ब्रूमफील्ड और मैक्स वैल को जाँच-समिति का अध्यक्ष घोषित कर दिये। और पटेल साहब को लिखा कि आप यदि मुझसे मिलने का कष्ट करने को तैयार हों तो में आपको मि० डेविस के न रखने का कारण बता सकूंगा। वल्लभभाई ने पूना जाना इसलिये स्वीकार कर लिया कि जाँच-समिति में यदि महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं रहे तो सब किया कराया चौपट हो जायगा। वल्लभभाई ने मि० डेविस की नियुक्ति पर बेहद जोर दिया पर रेवेन्यू मेम्बर ने यह कह कर अपनी असमर्थता प्रकट करदी कि सरकार जाँच-समिति के सदस्यों आदि के नाम घोषित कर चुकी है और अब उसमें परिवर्तन करना उचित नहीं होगा। अन्त में रेवेन्यू मेंबर गवर्नर से मिलकर दौड़े हुए वल्लभभाई के पास आये और गवर्नर की तरफ से उन्हें विश्वास दिलाया कि जाँच पूर्ण स्वतन्त्र और बिलकुल ही निष्पक्ष होगी। गवर्नर ने रेवेन्यू मेंबर को इतनी जल्दी पटेल साहब से मिलने भेजा कि कहीं वे पूना से लौट न जायँ। इससे स्पष्ट है कि सरकार समझौता करने को अत्यन्त ही उत्सुक थी। फिर भी पटेल साहब ने अपने पत्र-व्यवहार के अन्तिम पत्र में रेवेन्यू मेंबर को साफ ही लिख दिया कि—

"यदि जाँच के सिलसिले में किसी भी अवसर पर मुझे यह ज्ञात हो जायगा कि न्याय नहीं हो रहा है और यदि जाँच के बाद मुझे यह महसूस होगा कि जाँच-समिति ने निर्णय देने में अन्याय किया है तो मैं फिर युद्ध छेड़ देने के लिये बिलकुल स्वतन्त्र हूँ।"

ब्रूमफील्ड तथा मेक्सवैल जाँच-समिति ने जाँच के बाद यह निर्णय दिया कि किसानों की सभी शिकायतें सही थीं और लगान बढ़ाकर तथा जमीनों को ऊँचे वर्गों में चढ़ाकर सरकार ने घोर अन्याय किया है। दोनों ताल्लुकों का बढ़ा हुआ लगान १८७४६२) रु० था। जाँच-समिति ने जाँच के उपरान्त उसे ४८६४८) रु० कर दिया। इस प्रकार किसान एक लाख चालीस हजार रुपये सालाना की अदायगी से बच गये।

रेवेन्यू मेंबर ने जाँच-समिति की रिपोर्ट पर वक्तव्य देते हुए कहा कि—सरकार ने मामले को खत्म कर देने के लिये कमेटी की कुछ सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि सरकार ने लगान बढ़ाकर कितना घोर अन्याय किया था। सफाई के साथ सत्य को छिपाकर रेवन्यू मेंबर ने जो वक्तव्य दिया था उससे गांधी जी को बुरा लगा और उन्होंने एक वक्तव्य में कहा—

"सरकार की झूठ का कोई इलाज नहीं है। यह मर्ज लाइलाज है। यहाँ तक कि सरकार अब अपने प्रति न्याय करने में भी अयोग्य साबित होती है।"

"नवजीवन" ८ अगस्त १९२९

बारडोली की विजय पर "यंग इण्डिया" में एक लेख लिखते हुए महादेव देसाई ने लिखा था—

बारडोली का समझौता सत्य और अहिंसा की विजय है। यह सरदार पटेल की तीसरी विजय और स्वराज्य के मार्ग में उनके द्वारा

तय की हुई तीसरी मंजिल है। नागपुर की विजय एक सैद्धान्तिक अधिकार की स्थापना थी। बोरसद की विजय, जो एक छोटी-सी और तेज लड़ाई के साथ मिली हुई थी, एक स्थानीय शिकायत को दूर करने के लिये थी यद्यपि उसके समान सम्पूर्ण और तत्काल विजय मिलना मुश्किल है तथापि अपनी असाधारण जल्दी के कारण ही वह बारडोली के समान राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी। बारडोली की विजय की असाधारणता इस बात में थी कि उसने केवल भारत का ही नहीं तमाम साम्राज्य का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित कर लिया था और जनता की मांग में जो विनय और न्याय था, उसने सारे राष्ट्र के हृदय को अपने पक्ष में कर लिया था। उसकी विशेषता इस बात में है कि भारत के सौम्य से सौम्य ताल्लुके द्वारा प्राप्त की गई है। और उसने रेवेन्यू विभाग जैसे विभाग की सीमा पर आक्रमण किया है जिसको स्पर्श करने की देवताओं को भी हिम्मत नहीं होती थी। बारडोली की विजय की विलक्षणता फिर इस बात में है कि उसने उस सरकार को १४ दिन में ही झुका दिया, जिसने उसे बरबाद कर देने की प्रतिज्ञा की थी। तीन-चार वर्ष से देश में जो शिथिलता आगई थी, अन्तः कलह के कारण देश की जो दुर्दशा हो रही थी, ऐसे ही समय बारडोली ने अपनी विजय द्वारा देश की निराश जनता में ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक निराश नेताओं में नवीन प्राण डाल दिये। इसके सेनानायक व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को तिलांजलि देकर सत्य और न्याय के लिये लड़े और प्रान्त के गवर्नर ने भी, जो कुछ समय जक तो व्हाइट हाल के इशारे पर नाचता नजर आया, बाद में उसने व्यक्तिगत रूप से जो भी कुछ बन पड़ा, शान्ति-स्थापना के लिये किया। यहाँ तक कि शान्ति-स्थापना के लिये ही उन्होंने अपने दंभ को जब्त कर लिया।"

इस प्रकार संसार के इतिहास में एक अपूर्व युद्ध निर्विघ्न समाप्त हो गया। एक संसार विजयी सत्ता और एक छोटे से ताल्लुके के

मुट्ठी भर लोगों के बीच सशस्त्र युद्ध की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। पर कहीं सशस्त्र युद्ध छिड़ता भी तो ये मुट्ठी भर निहत्थे किसान भला उस शस्त्रास्त्र से सुसज्जित फौज का क्या मुकाबिला कर सकते थे? पर इस निःशस्त्र प्रतिकार ने—सत्याग्रह ने—वह करके दिखा दिया जो आज तक असम्भव माना जाता था। बारडोली की विजय ने संसार के इतिहास में एक नये अध्याय को आरंभ कर दिया।

विजय का परिणाम

१६३१ की अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के करांची अधिवेशन के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल हुए। इसका सीधा और सच्चा मतलब यही हुआ कि देश की राजनीति को एक किसान के पथ-प्रदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता थी। बारडोली का सरदार सम्पूर्ण भारत का सरदार बन गया। इसमें शक नहीं की बारडोली ने ही भारतीय किसानों का नेतृत्व किया था अतः उसके नेता को अब सम्पूर्ण भारत की जनता के नेतृत्व का सम्मान प्राप्त होना स्वाभाविक ही था। साथ ही, सरकार वल्लभभाई पटेल की जन्म भूमि गुजरात ने सत्याग्रह आन्दोलन के लाहौर अधिवेशन और करांची अधिवेशन के बीच के समय मे यथेष्ट बहादुरी और साहस का परिचय दिया था, अतः सरदार पटेल इस सम्माननीय पद के अधिकारी स्वभावतः ही हो चुके थे।

सत्याग्रह के दिनों में गुजरात साम्राज्यवादी निरंकुशताओं

और दमन के कारण सजीव नरक हो रहा था। दमन और अत्याचार इस कदर बढ़ गये थे कि सरदार पटेल की अस्सी साल की वृद्ध माता के साथ भी दुर्व्यवहार करने में अंग्रेज पुलिस अधिकारी नहीं चूके। पटेल साहब की वृद्ध माता उस समय चावल पका रही थीं जब पुलिस के लोगों ने उनके दरवाजे को खटखटाया। दरवाजा खुलते ही पुलिस चौके में घुस गयी। चावल का बरतन पुलिस ने ठोकरों से उड़ा दिया, और चावलों को जूतों से कुचल डाला।

अन्त में गान्धी-इरविन समझौता हो गया और सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

इसके बाद ही अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के करांची अधिवेशन के अध्यक्ष सरदार पटेल निर्वाचित हुए। बारडोली के विजेता वीरवार सरदार पटेल वास्तव में इस सर्वोच्च सम्मान के अधिकारी भी थे। उन्हीं दिनों भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को भारत सरकार ने फांसी पर लटका दिया। उन तीनों वीरों को बचाने के लिये देश भर ने आवाज बुलन्द की, पर भारत सरकार ने एक की नहीं सुनी। महात्मा गांधी ने भी जोरदार कोशिश की पर उसका भी कोई फल नहीं निकला। यह मानी हुई बात है कि इन वीरों को खोकर जनता खिन्न हुई बैठी थी। इसी उदासी एवं खिन्नता से भरे हुए वातावरण की पृष्ठ भूमि के साथ ही करांची अधिवेशन हुआ। सरदार पटेल ने उस समय के वातावरण का जिक्र करते हुए लिखा है कि—

"देश भर के तीव्रतम विरोध के बावजूद भी इन तीनों वीरों को फांसी पर लटका कर सरकार ने जिस हृदयहीनता एवं विदेशीपन का परिचय दिया है, वैसा उदाहरण इसके पहिले खोजने पर भी नहीं मिलेगा।"

कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये सरदार पटेल का चुनाव

गुजरात के अभूत पूर्व त्याग और बलिदान का सर्वोत्तम पुरस्कार था। बारडोली अपने त्याग, बलिदान एवं कष्ठ सहिष्णुता के कारण भारत ही नहीं विश्व के इतिहास में अपना स्थान सुरक्षित कर चुका है। महात्मा गांधी के बाद उस समय के राजनीतिक भारत में पटेल साहब से अधिक प्रभावशाली दूसरा कोई नेता नहीं था। पटेल साहब को भारत के नये विधान के विषय मे रत्ती भर भी दिलचस्पी नहीं थी।

सरदार वल्लभभाई पटेल किसानों के सब से अनुभवी एवं तपे हुए नेता है। उन्हें हमेशा यही दुख रहा कि भारतीय किसान समय से बहुत ही पिछड़े हुए है। भारत में ८० फीसदी किसान हैं अतः भारत के वास्तविक नागरिक किसान ही हैं। भारत में जो कुछ भी प्रगति होना जरूरी है उसका मुख्य लक्ष्य किसानों का हित ही होना चाहिये। जो कार्य किसानों की प्रगति के लिये नहीं, उसका भारतीय राजनीति मे किंचित ही मान हो सकता है। इंगलैण्ड द्वारा बना हुआ भारतीय विधान भारत के लिये महज चिराग की रोशनी के समान ही था।

लाहौर अधिवेशन में सर्वत्र ही पंडित मोतीलाल नेहरू का व्यापक एव सशक्त प्रभाव दृष्टि गोचर हो रहा था, पर अब वे इस दुनिया में नहीं थे अतः करांची अधिवेशन उनकी सूझ, बुद्धिमत्ता, दृढ़ता एवं अपूर्व साहस से एक दम वंचित रहा। पंडित मोतीलाल नेहरू इस दृढ़ विश्वास को लेकर कि "शीघ्र ही भारत स्वतंत्र हो जायेगा" स्वर्ग सिधार चुके थे। भगतसिंह तथा उनके बहादुर साथियों की फांसी तथ मोतीलाल जी नेहरू जैसे चोटी के नेता की मृत्यु से देश की राजनीतिक स्थिति क्षुब्ध थी। सारा भारत-राष्ट्र वास्तव में शोक मग्न हो रहा था। साथ ही कानपुर के भीषण दंगे ने राष्ट्रीय दिमागों को भी विचलित कर दिया था। परिणामतः जहाँ अधिवेशन

शानदार होना चाहिये था वहाँ देश की भयंकर स्थिति हो जाने के कारण अधिवेशन की शान शौकत तो फीकी पड़ ही चुकी थी, पर साथ ही नेताओं के हृदय दुखी होने के कारण अधिवेशन के तमाम कार्य-क्रम भी संक्षिप्त कर दिये गये थे। यह संक्षिप्तता सरदार पटेल के किसान-स्वभाव के अनुरूप ही थी। सरदार किसान अध्यक्ष थे अतः सादगी आवश्यक ही थी अधिवेशन ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई किसान सम्मेलन हो रहा हो।

किसान अध्यक्ष सरदार पटेल ने अपने भाषण में अभूतपूर्व विनयशीलता का परिचय दिया। उनके सम्पूर्ण भाषण में राजनीतिज्ञ का बांकापन बिलकुल ही नहीं था। वैसे तो कांग्रेस और सरकार में समझौता हो चुका था किन्तु वायुमण्डल में घटनाएँ इतनी तेजी से घटती जा रही थीं कि नेताओं को किसी समय भी वातावरण के अत्यन्त क्षुब्ध होजाने का पूरा-पूरा अन्देशा था। द्वितीय राउन्ड टेबल कान्फ्रेन्स में कूटनीति का बोलबाला था। सरदार पटेल सरकार के समझौते से स्वयं भी नाराज थे, साथ ही वे स्वभावतः अंग्रेज की राजनीतिक प्रतिज्ञाओं और वचनों पर विश्वास करने वाले व्यक्ति कभी नहीं रहे। पटेल साहब मार्क्सवाद पर भी विश्वास नहीं करते। जमीदारों और जागीरदारों के द्वारा गरीब किसानों की देश में जो दयानीय परिस्थिति हो रही है उसके विरुद्ध सरदार पटेल ने जोरदार आवज उठाई थी। अतः जमीदार तथा जागीरदार उनके दुश्मन हो गये थे। किन्तु गान्धीजी की तरह ही सरदार पटेल उस समय जागीरदारी को समूल नष्ट कर देने को तैयार नहीं थे।

करांची के अधिवेशन में सबसे महत्वपूर्ण बात थी— "व्यक्ति के मूलभूत अधिकार एवं कर्तव्य" वाले सुप्रसिद्ध प्रस्ताव का स्वीकृत होजाना।

"व्यक्ति के मूलभूत अधिकार एवं कर्तव्य—प्रस्ताव पर करांची अधिवेशन में ६, ७ और ८ अगस्त को बहस हुई और "आर्थिक

योजना" के प्रस्तावों के साथ यह स्वीकृत होगये ।

व्यक्ति के मूलभूत अधिकार एवं कर्तव्य—कांग्रेस चाहती है कि जनता यह समझ जाय कि "स्वराज्य" से कांग्रेस का क्या तात्पर्य है। इसलिये कांग्रेस जनता को, कांग्रेस की इस विषय में जो स्थिति है उसे, सरल से सरल शब्दों द्वारा समझा देना आवश्यक समझती है। जनता को बरबादी से बचाने के लिये, राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ लाखों करोड़ों भूखे देशवासियों की आर्थिक स्वतंत्रता भी शामिल होना जरूरी है। अतः कांग्रेस घोषित करती है कि कांग्रेस जिस विधान को स्वीकार करे या जिससे रजामन्दी जाहिर करे, उसमें या उसके साथ निम्नलिखित भी सम्मिलित माना जायगा—

१—अ— भारत के प्रत्येक नागरिक को अपनी स्वतंत्र राय जाहिर करने, मेल मिलाप करने व सम्मिलित होने का पूरा अधिकार है। और नैतिकता एवं कानूनी मर्यादाओं के अन्दर शान्तिपूर्ण, तरीके से, बिना हथियारों के कहीं भी एकत्रित होने का पूरा अधिकार है।

आ—प्रत्येक नागरिक को अपने विवेक को उपयोग में लाने, व्यवस्था और नैतिकता को कायम रखते हुए अपने धर्म क पालन करने एवं घोषित करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी।

इ—अल्पसंख्यकों की संस्कृति, भाषा, लिपि आदि एवं अन्य भाषा से सम्बद्ध क्षेत्रों की सुरक्षा की जावेगी।

ई—धर्म, जाति, लिंग एवं विश्वासों को छोड़कर कानून की दृष्टि में सभी नागरिक बराबर माने जायेंगे।

उ—नौकरी, पद, प्रतिष्ठा अथवा रोजगार तथा धन्धों आदि में नागरिक अपने धर्म, जाति, लिंग एवं विश्वासों की भिन्नता के कारण अयोग्य नहीं माने जायेंगे।

ऊ—सभी नागरिकों को कुए, तालाबों, सड़कों, स्कूलों, जनता के विश्राम स्थलों—चाहे वे स्थानीय खर्च से संचालित या

निर्मित हों या सरकारी रकम से या श्रीमन्तों द्वारा जनता के उपयोग के लिये खोल दिये गये हों—के सम्बन्ध में समान अधिकार होंगे।

ए—हर एक नागरिक को तत्सम्बन्धी कानूनों, रोकों आदि का खयाल रखते हुए हथियार रखने या धारण करने की पूरी स्वतंत्रता होगी।

ऐ—किसी भी नागरिक की स्वतंत्रता छीनने का किसी को हक न होगा। न कोई किसी के रहने का स्थान व जायदाद को बिना उसकी मरजी या कानून की शक्ति से छीन सकता है, बरबाद कर सकता है या नीलाम कर सकता है।

ओ—राष्ट्र किसी के धर्म के मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहता। वह सब धर्मों के साथ समान बरताव करेगा।

औ—निर्वाचन संयुक्त वालिग मताधिकार के आधार पर होगा

क—राष्ट्र आरंभिक शिक्षण को आवश्यक मानकर शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था करेगा।

ख—राष्ट्र किसी को भी उपाधि प्रदान नहीं करेगा।

ग—सख्त दंड किसी को भी नहीं दिया जायेगा।

घ—प्रत्येक नागरिक तमाम देश में घूमने, बसने, जायदाद खरीदने व स्थापित करने, उद्योग व धन्धों का व्यापार करने के लिये स्वतंत्र होगा। तमाम देश में उसे समान संरक्षण और वैधानिक समान सहायता प्राप्त होगी।

श्रम—

२— च—आर्थिक जीवन की व्यवस्था न्याय के सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। जीवन यापन का धरातल समुन्नत कर देना ही इसका चरम लक्ष्य होना चाहिये।

छ—राष्ट्र मजदूरों के हितों की रक्षा करेगा। उनके लिये, उचित

विधान द्वारा या अन्य तरीकों द्वारा उचित मजदूरी, काम, काम के घण्टे, मजदूरों और पूंजीपतियों के झगड़े निबटाने के लिये निष्पक्ष पंच और वृद्धावस्था, बीमारी तथा बेकारी में उनकी यथेष्ट सहायता प्रदान करने की व्यवस्था भी करेगा।

३—श्रम को सामन्तशाही की ओर ले जाने वाली स्थिति से मुक्त रखा जायगा।

४—मजदूरनियों की रक्षा की जायेगी, खासकर उन्हें प्रसूति काल में छुट्टी देने की माकूल व्यवस्था की जायेगी।

५—स्कूल में जाने योग्य बच्चों से खानों और कारखानों में काम नहीं लिया जायेगा।

६—किसानों और मजदूरों को अपने हितों की रक्षा के लिये संघ बनाने का अधिकार होगा।

टैक्स तथा व्यय

७— वर्तमान पट्टे, मालगुजारी और किराये की व्यवस्था को आमूल परिवर्तन करना होगा। साधारण आय वाले किसानों को, उनकी मालगुजारी तथा पट्टे आदि में कमी करके शीघ्र ही उन्हें सरकारी भार से मुक्त करते हुए, खेती की जमीन के सभी किसानों पर समान भार पड़ने की व्यवस्था करना होगा। साथ ही जो जमीन जोती नहीं जाती उनका सरकारी महसूल आवश्यकतानुसार माफ कर दिया जाना जाहिये। जहाँ तक हो किसान की जमीन की आय के अनुसार ही सरकार को कम से कम मालगुजारी लेना चाहिये। इसके लिये जमीन की आय के अनुसार श्रेणी विभाग करके ही मालगुजारी तै करना चाहिये।

८— मृत्यु कर जायदाद की स्थिति को देखते हुए कम-से-कम लिया जाना चाहिये।

९— मालगुजारी आदि की सरकारी आमदनी को वर्तमान से आधी कर देने के लिये सरकार के फौजी खर्च को उसी परिमाण में शीघ्र ही कम कर देना चाहिये।

१०—सिविल विभागों की तनख्वाहों और खर्चों को अधिक से अधिक परिमाण मे कम करना होगा। किसी भी सरकारी नौकरों को—विशेषज्ञों को, जिन्हें खास तौर पर रखा गया है, छोड़कर—एक निश्चत रकम, जो आम तौर पर ५००) रु० माहवार से अधिक न हो, दी जानी चाहिये।

११—भारत में तैयार किये गये नमक पर किसी प्रकार का महसूल नहीं लिया जायेगा।

आर्थिक और समाजिक योजना—

१२—राष्ट्र को स्वदेशी कपड़े की रक्षा करनी चाहिये। इसके लिये विदेशी कपड़ा और विदेशी सूत का देश में आने देना बन्द कर देना चाहिये। साथ ऐसी योजनाएँ भी निर्माण करना चाहिये जिनमें विदेशी कपड़ो को देश में प्रोत्साहन न प्राप्त हो सके। राष्ट्र को आवश्यकतानुसार अन्य देशी धन्धों को प्रोत्साहन देना व विदेशी व्यवस्थाओं का वहिष्कार कर देना चाहिये।

१३—मादक पदार्थ, शराब और दवाइयों का मूलतः वहिष्कार कर देना चाहिये। यदि ये दवाइयों के कार्य के लिये आवश्यक हों तो काम में ली जा सकती हैं।

१४—करेन्सी और एक्सचेन्ज राष्ट्रीय हित की दृष्टि से नियमित कर दिये जाने चाहियें।

१५—राष्ट्र को मुख्य व्यवसायों, उद्योगों, नौकरियों, खानों से निकलने वाली धातुओं, रेलों, जलमार्गों, जहाज रानी तथा अन्य यातायात के साधनों आदि पर अधिकार कर लेना या उन्हें अपने हाथ में ले लेना चाहिये।

१६—खेती सम्बन्धी कर्जों तथा अप्रत्यक्ष में लिये जाने वाले सूद से किसानों को मुक्त करना चाहिये।

१७—नियमित फौजी तालीम के अलावा राष्ट्र को नागरिकों को फौजी शिक्षा देने की व्यवस्था करना चाहिये जिससे वे राष्ट्र की हिफाजत कर सकें।

कृषि सम्बन्धी योजना

प्रस्ताव नं० १२ लखनऊ कांग्रेस अप्रैल १९३६

कांग्रेस की राय है कि देश की अत्यन्त महत्वपूर्ण और अत्यन्त जरूरी समस्या है—जबरदस्त भुखमरी, बेकारी और कृषिकर्मियों की कर्जदारी, जो सरकार द्वारा लगायी गयी अन्यायपूर्ण मालगुजारी तथा अन्य भारी टैक्सों के कारण भीषणतम रूप धारण कर चुकी है। यह पिछले सालों कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के भावों के बेहद गिर जाने से और भी भयंकर हो गई है। इस विकट समस्या से सुलझाने का उपाय यही है कि अंग्रेजी साम्राज्यवादी शोषण को एकदम बन्द कर दिया जाय तथा जमीन की पट्टों देने की प्रणाली तथा मालगुजारी आदि को आद्योपान्त परिवर्तित कर दिया जाय और राष्ट्र, देहातों की बेकारी की समस्या को निबटाने के लिये स्वयं कटिबद्ध हो जाय। यह मानी हुई बात है कि मालगुजारी तथा पट्टाबन्दी आदि की व्यवस्था हर प्रान्त में अलग-अलग है अतः यह अवश्यक है कि तमाम प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों तथा किसान सभाओं से, जिन्हें राष्ट्रीय महासभा की कार्य समिति उचित समझे, सम्बन्ध

स्थापित करके अखिल भारतीय कृषि-योजना तथा हर प्रान्त के लिये अलग-अलग कृषि योजना का निर्माण किया जाये। अतः यह कांग्रेस चाहती है कि तमाम प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियाँ अपनी पूरी विस्तृत योजनाएँ ३१ अगस्त १६३६ तक भेज दें ताकि वे समस्त योजनाएँ विचार करने के लिये अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के सामने रखी जासकें। प्रान्तीय कमेटियों को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है—

१— किसनों और खेतों में मजदूरी करने वालों को उनके दल निर्माण में स्वतन्त्रता दी जाय।

२— जहाँ किसान, राष्ट्र और स्वयं के मध्य बीच वान जैसी स्थिति मे है वहाँ उनके हितों के रक्षण का पूरा खयाल रखा जाय।

३— किसानों को उनके कर्ज, मालगुजारी महसूल और किराये की अदायगी से न्यायपूर्वक मुक्ति दी जानी चाहिये।

४— जागीरदारों तथा जमीदारों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष महसूलों से किसानों को बचाना चाहिये।

५— लगान तथा मालगुजारी की दरों में आवश्यक कमी होनी चाहिये।

६— देहातों के आर्थिक, सामाजिक एवं संस्कृतिक सुधारों के लिये राष्ट्र को एक आवश्यक रकम अलग नियत कर देना चाहिये।

७— घरेलू तथा कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जो स्थानीय कुदरती साधन उपलब्ध हों, उनके उपयोग में सरकार को निष्कारण रुकावट नहीं पैदा करनी चाहिये।

८— सरकारी नौकरों तथा जमीदारों के जुल्मों से किसानों की रक्षा करनी चाहिये।

९—ऐसे उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिये जिससे देहातों की बेकारी दूर हो जाय।

किसान राष्ट्रपति श्री वल्लभभाई पटेल का अध्यक्ष पद से भाषण

करांची कांग्रेस १६३१

दोस्तो ! अपना भाषण आरंभ करने के पहिले मैं. श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा उनके कुटुम्ब के तमाम सदस्यों के प्रति पण्डित मोतीलालजी नेहरू की दुखद मृत्यु से उत्पन्न महान हानि के लिये हार्दिक संवेदना प्रकट करता हूँ । मैं जानता हूँ कि उनका महान दुख बहुत कुछ न्यून हो चुका है क्योंकि सम्पूर्ण देश ने उस विपत्ति में उनका हाथ बँटाया है। मोतीलालजी की हमें इस समय कितनी अधिक आवश्यकता थी यह तमाम देश और खास कर महात्मा जी खुद अनुभव कर रहे हैं क्योंकि इस समय दिल्ली में बहुत ही गँभीर विचार विनिमय सरकार के साथ चल रहा है। अभी हम मौलाना मुम्हमद अली की दुखद मृत्यु के आंसू सुखा भी नहीं पाये थे कि यह दूसरा बज्रपात हो गया। माना कि कुछ समय से मौलाना साहब हम से अलग से हो गये थे, किन्तु देश के प्रति एक महान देशभक्त के रूप में उनकी सेवाएँ, उनका साहस, जो कुछ उनकी धारणाएँ रहीं उनको बिलकुल स्पष्ट शब्दों में सामने रख देने की उनकी अपूर्व वीरता कभी भी भुलायी नहीं जा जकती। मैं श्रीमती बेगम साहिबा, मौलाना शौकत अली तथा उनके समस्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक सम्वेदना प्रकट करता हूँ। इसी सिलसिले में मैं उन अपरिचित, अनामा वीरों को भी आदर के साथ याद करता हूँ जिन्होंने अपनी प्रसिद्ध की कोई परवाह न करते हुए पिछले १२ महीनों में अहिंसात्मक आन्दोलन में देश के लिये अपनी अमूल्य जानें दे दीं। मैं हृदय से कामना करता हूँ कि उनकी आत्माओं को परम शान्ति प्राप्त हो तथा उनकी कुरबानी हमेशा हमें उनसे भी अधिक शानदार बलिदान और त्याग के लिये प्रेरित और प्रोत्साहन करती रहे।

आपने मुझ किसान को उस उच्चतम आसन पर लाकर बैठा दिया है जिसे प्राप्त करने में किसी भी भारतीय को महानतम गर्व प्राप्त हो सकता है। मैं बखूबी जानता हूँ कि मुझे देश का सर्वप्रथम सेवक निर्वाचित करने में आपने मेरी स्वल्पतम सेवाओं पर इतना ध्यान नहीं दिया है जितना कि आपने उस आश्चर्यजनक त्याग को मद्दे नज़र रखा है जो पिछले साल गुजरात ने किया है। यह आपकी महानतम उदारता का ही उदाहरण है कि आपने मुझे इस पद पर आसीन करके समस्त प्रान्तों से अधिक गुजरात का सम्मान किया है। लेकिन सचाई तो यह है कि वर्तमान समय के सबसे ज्यादा प्रसिद्ध राष्ट्रीय उत्थान के इस साल में सभी प्रान्तों ने यथाशक्ति त्याग और बलिदान का परिचय दिया है। और ईश्वर को धन्यवाद है कि हमारी जागृति हमारी आत्म-शुद्धि के लिये एक आमन्त्रण सिद्ध हुई।

लोगों के दिलों में कुछ भी सन्देह रहा हो, लेकिन यह एक वास्तविक सत्य है कि सामूहिक अहिंसात्मक आन्दोलन महज कल्पना में विचरण करने वाले व्यक्ति का स्वप्न या साधारण-सी मानवी कल्पना भर नहीं है। इसकी प्रामाणिकता अब सारे विश्व को व्यक्त होचुकी है। यह उस मानव जाति के लिये एक ठोस सत्य है जो हिंसा के भार से दबकर सत्य, श्रद्धा और आत्मविश्वास की प्राप्ति के लिये बुरी तरह कराह रही है। हमारे आन्दोलन के अहिंसात्मक होने का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि हमारे किसानों ने जालिमों के आतंक और भय को हमेशा के लिये असत्य प्रमाणित कर दिया। हमसे कहा जाता था कि अहिंसात्मक आन्दोलन के लिये सामूहिक रूप से तैयार होजाना बहुत ही कठिन कार्य है लेकिन हमारे किसानों ने जिस अदम्य साहस, बहादुरी और सहिष्णुता का परिचय दिया वह कल्पनातीत है। हमारे अहिंसात्मक संग्राम में स्त्रियों और बालकों ने भी बहुत बड़ा भाग लिया। उन्होंने हमारी पुकार सुनी और वे साहस

के काम किये जिन्हें हम उनके अत्यन्त निकट होने के कारण कल्पना में भी नहीं ला सकते। मैं समझता हूँ कि यदि मैं उन्हें ही इस संग्राम की सफलता का अत्यधिक श्रेय प्रदान करूँ और कहूँ कि उन्होंने हमारे संग्राम को शुद्ध अहिंसात्मक ही रखा तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। अहिंसा की दृष्टि से देखने पर हमारा युद्ध विश्वयुद्ध है और हमें इस बात का परम सन्तोष है कि विश्व की जातियों ने, खासकर संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपनी सहानुभूति द्वारा हमें प्रोत्साहन प्रदान किया है।

वर्तमान समझौते को देखते हुए हमारे राष्ट्रीय जीवन के इस वीरता से भरे हुए समय पर ज्यादा प्रकाश डालना अनावश्यक-सा है। आपकी रजामन्दी के पूर्वाभास पर ही आपकी कार्यकारिणी ने समझौता कर लिया है। अब आप जाब्ते की पूर्ति के लिये यहां बुलाये गये हैं। कार्यकारिणी के सदस्य आपके ही प्रतिनिधि हैं। यदि आप इस समझौते को स्वीकार करते हैं, तो करलें, यदि आप इसे अस्वीकार करें, तो आप वैसा भी कर सकते हैं पर ऐसा आप तभी कर सकते हैं जब आप यहीं, इस खुले अधिवेशन में, उन सदस्यों के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पास करदें और दूसरे उनसे अच्छे प्रतिनिधि चुन दें। आप जो चाहें सो करें पर मैं इसके पहिले आपके सामने वैधानिक स्थिति स्पष्ट कर देना बहुत जरूरी समझता हूँ। मुझे इस बात के कहने में कोई भी आपत्ति नहीं है कि आप इस समझौते को अवश्य ही स्वीकार करेंगे जो दोनों दलों के लिये, मेरी राय में, अत्यन्त ही सम्मानपूर्ण है। यदि हमने यह समझौता स्वीकार न किया होता तो हम निश्चित रूप से गलती पर होते और इस तरह हम हमारे सालभर के त्याग और कुरबानियों को बरबाद कर चुके होते। इसमें कोई शक नहीं कि सत्याग्रही की हैसियत से हम हमेशा ही शान्ति के इच्छुक रहे हैं और उसे प्राप्त करने के लिये हर प्रकार का त्याग करने को तत्पर हैं। अतः जब हमें शान्ति का मार्ग

दिखाई दिया तो हम उस पर आरूढ़ होगये। राउन्ड टेबल कान्फरेंस में ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा की गई पूर्ण जिम्मेदारी की स्पष्ट मांग तथा ब्रिटिश लोगों द्वारा हमारी स्थिति पर की गई स्वीकृति तथा ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री, वायसराय और देश के प्रमुख राजनीतिज्ञों द्वारा कांग्रेस से की गई अपील को मद्देनजर रखते हुए कार्यकारिणी ने सोचा कि यदि सम्मानपूर्ण समझौता होसके और यदि बिना किसी दबाव के देश उसे इस समय के लिये सर्वोत्तम मार्ग समझ कर स्वीकार करले तो कांग्रेस, यदि वह कान्फरेन्स में आमन्त्रित की जाय तो अवश्य भाग लेगी और वैधानिक समस्या के सर्व स्वीकृत समझौते को अवश्य ही मान्य कर लेगी। यदि हम इस कार्य में असफल रहें तो हमारे सामने कष्ट भोगने का रास्ता खुला पड़ा है और दुनिया की कोई भी ताकत हमें उस पथ से विमुख नहीं कर सकती। समझौते के वैधानिक भाग में हमारे लिये यह खुला हुआ है कि हम पूर्ण स्वराज्य की मांग करते रहें और हमारी रक्षा करने वाली फौजों विदेशी मामलों, राजस्व, तथा सरकारी आय आदि के लिये लड़ते रहें। हमारे सभी हित सुरक्षित हैं, जैसे कि पंडित मोतीलालजी उन्हें "सुधार" कहते थे। जब समझौते के द्वारा शक्ति एक के हाथ से दूसरे के हाथों में जाती है तो जरूरत या सहायता के लिये दलों के हित सुरक्षित रखे जाने का नियम है। दो शताब्दियों के शोषण से हमारे लिये यह आवश्यक होगया है कि कई मामलों में हमें बाह्य साधनों की सहायता लेना ही जरूरी है। ऐसी मदद हम खुशी से अंग्रेजों से लेने को तैयार हैं, यदि वे इसके लिये रजामन्द हों। हमें फौजी कौशल को बाहर से ही सीखना होगा। यदि इस कार्य में हम अंग्रेजों से सहायता लें तो मुझे कोई आपत्तिजनक बात नजर नहीं आती। मैंने यहाँ आपको सिर्फ एक ही ज्वलन्त उदाहरण पेश किया है। इसमें शक नहीं कि हमारे संरक्षण का हित ब्रिटिश आफीसरों तक ही सुरक्षित है। ऐसा सभी, यहाँ तक कि बाहरी लोग भी मानते

हैं, फिर भी हम हमारे सुरक्षा के प्रश्न को उन पर नहीं छोड़ सकते। हम सुरक्षा विभाग को उनके अधिपत्य में नहीं रहने देना चाहते। हमें गलती करने की पूरी शक्ति मिलनी ही चाहिये। हम कृतज्ञतापूर्वक ब्रिटिश लोगों की सलाह मानने को उद्यत हैं, पर हम उनके अनुगामी नहीं बन सकते। सत्य यह है कि भारत में जो ब्रिटिश फौज है वह नौकरी करने वाला दल है। हमारी रक्षा यह तो एक भूल-भुलैया मात्र ही है। यदि स्पष्ट ही कहा जाय तो ब्रिटिश फौज हमारी रक्षा के लिये नहीं वरन् भारत में अंग्रेजों के हितों को, उनकी स्त्रियों और बच्चों को आन्तरिक हलचलों से बचाये रखने के लिये है। मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं आता जब भारतीय सेना विदेशियों से देश को बचाने के काम में लगाई गई हो। यह सच है कि सीमान्त प्रदेश में हमले और और अफगानिस्तान से युद्ध भी हुए। हमें अंग्रेज ऐतिहासिकों ने यही सिखाया है कि ये युद्ध भारत की रक्षा के बजाय दोनों शक्तियों के बीच के झगड़ों का निर्णय करने के लिये ही हुए थे। अतः हमें विदेशियों की इन बातों में आने व उनकी फौजों की शान शौकत से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरी तो यह राय है कि यदि हमें फौज ही चाहिये तो ऐसी नहीं कि उसके रखने के लिये रोजाना हमारा खून चूस-चूसकर उनका पेट भरा जाय। यदि कांग्रेस के हाथ मे शक्ति हो तो वह अपनी इच्छानुसार फौरन ही उनके खर्चों को बहुत कम करदे।

साथ ही हम ब्रिटिश सरकार और हमारे बीच कभी भी राजस्व के अधिकारों का विभाजन पसन्द नहीं करते। कोई भी राष्ट्र तब तक नहीं पनप सकता जब तक विदेशियों के अधिकार में उसका राजस्व रहे।

हमें इस विषय पर भी विचार करना सिखाया गया है कि यदि हम ऊंची तनख्वाहों वाले ब्रिटिश नौकरशाही के लोगों को सलाह मशविरे के लिये नहीं नियुक्त करेंगे तो हमारा आन्तरिक

शासन अव्यवस्थित और भ्रष्टाचारपूर्ण हो जायेगा। कांग्रेस इन वर्षों में शासन करने की अपनी योग्यता प्रमाणित कर चुकी है और सचाई तो यह है कि हमें इस कार्य के लिये इतने ज्यादा तादाद में युवक और युवतियाँ मिलीं कि हम हैरान थे और वे अपनी सेवाएँ निशुल्क ही हम समर्पित करने को तैयार थे और उन्होंने सफलता पूर्वक सेवाएँ भी भेट कीं। ऐसे निस्पृह व्यक्तियों में भ्रष्टाचार और कुव्यवस्था का क्या भय हो सकता है? यदि इस प्रकार हमारे देश में भ्रष्टाचार बढ़ जाय तो हमारे गरीब देश के पास उसको कायम रखने या पनपने देने योग्य पैसा नहीं है। यह तो हमारे देश के लिये एक जबरदस्त भार होजाय। इसलिये यदि हमारा देश सिविल सरविस के खर्चों में अधिक कमी कर देने की मांग करता है और इस तरह पर सिविल सरविस को ही कम कर देना चाहता है तो यह देश की गरीबी को देखते अत्यन्त आवश्यक भी है।

यह हम दावे के साथ कहते हैं कि भारत पर जो कई रकमों का भार डाला गया है वह पूर्णतया अन्याय है। हमने कभी भी एक भी एहसान को नजरअन्दाज नहीं किया है लेकिन हम पूछना चाहते हैं और निरन्तर यही पूछते रहेंगे कि हमारे देश के नाम कर्ज की शक्ल में जो रकमे डाली गई हैं उनकी निष्पक्ष जांच कराई जावे। हम महज उन्हीं रकमों की जांच के लिये कह रहे हैं जिनके प्रति हमारा विरोध है।

हम लाहौर अधिवेशन के "पूर्ण स्वतन्त्रता" के प्रस्ताव से पीछे नहीं हट रहे हैं। स्वतन्त्रता का मतलब यह नहीं है कि हम ब्रिटेन से या अन्य किसी शक्ति से किसी प्रकार के सम्बन्ध ही नहीं रखें। ऐसा तो उस समय भी हमारा मतलब नहीं था जब हमने लाहौर में यह प्रस्ताव रखा था। अतः स्वतन्त्रता पारस्परिक समान हितों की समान हिस्सेदारी की संभावना से भिन्न चीज नहीं है। यह समान भागीदारी दोनों दलों में से एक की इच्छा पर टूट

भी सकती है। यदि भारत को परामर्शों और समझौतों के जरिये ही आजादी प्राप्त करनी है तो हमारा यह सोचना न्याय संगत ही है कि देश में इस विचार के बहुत से लोग हैं जिनका यह मत है कि भागीदारी की कल्पना करने के पहिले हमें काफी समय तक अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके रहना जरूरी है। मेरा यह मत नहीं है। मेरा खयाल है कि यह मानवी स्वभाव की कमजोरी और अविश्वास की निशानी है।

संघ की कल्पना एक आकर्षक कल्पना है। लेकिन इससे नयी परेशानियों का जन्म होता है। राजा लोग कभी भी सीमित अधिकारों के साथ नहीं रहना चाहेंगे। यदि वे सच्चे दिल से इस कार्य में सम्मिलित हो जाँय तो वास्तव में इससे जबरदस्त लाभ होगा। उनका सहयोग लोकतन्त्र की प्रगति में निश्चित रूप से बाधक नहीं होना चाहिये। अतः मुझे आशा है कि नरेश ऐसा रुख ग्रहण नहीं करेंगे जिससे वे स्वतन्त्रता की भावना से मेल न खा सकें। मैं चाहता हूँ कि नरेश हमें बिना किसी दबाव के ही ऐसा विश्वास दिला दें कि वे हर समय की प्रगति के साथ कदम उठाने को तैयार हैं। सब से पहिले उन्हें अपनी प्रजा को वे मूलभूत नागरिक अधिकार प्रदान कर देने चाहिये जो ब्रिटिश भारतीय प्रजा को प्राप्त हैं। संघीय भारत के तमाम निवासियों को एक समान आरम्भिक नागरिक अधिकारों का उपभोग करना चाहिये। यदि ऐसे अधिकार कायम हो जांय तो ऐसे सामान्य न्यायालयों की भी स्थापना होनी चाहिये जिनमें, उन अधिकारों का यदि दुरुपयोग हो, तो उनका फैसला किया जा सके। साथ ही यह आशा करना भी बहुत अधिक नहीं होगा कि रियासती प्रजा भी किसी हद तक संघीय व्यवस्थापिका सभा में सीधा प्रतिनिधित्व कर सके।

प्रेसके सेंसर शिपके कारण हमें बरमामें वास्तवमें क्या हो रहा है, इसका पता चलाना असम्भव हो गया है। यह निर्णय करना बरमा

के निवासियों का ही काम है कि बरमा भारत से अलग रहेगा या स्वतन्त्र भारत का एक भाग होगा। लेकिन यह सोचना हमारा और यथार्थ में तमाम विश्व का काम है कि बरमा के भाग्य का निर्णय करने के पहिले सभी की बातें अवश्य सुनी जायँ। यह सभी जानते हैं कि बरमा में एक संयुक्त पार्टी (Unionist Party) भी है। जितनी इस पार्टी को अपनी सम्मति देने की स्वतंत्रता है उतनी ही उसे विभाजन की भी स्वतन्त्रता है। इसलिये कांग्रेस को जो सूचना प्राप्त हुई है कि संयुक्त दल की राय को दबा दिया गया है, यदि यह सच है तो इस अन्याय की अवश्य ही रोक होनी चाहिये। मुझे यह सुझाव कि बरमा में जनता की राय जानने के लिये जनमत संग्रह किया जाना चाहिये, न्यायसंगत प्रतीत होता है।

इन सब बातों के पहिले हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य या साम्प्रदायिक एकता का सवाल आता है। इस सम्बन्ध में कांग्रेस की जो धारणा है वह लाहौर अधिवेशन में स्पष्ट कर दी गई थी। यहाँ मैं उस निर्णय को उद्धृत करता हूँ—

"नेहरू-रिपोर्ट के गिर जाने को दृष्टि में रखते हुए साम्प्रदायिक मसलों में काँग्रेस की नीति को स्पष्ट करना अनावश्यक है। कांग्रेस इस बात पर विश्वास करती है कि स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिक सवालों का हल एकमात्र राष्ट्रीय ढंग पर ही हो सकता है। नेहरू-रिपोर्ट में साम्प्रदायिक मसलों को हल करने के लिये जिन उपायों पर प्रकाश डाला गया है, उनसे खास तौर से सिखों और आम तौर पर मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों को असन्तोष रहा। अतः कांग्रेस सिखों, मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों को विश्वास दिलाती है कि कांग्रेस भारत के किसी भी भावी विधान में तत्सम्बन्धी किसी भी हल को तब तक स्वीकार नहीं करेगी जब तक कि सभी अल्पसंख्यक दलों को उस पर पूर्ण सन्तोष न हो जाय।"

अतः कांग्रेस अब ऐसे किसी विधान में सम्मिलित होना नहीं चाहती जिसमें भारत के तमाम अल्पसंख्यकों की साम्प्रदायिक समस्याओं का उनके सन्तोष के लायक हल न हो।

एक हिन्दू की हैसियत से मैं अपने से पहिले के अध्यक्ष के सिद्धान्त का अनुकरण करते हुए अल्पसंख्यकों को स्वदेशी फाउण्टेन-पेन और कागज देकर कहूँगा कि वे अपनी माँगें लिख दें। मैं उन्हें स्वीकार कर लूंगा। मेरी नजर में यही सबसे जल्दी का मार्ग होगा। लेकिन इसके लिये हिन्दुओं में अपार साहस की आवश्यकता है। सचाई तो यह है कि हम हृदय से मेल चाहते हैं न कि तैयार की हुई कागज की एकता, जो जरा सी ठेस लग जाने से नष्ट हो सकती है। ऐसी एकता तभी प्राप्त हो सकती है जब बहुसंख्यक मुक्त हाथों और हृदय से साहस का परिचय दें और अल्पसंख्यकों को दिल खोल कर वह सब देने को उद्यत हो जायँ जो वह चाहते हैं। यह सबसे बड़ी बुद्धिमानी का कार्य होगा। चाहे एकता इस प्रकार मिले या कोई अन्य तरीके से प्राप्त हो। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं यह स्पष्ट होता चला आरहा है कि जब तक एकता कायम न हो जाय तब तक कितनी ही सभाएँ या अधिवेशन क्यों न हों सभी बेकार हैं। कान्फ्रेंस से हम अंग्रेजों के साथ समझौता कर सकते हैं और शायद समझौतों से हम नरेशों के नजदीक भी पहुँच सकते हैं। लेकिन इनसे हम एकता प्राप्त नहीं कर सकते। यह एकता तो केवल हम ही प्राप्त कर सकते हैं। कांग्रेस इस चिर-अभिलाषित तथ्य के प्राप्त करने में कोई भी कोशिश बाकी नहीं रखना चाहती।

यह हम सबको विदित ही है कि कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति में वहीं तक सफल हो सकती है जहाँ तक उसे शक्ति प्राप्त हो गई है यह तो प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि उसे १२ महीनों में काफी शक्ति प्राप्त हो चुकी है लेकिन हमें इतनेसे ही संतुष्ट नहीं होजाना चाहिये क्योंकि यह किसी भी जल्दबाजीके कार्य या गर्वसे फौरन ही नष्ट भी हो सकती

है। जो व्यक्ति अपने मूलधन पर जीवन व्यतीत करता है वह कितने दिन अपना काम चला सकता है। इसलिये हमें चाहिये कि हम अपनी शक्ति बढ़ायें। शक्ति बढ़ाने के लिए एक रास्ता यह भी है कि हमें समझौते की शर्तों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये। दूसरा रास्ता यह है कि हम अपने लाभों का एकीकरण करें। इसलिये मैं यहाँ भी कार्यों के उस अंश पर कुछ कहना चाहता हूँ।

हम विदेशी कपड़े के बहिष्कार के कार्य में आशातीत आगे बढ़ चुके हैं। यह हमारा अधिकार भी है और कर्तव्य भी। यदि यह न होता तो करोड़ों भारतीय भूखों मर चुके होते। क्योंकि यदि सस्ता विदेशी कपड़ा भारतमें खपता रहा तो चरखा उन्नति नहीं कर सकता। इसलिये विदेशी कपड़े का भारत से पूर्ण रूप से बहिष्कार होना ही चाहिये। यदि वह बिना मूल्य भी मिले तो भी हमारे लिये मँहगा है। देहात के लोग जो फसल कट जाने के बाद बेकार हो जाते हैं वे अक्सर ऐसा करते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह बेकारी ही है जो उन्हें भूखों मारती है। इस संक्रामक रोग से बचने का एक ही उपाय यह है कि इन लोगों में काफी प्रोपेगेण्डा किया जाय। यह बेकारी किसानों की आदत में शामिल हो चुकी है। सबसे अच्छा प्रचार यही हो सकता है कि हम स्वयं चरखा चलायें और खद्दर पहिनें। इस दिशा में अखिल भारतीय चरखा सम्मेलन ने काफी प्रशंसनीय कार्य किया है। लेकिन यह कार्य कांग्रेस का ही है कि वह कातने तथा खद्दर के प्रचार का वातावरण पैदा करे। मेरे दिमाग मे विदेशी वस्त्र के बायकाट का इससे उत्तम दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मुझे सुझाया गया है कि विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के लिये जो तर्क दिये जाते हैं वे स्वदेशी मिलों के कपड़े पर भी लागू होते हैं। किसी हद तक यह सही है। लेकिन हमारी मिलों में इतना कपड़ा नहीं बनता जितना हमें जरूरी है। वे उतना कपड़ा हमें भविष्य में दे सकती

हैं जितना हमें हाथ के कते और बुने हुए कपड़े के बाद आवश्यक हो। लेकिन फिर भी हमारी मिलें हमारे लिये जबर्दस्त रुकावट ही साबित होंगी यदि वे खद्दर के साथ प्रतियोगिता करने लगें या ऐसे कार्यों की तरफ झुक जायँ जिसमे उनका माल बाजार में जल्दी खप जाय। यह सौभाग्य की बात है कि कई मिलें देशभक्ति के साथ कांग्रेस के सहयोग से कार्य कर रही हैं और वे लाखों गरीबों के लिये खद्दर की उपयोगिता के विचार को प्रशंसनीय मानने लगी हैं। लेकिन मैं यह बिलकुल सचाई के साथ ही कहता हूँ कि यदि हमारी मिलों ने देशद्रोही के रूप मे खद्दर को हानि पहुंचाई और उसके प्रति सहानुभूति पूर्ण रुख नहीं व्यक्त किया तो उन्हें विदेशी वस्त्र के वायकाट जैसे ही विरोध का सामना करने को उद्यत रहना पड़ेगा।

विदेशी वस्त्रों के व्यापारियों को इस मामले में हमारी कांग्रेस के रुख को दिमाग में उतार लेना चाहिये। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार एक स्थायी चीज है। इसकी उत्पत्ति राजनीतिक अस्त्र के रूप में नहीं वरन जनता के लाभ के लिये आर्थिक और सामाजिक स्थायी लक्ष्य के रूप में हुई है। यदि ये व्यापारी भविष्य की ओर नजर दौड़ाते हुए अपने देश के हित की ओर ध्यान दें तो विदेशी वस्त्रों के व्यवसाय को खत्म करके वे भारतीयों का बहुत हित कर सकते हैं। हमने इन व्यवसाइयों की सहायता के लिए बहुत कुछ किया है पर उनकी ओर से एक महान् त्याग की देश को आवश्यकता है।

मुझे आशा है कि अंग्रेजी, जापानी तथा अन्य विदेशी वस्त्र व्यवसायी हमारी कांग्रेस के तत्सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने में भूल नहीं करेंगे। यदि वे भारत की मदद करना चाहते हों तो उन्हें भारत को अपना माल भेजना बन्द कर देना चाहिये। उनके लिये भारत के अलावा बहुत से देश तथा बहुत से व्यवसाय पड़े हुए है।

विदेशी वस्त्रों के वायकाट से मुझे धरना देने की बात याद

आ गई। पिकेटिंग न तो हमने कभी बन्द किया है और न कभी बन्द करेंगे। यहां मैं समझौते के तत्सम्बन्धी अंश को उद्धृत करता हूँ—

"पिकेटिंग कष्टदायक नहीं होगा तथा मौजूदा सामान्य कानून को ध्यान में रखते हुए पिकेटिंग में हठ, धमकी, दुराग्रह, विरोधी प्रदर्शन तथा जनता की रोक आदि कोई भी गैर कानूनी अमल नहीं होगा। यदि किसी जगह उपरोक्त तरीके प्रयोग में लाये गये तो उस स्थल से पिकेटिंग हटा दिया जायगा।"

पिकेटिंग एक सामान्य कानूनी अधिकार है। लेकिन आप देखेंगे कि जो मर्यादायें इसके लिये निर्माण कर दी गई हैं, उसके अन्तर्गत पिकेटिंग करना कष्टदायक नहीं वरन शिक्षाप्रद है। पिकेटिंग का उद्देश्य नम्र अस्वीकृति है। इसका हठ या स्वतन्त्रता पर हिंसात्मक प्रतिबन्ध अर्थ कभी भी नहीं है। यहाँ मैं "हिंसात्मक" विशेषण का प्रयोग जान-बूझ कर कर रहा हूँ। जनता की प्रतिबन्धात्मक प्रवृत्ति तो रहेगी ही। रोक से यह चीज भिन्न है और यह सदा ही स्वस्थ, जागृति उत्पन्न करने वाली तथा स्वतन्त्रता की पौध को पनपाने वाली है। अहिंसात्मक पिकेटिंग तो जनता की वास्तविक राय को उत्पन्न करने वाला है। यह एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकता है जिसका रोकना बहुत ही कठिन कार्य है। यह कार्य महिलाओं द्वारा बड़ी ही खूबी से सम्पन्न किया जा सकता है। मैं आशा करता हूँ कि वे इस अद्भुत कार्य को, जिसे उन्होंने ही आरम्भ किया है, जारी रखेंगी और राष्ट्र की अमर कृतज्ञता प्राप्त करेंगी। इतना ही नहीं इसके द्वारा वे लाखों भूखों मरने वाले भारतीयों के आशीर्वाद भी प्राप्त करेंगी।

इसी सिलसिले में मैं ब्रिटिश वस्तुओं के बायकाट के विषय में भी दो शब्द कह दूं। यह विचार वास्तव में उतना ही पुराना है जितनो

कांग्रेस। यह हम जानते हैं कि गांधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण करने के साथ ही विदेशी वहिष्कार का स्वरूप न सिर्फ अंग्रेजी कपड़े तक ही सीमित रहा वरन् उसका क्षेत्र व्यापक होकर हर विदेशी चीज तक फैल गया। इसे गान्धी जी ने आर्थिक व सामाजिक जागृति का प्रतीक वताया। लेकिन वास्तव में यह राजनीतिक एवं शिक्षाप्रद लक्ष्य है। हमारे वर्तमान तूफानी आन्दोलन में यह बहुत ही सफलता पूर्वक प्रयोग में लाया गया है। कम से कम इस समय अस्थायी शान्ति हो चुकी है और हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सलाह-मशविरे तथा कान्फ्रेंसों से काम ले रहे हैं। अतः हमें इस हथियार को इस समय अलग रख देना चाहिये। अब हम अंग्रेजों को सताने के लिये हमारी आपसी भीतरी तथा बाहरी, किसी भी प्रकार की कान्फ्रेंस नहीं करेंगे। अतः हमें कुछ समय के लिये ब्रिटिश वस्तुओं के वायकाट को भी बन्द कर देना चाहिये। हमें स्वदेशी के प्रचार को जोरों से चलाना चाहिये जो हर राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। हमको हर विदेशी चीज को, चाहे वह ब्रिटेन की हो या और किसी देश की, पीछे हटाकर स्वदेशी चीजों को उत्पन्न करना व उन्हें ही प्रोत्साहित करना चाहिये। राष्ट्रीय जागृति की यही सबसे बड़ी शर्त है। इसी प्रकार हमें देशी इंशोरेंस कम्पनी, बैंकिंग, जहाजरानी तथा ऐसे ही महत्वपूर्ण कार्यों के लिये प्रोत्साहन तथा गम्भीर प्रचार करना चाहिये। हम इस विषय में हीनावस्था में हैं या ये हमारे लिये बेहद खर्चीले कार्य हैं, ऐसा समझ कर अपने दिल में हताश नहीं होना चाहिये तथा इन्हें छोड़ नहीं देना चाहिये। हम इन्हें व्यापक प्रचार, उपयोग तथा सहायक आलोचनाओं द्वारा विशेष सस्ते तथा विशेष उपयोगी बना सकते हैं।

बर्ताव की समानता के विषय में कई प्रकार की बातें होती रहती हैं। आप ही सोचिये कि एक राक्षस और बौने और एक हाथी और चींटी के आपसी व्यवहारों में समानता कैसे हो सकती है? यदि

लार्ड इंचकेप अपनी अपार काल्पनिक सम्पत्ति और साधनों के साथ सेठ नरोत्तम मोरारजी—जिनकी स्मृति हमारे लिये हृदय को चोट पहुँचाने वाली है—के बराबर अधिकार और हक चाहें तो निश्चय ही यह समानता का उपहास होगा। समानता के अधिकारों के विषय में तब तक चुप रहना उपयुक्त होगा जब तक कि सेठ नरोत्तम मोरार जी के वारिस लार्ड इंचकेप के साधनों में से थोड़े से ही साधन प्राप्त करलें। जो बुरी तरह असमान हैं, उनके मामले में समानता का प्रश्न उठाने का यही अर्थ होता है कि अवांछितों को वांछितों की सतह तक उठाना। दबी हुई जातियों को, जिन्हें ऊंची जातियाँ कहा जाता है, उनके बराबर हक देने का मतलब हुआ कि दलितों को ऊंची जातियों के धरातल पर ले आना। इसका मतलब हुआ कि ऊंची जातियों की वास्तविकता का बलिदान और उनकी उन्नति का सर्वनाश। ब्रिटिशों के साथ के हमारे सम्बन्धों में अभी तक हमारा दर्जा दलितों से भी निम्न श्रेणी का माना जाता रहा है। भागीदारी की स्थिति में भी राष्ट्रीय अस्तित्व के लिये भारतीय उद्योगों आदि की उस हद तक सुरक्षा आवश्यक है जिस हद तक विदेशी या ब्रिटिश माल का बायकाट न हो जाय। भागीदारी की हमारी यह भी एक शर्त है। हमारे हितों की ब्रिटिश राष्ट्र संघ में रहते हुए भी, रक्षा करना यह कोई नया काल्पनिक विचार नहीं है। संघ के राष्ट्रों में भी अपनी प्रगति के लिये वैसा अमल करना असंगत नहीं है।

जिस प्रकार भूखे लाखों व्यक्तियों के लिये विदेशी कपड़ों का बायकाट आर्थिक दृष्टि से आवश्यक है उसी प्रकार जाति के नैतिक लाभ के लिये मादक पदार्थों का बायकाट भी परम आवश्यक है। मादक पदार्थों के बायकाट का राजनीतिक प्रभाव पर विचार करने के पहिले से ही इनके पूर्णतया बायकाट करने के विचारों का जन्म हो चुका था। कांग्रेस इसे आत्म-शुद्धि का एक उपाय मानती है। मादक पदार्थों के यातायात से सरकार की आमदनी में वृद्धि भी होती

है फिर भी इन चीजों के बिकने की दूकानों पर पिकेटिंग उसी आधार पर जारी रहेगा जिस आधार पर विदेशी कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग किया जाता है। मैं इसके लिये सरकार से चाहता हूँ कि वह राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के इस निर्णय को इस संक्रमण काल में आशाजनक दृष्टि से देखे और वह न हमारे मादक पदार्थों एवं विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को सहिष्णुतापूर्वक जारी रहने दे बल्कि वह स्वयं, यदि चाहे तो इसे राष्ट्रीय उत्थान का एक जरिया स्वीकार करे। सरकार चाहे हमारी इस बात को स्वीकार करे या न करे, हम इसे तब तक बर्दाश्त करने को तैयार नहीं हैं जब तक हमारे भूले हुए देशवासियों को बर्बाद करने के लिये देश में एक भी मादक पदार्थों की तथा विदेशी वस्त्रों की दूकान है।

मैं दो शब्द नमक के विषय में भी कहना चाहता हूँ। नमक के धावे अब बन्द हो जाने चाहियें। नमक के कानूनों की, कानून तोड़ने के उद्देश्य से अवहेलना करना अब रोक देना चाहिये। जो गरीब नमक के क्षेत्रों के पास रहते हैं वे नमक बनाने और आसपास ही उसे बेचने के लिये स्वतन्त्र हैं। यह एक सत्य बात है कि नमक का टैक्स बन्द नहीं हुआ। कान्फ्रेंस में कांग्रेस के भाग लेने की सम्भावना को दृष्टि में रखते हुए हम नमक के टैक्स को रद्द कर देने के लिये अभी दबाव नहीं डालना चाहते। जो निश्चत रूप से शीघ्र ही बन्द हो जायगा। लेकिन हमने जिन गरीबों के लिये ये धावे आरम्भ किये थे वे निश्चित रूप से इस टैक्स से अब मुक्त हो चुके हैं। हम आशा करते हैं कि कोई भी व्यापारी हमारी इस विषय की उदासीनता का बेजा फायदा नहीं उठायेगा।

आगे आने वाले पैराग्राफ से शायद आप समझ जायँगे कि बुद्धि सम्पन्न लोग जिन बातों में विशेष दिलचस्पी रखते हैं, उन बातों से मैं कितना उदासीन रहता हूँ। मैं सम्मान के टुकड़ों या सरकारी

उपाधियों के कितने खिलाफ हूँ। इन बातों को देहाती लोग बिलकुल भी नहीं समझते, उन पर इन चीजों का कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता। मैं गान्धी जी की ११ शर्तों में स्वराज्य प्राप्ति पर पूर्ण विश्वास करता हूँ। जिस वस्तु से उनको सन्तोष नहीं हो, उसे मैं स्वराज्य नहीं कह सकता। मैं राजा, महाराजा, जागीरदार आदि के अधिकारों की वहाँ तक कद्र करता हूँ जहाँ तक कि उनसे श्रमिक किसानों और गरीबों का अहित न हो। मेरी दिलचस्पी कुचले और दलित लोगों को उठा कर देश के सम्पन्न व्यक्तियों तक पहुँचा देने में है। ईश्वर को धन्यवाद है कि सत्य और अहिंसा के उपदेशों ने उन्हें उनके महत्व एवं गुरुता का भान तथा उस शक्ति का परिचय करा दिया है जो उनमें सदैव विद्यमान है। फिर भी उनके लिये अभी तक बहुतकुछ करना शेष है। अब हम यह धारणा चित्त में जमा लेनी चाहिये कि हमारा अस्तित्व उनके लिये है न कि उनका हमारे लिये। अब हमें आपसी झगड़े, ईर्ष्या, धार्मिक मतभेद भुलाकर यह महसूस करना चाहिये कि कांग्रेस उन लाखों श्रमजीवियों, गरीबों का प्रतिनिधित्व कर रही है और उसका अस्तित्व भी उन्हीं के लिये है। और कांग्रेस शीघ्र ही ऐसी अदम्य शक्ति-सम्पन्न हो जाएगी कि वह किसी लालच या शक्ति के प्राप्त करने के लिये नहीं वरन् सामान्य मानवता के हितार्थ ही अपनी शक्तियों का व्यय करेगी।

रचनात्मक कार्य का एक ऐसा भाग रह गया है जिस पर मैंने अभी तक कुछ भी नहीं कहा है। वह सबसे महत्वपूर्ण कार्य है अस्पृश्यता का निवारण। इस समस्या में उलझ जाने से कोई लाभ नहीं। राष्ट्रीयता की वर्तमान लड़ाई वीरत्व की दृष्टि से अनुपम होती यदि हिन्दुओं ने इस संग्राम में से हिन्दुत्व को निकाल फेंका होता। मैं यहां हिन्दुत्व और वीरता दोनों को दूर रख कर यह कह देना चाहता हूँ कि स्वराज्य यदि मिल भी गया तो बिना आत्मशुद्धि के उसका प्राप्त कर लेना व्यर्थ ही है। मान लीजिये कि राष्ट्र स्वतन्त्र हो भी

गया और यह धब्बा हिन्दुत्व को स्याह ही करता गया तो वह स्वराज्य उतना ही अरक्षित होगा जितना कि विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के बिना रहेगा।

अन्त में मैं अपने समुद्र के पार के भाइयों को भूलना नहीं चाहता। दक्षिणी अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका तथा दुनिया के अन्य भागों में उनका भाग्य डांवाडोल परिस्थिति में है। यह प्रसन्नता की बात है कि दीनबन्धु एण्ड्रयूज वहां उन्हें सहायता पहुँचा रहे हैं। पं० हृदयनाथ कुंजरू पूर्वी अफ्रीका के मामलों के विशेषज्ञ हैं। उन्हें कांग्रेस सिर्फ यही सान्त्वना प्रदान कर सकती है कि वह उनके साथ हमेशा सहानुभूति रखेगी। उन्हें जानना चाहिये कि हमारी लक्ष्य-प्राप्ति के साथ ही उनका भाग्य भी बँधा हुआ है। अतः वह प्राकृतिक रूप से हमारी लक्ष्य-प्राप्ति के साथ ही सुधरने लगेगा। आपके नाम पर मैं सत्सम्बंधी सरकारों से अपील करता हूँ कि वे अपने यहां बहुत काल से आई हुई इन जातियों के प्रति ध्यान रखें जिसका अर्थ यह होगा कि किसी भी जाति का कहीं भी अहित न हो सकेगा। हम उन सरकारों से उनके साथ अच्छा बर्ताव करने के लिये कहना चाहते हैं। हम उनके प्रति वही बर्ताव चाहते हैं जो स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर हम उनके साथ करेंगे।

अब मैं आपसे उन कार्रवाइयों को आरम्भ करने के लिये कहना चाहता हूँ जिनके लिये आपने मुझे अध्यक्षता करने को कहा है। याद रहे कि कार्रवाई उसी महत्व के साथ पूरी हो जिस महत्व के अवसर पर आप और मैं यहां सम्मिलित हुए हैं। मतभेद होना स्वाभाविक है। लेकिन मुझे भरोसा है कि हम आपस में मिलकर अपनी कार्यवाहियों को उतनी ही गौरवमय तथा प्रेरणात्मक बना देंगे जितनी हमारे लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक हैं।

—वन्देमातरम्।

सरदार पटेल की अध्यक्षता में करांची-कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन ऐसे समय में हुआ जब कि देश सत्याग्रह को तो बन्द कर चुका था पर किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँचा था। इसमें कोई शक नहीं कि करांची-कांग्रेस गांधी जी की सबसे महत्वपूर्ण निजी विजय थी। इसी अधिवेशन में पहिली बार सीमान्त गान्धी के नेतृत्व में लालकुर्ती वालों के दल ने कांग्रेस में प्रवेश किया था। करांची-कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव दिल्ली समझौता तथा गोलमेज कान्फ्रेंस थे। इनके अलावा भी करांची-कांग्रेस में भगतसिंह मौलिक अधिकार और आर्थिक नीति जैसे प्रस्ताव भी रखे गये। इन्हीं महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक प्रस्तावों के कारण करांची अधिवेशन अमर होगया। अभी तक कांग्रेस सिर्फ राष्ट्रीयता के विषय में ही सोचती थी और आर्थिक प्रश्नों से बिलकुल वंचती रहती थी। करांची अधिवेशन के मुख्य प्रस्तावों में मूल उद्योगों और नौकरियों के राष्ट्रीयकरण तथा ऐसे ही अन्य उपायों द्वारा गरीबों के हितों के लिये जो कदम उठाया गया वह सराहनीय था।

करांची-कांग्रेस के विषय में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बहुत गहराई से अपने भाव व्यक्त किये हैं, वे इस प्रकार हैं—

"करांची हिन्दुस्तान के ठेठ उत्तर-पश्चिम कोने में है, जहां की यात्रा मुश्किल होती है। बीच में बड़ा रतीला मैदान है जिससे, वह हिन्दुस्तान के शेष हिस्सों से बिलकुल जुदा पड़ जाता है। लेकिन फिर भी वहां दूर-दूर के हिस्सों से बहुत लोग आये थे और वे उस समय देश का जैसा मिजाज था, उसको सही तौर पर जाहिर करते थे। लोगों के दिलों में शान्ति के भाव थे और राष्ट्रीय आन्दोलन की जो ताकत देश में बढ़ रही थी, उसके प्रति गहरा सन्तोष था। कांग्रेस संगठन के प्रति, जिसने कि देश की भारी पुकार और मांग का बड़ी योग्यतापूर्वक जवाब दिया था और जिसने अनुशासन और त्याग के द्वारा अपने अस्तित्व की पूरी सार्थकता दिखलाई थी, उसके मन में

अभिमान था। अपने लोगों के प्रति विश्वास का भाव था और इसके उत्साह में संयम दिखलाई पड़ता था। इसके साथ ही आगे आने वाले जबरदस्त प्रश्नों और खतरों के प्रति जिम्मेदारी का गहरा भाव भी था। हमारे शब्द और प्रस्ताव अब राष्ट्रीय पैमाने पर किये जाने वाले कार्यों के मंगलाचरण थे और वे यों ही बिना सोचे-विचारे न बोले जाते थे, न पास किये जाते थे। दिल्ली समझौता यद्यपि बहुत बड़े बहुमत से पास होगया था, तो भी वह लोकप्रिय नहीं था, और न वह पसन्द ही किया गया था, और लोगों के दिलों में यह भय काम कर रहा था कि यह हमें तरह-तरह की भद्दी और विषम स्थितियों में लाकर डाल देगा। कुछ ऐसा दिखाई पड़ता था कि देश के सामने जो सवाल हैं उनको यह अस्पष्ट कर देगा। कांग्रेस अधिवेशन के ठीक पहिले ही, एक और देश की नाराजगी का बाइस पैदा होगया था—भगतसिंह का फांसी पर लटकाया जाना। उत्तर भारत में इस भावना की लहर तेज थी और करांची उत्तर में ही होने के कारण वहां पंजाब से बड़ी तादाद में लोग एकत्रित हुए थे।"

"पिछली किसी भी कांग्रेस की बनिस्बत करांची-कांग्रेस में तो गांधीजी की और भी बड़ी निजी विजय हुई थी। उसके सभापति सरदार वल्लभभाई पटेल हिन्दुस्तान के बहुत ही लोकप्रिय और जोर-दार आदमी थे। उन्हें गुजरात के सफल नेतृत्व की सुकीर्ति भी प्राप्त थी। फिर भी उसमें दौर-दौरा तो गांधीजी का ही था। अब्दुल-गफ्फार खाँ के नेतृत्व में सीमाप्रान्त से भी लाल कुर्ती वालों का एक अच्छा दल वहाँ पहुँचा था। लाल कुर्ती वाले बड़े ही लोकप्रिय थे। जहाँ कहीं वे जाते, लोग तालियों से उनका स्वागत करते, क्योंकि अप्रेल १९३० से गहरी उत्तेजना दिखायी जाने पर भी उन्होंने असा-धारण शान्ति और साहस की छाप हिन्दुस्तान पर छोड़ी है। लाल कुर्ती नाम से कुछ लोगों को यह गुमान होजाता था कि वे कम्यूनिस्ट या वाम पक्षीय मजदूर दल के थे। सच पूछो तो उनका नाम "खुदाई

खिदमतगार" था और वह सङ्गठन कांग्रेस के साथ मिलकर काम करता था। (बाद को १६३१ में यह सङ्गठन कांग्रेस का एक अभिन्न अङ्ग बना लिया गया था) वे लाल कुरती वाले महज इसलिये कहलाते थे कि उनकी वर्दी जरा पुराने ढङ्ग की लाल थी। उनके कार्य-क्रम में कोई आर्थिक नीति शामिल नहीं थी, वह तो एकदम राष्ट्रीय थी और उसमें सामाजिक सुधार भी शामिल था।"

"करांची के मुख्य प्रस्ताव में दिल्ली समझौता और गोलमेज कान्फरेन्स का विषय था। कार्य-समिति ने जिस अन्तिम रूप में उसे पास किया था उसे मैंने अवश्य ही मंजूर कर लिया था। मगर जब गांधीजी ने मुझे उसे खुले अधिवेशन में पेश करने के लिये कहा तो मैं जरा हिचकिचाया। यह मेरी तबियत के खिलाफ था। पहिले मैंने इन्कार कर दिया, मगर बाद को यह मुझे अपनी कमजोरी और असन्तोषजनक स्थिति दिखाई दी। या तो मुझे इसके हक में होना चाहिये था या इसके खिलाफ; यह मुनासिब नहीं था कि ऐसे मामले में टालमटोल करूं, और लोगों को अटकलें बांधने के लिये खुला छोड़ दूं। अतः बिलकुल आखिरी पल में खुले अधिवेशन में प्रस्ताव आने के कुछ ही मिनिट पहिले मैंने उसे पेश करने का निश्चय किया। अपने भाषण में मैंने अपने हृदय के भाव ज्यों-के-त्यों उस विशाल जन-समूह के सामने रख दिये और उनसे पैरवी की कि वे उस प्रस्ताव को तहे-दिल से मंजूर करलें। मेरा वह भाषण जो ऐन मौके पर अन्तः स्फूर्ति से दिया गया और जो हृदय के अन्तस्तल से निकला था, जिसमें न कोई अलङ्कार था और न सुन्दर शब्दावली, कदाचित् मेरे उन कई भाषणों से ज्यादा सफल रहा जिनके लिये ज्यादा ध्यान देकर तैयारी करने की जरूरत हुई थी।"

"मैं और प्रस्तावों पर भी बोला था। इनमें भगतसिंह, मौलिक अधिकार और आर्थिक नीति के प्रस्ताव उल्लेखनीय हैं। आखिरी प्रस्ताव में मेरी खास दिलचस्पी थी, क्योंकि एक तो उसका विषय ही

ऐसा था और दूसरे उसके द्वारा कांग्रेस में एक नये दृष्टिकोण का प्रवेश होता था। अब तक कांग्रेस सिर्फ राष्ट्रीयता ही की दिशा में सोचती थी और आर्थिक प्रश्नों के मुकाबिले से बचती रहती थी। जहां तक ग्राम-उद्योगों से और आमतौर पर स्वदेशी को बढ़ावा देने का ताल्लुक था, उसको छोड़कर करांची वाले इस प्रस्ताव के द्वारा मूल उद्योगों और नौकरियों के राष्ट्रीयकरण और ऐसे ही दूसरे उपायों के प्रचार के द्वारा गरीबों का बोझा कम करके अमीरों पर बढ़ाने के लिये एक बहुत छोटा कदम, समाजवाद की दिशा में उठाया गया, लेकिन वह समाजवाद कतई न था। पूंजीवादी राज्य भी उसकी प्रायः हर बात को आसानी से मंजूर कर सकता था।"

"इस बहुत ही नरम और निःसार प्रस्ताव ने भारत सरकार के बड़े-बड़े लोगों को भारी और गहरे विचार में डाल दिया। कदाचित् उन्होंने अपनी सदा की अन्तर्दृष्टि के मुताबिक यह भी कल्पना की कि बोलशेविकों का रुपया लुक-छिप कर करांची जा पहुँचा है और काँग्रेस के नेताओं की नीति भ्रष्ट कर रहा है। एक ही तरह के राजनीतिक अन्तःपुर में रहते-रहते, बाहरी दुनियाँ से कटे हटे, गुप्त वातावरण से घिरे हुए उनके दिमाग को रहस्य और भेद की कहानियाँ कल्पित कथाओं के सुनने का बहुत शौक रहता है। और फिर ये किस्से एक रहस्यपूर्ण ढङ्ग से थोड़ा-थोड़ा करके अपने प्रति प्राप्त अखबारों में दिये जाते है और साथ मे यह झलकाया जाता है कि यदि परदा खोल दिया जाय तो और भी कई गुल खिल सकते हैं। उनके इस मान्य प्रचलित तरीके से मौलिक अधिकार वगैरा सम्बन्धी करांची के प्रस्तावों का बार-बार जिक्र किया गया है और मैं उनसे यही नतीजा निकाल सकता हूँ कि वे इस प्रस्ताव पर सरकारी सम्मति क्या है, यह बतलाते हैं। किस्सा यहाँ तक कहा जाता है कि एक छुपे व्यक्ति ने, जिसका कम्यूनिस्टों से ताल्लुक है, प्रस्ताव का या उसके ज्यादातर हिस्से का ढाँचा बनाया है और उसने करांची में वह मेरे

मत्थे मढ़ दिया। उस पर मैंने गांधीजी को चुनौती देदी कि या तो इसे मंजूर कीजिये या दिल्ली समझौते पर मेरी मुखालफत के लिये तैयार रहिये और गांधीजी ने मुझे चुप करने के लिये यह रिश्वत देदी तथा आखिरी दिन जब कि विषय समिति और कांग्रेस थकी हुई थी, उन्होंने इसे उनके सिर पर लाद दिया।"

"उस छिपे व्यक्ति का नाम, जहाँ तक मुझे याद है, यों साफ-साफ लिया नहीं गया है। लेकिन तरह-तरह के इशारों से मालूम हो जाता है कि उनकी मंशा किन से है। मुझे छिपे तरीकों और घुमाव फिराव से बात कहने की आदत नहीं। इसलिये मैं सीधे ही कह दूं कि उनकी मंशा शायद एम० एन० राय से है। शिमला और दिल्ली के ऊंचे आसन वालों के लिये यह जानना दिलचस्प और शिक्षा-प्रद होगा कि एम० एन० राय या दूसरे कम्यूनिस्ट प्रवृति रखने वाले करांची के उस सीधे-सादे प्रस्ताव के बारे मे क्या खयाल करते है। उन्हें यह जान कर ताज्जुब होगा कि उस तरह के आदमी तो उस प्रस्ताव को कुछ घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार तो यह मध्यम वर्ग के सुधारवादियों की मनोवृत्ति का एक खासा उदाहरण है।"

"जहाँ तक गांधीजी से ताल्लुक है, उनसे मेरी घनिष्टता पिछले १७ वर्षों से है और मुझे उन्हें बहुत नजदीक से जानने का सौभाग्य प्राप्त है। यह खयाल कि मैं उन्हें चुनौती दूं, या उनसे सौदा करूं, मेरी निगाह में भयानक है। हाँ, हम एक दूसरे का खूब लिहाज रखते हैं और कभी किसी विशेष मसले पर अलग-अलग भी हो सकते हैं, लेकिन हमारे आपस के व्यवहारों मे बाजारू तरीकों से हरगिज काम नहीं लिया जा सकता।"

"कांग्रेस में इस तरह के प्रस्ताव को पास कराने का खयाल पुराना है। कुछ सालों से युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी इस विषय में

हलचल मचा रही थी और कोशिश कर रही थी कि अखिल 'भारतीय कांग्रेस कमेटी में समाजवादी प्रस्ताव को स्वीकार कर ले। १६२६ में उसने अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी मे कुछ हद तक उसके सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था। उसके बाद सत्याग्रह आ गया। दिल्ली मे, फरवरी १६३१ मे, जब कि मै गाँधीजी के साथ सुबह घूमने जाया करता था, मैने उनसे इस विषय का जिक्र किया था। और उन्होंने आर्थिक विषयों पर एक प्रस्ताव रखने के विचार का स्वागत किया था। उन्होंने मुझे कहा था कि कराँची में इस विषय को उठाया और इस विषय मे एक प्रस्ताव बना कर मुझे दिखाना। कराँची में मैंने मशविदा बनाया और उन्होंने उसमे बहुतेरे परिवर्तन सुझाये और सूचनाएँ दी। वह चाहते थे कि कार्य समिति में पेश करने के पहिले हम दोनों उसकी भाषा पर सहमत हो जायँ। मुझे कई मसौदे बनाने पड़े और इससे इस मामले मे कई दिन की देरी हो गई। आखिर गाँधीजी और मै दोनो एक मसविदे पर सहमत हो गये और तब वह कार्य समिति मे और उसके बाद विषय समिति में पेश किया गया। यह बिलकुल सच है कि विषय समिति के लिये यह एक नया विषय था और कुछ मेम्बरो को उसे देख कर ताज्जुब भी हुआ था। फिर भी वह कमेटी मे और काँग्रेस मे आसानी से पास हो गया और बाद मे अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी को सौंप दिया गया कि वह निर्दिष्ट दिशा में उसको और विशद और व्यापक बनावे।"

"हाँ, जब मैं प्रस्तावों का खर्रा बना रहा था तब कितने ही लोगों से, जो मेरे डेरे पर आया करते थे, इसके बारे मे मैं कभी-कभी सलाह ले लिया करता था। मगर एम० एन० राय से कतई इसका कोई ताल्लुक नहीं था। और मैं यह अच्छी तरह जानता था कि वह इसको बिलकुल ही पसन्द नहीं करेंगे और इसकी खिल्ली तक उड़ायेंगे।

"अलबत्ता करांची आने के कुछ दिन पहिले इलाहाबाद में एम० एन० राय से मेरी मुलाकात हुई थी। वह एक रोज शाम को अकस्मात हमारे घर आये। मुझे पता नहीं था कि वे हिन्दुस्थान में हैं। ताहम मैंने उन्हें फौरन पहिचान लिया क्यों कि उनको मैंने १६२७ में मास्को में देखा था। करांची में वह मुझसे मिले थे मगर शायद ५ मिनट से ज्यादा नहीं। पिछले कुछ सालों में राजनैतिक दृष्टि से मेरी निन्दा करते हुए मेरे खिलाफ उन्होंने बहुत कुछ लिखा है और अक्सर मुझे चोट पहुँचाने में भी कामयाब हुए हैं गो, उनके और मेरे बीच बहुत मतभेद है. ताहम मेरा आकर्षण उनकी ओर हुआ। और बाद को जब वह गिरफ्तार हुए और मुसीबत में थे, तब मेरा जी हुआ कि जो कुछ मुझ से हो सके (और वह बहुत थोड़ी थी) उनकी तरफ आकर्षित हुआ उनकी विलक्षण बौद्धिक क्षमता को देखकर मैं उनकी तरफ इसलिये भी खिंचा कि मुझे वह सब तरह अकेले मालूम हुए, जिनको हर आदमी ने छोड़ दिया था। ब्रिटिश सरकार उनके पीछे पड़ी हुई थी ही। हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय दल के लोगों को उनके प्रति दिलचस्पी नहीं थी और जो लोग हिन्दुस्तान में अपने को कम्यूनिस्ट कहते हैं वे विश्वासघाती समझ कर उनकी निन्दा करते थे। मुझे मालूम हुआ कि सालों तक रूस में रहने और कोमिन्टने के साथ घनिष्ट सहयोग करने के बाद वह उनके जुदा पड़ गये थे, या जुदा कर दिये थे। ऐसा क्यों हुआ, इसका मुझे पता नहीं है, और सिवा कुछ आभास के न अब तक यही जानता हूँ कि उनके मौजूदा विचार क्या हैं और पुराने कम्यूनिस्टों से किस बात में उनका मतभेद है। लेकिन उनके जैसे पुरुष को इस तरह प्रायः हरेक के द्वारा अकेला छोड़े जाते देख कर मुझे पीडा हुई और अपनी आदत के खिलाफ मैं उनके लिये बनाई गई डिफेंस कमेटी में शामिल हुआ। १६३१ की गर्मियों से अब से कोई तीन वर्ष पहिले से, वह जेल में हैं, बीमार हैं,

और प्राय: तन्हाई में रह रहे हैं।"

—जवाहर लाल नेहरू
"My Autobiography" से

"४ जनवरी १६३२ का दिन एक महत्वपूर्ण दिन था। उसने बात-चीत और बहस का अन्त कर दिया। उस दिन सबेरे ही गांधीजी और कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल गिरफ्तार कर लिये गये और बिना मुकदमा चलाये ही शाही कैदी बना लिये गये। चार नये आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये जिसके द्वारा मजिस्ट्रेटों और पुलिस अफसरों को व्यापक से व्यापक अधिकार मिल गये। नागरिक स्वतंत्रता की हस्ती मिट गयी और जन और धन दोनों पर ही अधिकारी चाहे जब कब्जा कर सकते थे। सारे देश पर मानों कब्जा कर लेने की हालत की घोषणा कर दी गई और इसको किस-किस पर और कितना लागू किया जाय, यह हुकामी अफसरों की मरजी पर छोड़ दिया गया।"

—जवाहर लाल नेहरू
"My Autobiography" से

इन आर्डिनेन्सों पर भारत मन्त्री सर सेम्यूअल होर ने कामन्स सभा में कहा था—

"मैं मंजूर करता हूँ कि जिन आर्डीनेन्सों का हमने समर्थन कर दिया है वे बड़े व्यापक और सख्त हैं; वे हिन्दुस्तान के जीवन की लगभग हर एक प्रवृत्ति पर असर डालते हैं।"

—सर सैम्यू अलहोर—२४ मार्च १६३२

"कुछ कांग्रेस के नेता औद्योगीकरण से घबराते हैं और सोचते हैं कि उद्योगी देशों की वर्तमान मुसीबतों का एकमात्र कारण बेहद उपज है। मेरी राय में परिस्थित का यह अत्यन्त ही गलत अध्ययन है। यदि जनता के पास जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव है और यदि यथेष्ट संख्या में उस वस्तु का उत्पादन किया

जाय जिसमे जनता का वह अभाव दूर हो जाय तो ऐसी अधिक उपज नेताओं को नापसन्द क्यों है ? वास्तव में गलती उपज को नहीं बल्कि उसको तक्सीम करने की है।"

—जवाहरलाल नेहरू "My Autobiography" से

३ जनवरी १९३५ को अहमदाबादमें सरदार पटेल ने भाषण देते हुए कहा—"सच्चे समाजवाद का अर्थ है गाँवों के धन्धों को बढ़ाना। हम अपने देश में, अधिक उत्पादन के कारण, पश्चिमीय देशों में जो असन्तोष और बेचैनी व्याप्त हो रही है, उसे हम दुहराना नहीं चाहते।"

कांग्रेस अभी तक रियासतों के मामले में दिलचस्पी नहीं ले रही थी। यही कारण है कि जब त्रावणकोर रियासत के शासन की ओर से काँग्रेस पर हमला किया गया तब गाँधीजी के आदेशानुसार किसी काँग्रेसी नेता ने जवाब में एक शब्द तक नहीं उच्चारण किया कुछ उदारदली नेताओं ने तो गरमा-गरम जवाब दिये भी। इसमें कोई भी शक नहीं कि रियासतों के मामले में गाँधीजी उदारदली वालों से भी ज्यादा नरम और संयत थे। पण्डित मदनमोहन मालवीय भी कई नरेशों के व्यक्तिगत रूप से मित्र थे अतः वे भी नरेशों को किसी भी तरह सताना नहीं चाहते थे।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी रियासतों के मामले में हाथ न डालने की नीति को व्यक्त करते हुए ६ जनवरी १९३५ को निम्नलिखित बातें व्यक्त की थीं—

"रियासतों के कार्यकर्ताओं को रियासतमें रियासती मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ही काम करना चाहिये। उन्हें शासन व्यवस्था की आलोचना करने के बजाय ऐसी कोशिशें करनी चाहियें जिससे उनके और नरेशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हों।"

प्रान्तीय स्वराज्य का सूत्रधार

जब स्वतंत्रता के हथियार बोथरे पड़ जाते हैं तब यह आवश्यक हो जाता है कि पृष्ठ भाग को ही कम-से-कम संभाला जाय। भीतरी सुरक्षा से स्वतंत्रता के अस्त्र नष्ट नहीं होने पाते। १९३७ में जब कांग्रेस ने मंत्रि मण्डलों में प्रवेश करना स्वीकार किया तब उसके सामने यही उद्देश्य था। कांग्रेस का मूल उद्देश्य उस समय खटाई में पड़ गया था और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चक्र में फंसकर देश की जनता बरबाद हो रही थी। देश में प्रान्तीय मंत्रि मण्डलों की स्थापना तथा उनकी देखरेख का कार्य सरदार पटेल के सुदृढ़ हाथों में सोंपा गया। उन्होंने इस वैधानिक कार्य में ऐसी अलौकिक प्रतिभा एवं सुदृढ़ संगठन का परिचय दिया कि लोग सरदार पटेल की बारडोली विजय को भी एक बार भूल गये। प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों को उन्होंने ऐसे कौशल से संचालित किया कि यह कार्य अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण का कारण बन गया।

बारडोली के किसानों की मांग के लिये निर्मित जांच समिति जब अपना कार्य कर रही थी तब महात्मा गांधी राउन्ड टेबल कान्फरेन्स में भाग लेने के लिये लन्दन गये हुए थे। सरदार पटेल ने गांधी जी को तार दिया—

"जांच का रुख एक तरफा और कतई द्वेष पूर्ण है"

इस तार को पाकर महात्मा गांधी का पारा भी बहुत चढ़गया था। भारत वर्ष लौटने के बाद ही गांधीजी ने सत्याग्रह आरंभ करने

की घोषणा करदी। इसके पहिले ही नामी गिरामी नेता जेलों में ठूस दिये गये थे। सरदार पटेल को भी गांधीजी के साथ यरवदा जेल में ही रखा गया। गांधीजी जेल में सरदार पटेल के व्यवहार से बहुत ही प्रभावित हुए। महात्मा गांधी ने इस पर लिखा था कि

"जिस प्रेम के द्वारा उन्होने मुझे वशीभूत किया है उससे तो मुझे अपनी प्यारी माता की याद आजाती है। मैं यह कभी नहीं जानता था कि सरदार पटेल में माता की विशेषताएं भी हैं।"

वास्तव में सरदार पटेल विशेषताओं के खज़ाने हैं।

महात्मा गांधी तो १८ महीने के बाद छोड़ दिये गये पर पटेल साहब को पूरे ३० महीने जेल में बिताने पड़े। उन्हें सरकार ने जुलाई १९३४ में रिहा किया। रिहा करने का कारण यह था कि उनकी तबीयत बहुत ही खराब हो चुकी थी। नेताओं के सीखचों में बन्द रहने के कारण कांग्रेस के संगठन मे भी ढीलापन आगया था। फूट चारों तरफ अपना सिर उठाने लगी थी। ज्योंही सरदार पटेल का स्वास्थ्य संभला कि उन्होंने पार्लमेन्टरी मशीनरी को सुधारने का काम अपने हाथ में ले लिया। उस साल नये चुनाव हुए नहीं थे अतः १९३४ मे भी सरदार पटेल ही कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपना कार्य बिल्कुल ताजे दिमाग के साथ आरंभ कर दिया। जेल की भयंकरताओं से यह कठोर दिल वाला व्यक्ति कभी भी डोलायमान नहीं हुआ।

१९३६ में दूसरी और १९३७ में तीसरी बार पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। कांग्रेस का चुनाव इस समय देश के सामने आया। राष्ट्रवादियों ने चुनाव लड़ा और इतनी सफलता के साथ लड़ा कि देश के ७ प्रान्तों में उसे सफलता प्राप्त हुई। के कांग्रेस आदर्शों को यह सब से बड़ी विजय थी क्योंकि देश के तमाम किसानों ने बिना किसी हिचकिचाहट के कांग्रेस के पक्ष में वोट दिये थे। अभी भी भारत को स्व-

तंत्रा नहीं देना चाहता था फिर भी कांग्रेस ने भीतरी शासन में अपना पाँव स्थापित कर ही दिया था।

चुनावों के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने विधान में भाग लेने के अपने प्रस्ताव को फिर से दुहराया। पद-गृहण के प्रस्ताव पर पूरे १० घण्टे तक गरमागरम वहस हुई और उसके बाद ७८ के विरुद्ध १३५ मतों से प्रस्ताव स्वीकृत होगया। पद-गृहण वाला प्रस्ताव इस प्रकार था—

"पद-ग्रहण के स्वीकार करने के रुके हुए प्रश्न पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उन प्रान्तो में पद-ग्रहण करने की स्वीकृति और अधिकार प्रदान करती है जहाँ कांग्रेस धारासभाओं में बहुमत में है। शर्त यह रहेगी कि मन्त्रि-पद तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि धारासभा की कांग्रेस-पार्टी स्वीकृति न दे दे और वह यह सार्वजनिक रूप से कहने के योग्य न हो जाय कि गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा और वैधानिक कार्यों में मन्त्रियों की सम्मति को नहीं ठुकरावेगा।"

इस प्रस्ताव का हर एक शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि चार महीने बाद ही यह प्रश्न विवाद का विषय बन गया। पद-ग्रहण स्वीकार करने वाले प्रस्ताव के रचयिता महात्मा गान्धी ने इसका आशय यह व्यक्त किया था कि जब तक कांग्रेसी मन्त्री मौजूदा विधान के अन्तर्गत काम करेंगे तब तक उन्हें यह विश्वास दिला दिया जाना चाहिये कि प्रान्तीय गवर्नर उनके किसी भी कार्य में दखल नहीं देंगे। विरोधी पक्ष का यह कहना था कि यदि कांग्रेसी विधान के अन्तर्गत कार्य करेंगे और कांग्रेस के उद्देश्यों पर भी दृढ़ रहेंगे तो निश्चय ही वे विधान को नष्ट कर देंगे। इसके जवाब में कांग्रेसियों का यह कहना था कि विधान स्वयं यह जाहिर कर देगा कि उसके अनुसार चलने पर देश का रत्ती भर भी लाभ नहीं हो सकेगा। कांग्रेसी तो

इसलिए पद-ग्रहण करने को तैयार हो गये थे कि शासन के भीतर घुसकर वे पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये लोगों को तैयार कर सकें।

जिन प्रान्तों में कांग्रेस चुनाव में बहुमत से जीती थी वहाँ के नेताओ को गवर्नर ने मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये बुलाया। कांग्रेसी नेताओं ने उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसार गवर्नर से दखल न देने का वचन माँगा। गवर्नरों ने इस तरह का वचन देने से इन्कार कर दिया। नई धारासभाओं के निर्माण में उस समय केवल ६ महीने रह गये थे। अतः गवर्नरों ने विधान की उस दफा का उपयोग करते हुए अस्थायी मन्त्रिमण्डल बना दिये। इससे यह स्पष्ट ही था कि ज्यो ही पुरानी धारासभा का समय खत्म हो जायगा, अस्थायी मन्त्रिमण्डल भी स्वयं ही खत्म हो जायँगे।

इसके कई महीनों बाद तक सरकार तथा कांग्रेस के बीच वक्तव्यों की झड़ी लगती रही। आखिर ७ जुलाई १९३७ को यह तय हुआ कि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बन जाने के बाद गवर्नर अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग नहीं करेगा। कांग्रेस का उपरोक्त निर्णय वायसराय के २२ जून के उस वक्तव्य पर आधृत था, जिसमें यह कहा गया था कि—

> "मन्त्री चाहे किसी भी दल के हों, तमाम गवर्नर कभी भी उनसे झगड़ा मोल नहीं लेंगे और यदि कोई झगड़ा हो जाय तो वे हर कोशिश से उस झगड़े को नष्ट करने या टालने को तैयार रहेंगे।"

उपरोक्त आश्वासन के बाद कांग्रेस ने पद ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी। जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत था वहाँ अस्थायी मन्त्रिमण्डल बरखास्त कर दिये गये और शीघ्र ही कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हो गया। दो ऐसे प्रांतों में जहाँ कांग्रेस का बहुमत नहीं था, वहाँ दूसरे दलों का भी स्पष्ट बहुमत नहीं था, अतः वहाँ

भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ही कायम हुए। इस प्रकार १९३७ के ग्रीष्म-काल तक मद्रास, बम्बई, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, बिहार, संयुक्तप्रान्त और सीमान्त प्रदेश (N. W. F. P.) में मन्त्रिमण्डल बन गये। बंगाल, आसाम, सिन्ध और पंजाब में गैर कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने। इनमें भी बंगाल, पंजाब और सिन्ध में अधिकांश मुस्लिम मन्त्रि-मण्डल कायम हुए। आसाम एक ऐसा प्रान्त था जहाँ हिन्दू-बहुमत होते हुए भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना न हो सकी और उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश शुद्ध मुस्लिम प्रान्त होते हुए भी वहां कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बना।

कांग्रेस एक सुशासित लोकतन्त्री संगठन है। इस पर देश के उन महान नेताओं का हाथ है जिन्होंने इस संगठन के लिये अपना सर्वस्व ही बलिदान कर दिया है। देश के ऐसे तपे हुए नेताओं ने ही मन्त्रिमण्डल बनाये। ये मन्त्रिमण्डल कांग्रेस कार्यसमिति की हिदायतों के अनुसार ही कार्य करते हैं, ऐसा लोगों का विश्वास था। पर कांग्रेसी नेताओं का यह मत नहीं था। उनका कहना था कि कांग्रेस एक राष्ट्रीय महान संगठन है। अतएव कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को भी उसी नीति के आधार पर काम करना चाहिये। अतः कांग्रेस ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भिन्न-भिन्न मुकामी परिस्थितियों के अनुसार नीति में भी भिन्नता अपनाई। वैसा करना परिस्थितियों को देखते हुए लाजिमी भी था। इस प्रकार कांग्रेस-संगठन में मन्त्रिमण्डलों का कार्य बहुत ज्यादा बढ़ गया।

महात्मा गान्धी की स्थिति कांग्रेस में सर्वोपरि थी। वे न तो कांग्रेस के सदस्य थे और न कार्यसमिति के मेम्बर। किन्तु कांग्रेस और देश की तमाम जनता पर उनका प्रभाव इतना अधिक व्यापक था जितना कांग्रेस के किसी भी अध्यक्ष का कभी नहीं रहा। गान्धी जी का देश पर असर होने का प्रधान कारण है नैतिक बल और राष्ट्रीय

चेतना। उन्होंने देश को अपार नैतिक बल दिया और देश के कोने-कोने में राष्ट्रीयता की भावना भर दी। दूसरा मुख्य कारण यह भी है कि वे कभी भी किसी दल-विशेष के व्यक्ति नहीं रहे। सभी दल उन्हें अपना पूज्य नेता मानते थे। न वे समाजवादी ही रहे न उन्होंने कभी पूंजीपतियों का पक्षपात ही किया। देश की अनेकों महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों मे गान्धी जी का सर्वोपरि प्रभाव था। जब कभी उन्होंने किसी नीति पर विशेष जोर दिया तो यह निश्चय ही था कि वह कांग्रेस द्वारा स्वीकृत हो जायगी। कांग्रेस ने जब पद-ग्रहण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तब गान्धी जी ने इस पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने "हरिजन" मे लिखा था—

> "मन्त्रिमण्डलों को शराबबन्दी का कार्य शीघ्र ही हाथ में लेना चाहिये और उसका खर्च शराब की आय में से नहीं निकालना चाहिये।............... जेलों को सुधार-गृह तथा कारखानों मे तब्दील कर देना चाहिये। इन विभागों को स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये। इनका उद्देश्य शिक्षात्मक हो। ऐसा न हो कि ये विभाग खर्चीले और दण्डालय ही बने रहें।.............. नमक की सबके लिये छूट रहे, पर अभी तक ऐसा नहीं है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के जमाने में तो कम से कम नमक पर किसी प्रकार का कर नहीं लिया जायगा। देश में अब सिर्फ हाथ का कता और बुना हुआ कपड़ा ही बिकेगा। मन्त्रियों को अब शहरों की अपेक्षा गाँवों और किसानों पर ही विशेष ध्यान देना चाहिये। मैंने सिर्फ ऊटपटाँग ही ये उदाहरण पेश कर दिये हैं।"

कुछ दिनों बाद इसी विषय पर फिर गांधी जी ने लिखा। उन्होंने लिखा था कि—"यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपनी इच्छा से अहिंसात्मक तरीकों के द्वारा जनता की सेवा करें तो कांग्रेस अपार

शक्ति सम्पन्न संगठन हो जायगा। मन्त्रिमण्डल चाहें तो साम्प्रदायिकता दूर की जा सकती है और मैत्री-भाव स्थापित हो सकता है। वह अस्पृश्यता-निवारण, मादक द्रव्यों का वहिष्कार, स्त्रियों का सामाजिक उत्थान, देहातों की सुव्यवस्था, आरम्भिक शिक्षा की अनिवार्यता एवं निशुल्क आरम्भिक शिक्षण, न्याय विभाग में ऐसे परिवर्तन जिससे उचित न्याय शीघ्र और कम से कम खर्च द्वारा प्राप्त हो सके, जेलों को दण्ड देने के स्थान नहीं वरन् हुनर सीखने के कारखाने और शिक्षणालय तथा चरित्र सुधारने के प्रयोगालय—बनाना आदि कार्य जो देश के सुधार और जागृति के लिये आवश्यक हैं, अपने हाथ में ले सकती है।

महात्मा गान्धी का यह विश्वास था कि उपरोक्त बातों में सुधार तभी सम्भव है जबकि शासन तन्त्र का ढंग आमूल परिवर्तित हो जाय। उन्हें धारासभाओं के कार्यक्रम में जरा भी विश्वास नहीं था। हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के विषय में उन्होंने लिखा था कि—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को अब संसार को दिखा देना चाहिये कि वे न तो हिन्दू हैं और न मुस्लिम-विरोधी ही हैं। बल्कि यह कि वे ईसाई, सिख, मुस्लिम और हिन्दू में जरा भी भेदभाव नहीं करते। वे उच्च वर्ण और अस्पृश्य में कोई भी भेदभाव नहीं रखते।''

तमाम कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों में कम से कम एक मुसलमान मन्त्री तो था ही। यह गान्धी जी के विशाल दृष्टिकोण और रात-दिन अहिंसा के सिद्धान्तों पर जोर देने का ही परिणाम था कि देश की स्त्रियाँ सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण भाग लेने लगी थीं। उनमें से कई तो मन्त्रिमण्डलों में भी सम्मिलित होकर महत्वपूर्ण विभागों का कार्य सम्पादन कर रही थीं।

कार्य भार अत्यन्त बढ़ जाने की वजह से कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति ने देशभर के कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के संचालनार्थ १६३७

में एक पार्लिमेंटरी सब कमेटी कायम करदी जिसके तीनों सदस्य डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल व अब्दुल कलाम आजाद देश के त्यागी, तपे हुए और महान अनुभवी नेता थे। उपरोक्त तीनों महानुभाव कांग्रेस के प्रेसीडेंट भी रह चुके है। उनके लिये यह कार्य कोई कठिन कार्य नहीं था। "Inside Asia" और "Inside Europe" के सुप्रसिद्ध लेखक जान गुन्थर ने लिखा था कि "आजाद साहब कॉंग्रेस के दिमाग और आध्यात्मिक जागृति के प्रतीक है, राजेन्द्रप्रसाद कॉंग्रेस के दिल व पटेल साहब 'बंधी हुई मजबूत मुट्ठी के सदृश है।" यह आलोचना वस्तुओं को अमेरिकन व यूरोपियन ढङ्ग से देखने का परिणाम है। पार्लिमेंटरी सब कमेटी की स्थापना इसलिये हुई थी कि वह मंत्रिमण्डलों और धारासभाओं के सदस्यों की निगरानी रखे कि वे अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन उचित रीति से कर रहे है क्योंकि मंत्रिमण्डलों और धारासभाइयों ने पद ग्रहण करने के पहिले कॉंग्रेस के समक्ष प्रतिज्ञाएँ ली थीं। पार्लियामेंटरी सब कमेटी का कार्य इस प्रकार की दूसरी सब कमेटियों से ज्यादा कठिन था क्योंकि उसे सारे देश के कॉंग्रेसी मंत्रिमण्डलों का दृढ़ सङ्गठन करना था और उनका नैतिक धरातल विशेष उन्नत करना था। सब कमेटी का यह भी कार्य था कि वह किसी भी मंत्रिमण्डल में अनुशासन भंग न होने दे। इनसे भी भयङ्कर कर्तव्य सब कमेटी का यह था कि चाहे उसे बदनामी भी उठानी पड़े पर वह अनुशासन और निष्पक्षता के कायम रखने के लिये हर उपाय का सहारा ले सकती थी। उपरोक्त तीनों नेता इन गुणों के लिये देशभर में विख्यात थे। वे तीनों अपने महत्वपूर्ण इस कार्य को बहुत ही दूरन्दर्शी व बुद्धिमानी से निभा रहे थे। काम का क्षेत्र बहुत ही व्यापक था, अतः तीनों ने अपना-अपना कार्य बाँट लिया था। कुछ इस तरह की भी जिम्मेदारियाँ थीं जो सम्मिलित थीं।

१९३९ में सिंध में मंत्रीमण्डल की समस्या बहुत ही उलझ-

गई। मामला इतना पेचीदा हो गया कि महात्मा गांन्धी से उसमें परामर्श लेना आवश्यक हो गया।

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने गांधी कहा—

"मेरा दिमाग भी मुझे रास्ते बताता है फिर भी इस तरह की समस्याओं में मैं हमेशा आप के ही नैतिक सुझावों को मान्य करता हूँ। इस मामले मे बिना वाद-विवाद के मैं आपकी ही की बात स्वीकार करूंगा।"

"नहीं, ऐसे मामलों के विषय में आपने और मैंने हमेशा ही के लिये यह स्वीकार कर लिया है कि आपकी ही सम्मति सर्वोपरि रहेगी। मैं सरदार पटेल और राजेन्द्र बाबू से कहूंगा कि वे आपका ही अनुसरण करें।"—गांधीजी ने जवाब दिया।

"लेकिन मेरे लिये तो यह है कि आपकी ही राय सर्वोपरि होगी।"

—मौलाना आजाद ने कहा।

अन्त में इस मधुर वार्तालाप का अन्त इस प्रकार हुआ कि मौलाना हार गये और गांधीजी की बात रही।

बिहार और संयुक्त प्रांत

बन्दियों की रिहाई—

कांग्रेसी मंत्रीमण्डलों के अधिकांश सदस्यों नेसत्याग्रह संग्राम के दिनों में सत्याग्रह करने या विद्रोहात्मक भाषण देने के एवज में लम्बी सजाएं भोगी थीं। अतः मन्त्रिमण्डलों का कुदरती तौर पर यह प्रथम कर्तव्य था कि सरकारी पदों पर बैठकर वे सबसे पहले उन साथियों के लिये विचार करें जो जेलों में सड़ रहे थे। इन कार्यों से यह स्पष्ट मालूम होने लगा था कि शासन का ढंग बदल गया है और मन्त्रिमण्डलों को कानून और पुलिस को अपनी मातहती में ले लेना

कितना लाभदायक है ! कुछ राजनीतिक कैदियों को तो अस्थायी मन्त्रि-मण्डलों ने ही मुक्त कर दिया था जो कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के पूर्व बने थे। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने अपने पद ग्रहण करने के शीघ्र बाद ही अधिकांश बन्दियों को मुक्त कर दिया दूसरे दलों की तरफ से यह शिकायतें आने लगी और खास कर कम्यूनिस्टों की तरफ से कि बम्बई और दूसरे प्रान्तों में कई कैदी वर्षों से सड़ रहे हैं, यहाँ तक कि उनकी सजाओं की लम्बी मियादें काफी अरसे से खत्म हो चुकी हैं। फलतः अक्टूबर १९३७ में वे कैदी भी छोड़ दिये गये जो मेरठ षड़यन्त्र के सिलसिले में अभी तक जेलों में सड़ रहे थे। इसी माह में एक कांग्रेसी समाजवादी मद्रास में बगावत करने के अपराध में गिरफ्तार हुआ। इस गिरफ्तारी से देश भर में सनसनी फैल गई और राजद्रोह के विधान को बदलने की देश भर में जोरदार मांग हुई। इसके बाद ही मद्रास सरकार ने १९२१ के मोपला विद्रोह के कैदियों को मुक्त कर दिया और इन्हीं दिनों में वे भी कैदी छोड़ दिये गये जिन्होंने १९३० में अपने अफसरों के हुक्म पर फौजी की हैसियत में होते हुए भी निरीह जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया था।

१९३७ की अगस्त में, कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के निर्माण के बाद ही कांग्रेस ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया था कि देश के तमाम राजनीतिक कैदी रिहा कर दिये जाँय। नवम्बर में कांग्रेस को यह ज्ञात हो गया कि अभी भी कांग्रेसी प्रान्तों में कुछ राजनीतिक कैदी रह गये हैं तथा वे भयंकर कानून भी रद्द नहीं किये गये हैं जिनके द्वारा अंग्रेजी सरकार ने देश का नागरिक जीवन बरबाद कर डाला है, यहाँ तक कि वह कानून भी रद्द नहीं किया गया है जिसमें मन्त्रियों को अधिकार है कि बिना मुकदमा चलाये किसी को भी कैद में रखले। कांग्रेस ने देश के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को इसके लिये शीघ्र ही

कार्यवाही करने की हिदायत दी।

बिहार मन्त्रिमण्डल ने अपने ६ माह ने कार्यों का सिंहावलोकन करते हुए एक वक्तव्य में १९३८ के जनवरी महीने के अन्त में बताया कि अभी तक बिहार में से १८ राजनीतिक बन्दी मुक्त कर दिये गये हैं और २४ कैदियों के मामले विचाराधीन हैं। फरवरी के मध्य में उपरोक्त कैदियों के मामलों पर विचार हो चुका था और उनकी रिहाई की मांग करते हुए कहा था कि उन्हें ३ घन्टों के अन्दर ही मुक्त कर दिया जावे। इसी अरसे में संयुक्त प्रान्त ने भी १५ राजनीतिक कैदियों की तत्काल रिहाई की मांग पेश की। ये सभी कैदी १९२२ के चौरी चौरा आन्दोलन के थे जिसे गांधीजी ने संचालित किया था। यह भारतवर्ष का सबसे पहिला सत्याग्रह आन्दोलन था। बिहार और संयुक्तप्रान्त के गवर्नरों ने उन कैदियों का छोड़ने से इन्कार कर दिया। मन्त्रियों ने वायसराय से अपील की पर वहाँ से भी जवाब नहीं मिला। इस पर दोनों प्रान्तों के मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। देश का वातावरण फिर सनसनीपूर्ण हो उठा। उस समय यह एक अच्छी बात हुई कि दोनों पक्षों के कुछ विचारशील व्यक्तियों ने बीच बचाव भी किया। इस पर गवर्नरों ने स्तीफे रोक लिये। उसी समय वायसराय का एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ, इससे वातावरण और भी गरम हो गया। आम रिहाई और विशिष्ट रिहाई के प्रश्न को लेकर देश भर का वातावरण उलझ गया। यह समझना कठिन ही है कि जब इन ४० कैदियों को सजाएँ हुई उन दिनों से मन्त्रिमण्डलों के निर्माण-काल का वातावरण एकदम भिन्न हो चुका था फिर भी सरकार इन की रिहाई के मामले में जिद क्यों पकड़ गई? दूसरे यह कि जब कांग्रेस स्वतः ही शासन का कार्य संभाल रही है तो वह स्वयं शांति और व्यवस्था की जिम्मेदार थी। यह मानी हुई बात थी इस उलझन की पूरी जिम्मेदारी वायसराय पर थी।

कुछ समय के लिये बंगाली नवयुवकों का आकर्षण क्रान्ति की तरफ विशेष रहा। इस हिंसात्मक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप बंगाल के कई होनहार नवयुवकों को जेल भेजा गया और कइयों को सिर्फ हिंसात्मक कार्रवाइयों के सन्देह में नज़रबन्द कर दिया गया। कई मौकों पर तो इस तरफ के नज़रबन्दों की संख्या कई हज़ार तक पहुँच गई थी। इनमें से कई तो अपने घरों पर ही और कई शिविरों में नज़रबंद रखे गये थे। बंगालके गवर्नर सर जानएन्डरसनने इन नज़रबन्दों के लिये शिक्षा की योजना भी तैयार की थी। कुछ नज़रबन्द उद्योगों को सीखने में भी कामयाब हुए। वे मुक्त कर दिये गये और बाहर भी वे उन्हीं धन्धों के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इधर बंगाल में यह हो रहा था और दूसरी ओर प्राय: ३०० युवकों पर अदालत में मुकदमे चलाकर उन्हें काले पानी की सजाएं दी गईं। ये ३०० युवक बरसों से अन्डमान में सड़ रहे थे। इन बंगाली युवकों की रिहाई के लिये देश में सनसनी फैल रही थी। इस आन्दोलन को बढ़ता देख कर दो धारासभाइयों—१ हिन्दू और १ मुसलमान—ने अन्डमान जाकर वहां की दशा की जांच की। उन दोनों ने वहां की नैतिक स्थिति को उतनी ही खराब पाया जितनी कि वह १५ साल पूर्व थी जब सरकारी कमीशन ने जाँच करके बताया था कि यह बन्द कर दिया जाना चाहिये और कुछ समय के लिये वह बन्द भी कर दिया गया था। किन्तु इस बार की जाँच का सरकार पर कोई असर नहीं हुआ।

१९३७ के ग्रीष्म में अन्डमान के बन्दियों ने वहाँ भूख हड़ताल कर दी। इस समस्या ने देश में ऐसा भयानक रूप धारण किया कि गांधीजी को बीच में पड़ना पड़ा। गांधीजी ने बन्दियों और सरकार के बीच समझौता कराने का बहुत प्रयत्न किया, इस पर एक को छोड़कर सभी बन्दी राजी हो गये। सरकार ने भी स्पष्ट कर दिया

कि यदि प्रान्तीय सरकारें कैदियों को मुक्त कर देने बाद उन्हें अपने निवास स्थान के प्रान्तों में रहने देने को तैयार हों (क्योंकि कुछ कैदी बंगाल के अलावा दूसरे प्रान्तों के भी थे) तो उसे छोड़ने मे कोई एतराज़ नहीं है। इस पर शीघ्र ही कांग्रेसी प्रान्तों ने अपने-अपने प्रान्त के कैदियों की मांग की। बंगाल सरकार अपने ३०० कैदियों को एक साथ मुक्त करने को तैयार नहीं थी फिर भी दल बनाकर शीघ्र ही कैदी देश मे लाये गये। आखिरी दल जिसमें १०० बन्दी थे जनवरी १६३८ के आखिरी सप्ताह मे बंगाल पहुँच गया। परन्तु मुक्त करना यह तो समस्या ही अलग थी। दिसम्बर १६३७ में प्रायः एक हजार नज़रबन्द मुक्त कर दिये गये यद्यपि उनके साथ यह पाबन्दी अवश्य थी कि वे जब कभी अपने निवास स्थान को छोड़ें तो फौरन पुलिस को सूचित कर दें। गांधीजी बार-बार कैदियों को मुक्त करने के प्रश्न पर जोर दे रहे थे और वे एक के बाद दूसरे कैदियों से हिंसा में विश्वास करने से मना कर रहे थे। कैदी भी लगातार हिंसा के छोड़ने की गांधीजी से प्रतिज्ञा करते जाते थे। दुर्भाग्य से गांधीजी दिसम्बर में बीमार होगये और यह कार्य प्रायः रुक-सा गया। पंजाब के प्रायः २१ कैदी अन्डमान में थे। पंजाब के मंत्रिमण्डल ने उन्हें मुक्त करने से इन्कार कर दिया, इस पर उन्होंने भूख हड़ताल आरंभ कर दी। वायसराय के समक्ष यह स्पष्ट ही था कि बिहार और संयुक्तप्रान्त से बेशुमार कैदी छोड़े जायेंगे तो बंगाल और पंजाब के गैर-कांग्रेसी प्रान्तों पर इसका बहुत ही खतरनाक प्रभाव पड़ेगा अतः जब उपरोक्त दोनों प्रान्तों के कैदियों को मुक्त करने के लिये कांग्रेसी मंत्रियों ने जोर दिया तो लार्ड लिनलिथगो ने १६३८ की फरवरीमें राजनीतिक बंदियों को छोड़ने से इन्कार कर दिया . थोड़े ही अरसे बाद सरकार से समझौता हो गया और शेष कैदी भी रिहा कर दिये गये। और मंत्रि-मण्डल पुनःकाम करने लगे। बंदियोंकी रिहाईका विषय महज़ राजनीतिक कैदियों तक ही सीमित नहीं था। यह दुर्भाग्य का विषय है कि

दुनियाँ के तमाम देशों की अपेक्षा भारत के जेलों की आबादी सबसे अधिक है। कांग्रेस के कई नेताओं ने, खास कर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जेलों में कैदियों से मिलकर इस बात को महसूस किया है कि अधिकांश कैदी जरायम पेशा और अपराधी प्रकृति के नहीं होते हैं। यही कारण था कि संयुक्त-प्रान्तीय मंत्रिमण्डल ने, सजाएं खत्म होने से पहिले ही अपने प्रान्त के ३००० से लेकर ४००० तक कैदी शरद ऋतु के आरंभ होने से पहिले ही छोड़ दिये।

नागरिक स्वतंत्रता—

कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य संस्थाओं पर की पाबंदियाँ हटाना था। लार्ड विलिंगडनने बीसों संस्थाओं पर अपने कार्यकाल में पाबन्दियाँ लगादी थीं। जनवरी १९३८ में बिहार मंत्रिमण्डल ने यह विज्ञप्ति प्रकाशित की कि "अब हमारे यहाँ किसी भी संस्था पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है और न कोई समाचार पत्र ही जमानत पर प्रकाशित हो रहा है।" तमाम कांग्रेसी प्रान्तों में से वे सभी मुकदमे उठा लिये गये जो राजनीतिक व्यक्तियों पर चल रहे थे। राजनीतिक कार्यकर्ताओं की हलचलों पर से भी प्रतिबन्ध उठा लिये गये। पत्रों से जो जमानतें ली गई थीं वे लौटा दी गईं। जमानतों के तमाम नोटिस रद्द कर दिये गये। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के ऐमालनामे रद्द कर दिये गये। राजनीतिक भाषणों को सरकारी रिपोर्टें लेना बन्द कर दिया गया जिन पत्रों की जमानतें रद्द हो गई थीं, वे उन्हें लौटा दी गईं। जिन अखबारों को अपने दृष्टि कोणों के कारण सरकारी छपाई और विज्ञापन नहीं दिये जाते थे, अब वे उन्हें दिये जाने लगे। रिपोर्ट सरकारी तौर पर सिर्फ ऐसे ही भाषणों की ली जाती थी जो साम्प्रदायिक विष और हिंसा का प्रचार करने वाले माने जाते थे। राजनीतिक संगठनों पर से प्रतिबन्ध उठा लिये गये और राजनीतिक पुस्तकों पर से भी पाबन्दियाँ हटा लीं गईं।

राजनीतिक फिल्में बनाई जाने की इजाज़त प्रदान कर दी गई।

इसके खिलाफ गैर कांग्रेसी प्रान्तों—पंजाब और बंगाल में नागरिक स्वतंत्रता का दमन अभी भी ज्यों-का-त्यों ही था। बगाल के दो जिलों में करफ्यू आर्डर्स, युवकों के परिचय कार्डों का उपयोग ('चटगाँव अकेले में २५००० परिचय पत्र रोज़ाना देखे जाते थे)' साइकलों पर पाबन्दियाँ, कांग्रेसी संगठनों प्रतिबन्ध आदि सख्तियाँ ज्यों-की-त्यों थीं। कांग्रेसी प्रान्तों में इस बात पर भी काफी हल चल रही कि ताजीरात का किस प्रकार उपयोग किया जाय। कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को ताजीरात की दो तीन दफाओं के तहत ही हमेशा सजाएँ दी जाती रही थीं अतः यह स्वाभाविक ही था कि कांग्रेसी उन दफाओं को खत्म करने के लिये सशक्त कदम उठाते। इसके लिये व्यवहारिक रूपसे इस प्रकार आरंभ हुआ कि "हर व्यक्ति सरकार की आलोचना करने के लिये स्वतंत्र है। जनता में अशांति फैलाना, राजद्रोहात्मक भाषण करना या सरकार की बेइज्जती करना—आदि नयी व्यवस्था मे अपराध नहीं माने जायेंगे। हिंसा तथा हिंसात्मक कार्यों को उत्तेजना देना, कोई भी सरकार बरदाश्त नहीं कर सकेगी। हिंसा के उपदेश देने की स्वतंत्रता देना एक प्रकार का असंभाव्य लायसेन्स देने के समान है।"

पुलिस—

अभी तक राष्ट्रीय भारत, पुलिस को सन्देह और दुश्मन की भावना से देखता रहा। लोगों मे आम तौर पर यही विश्वास रहा कि पुलिस का महकमा आरंभ से अंत तक भ्रष्टाचार से भरा हुआ है, कुछ तो इसलिये कि उन्हें आय बहुत ही कम है और दूसरे यह कि पुलिस हमेशा ही रिश्वत के बल पर अपना काम चलाती है। आमतौर पर पुलिस वाले देहातियों और गरीबों को डराते, धमकाते और उनसे पैसे ठगते हैं। पंजाब के प्रधान जज सर डगलस यंग ने

इन्हीं दिनों "कीरू" के मामले का फैसला करते हुए लिखा था कि-- "आमतौर पर अधिकतर मामलों में बेहूदे सन्देहों की आड़ में गैर कानूनी और घृणिततम चरित्रों का ऐसा निन्दनीय परिचय प्राप्त होता है जो एकदम नाउम्मेदी और असमर्थता से भरा हुआ है। ....ऐसे मामले कोई छिपे हुए नहीं हैं, और कई तो हमारी जानकारी में भी हैं जिनमें तफतीश के सिलसिले में ही कई आदमी मर गये। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो कीरू को जो यातनाएँ दी गईं वे बिलकुल खुले आम ही दी गई थीं। पुलिस ने ऐसा जान बूझ कर और इरादे के साथ ही किया था और कई लोग इसके गवाह भी हैं। इन सब बातों पर से यह नतीजा निकलता है कि पुलिस की नजर में ऐसे कार्य छिपाने लायक होते ही नहीं और उनकी नजर में यातनाएँ देना एक आम जाब्ता है।"

जब से कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल कायम हुए तब से पुलिस की निरकुशंता और निर्दयता के कई उदाहरण उनके सामने आ चुके थे। बम्बई में जब हड़तालियों ने पुलिस की शिकायत की तो मंत्रियों ने उनके विरुद्ध सख्त कार्रवाइयाँ करने या उनकी हरकतों को रोकने का वचन देने के बजाय, बड़े उत्साह के साथ पुलिस का पक्ष लिया।

इस बात से यह पता चलता है कि मंत्रियों के पुलिस से सम्बन्ध थे और खास करके पुलिस के स्थायी अधिकारियों से तो थे ही।

"कांग्रेस जो महान परिवर्तन करना चाहती है, वह इन पुराने वफादारों चाहे इनके इरादे कितने ही अच्छे हों, के द्वारा कभी भी नहीं किये जा सकते। उनकी शिक्षा-दीक्षा बिलकुल ही भिन्न ढंग से हुई है और उनकी योग्यता इसी में है कि वे गैर जिम्मेदार साम्राज्य वादी शासन में अपने पुराने ढंग से ही अपना काम करते चले जायें.......इस प्रकार कोई महत्वपूर्ण कार्य उनके द्वारा सम्पन्न, नहीं

हो सकता। हमारे कार्य-भार से दबे हुए मंत्रीगण चिन्तित और श्रमित जीवन बिता रहे हैं।"

उपरोक्त शब्द फरवरी १९३८ में कांग्रेस के समक्ष भाषण करते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरु ने कहे थे अलबत्ता यहाँ यह अवश्य ही सूचित किया जाना चाहिये कि उन दिनों भी एक मध्य प्रान्त का मंत्री-मण्डल ही ऐसा था जिसने भ्रष्टाचार और षड़यन्त्रों को नष्ट करने के लिये स्थानीय सरकार की समस्त प्रबन्ध योजना में आमूल परिवर्तन कर दिया था।

शराब तथा मादक पदार्थों की रोक—

कांग्रेस ने १९२० तक मादक द्रव्यों की रोक को शराब, अफीम चरस, गांजा आदि तक ही सीमित कर रखा था। यदि कोई अमेरिका या यूरोप का निवासी अपने देश के मादक द्रव्यों की रोक के मुकाबले में यहाँ के तत्सम्बन्धी आन्दोलनों को देखे तो उसे आश्चार्य हुए बिना नहीं रहेगा। भारत में मादक द्रव्यों के सेवन करने वालों की संख्या अत्यन्त ही न्यून है। अमेरिका या यूरोप में नशीली चीजों के विषय में लोगों के जो खयाल है. वैसे ही, इन चीजों के विषय में यहाँ के लोगों के हैं। शराब खोरी हिन्दू, मुसलमान या सिख—किसी भी समाज में बुरी नजर से देखी जाती है। भारत के अधिकांश भागों में—खास कर बंगाल और उत्तरी भारतवर्ष के अधिकांश भागों में—शराब का रिवाज अत्यन्त ही न्यून है। भारतवर्ष में केवल यूरोपियन लोग ही बड़े शहरों में शराब पीते हैं। आसाम और उड़ीसा में लोग शराब के बजाय ज्यादातर अफीम का नशा करते हैं।

चुंगी—

प्रान्तीय सरकारों की सबसे बड़ी आय आबकारी ही के द्वारा होती है। सरकार अपनी निगरानी में शराब तथा अन्य मादक द्रव्यों

को दूकानों के जरिये बेचती है। ये दूकानें हमेशा ही नीलाम के जरिये उठाई जाती हैं। और विक्रेताओं को लायसेन्स दिये जाते हैं। सायमन कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया है कि १९२८--२९ में एक प्रान्त की आबकारी की आय १९॥ करोड़ रुपये हुई थी। तमाम प्रान्तों की आबकारी की आय ८८। करोड़ रुपये हुई थी। लगान आदि की आमदनी उसी साल में ३५॥ करोड़ रुपये हुई। इस आमदनी को मद्दे नजर रखते हुए शिक्षा आदि पर जो व्यय किया जाता है वह अत्यन्त ही नगण्य एवं उपहासास्पद ही है। राष्ट्रीय प्रान्तीय सरकारें इस कार्य में अर्थात मादक द्रव्यों के निषेध या बन्द करने में इसलिये सफल नहीं हुईं कि उससे प्रान्त की आय का एक जबरदस्त भाग रुक जाता था। हर साल जो प्रान्तीय रिपोर्टें प्रकाशित होती थीं उनमें बताया जाता था। कि शराबबन्दी आदि में काफी सफलता मिली है, पर यह सब कागजी करतब के सिवाय और कुछ भी नहीं था। १९३५-३६ की उड़ीसा की रिपोर्ट से साफ जाहिर होता है कि अफीम की खपत से सरकार की २३ लाख रुपये की आमदनी बढ़ी और १९३६ में अफीम की खपत भी अन्य सालों की अपेक्षा अधिक ही रही। जनता की अधिक मांग की पूर्ति के लिये उड़ीसा प्रान्त में २० नई दूकानें खोली गईं किन्तु आबकारी विभाग के आफीसर बच्चों और युवकों को हमेशा ही नशेबाजी से बचने का उपदेश देते रहे और इससे होने वाले नुकसान की तरफ जनता का ध्यान आकर्षित करते रहे।

मन्त्रि-मण्डल के पद ग्रहण करने के साथ ही "हरिजन" पत्र के द्वारा गांधीजी ने ३ साल में मादक पदार्थों के निषेध की योजना पर प्रकाश डालना आरंभ कर दिया। गांधीजी ने सुझाया कि इस योजना को एक जिले के बाद दूसरा जिला अमल में लाये और इसके प्रचार के लिये कार्यकर्त्ताओं को गहरी लगन के साथ कार्य करना

होगा। यूरोपियन लोगों को मनमानी शराब बाहर से मंगाने की छूट थी।

आलोचकों को उत्तर देते हुए गांधीजी ने लिखा था कि वे भारतवर्ष से शराब को नष्ट नहीं करना चाहते। उनका कहना था कि "चोरी से काम करना मौत को बुलाना है।" गांधीजी चाहते थे कि सरकारी खजाने में इस प्रकार की खराब आय नहीं जमा होनी चाहिये और नीलम के ठेके भी व्यापारियों के लालच को बढ़ाने वाले होने के कारण कतई बन्द कर दिये जाने चाहियें।

इस शराबबन्दी का सर्वप्रथम कार्य मद्रास से आरंभ हुआ। मद्रास मे दूसरे अन्य प्रान्तों के मुकाबिले आबकारी की सबसे अधिक आय है जो कुल प्रान्त की आय के २७ फीसदी होती है। मद्रास के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीराजगोपालाचार्य थे जो बरसोंसे शराबबन्दी आन्दोलन की संस्था "Prohibition League of India" के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। श्री राजगोपालाचार्य ने शराबबन्दीके लिये सबसे पहिला जिला अपनी जन्मभूमि सलेम को ही चुना। शराबबन्दी का कार्य सलेम में १ अक्टूबर १६३७ से आरंभ हुआ। उन्होंने अपने दौरों के बाद लिखा था—

"शराब बन्दी का जादू सारे प्रान्त में व्याप्त हो गया है। इसका कोई भी विरोधी नहीं, अशान्ति की तो बात ही दूर हैं। इस कार्य से किसी को भी नाराजी नहीं है।"

इसके बाद मद्रास में मितव्ययीक्लब भी खोला गया जिसमें लोगों को काम दिया जाता था और मादक वस्तुओं के सेवन से उन्हें निरुत्साहित किया जाता था। मद्रास सरकर ने तत्सम्बन्धी एक कानून के द्वारा इसका प्रचार मद्रास से प्रत्येक जिले में से रोक दिया। उनकी योजना त्रिवर्षीय थी। दवाइयों तथा वैज्ञानिक कार्यों के लिये ही सिर्फ शराब दी जाती थी। विदेशी शराब से परमिट के द्वारा एक निर्धारित मात्रा में ही मंगाई जा सकती थी—

मद्रास के अनुकरण पर बम्बई, मध्यप्रान्त, संयुक्तप्रान्त, उड़ीसा तथा बिहार ने भी वैसे ही कानून अपने प्रान्तों में प्रचारित कर दिये। दिसम्बर में सी० पी० के मन्त्रिमण्डल ने विज्ञप्ति द्वारा यह घोषित कर दिया कि १ जनवरी १९३८ को सागौर जिला व उसके आसपास के क्षेत्र शराब से शून्य कर दिये जावेंगे। कहने का सारांश यह है कि ताड़ी तथा अन्य देशी शराबों का बेचना कतई बन्द कर दिया जावेगा। यदि कोई चोरी से बेचेगा तो वह अपराधी माना जायेगा। संयुक्तप्रांत के शहरों में तो स्पष्ट ही दिखाई देने लगा था कि शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं का उपलब्ध होना अब कठिन हो है। संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने अपनी ओर से इस कार्य के लिये कुछ दूकानें खोल दीं थीं, वहीं से मादक वस्तुएँ खरीदी जा सकती थीं। मद्य निषेध का कार्य तो गैर कांग्रेसी, प्रान्तों—बंगाल, पंजाब व सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी जारी कर दिया गया था। नौआखाली जिले में १ अप्रेल १९३८ से यह कार्य आरंभ हो गया था। इसके परिणाम स्वरूप बंगाल में आबकारी की आमदनी घटकर सिर्फ १२ फीसदी ही रह गयी थी।

सामाजिक सुधार—

वर्षों से गांधीजी ने देश के सामने "गरीब अधभूखे किसानों" का प्रश्न रख दिया था और उसके लिये वे सतत् प्रयत्नशील भी रहे। इस कार्य में उनके सब से बड़े सहायक पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी थे। यद्यपि दोनों की इस विषय में कार्य प्रणालियाँ भिन्न थीं फिर भी मुख्य सवाल का हल करना दोनों का महत्वपूर्ण ध्येय था इसलिये यह स्वाभाविक ही था कि किसानों के उद्धार के लिये कुछ महत्वपूर्ण योजनाएँ कार्यान्वित की जांय।

लगान तथा कर्ज

भारत के कई भागों और खासकर संयुक्तप्रान्त तथा बिहार

में किसान वर्षों से लगान और बकाया कर्ज के बोझ से दबे जा रहे थे। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का सब से प्रथम कर्तव्य यह था कि वे किसानों को इस अपार बोझ से कैसे मुक्त करें। दुनिया में उथल-पुथल होने तथा १९३२ में कृषि सम्बन्धी वस्तुओं के भाव बेहद बढ़ जाने से किसानों की रही सही हालत भी गिर गयी। भारत के किसान प्राय: १४ अरब रुपयों के कर्ज से दबे हुए हैं। इस बेशुमार कर्ज को कम करने के लिये कोशिशें भी की गईं थीं और कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों के बनने के पहिले इस कर्ज की अदायगी के लिये सरकार ने थोडी बहुत छूट भी दी थी। देश के किसानों के कर्ज के भार से दबे रहने के कारण उनमें से कइयों की स्थिति तो अत्यन्त ही दयनीय हो चुकी है। साहूकारों के चक्रवृद्धि ब्याज के चक्र में फंसकर भारत का किसान कभी पनप ही नहीं सकता। किसानों की इस प्रकार की दय-नीय स्थिति को देख कर कांग्रेसी सरकार ने दो रास्ते निकाले। पहिला तो यह कि सरकारी बकाया या साहूकार की बकाया को या तो सरकार ने कुछ समय के लिये स्थगित कर दी या फिर ब्याज की दर बिलकुल ही कम कर दी। दूसरा कार्य यह अमल में लाया गया कि धारासभाओं में इस तरह के बिल पेश किये गये जिससे किसानों की दशा सुधार सके। इसके लिये सरकार के लगान के कानून में सुधार करने तथा साहूकारों के मनमाने ब्याज की रकमों को गैर कानूनी करार देने का इरादा कर लिया। कई प्रान्तों में छूट दे दे कर कर्ज का रुपया वसूल करने की प्रणाली का प्रचार किया गया। इस कार्य के लिये नई सरकार ने बोर्ड नियत किये कि वे कर्ज में उचित कमी करें। संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने अपने कानूनों में इस प्रकार की सुविधा का प्रबन्ध किया कि किसान कितना कर्ज अदा कर सकता है, उसी के अनुसार उसका शेष कर्ज माफ कर दिया जावे। मद्रास इन सभी, प्रान्तों से दो कदम आगे ही रहा। वहाँ किसानों पर १ अक्टूबर १९३२ के पहिले का जितना भी कर्ज था वह सब रद्द

कर दिया गया। इस तारीख के बाद के कर्ज के लिये ब्याज की दर बहुत ही हल्की कर दी गई। लेकिन इसका फायदा वे ही किसान उठा सकते थे जो मौजूदा साल का लगान सितम्बर १६३८ के अन्त तक जमा करा दें।

जमींदारी भारतवर्ष में खास कर बिहार और संयुक्तप्रान्त में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक है। इन दोनों प्रन्तों में बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ हैं। बिहार मन्त्रीमण्डल चाहता था कि जमींदारी प्रथा का अन्त कर दिया जाय पर आरंभ करने के पहिले ही जमींदारों में सनसनी फैल गई। बिहार के उस समय लोकप्रिय कांग्रेसी नेता डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद थे जो इसके पूर्व और बाद में भी कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके हैं। उनका सम्मान बिहार में बहुत ज्यादा है। उन्होंने अपने प्रान्त में किसानों के हितों के लिये काफी ठोस कार्य किये हैं। उन्होंने १६३४ में बिहार में भूकम्प आने पर अपने प्रान्त की खूब ही सहायता और सेवा की थी। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद गाँधी वादी हैं, समाज वादी नहीं। १६३७ के ग्रीष्मकाल में बिहार की किसान सभा ने सरकार के समक्ष कुछ मांगें पेश की थीं। और साथ ही यह भय भी बताया था कि यदि उसकी मांगें पूरी नहीं होंगी तो हिंसात्मक कार्य हो जाने का भी अन्देशा हो सकता है। इस पर जितनी किसान सभाएँ काँग्रेस के अन्तरगत् थीं, उन पर काँग्रेस ने अनुशासनात्मक कारवाई की। बिहार के काश्तकारी के कानून में [Tenancy Act] में यह स्पष्ट कर दिया गया कि उपज पर कई प्रकार के जो कर लगाये गये हैं वे रद्द कर दिये जावेंगे और कर्ज की बकाया रकम पर १२॥ फी सैकड़े से घटाकर ६। फी सैकड़ा ब्याज लिया जावेगा। जमींदार किसानों से कई तरह के लगान वसूल करते हैं। ऐसी सभी वसूली गैर कानूनी करार दे दी गई थी। १ जनवरी १६११ से ३१ दिसम्बर १६३६ तक किसानों पर जितनी रकम ब्याज के रूपमेंलेना बाकी थी, वह सब रद्द करदी

गई। बिल के पहिले मसविदे में यह कहा गया था कि किसान कितना भी कर्जदार क्यों न हो, पर उसकी जमीन ७ सालों से अधिक समय के लिये उससे नहीं ली जा सकती। इस पर जमीदारों में गहरी हलचल पैदा होगई और विरोध इतना सबल हो उठा कि सरकार ने बिल में से इस धारा को निकाल ही दिया। इस दफा को निकालते हुए सरकार ने लिखा था—"किसानों की फिलहाल उतनी ही जमीन जब्त की जायेगी जो कर्ज की पूर्ति के लिये यथेष्ठ हो।"–पर सरकार की यह सफाई बहुत ही लचर थी क्योंकि कानून ने आखिर बकाया लगान और उस पर लगाये गये ब्याज को सही तो मान ही लिया। नीलाम में किसानों के रहने के मकान आदि सम्मिलित नहीं थे।

इसके अलावा बिहारी मन्त्रिमण्डल ने साहूकारों की ज्यादतियों से किसानों को बचाने के लिये भी एक कानूनी मसविदा तैयार किया था। एक अन्य बिल और भी तैयार किया गया था जिसके जरीये जमीदारों से आय-कर वसूल किया जा सकता था। यह बिल वर्षों से संयुक्त प्रान्त में विरोध के कारण रुका पड़ा था, और अभीतक सफलता पूर्वक जमीदार ही इसका विरोध करते आ रहे थे। सरकार इस आमदनी के द्वारा कांटे की खेती को बढ़ाना चाहती थी बिहार सरकार ने संयुक्त प्रान्त की सरकार से, इस कार्य की शिक्षा के लिये संयुक्त प्रान्तीय सरकार एग्री कल्चरल कालेज में सेवाएँ मांगी थीं और बिहार सरकार अपने प्रान्तों के विद्यार्थियों को उस कालेज में भेज कर खेती की शिक्षा भी दिलाना चाहती थी इसी प्रकार संयुक्त प्रान्तीय सरकार भी अपने प्रान्त के विद्यार्थियों को बिहार के मवेशियों के इलाज के कालेज (Veterinary College) में भेज कर तत्सम्बन्धी शिक्षा दिलाना चाहती थी।

संयुक्त प्रान्त की आम परिस्थिति बिहार के ही समान थी। वर्गीय चेतना कई जिलों में अधिक थी, किसान अपने दल निर्माण कर रहे थे और जमीदारी के खत्म करदेने की मांग कर कर रहे थे।

पंत यन्त्रिमण्डल के स्थापित होते ही एक साल की किसानों की बकाया माफ-करदी गई। संयुक्त प्रांत में कोई महत्वपूर्ण बात तो नजर में नहीं आई पर १८ जनवरी १९३८ को १०००० गाँवों में पुनर्निमाण का कार्य आरम्भ कर दिया गया। हर जिले में गांवों के उत्थान के लिये विभाग खोले गये और इस कार्य के लिये ८०० प्रबन्धकर्ता तैनात किये गये। कई गांवों से यह शिकायतें भी आती रहती थीं कि पुलिस गांवों मे जाकर जुल्म करती है। कहने का सारांश यह कि संयुक्तप्रान्त में किसानों के लिये सुधार के लिये खास महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया।

किसनों के विषय मे बम्बई मन्त्रिमण्डल ने बहुत ही धीमा कदम उठाया। इसका परिणाम यह हुआ कि जनवरी १९३८ में १०००० किसानो का जत्था एसेम्बली भवन तक गया और अपनी तकलीफों को दूर करने के लिये मांग पेश की। इसके कुछ समय के बाद सरकार के दो बिल प्रकाशित हुए। पहिले बिल में उन किसानों को भार-मुक्त करने के विषय में विचार किया गया था जिन पर बेहद कर्ज था। इन किसानों का एक साल का कर्ज माफ कर दिया गया। दूसरा बिल साहूकारों को लायसन्स देने तथा उनपर रोक लगा देने के विषय में था। साहूकारों को अपने बही खाते अदालत में लाने का हुक्म देने की भी इस बिल में गुजांयश थी। बिल में यह भी कहा गया था कि साहूकार अपना साफ और ठीक हिसाब रखें। उनको चक्रवृद्धि ब्याज लगा देने से रोक दिया गया था और ब्याज की दर भी बहुत ही कम करदी गई थी।

उड़ीसा मे कइ नये कानून बनाने गये थे। उनके जरिये किसानों को सरकार और जमीदारो के बेशुमार जुल्मों से बचाने की चेष्टा की गइ थी उड़ीसा के नये प्रान्त का दक्षिणी भाग पहिले मद्रास जिले मे शामिल था अतः वहाँ की स्थिति का अध्ययन करके उस

भाग के लिये नये कानून बनाये गये थे। उड़ीसा एक ऐसा प्रान्त है जोबसे अधिक निर्धन तथा सुदूर है।दूसरे तीसरे साल नदियों की बाढ़ के कारण हमेशा वहाँ तबाही होती रहती है। इस दैवी मुसीबत से प्रान्त को बचाने के लिये सरकार के इन्जीनियरिंग विभाग को काफी सहायता पहुँचाने की आवश्यकता है। उड़ीसा जैसा निर्धन प्रान्त इतनी रकम कैसे प्राप्त कर सकता है कि वहाँ की नदियों में नहरें निकाल कर बाढ़ के पानी को विभाजित किया जासके। १६३७ की ग्रीष्म की बाढ़ ने कटक शहर को तथा आसपास के कई गाँवो का का सत्यानास करदिया। इस पर वहाँ के मन्त्रिमण्डल ने सहायता की अपील प्रकाशित की। इस अपील पर गांधीजी का समर्थन प्राप्त था।

औद्योगिक नीति--

किसानों की दशा से बदतर हालत देशमें मजदूरों की है और खासकर औद्योगिक मजदूरों की दशा तो सबसे अधिक दयनीय है। यद्यपि समय-समय पर सरकार तथा देश के मजदूरों की दशा सुधारने के लिये चेष्टाएँ भी की, अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन तथा व्हिटले मजदूर कमीशन १६३१ ने मजदूरों के विषय में जो सिफारिशें की थीं, उनमे से कुछ के ऊपर अमल भी हुआ फिर भी मजदूरों के काम के घन्टे ज्यों के त्यों ६ ही रहे और उन्हें एक हफ्ते मे बराबर ५४ घन्टे काम करना ही पड़ता था। खानों मे काम करने वाले मजदूरों को ६ घन्टे काम करना पड़ता था। मजदूरों के लिये सरकार ने जो सुधार किये थे, उनमें एक यह भी था कि स्त्रियों और बच्चों को रातपाली में काम नहीं करने दिया जाता था और खानों में स्त्रियों और बच्चों को काम करने की मनाही करदी गई थी। मजदूर यदि काम करते हुए किसी आकस्मिक घटना का शिकार हो जाय तो उसके आश्रितों का क्या भविष्य हो? इसके लिये उसकी जिन्दगी का बीमा होना आवश्यक था। जिससे उसके घर वालों को मजदूर के मरने के बाद

थोड़ा बहुत पैसा मिल जाय। यदि कोई मजदूरिन गर्भवती हो और प्रसूति हो जाय तो उसे तनख्वाह के साथ छुट्टी दी जाना जरूरी था मजदूरों की पगार, उनका काम, भरती के समय रिश्वतखोरी आदि ऐसी समस्याएँ थीं जिनमें फँस कर मजदूर कभी उबर ही नहीं सकता। मजदूरों को स्वच्छ मकानों का प्रबन्ध करना, उनकी गंदगी का निवारण करना आदि महत्वपूर्ण काम सरकार के ही हैं। इसी गंदगी के कारण मजदूरों के बच्चों की मृत्यु की औसत ५० फीसदी तक पहुँच जाती है। लेकिन कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने मजदूरों की स्थिति सुधारने का कोई महत्वपूर्ण प्रबन्ध नहीं किया बल्कि बम्बई के प्रधान मंत्री श्री० खेर को तो आलोचनाओं का शिकार भी बनना पड़ा क्योंकि हड़तालों के सिलसिले में उनका रुख जनता की नजर में उचित नहीं माना गया। खरे मन्त्रिमण्डल की स्थापना के बाद ही ३००० मजदूरों को ७ महीने की गोदी की हड़ताल को भंग कराकर पूँजीपतियों और मजदूरों से समझौता करने का वास्तविक श्रेय उपरोक्त मन्त्रिमण्डल को ही है किन्तु कांग्रेस के अलावा दूसरे दलों को यह समझौता मजदूरों के पैरों में कुल्हाड़ी मारने जैसा ही नजर आया। समाजवादियों ने साफ-साफ कहा कि कांग्रेस ने हड़ताल करने का अधिकार मजदूरों से छीन कर उनकी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी है। समाजवादी चाहते कि निर्णय के लिये कम्पनी और मजदूर संगठन के प्रतिनिधियों की एक पंचायत कायम करनी चाहिये थी। कांग्रेस के बीच में पड़ने से मजदूरों की असली मांगें ज्यों की त्यों रह गयीं। मंत्रिमण्डल की स्थापना बाद के बम्बई प्रान्तों में जो हड़ताल हुई, उसमें मंत्रिमण्डल का रुख अत्यन्त ही कड़ा नजर आया और उनकी मांगों पर ध्यान देना तो दूर, मंत्रि-मण्डल ने हड़तालियों के विरुद्ध सख्त कार्रवाइयां की और बताया कि मजदूर दूसरे लोगों के बहकाने से हड़ताल करने पर आमादा हो गये थे और इसकी पुष्टि के लिये उन्होंने गांधीजी के सिद्धान्तों की दुहाई देते कहा कि सत्याग्रह-हड़ताल-के मनुष्य को जब तक नहीं करना

चाहिये जब तक उसे यह यकीन न हो जाय कि वह एक सच्ची और उचित मांग के लिये लड़ना चाहता है।

अक्टूबर के आखिरी हफ्ते में बम्बई के मन्त्रिमण्डल ने एक प्रेस विज्ञप्ति द्वारा अपनी औद्योगिक नीति की रूपरेखा समझाने की चेष्टा की। इस प्रेस विज्ञप्ति की आलोचना करते हुए सरवेण्ट ऑफ इण्डिया सोसाइटी जैसे उदार दल के मजदूर नेता श्री आर० आर० बखाले ने कहा था—

"यह माना कि कांग्रेसी सरकार की यह रूपरेखा मूलतः बहुत अच्छी है, किन्तु केवल प्रस्तावों से ही क्या हो सकता है? प्रस्तावों को कार्यान्वित करने का कोई भी मार्ग इसमें सुझाया नहीं गया है। छोटे से छोटे सुधारों के लिये भी कोई उपाय पढ़ने को नहीं मिला। विज्ञप्ति में "सम्भावनाओं की खोज", "प्रयत्नशील है", "इरादा रखती है" तथा "कार्यान्वित करने के लिये कटिबद्ध है" आदि बँधी बँधाई सरकारी शब्दावली का प्रयोग ही इधर-उधर नजर आता है। सच कहा जाय तो मन्त्रिमण्डल प्रस्तावों से आगे एक कदम भी नहीं बढ़ पाया है।

यह सब कुछ होते हुए भी इस बात को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता कि बरसों की बुराइयाँ महीने-दो महीने में ही दूर नहीं की जा सकतीं।

संयुक्त प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल ने अपनी स्थापना के बाद ही कानपुर के तमाम सूती मिलों के ५०००० मजदूरों की हड़ताल का अन्त करवाया। इस समझौते में एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि मिलों के मालिक मजदूरों के किसी भी संगठन को जायज नहीं मानते थे, उन्हें अब मजदूर संगठनों को जायज मानने के लिये बाध्य होना पड़ा, साथ ही वे हड़ताली मजदूरों में से किसी को भी मिल से न तो

निकाल ही सके और जिनको समझौते के पहिले निकाल दिया था, उन्हें फिर से मिल में काम देने के लिये वाध्य होना पड़ा। अन्य बातों के निर्णय के लिये एक कमेटी तैनात कर दी गई। कमेटी की रिपोर्ट से पता चलता है कि गिरी हुई आर्थिक स्थिति के होते हुए भी कानपुर की सूती मिलों ने काफी उन्नति करली है। मालिकों की यह शिकायत कि मुनाफा बहुत ही कम होता चला जारहा है, कमेटी की राय में, अनुचित मानी गई। क्योंकि मालिकों द्वारा दिये गये आँकड़ों से ही कमेटी को स्पष्ट हो गया कि मुनाफा ३० फी सैकड़े से घटकर २५ फी सैकड़े पर आगया है। यह अन्तर बहुत ही नगण्य होने के कारण ध्यान देने योग्य नहीं है।

अन्य सुधार—

जनवरी १६३८ में उड़ीसा और संयुक्तप्रान्त की कांग्रेस सरकार ने अपने-अपने प्रान्तों में प्रसूति के सम्बन्ध में कानून जारी किये। इन बिलों से उन स्त्रियों को बहुत लाभ पहुँचा जो कारखानों में काम करती थीं। उड़ीसा के उपरोक्त कानून के अनुसार अशिक्षित दाइयों तथा बिना शिक्षा पाई हुई डाक्टरी का काम करने वाली औरतों को धाय तथा डाक्टरी का काम करने से रोक दिया गया।

बम्बई के मन्त्रिमण्डल ने सुधारकों को मन्दिर-प्रवेश आदि कार्यों में प्रोत्साहित करने के लिये एक योजना तैयार की। हरिजनों के उद्धार के लिये हरिजन सेवक संघ नामक कांग्रेसी संस्था को मन्त्रि-मण्डल की ओर से यथेष्ठ प्रोत्साहन दिया गया। कुछ मन्त्रियों ने तो हरिजन बालकों की शिक्षा के लिये विशेष सुविधाएँ भी प्रदान कीं। इसके अलावा भी मन्त्रिमण्डलों के सामने कई ऐसे सुधार थे जिनकी तरफ उनका ध्यान जारहा था। सहकारी आन्दोलनों का प्रचार वे देहात और शहरों दोनों में करना चाहते थे। उनका यह भी इरादा था कि विवाहों में बहुत ही कम खर्च किया जाय। इसके अलावा भी

उनके दिल में इसी प्रकार के कई और भी सुधार थे, पर इस तरह के सुधारों के लिये जनता का सहयोग पूरी तरह मिलना चाहिये वरना कानूनों के दबाव से इस तरह के सुधार कभी भी सम्भव नहीं हो सकते। मन्त्रिमण्डल जमीनों के लगानों में कमी करने पर भी ध्यान देना चाहते थे। साथ ही देहातों में भी स्वास्थ्य के सुधार के लिये वे डाक्टरों का एक दल तैनात करना चाहते थे।

शिक्षा—

कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के निर्माण के साथ ही शिक्षा के सम्बन्ध में गान्धी जी के प्रस्तावों पर अमल किया जाने लगा। गान्धी जी इस तरह की शिक्षा के हामी थे, जिससे शिक्षार्थी और शिक्षा दोनों अपने पैरों पर खड़े हो जायँ। उनका विश्वास था कि शिक्षा का प्रचार बिना इस ध्येय के पूरा हो ही नहीं सकता। उस देश में जहां शिक्षितों की औसत ७ फी सदी से ज्यादा नहीं है और सदियों से जहाँ अशिक्षा ने घर कर रखा है, वहाँ शिक्षा में जब तक कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हों, जनता पूर्ण रूप से शिक्षित हो ही नहीं सकती। इसके लिये ठोस योजना का बनाया जाना अत्यन्त ही आवश्यक था। वर्धा-कान्फ्रेंस में गान्धी जी ने जो योजना पेश की थी, उसकी काफी आलोचना तथा प्रत्यालोचना देश में हो चुकी है। कान्फ्रेंस में ठोस प्रस्ताव तैयार करने के लिये एक कमेटी का भी निर्माण किया गया।

गान्धी जी की योजना में शिक्षा का यह क्रम रखा गया था कि विद्यार्थी शिक्षा के साथ ही साथ कोई ऐसा धन्धा भी सीख जायँ जिससे उसे नौकरी की तलाश नहीं करनी पड़े। डाक्टर जाकिरहुसैन तथा उनके साथियों ने मिलकर जो रिपोर्ट तैयार की, उसमें उन्होंने गान्धी जी की यह भावना कि शिक्षा बालकों को स्वावलम्बी बना दे कतई छोड़ दी गई। यह रिपोर्ट ता० २ दिसम्बर १९३७ को प्रकाशित हुई। डाक्टर जाकिरहुसैन की रिपोर्ट में यद्यपि स्वावलम्बी शिक्षा का

विचार हटा दिया गया था फिर भी उन्होंने विद्यार्थियों के लिये एक न एक धन्धा सीखने की सिफारिश अवश्य ही की थी और इसी को आधार मानकर ही उन्होंने रिपोर्ट तैयार की थी। इस रिपोर्ट में डाक्टर जाकिरहुसैन ने लिखा था—"यहाँ हम यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वर्धा-कान्फ्रेंस में बेसिक शिक्षा के लिये जो योजना तैयार कीगई थी, वह अपने आप में ठोस हो यही हमारा दृढ़ इरादा है। यदि यह योजना विद्यार्थी को स्वावलम्बी नहीं बना सके तो कम से कम हमारा यह इरादा तो अवश्य ही है कि शिक्षा स्वयं ठोस हो। यही योजना हमारे राष्ट्र की आधारभूत योजना हो जाय और शिक्षा के मार्ग में यही योजना हमारे शिक्षण-आंदोलन में पुनर्निर्माण के रूप में स्वीकृत हो सके। दूसरे शब्दों में इसका यह मतलब है कि मौजूदा शिक्षण में इस योजना के द्वारा जबरदस्त परिवर्तन होकर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जिससे बालकों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके।

"इस योजना के द्वारा हम बालकों को किसी रचनात्मक तरीके पर शिक्षित करना चाहते हैं, जिससे उसे सैद्धांतिक शिक्षण और वार्षिक पाठ्यक्रम के झगड़े में न पड़ना पड़े। क्योंकि बालकों को सैद्धान्तिक शिक्षण और वार्षिक पाठ्य-क्रम से कुदरती चिढ़ रहती है।"

वर्तमान शिक्षण बालकों के जीवन को निरुत्साहित करने वाला है। क्योंकि—"इससे बालक समाज के उपयोगी एवं उत्पादक सदस्य नहीं बन सकते। न इससे बालकों में पारस्परिक सहकारिता के भाव ही उत्पन्न होते हैं!!!

यदि बालकों को किसी धन्धे का शिक्षण दिया जाय तो वह यंत्रवत् नहीं दिया जाना चाहिये। बच्चे को यह समझ में आना चाहिये कि ऐसा क्यों होता है। स्कूल का जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है, वह जिन्दगी के निर्माण का एक महत्वपूर्ण भाग है। बालकों को स्कूल

में ही नागरिकता की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता सहकारिता को सीखना चाहिये। जो आगे के जीवन में सफलता प्राप्त करने का सर्वोपरि साधन है।

उपरोक्त रिपोर्ट में आधारभूत धन्धों में कताई, बुनाई, सुतारी, कृषि, बागवानी तथा चमड़े का काम लिये गये हैं। दूसरे प्रान्तों में वहां की परिस्थितियों के अनुसार दूसरे धन्धे भी स्वीकार किये जा सकते हैं पर प्रायः सभी प्रान्तों में कृषि और कताई आम धन्धे के रूप में सिखाये जा सकते हैं।

सितम्बर महीने में मध्यप्रान्त में एक एज्यूकेशन बिल पेश किया गया। इस बिल के अनुसार हर ऐसे गाँव में जहाँ ४० या ४० से ज्यादा पढ़ने की उम्र वाले लड़के हैं, एक स्कूल खोला जाना आवश्यक करार दिया गया। इस बिल में यह भी कहा गया था कि जो विद्यार्थी मैट्रिक पास करना चाहता हो उसे पहिले अपने गाँव में सालभर तक समाज सेवा और सालभर शिक्षक की हैसियत से काम करना जरूरी है।

बम्बई सरकार ने शारीरिक शिक्षण के लिये एक कमेटी बनाई थी जिसकी रिपोर्ट दिसम्बर मे पेश हुई। इस रिपोर्टमें बताया गया था कि हर स्कूल मे ४५ मिनिट तक शारीरिक शिक्षण के लिये रोजाना रखे जाने चाहियें। खेलों में देशी खेलों को ही अपनाना आवश्यक है।

श्री सुभाषचन्द्र बोस का दुबारा चुनाव—

जब सरदार पटेल कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के मुख्य संचालक थे और सारे देश में लाभदायक योजनाओं को प्रोत्साहन देरहे थे, तब कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस थे। वह पण्डित जवाहरलाल नेहरू के बाद १६३८ मे कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। सुभाष बासू १६३६ में फिर अध्यक्ष चुने गये किन्तु इस बार महात्मा गाँधी व उनके साथियों ने चुनाव का घोर विरोध किया। इस विरोध से

देश का वातावरण बहुत ही चिन्ताजनक होगया था। श्री० सुभाषचन्द्र बोस ने २७ जनवरी १६३६ को लिखा था—

"सरदार पटेल ने मेरे बड़े भाई को जो तार दिया है उसमें उन्होंने दूसरी दलील यह पेश की है कि मेरा दुबारा चुना जाना देश के हित के लिये हानिकारक है। यह दलील इतनी आश्चर्यजनक है कि इसका खण्डन करने की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। देश के कई भागों में यह गलत चर्चा चली कि इस साल चुनाव के मामले में संघर्ष होगा। यह मानी हुई बात है कि चुनाव में कई सालों से किसी प्रकार की तनातनी नहीं हुई। यह भी सच है कि इस साल का संघर्ष अद्भुत ही रहेगा। लेकिन यह कहना भूल है कि चुनाव के मामलों में कभी संघर्ष हुआ ही नहीं। हाँ, यह बात जरूर है कि इस साल जो खुला नाटक होने जारहा है, वैसा पहिले कभी नहीं हुआ। कार्यसमिति के भीतर के दलों का यह दावा एक दम मिथ्या है कि वे ही हर बार अध्यक्ष का चुनाव अपनी मरजी के अनुसार करते रहेंगे। यदि हमें विधान के अनुसार चुनाव करना है और कार्यसमिति के दल द्वारा किसी को नामजद नहीं करना है तो यह अशद जरूरी है कि प्रतिनिधियों को अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से काम करने देना चाहिये। इस समय तो सारी वैधानिकता एक तरफ रखदी गई है और प्रतिनिधियों पर जबरदस्त नीतिक दबाव डाला जारहा है कि वे कार्य द्वारा सुझाये गये नाम को अपना मत दें। सरदार पटेल ने अपने वक्तव्य में कहा है कि गत वर्ष जिस विधान के अनुसार चुनाव किया गया था, इस पर भी उसी के अनुसार चुनाव होगा। यह बात सचाई से परे है। यदि कार्य समिति के दल ने इस बार भी ठीक ढंग से काम किया होता तो संघर्ष होने की स्थिति ही नहीं आ सकती थी। यदि कार्यसमिति के दल के सुझाव देश की जनता द्वारा पसन्द नहीं किये जायें तो क्या प्रतिनिधियों को अपनी मरजी के मुताबिक वोट देने का अधिकार नहीं है ?"

इधर यह संघर्ष जारी था और उधर मि० जिन्ना अपनी तत्कालीन स्थिति से एकदम असन्तुष्ट होरहे थे। मि० जिन्ना को कांग्रेस का यह खेल किसी शरारत से भरा हुआ नजर आरहा था, यद्यपि कांग्रेस जो कर रही थी अपनी सुरक्षा के लिये ही कर रही थी। मि० जिन्ना की नजर में कांग्रेस का रवैया अँग्रेजों से गुप्त मेल-जोल जोड़ लेने का था। फाइनेन्स बिल पर १६३६ में मि० जिन्ना ने केन्द्रीय धारासभा में जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने लीग की स्थिति को बिलकुल ही स्पष्ट करते हुए सरकारी अधिकारियों को एक चेतावनी दी थी कि मुसलमान कांग्रेस की तरह अंग्रेजों के स्वर में स्वर नहीं मिला सकते। उन्होंने कहा—

"महाशय! भूतकाल में हमारा यह सिद्धान्त था कि यदि सरकार कोई भी ऐसा कार्य करना चाहती जो वास्तव में जनता के फायदे के लिये होता था तो हम उसका समर्थन करते थे। यदि सरकार जनता के हित के लिये कोई काम नहीं करती थी तो हम उसका विरोध करते थे। लेकिन, महाशयो! आज हमें यह स्पष्ट होगया है कि हमें अब अपनी नीति बदलनी पड़ेगी। इसका वास्तविक अर्थ यह हुआ कि सरकार ने आज हमें इस स्थिति में पहुँचा दिया है। यदि कांग्रेस सही मार्ग पर हो तो उसका समर्थन किया जाय और यदि सरकार सही रास्ते पर हो तो उसका समर्थन किया जाय। लेकिन जब हम सही रास्ते पर हों तो हमारा कोई भी समर्थन नहीं करता। महाशय हमें यह बात खटकती है। मैं सरकार से जानना चाहता हूँ कि उसकी नीति क्या है? उसका रवैया क्या है? और मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि मेरे दल के विषय में आपका क्या रुख है? मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि फाइनेन्स मिनिस्टर ने अपने भाषण में कहा है कि कानपुर का स्मरण करो, बनारस की याद करो और बदायूँ का स्मरण करो। लेकिन मैं इस धारासभा से पूछना चाहता हूँ कि इस देश में ऐसी और भी कई जगह हैं जहाँ मुसलमानों के

आरंभिक अधिकारों तक को पैरों तले रोंदा गया है। और इस पर सरकार ने क्या किया है? अभी कुछ ही दिनों पहिले की सरदार वल्लभभाई पटेल की एक स्पीच का मुझे स्मरण है, जिसमें उन्होंने कहा था—"इन आरोपों का कोई भी आधार नहीं है, ये बुरे व्यवहारों अन्यायों, जुल्मों आदि के आरोप एकदम निराधार हैं। इसका साधारण-सा कारण यही है कि यदि ऐसी कोई बात होती तो सरकार अवश्य ही हस्तक्षेप करती। मेरा खयाल है कि अभी-अभी मि० भूलाभाई देसाई ने भी अपनी एक स्पीच में इस बात पर विश्वास करते हुए कहा है कि "मुस्लिम लीग ने हमारे ऊपर जो आरोप लगाये हैं, उनमें कुछ भी सत्यांश होता तो निश्चय था कि गवर्नर कभी भी चुप नहीं बैठता और अवश्य ही हस्तक्षेप करता।"

बम्बई के गुजराती और काठियावाड़ियों की सभा में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने ४ फरवरी १९३९ को कहा—

"राजकोट में जो झगड़ा होरहा है, वह राजकोट के शासक और उसकी प्रजा के बीच का झगड़ा नहीं है। यह तो अंग्रेज सरकार और कांग्रेस के बीच का झगड़ा है। मैं और कांग्रेस—दोनों ही इसे भारत व्यापी प्रश्न बनाना नहीं चाहते पर यदि इसकी शकल वैसी बन गई तो इसकी पूरी जिम्मेदारी भारत सरकार के राजनीतिक विभाग पर ही पड़ेगी। राजकोट में युद्ध अनिवार्य है क्योंकि राजकोट के पोलीटीकल एजेन्ट ने इसमे हस्तक्षेप किया है। मुझे लोग दोष देरहे हैं कि मैंने ही इसे भारत व्यापी प्रश्न बना दिया है लेकिन मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि मैंने ही राजकोट के शासक और जनता के बीच एक सम्मानपूर्ण समझौता करवाया था जो भारतीय रियासतों और उनकी प्रजा के बीच झगड़ों को मिटाने के लिये बड़े काम की वस्तु सिद्ध होती। उस समझौते से यह स्पष्ट होगया था कि शासक और प्रजा के क्या अधिकार हैं। राजकोट के पोलीटिकल एजेन्ट ने ही इस समझौते को रद्द किया।"

"सरकार की तरफ से बोलते हुए, ब्रिटिश पार्लिमेन्ट के एक जिम्मेदार वक्ता ने कहा है कि सार्वभौम सत्ता कभी हस्तक्षेप नहीं करेगी, यदि भारत का कोई शाशक अपनी प्रजा को जिम्मेदारान हुकूमत देने को तैयार हो। हम इस तरह के कदम का हमेशा स्वागत ही करेंगे।"

किन्तु राजकोट में जो कुछ हुआ, वह इसके विरुद्ध है। राजकोट में सार्वभौम सत्ता ने ठाकुर साहब, का पीछा पकड़ा और प्रजा और शासक के बीच में जो समझौता होगया था, उसे रद्द करवा दिया।"

''मैंने ठाकुर साहब के साथ कोई गुप्त समझौता नहीं किया था। मैंने उनके साथ जो समझौता किया था वह उनके व उनके मन्त्रियों के साथ ही किया था। ठाकुर साहब ने ही मुझे सुझाया था कि मैंने जिन सात व्यक्तियों को नामजद किया था उनके नाम बाद में प्रकाशित करेंगे क्योंकि अभी ऐसा करने से दूसरे प्रान्तों में शायद अशान्ति फैल जाय।"

आज जो सभी रियासतों में हलचलें जारी हैं, उनका कारण यही है कि रियासती जनता अब तक बहुत आगे बढ़ चुकी है और दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही है। कांग्रेस भारत सरकार से उलझ रही है और रियासतों की जनता अपने शासकों से। यह युद्ध बराबर तब तक जारी रहेगा जब तक कि प्रजा को स्वतन्त्रता अपने अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते। रियासती जनता महज मुकम्मी बोर्डों के स्वायत्त शासन से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकती। उनकी यही मांग है कि उन्हें माली और शासन सम्बन्धी कार्य भी सौंपे जाय।"

"कांग्रेस तब तक चुप नहीं रह सकती, जब तक कि ये ढाई करोड़ लोग अपने शासकों के हाथों कष्ट उठा रहे हैं। भारतवर्ष का

स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना तबतक असंभव हैं जब तक कि ये ढाई करोड़ व्यक्ति निष्क्रिय और निर्जीव होकर कांग्रेस बने हुए है।"

पटेल और बोस--

सुभाषचन्द्र बोस और सरदार पटेल का गहरा मतभेद सुभाष बोस के दुबारा चुनाव को लेकर हो गया। इस मामले में थोड़ासा मतभेद उनका महात्मा गांधी से भी हुए बिना नही रहा। यद्यपि सरदार पटेल अपने गुरु महात्मा गांधी के प्रति अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति रखते हैं लेकिन जहाँ देश का प्रश्न उपस्थित होता है वहाँ खानगी सम्बन्धों को उद्देश्यों से ऊपर नहीं उठने दिया जाता। सरदार पटेल ने "बालिगों को सूत कातना चाहिये" इस प्रोग्राम का विरोध किया और उन्होंने कांग्रेसी समाजवादियों का पक्ष समर्थन किया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि गान्धीजी के विरुद्ध यदि सरदार ने सुभाष बोस का विरोध किया तो वे सुभाष बोस विरुद्ध गान्धीजी से भी विरोध कर सकते थे। इसका मतलब यह हुआ कि सरदार पटेल गान्धीजी के प्रति अन्ध श्रद्धा नहीं रखते और न अन्धे की तरह ही उनका अनुकरण करते हैं। सरदार पटेल को देश का हित ही सर्वोपरि है। फिर भी सरदार हमेशा यहीं कहते हैं कि "मैं गांधीजी का अन्ध भक्त हूँ।" सचाई यह है कि सरदार गांधीजी का अन्धानुकरण इसलिये करते है कि उन्होंने असंख्यों अनुभवों से यह जान लिया है कि भारतीय राजनीति के सर्वश्रेष्ट और सर्वोपरि मार्गदर्शक गांधीजी ही हैं। यह मानी हुई बात है कि गांधीजी की दृष्टि पटेल साहब की अपेक्षा विशाल थी और सरदार पटेल के हाथ गांधीजी की अपेक्षा विशेष मजबूत रहे हैं।

देश में गांधीजी के खिलाफ वातावरण बढ़ जाने के कारण सरदार पटेल ने उन्हें यही राय दी कि वे कांग्रेस से अलग हो जायें।

महात्मा गांधी कांग्रेस से अलग हो गये। गुरु ने शिष्य की बात मान ली पर यह जबरदस्ती का अलग हटना था। लेकिन गुरु यह भली भांति जानता था कि उनका स्थान कांग्रेस में हमेशा ही सुरक्षित है। सरदार पटेल ने गांधी वादी की हमेशा एक ईमानदार पहिरेदार की तरह रक्षा की है। इसलिये गांधीजी कांग्रेस से हट गये लेकिन गांधीवादी ज्यों का त्यों कांग्रेस के भीतर और बाहर बना रहा। "कातिलों को कातना चाहिये" यह प्रोग्राम फिर जारी किया गया जिससे व्यर्थ ही भ्रम फैलाने वाले आलोचकों के मुँह पर ताला पड़ जाये।

कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन के बाद, चुनाव आन्दोलन ... देश में व्याप्त होगया। चुनाव आन्दोलन में सरदार पटेल ने ... कि "कांग्रेस को जो एक वोट देगा, वह गांधीजी को ही दिया गया माना जायेगा." बंगाल, सिन्ध- पंजाब और आसाम को छोड़कर सभी जगह कांग्रेस चुनावों में जीती। १६३५ में कांग्रेस एसेम्बली पार्टी सारे देश में सबसे बड़ी पार्टी थी। प्रान्तीय स्वराज्य के लिये जब आन्दोलन आरम्भ हुआ, तो कांग्रेस की फिर जीत हुई और ११ प्रान्तों में से ७ प्रान्तों में उसका ही बोल बाला रहा। इसके बाद १६३५ के "कॉन्स्टीट्यूशन एक्ट ऑफ इंडिया" के तहत गवर्नरों के विशेषाधिकार के प्रश्न को लेकर एक संकट उत्पन्न होगया। गवर्नरों ने झुकने से इन्कार कर दिया। उस समय सरदार पटेल ने कहा था—"कि अब मुझे झंझटों से शान्ति प्राप्त हुई है। कांग्रेस पद गृहण के लिये याचना नहीं कर रही है और न जिम्मेदारी सिर परने उठाने से डरती ही है।"

अन्त में सरकार झुकी और कांग्रेस मंत्रियों ने पद गृहण किये। कांग्रेस मंत्रियों ने यूरोप में महायुद्ध आरम्भ हो जाने तक ऐसी दूरदर्शिता और बुद्धिमानी से शासन किया कि गवर्नर की दंग रह

गये। जब तक देश में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल रहे तबतक सरदार पटेल बराबर सभी प्रान्तों की सख्त निगरानी रखते रहे। उन्होंने अपने प्रान्तों के मन्त्रियों की सुस्ती, प्रमाद और राजनीतिक चालबाजियाँ कतई मिटादीं। राजनीतिक शक्ति के दुरुपयोग के परिणाम स्वरूप मि० नरीमैन और डाक्टर खरे को मिटा दिया गया। इस पत टिप्पणी लिखते हुए "न्यूज़ रिव्यू" ने लिखा था—"सबसे अधिक खूंखार और सबसे अधिक रूढ़िवादी यदि भारतीय कांग्रेस में कोई सदस्य है तो वह "छाया" के रूप में घने बालों से सम्पन्नसरदार वल्लभभाई पटेल है।"

कठोरतम अनुशासक

कांग्रेस मिनिस्ट्रियों के संचालन में सरदार पटेल ने जिस दृढ़ता एवं शासन सम्बन्धी अद्भुत योग्यता एवं शासन की तत्परता कापरिचय दिया वह वास्तव में सराहनीय था। पटेल की अडिगता, अनुशासन एवं शासन-योग्यता तथा पथ प्रदर्शनकी उनके कट्टर से कट्टर विरोधियों ने भी प्रशंसा की है। वास्तव में देखा जाय तो वे उस समय भारत की राष्ट्रीय नौका के कर्णधार थे। अपने कर्तव्य के

आगे न तो उन्होंने किसी मित्र के साथ मुरव्वत ही की और न किसी विरोधी को सिर उठाने पर छोड़ा। उन्होंने इस मामले में कर्तव्य को ही सर्वोपरि लक्ष्य माना। उन दिनों भारतीय राजनीति के सच्चे नेता सरदार पटेल ही थे। उनके विषय में उस समय जहाँ कहीं कोई आलोचना भी हुई तो वह नौकरशाही और साम्राज्य वादियों के पिठ्ठुओं के ही कार्य थे। हिन्दू महासभा, की आलोचना का मुख्य कारण डा० खरे को प्रधान मंत्री पद से हटाना था। आगे की घटनाओं से यह स्पष्ट हो जायगा कि खरे साहब के मामले में कांग्रेस ने जो सख्त कदम उठाया वह अत्यन्त न्याय पूर्ण था। खरे साहब तथा उनके साथी और कुछ पत्रों ने गंदी से गंदी गालियों द्वारा देश के पूज्य व्यक्तियों पर कीचड़ उछाल पर पटेल साहब ने दृढ़ता के साथ समस्त विरोधों का सामना किया और उन्होंने न्याय के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया। डाक्टर खरे उस समय मध्यप्रान्त के प्रधान मंत्री थे।

तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री सुभाष बोस का वक्तव्य—

मैंने पिछली कार्य समिति की बैठक के बाद सी० पी० के मंत्रिमण्डल के संकट के सम्बन्ध में दो वक्तव्य प्रकाशित किये हैं। कार्य कारिणी की बैठक २३ जुलाई १९३८ को हुई थी। मैं उपरोक्त वक्तव्यों के बाद इस विषय में कुछ भी नहीं कहना चाहता था लेकिन डाक्टर खरे ने महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्य कारिणी के सदस्यों के खिलाफ बहुत विषाक्त वातावरण फैला दिया है साथ ही वे निरन्तर वक्तव्य प्रकाशित कर रहे हैं। इन्हीं कारणों वश मुझे फिर विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित करना अत्यन्त आवश्यक कहो गया। मुझे इस बात का खेद है कि इस सिलसिले में मुझे उन कई तथ्यों को प्रकाश में लाना पड़ेगा जो डाक्टर खरे की इज्जत के लिये हानिप्रद हैं।

उन्होंने जो कुछ भी किया है, उस सब की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर है।

यहाँ इस बात को कहते हुए मुझे हार्दिक दुख है कि डाक्टर खरे के व्यापक प्रोपेगेण्डा का कुछ भाग निहायत ही गन्दा था। अतः यह सख्त ऐतराज के काबिल भी था। यदि कोई मतभेद आम जनता तक प्रचारित किया जाय तो, हमारे आपसी मतभेद चाहे कितने भी क्यों न हों, हमें सभ्यता और अपने आत्म-गौरव को खो नहीं देना चाहिये। सब से ज्यादा दुःख की बात तो यह है कि महात्मा गान्धी जैसे महान व्यक्ति के लिये भी घृणित बातों तथा गालियोंका प्रचार किया गया और अभी तक महात्मा गान्धी को जो विशेषण दिये गये हैं उनका संग्रह किया जाय तो निश्चय ही प्रत्येक भारतीय की आत्मा ग्लानि के कारण विद्रोही हो उठेगी।

जनता को यह ध्यान में रखना चाहिये कि खरे प्रकरण के आरम्भ में जो प्रोपेगण्डा हुआ था उससे देश के कई भागों में हलचल फैल गई थी। इस हलचल में कई व्यक्ति और कुछ दल भी सम्मिलित हो गये थे। ये व्यक्ति और ये दल एक ओर से कांग्रेस के विरोधी रहे हैं। खरे-प्रकरण उनको एक ऐसा ज़रिया मिल गया जिससे वह अपने हृदयों में भरे हुए विष को बाहर निकालने के लिये उद्यत हो गये। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन कांग्रेसियों ने ऐसे लोगों का साथ दिया वे इतना भी नहीं समझ सके कि उनके इन कृत्यों से कांग्रेस की हानि ही हुई है।

आरम्भ में ही मैं यह कह देना चाहता हूँ कि कार्यकारिणी प्रान्तीयवाद एवं साम्प्रदायिकता से बिलकुल अलग है और उसने डाक्टर खरे के मामले में जो निर्णय किया वह एकमत होकर ही किया है। कार्यसमिति में अन्य लोगों के सिवाय एक महाराष्ट्रीय सज्जन भी हैं, जिनका नाम श्री शंकरराव देव है। इसमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं

जो डाक्टर खरे के परम मित्र हैं और जो इस घटना के पहिले खरे साहब के विश्वस्त थे। डाक्टर खरे खुद यह भली भाँति जानते हैं कि जब कभी भी खरे साहब के विरुद्ध कोई बात आई तो उन मित्रों ने खरे साहब का पक्ष-समर्थन किया था। आज ये सब दोस्त उनके विरुद्ध क्यों हो गये हैं? इसका उत्तर बहुत ही साधारण है। डाक्टर खरे ने स्वयं ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करली कि उनके कृत्यों और व्यवहार के कारण उनके अन्तरंग मित्रों तक को उनका साथ देना संभव प्रतीत नहीं हुआ और वे एक प्रान्त के प्रधानमन्त्री के रूप मे रखे जाने के योग्य प्रमाणित नहीं हुए।

मध्यप्रान्त और बरार की शासन-व्यवस्था भाषा की दृष्टि से मिश्रित इकाई के रूप में हैं। इस प्रान्त का एक भाग मराठी बोलने वाला और शेष हिन्दुस्तानी बोलने वाला है। इस प्रान्त के तीन मन्त्री—श्रीयुत खरे, गोले और देशमुख—कांग्रेसी क्षेत्र नागपुर और विदर्भ (बरार) के मराठी-भाषी इलाके से लिये गये थे और दूसरे तीन—श्रीयुत शुक्ल, मिश्र और मेहता—हिन्दुस्तानी बोलने वाले इलाके महाकौशल से चुने गये थे। मुझे यकीन है कि हलचल इस कारण हुई कि महाराष्ट्रियों ने देखा कि उनकी जाति का प्रधानमन्त्री अपने पद से हटा दिया गया है और उसके महाराष्ट्री साथी मन्त्री भी अपने पदों से हटा दिये गये हैं और शेष महाकौशल प्रांतीय मन्त्रियों को मन्त्रिमण्डल में स्थान प्राप्त हो गया है और उनमें से एक प्रधानमन्त्री भी बन गया है। यदि इस समस्त घटना पर हमें निष्पक्षता से विचार करना है तो हमे डाक्टर खरे के मामले पर और उनके साथ नये मन्त्रिमण्डल के बन जाने के परिणामस्वरूप जो व्यवहार हुआ उसे बिलकुल अलग-अलग रखकर ही विचार करना होगा। डाक्टर खरे के साथ जो व्यवहार हुआ उसकी पूरी जिम्मेदारी कार्यकारिणी स्वीकार करती है।

नये मन्त्रिमण्डल की स्थापना की पूरी जिम्मेदारी सी० पी० तथा बरार की कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी पर है। उसी पर अपने नेता के चुनाव की तथा अधिकांश में नेता पर ही अपने मन्त्रिमण्डल के चुनाव की जिम्मेदारी है। जब २७ जुलाई को वर्धा में कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी की बैठक हुई उस समय नेता के चुनाव के विषय में, उस पर किसी का भी प्रभाव नहीं था। यदि महाकौशल के दल ने अपने में से ही नेता चुनना चाहा तो उसी प्रजातन्त्रीय सिद्धान्त के आधार पर, जिसको कि आज डाक्टर खरे के साथी दुहाई दे रहे हैं। जब डाक्टर खरे का नाम नेतृत्व के लिये प्रस्तावित हुआ तो उनके साथियों ने खयाल किया कि मैं उनके नाम के प्रस्ताव को रद्द कर दूँगा और इस प्रकार उन्हें शिकायत करने का अच्छा अवसर प्राप्त हो जायगा। लेकिन जब मैंने वैसा नहीं किया तो खरे साहब का नाम एकदम उठा लिया गया। जब तमाम कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी के बहुमत ने प० रविशंकर शुक्ल का नाम ही नेतृत्व के लिये चुना तो इस कार्य के लिये पार्टी को दोष किस प्रकार दिया जाय? डाक्टर खरे को सोचना चाहिये था कि मार्च १९३७ में जिस पार्टी ने उनके पक्ष में वोट दिये थे वही महाकौशल का दल आज उनके विरुद्ध वोट दे रहा है।

यदि सारे मामले पर निष्पक्षतापूर्वक विचार किया जाय तो हर व्यक्ति को इस नतीजे पर ही पहुँचना पड़ेगा कि डाक्टर खरे के साथ कुछ भी अन्याय नहीं हुआ है और न उनके साथ किसी भी प्रकार की सख्ती की गई है। फिर भी कुछ लोगों का विचार है कि उनको सख्त सजा दी गई है। मैं यहां यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हर नेता को नेतृत्व की कीमत चुकानी ही पड़ती है। यदि वह अपने नेतृत्व में सफल हो जाता है तो वह जनता द्वारा इतना अधिक सम्मान और प्रशंसा पा जाता है जितने का वह वास्तव में अधिकारी भी नहीं होता। और यदि वह असफल हो जाय तो या

तो सारा दोष उस पर ही मढ़ दिया जाता है या अधिकांश दोष का उसे जिम्मेदार बना दिया जाता है। अतः किसी भी नेता के प्रति यदि जनता या उसके अनुयायी सख्त निर्णय करें तो उसे उनसे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। यदि युद्ध में सफलता मिल गई तो जनरल बहादुर या नेता बन जाता है और यदि वह पराजित हो गया तो सब किया-कराया चौपट हो जाता है। लेकिन वह नेता जो अपने दल के प्रति पूर्ण रूप से वफादार है, कभी भी अपने दल या अपनी सरकार के विरुद्ध सारे देश भर में अनर्गल प्रचार नहीं करता, चाहे उसे यह महसूस भी हो कि उसके प्रति अन्याय या गलती की गई है। दुनिया के किसी भी देश में किसी हटाये हुए प्रधानमन्त्री ने इस कदर गैर जिम्मेदारी तथा आत्म-गौरव को नष्ट करने वाला आचरण कभी नहीं किया होगा जितना सी० पी० के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डाक्टर खेर ने किया है।

सी० पी० और वरार कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी की रचना इस प्रकार की है कि उसके महाकौशल के सदस्यों की संख्या शेष सदस्यों से अधिक है। १९३७ की मार्च में जब पार्टी ने अपने नेता को चुना तो डाक्टर खरे चुनाव में सर्वसम्मति से चुने गये। उस समय डाक्टर खरे के साथी पार्टी में इतने कम थे कि महाकौशल के सदस्यों के मत बिना उनका नेता-पद पर निर्वाचित होना असम्भव ही था। महाकौशल के प्रतिनिधियों को ही यह श्रेय है कि उन्होंने कभी भी इस मामले को प्रान्तीय या साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं सोचा। इसलिये डाक्टर खरे ने अपने नेतृत्व का कार्य बिलकुल अनुकूल वातावरण में आरम्भ कर दिया। जुलाई १९३७ में खरे साहब ने प्रधान मन्त्रित्व का कार्य सँभाला और उसे सानन्द १२ महीने तक संचालित किया। मार्च १९३७ में जिस पार्टी पर खरे साहब का इतना प्रभाव था वह प्रभाव अब क्यों नष्ट हो गया? गत वर्ष जिन महाकौशल के सदस्यों

के सहयोग के परिणामस्वरूप डाक्टर खरे सर्वसम्मति से नेता चुने गये, अब वे उनके विरोधी क्यों हो गये ?

हरीपुरा कांग्रेस के बाद फरवरी १९३८ में प्रधानमन्त्री के खिलाफ पार्टी में शरीफ-प्रकरण, उमरी का कत्ल, जबलपुर के दंगों आदि को लेकर असन्तोष फैल गया था। यह असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता रहा और मई में मन्त्रिमण्डल के ऊपर "संकट" के रूप में प्रगट हुआ। ७ मई को श्रीयुत् मिश्र ने डाक्टर खरे को एक पत्र लिखते हुए जबलपुर के दंगों में उन्होंने जिस तरह का रुख व्यक्त किया था उसके प्रति घोर असन्तोष प्रकट किया।

८ मई की सुबह मन्त्रियों में परामश हुआ जिसमें प्रधानमंत्री के द्वारा संचालित विभागों के विषय में यथेष्ट आलोचनायें हुईं। उसी दिन मि० गोले, शुक्ल जी, मिश्र जी तथा मेहता जी ने सम्मिलित रूप में एक पत्र डाक्टर खरे को लिखते हुए उनसे कहा कि हम चारों मन्त्रिमण्डल से इस्तीफा दे रहे हैं और इसके कारण भी इसी पत्र में लिखते हैं। वे कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—डाक्टर खरे द्वारा संचालित गृह-विभाग उनकी कमजोरी प्रकट करता है।

२—अर्थ तथा दूसरे मामलों में उन्होंने अपने विभाग को जो जो सहायता दीं, वह अपने मन्त्रिमण्डल के परामर्श के विरुद्ध थीं।

३—जबलपुर में दो दंगे हो जाने के बाद भी उन्होंने पुलिस-विभाग के साथ सख्ती का बर्ताव नहीं किया। इस कार्य के लिये उनके मन्त्रिमण्डल ने कई बार जोर भी दिया, फिर भी डाक्टर खरे ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

४—पत्र में दिये हुए कई दूसरे मामलों में भी खरे साहब अपने सेक्रेटरियट पर ही निर्भर पाये गये।

५—मैन्गेनीज की खदान की बिक्री की, मन्त्रिमण्डल के एक सदस्य श्री गोले के विरुद्ध शिकायत की चर्चा सुनकर खरे साहब ने नागपुर के जिला मजिस्ट्रेट को हुक्म दिया कि वह इस शिकायत की जाँच करे।

६—उन्होंने शरीफ नामक मन्त्री के विरुद्ध वर्धा के डिप्टी कमिश्नर से जांच करवाई और इस बात की सरदार पटेल को रिपोर्ट भी की, जिसे आगे चलकर डिप्टी कमिश्नर ने रद्द कर दिया।

८ मई को जो वाद-विवाद हुआ उसकी रिपोर्ट श्री देशमुख ने डाक्टर खरे को पत्र के रूप मे ६ तारीख को दी। इस पत्र में श्री देशमुख ने लिखा था—

> इस वाद-विवाद मे यदि अब भी सम्भव हो सके, तो ऐसी बातें खोजने की कोशिश की गई कि किसी तरह यह झगड़ा, जो आगे चलकर एक महान् संकट का रूप धारण कर लेगा और साथ ही इससे कांग्रेस की साख में फर्क आयेगा और इससे हमारी इज्जत भी बिगड़ेगी, शांत हो जाय। सभी सदस्य इस बात को मान भी गये। वाद-विवाद बिलकुल स्पष्ट, दिल खोल कर तथा बिना किसी के प्रति दुर्भावना के शान्ति के साथ सम्पन्न हुआ। लेकिन इस वाद-विवाद का परिणाम बिलकुल विरुद्ध हुआ और इसके फलस्वरूप मतभेद ने भयंकर रूप धारण कर लिया। नतीजा यह हुआ कि सम्मिलित रूप से आगे काम करने की आशा भी नष्ट होगई।

श्रीयुत मिश्रजी की यह राय थी कि प्रधान मन्त्री के रूप में डाक्टर खरे बहुत ही कमजोर व्यक्ति हैं और वे हमें जैसे नेतृत्व की जरूरत है, नहीं प्रदान कर सकते। इतना ही नहीं हमें तो यह भी अंदेशा है कि डाक्टर खरे नौकरशाही के फेर मे आ गये है। उन्होंने

अपने पत्र में यह भी जिक्र किया कि इसी कमजोरी के फल स्वरूप जबलपुर में डाक्टर खरे की स्थिति बिलकुल डांवाडोल हो गयी है और साथ ही वहाँ कांग्रेस की साख भी नष्ट हो गयी है। देशमुख का यह खयाल था कि डाक्टर खरे ने हर मामले को विभागीय दृष्टि [Departmental View] से सोचा। उन्होंने अपने मंत्रि-मण्डल से भी इस विषय में कोई विशेष सलाह मशविरा नहीं करते हुए अपने मुख्य सेक्रेटरी तथा विभाग के प्रधान पर ही पूर्णतया विश्वास किया। इस पिछले अपराध के विषय में श्री० मेहता भी सहमत थे और उदाहरण स्वरूप उन्होंने श्री० नियाज एहमद खाँ के जबलपुर से तबादिले के मामले के रुख और आर्थिक कमेटी की वह रिपोर्ट भी पेश की जिसमें सख्त नौकरशाही के फलस्वरूप पुलिस को विशेष मंहगाई अलाउन्स दिये जाने बाबत सिफारिश की गई थी। डाक्टर खरे को कमजोरी का उदाहरण देते हुए उन्होंने शिवनारायण के उन मामलों को अदालत से उठवा लेने की ओर संकेत किया जो ताजीरात हिन्द की दफा १४४ के तहत उसके विरुद्ध जारी थे और इसी प्रकार बिलासपुर के मामले में नौकरों की मदद के लिये सलाह-कार प्रदान करने की ओर भी श्री० मेहता ने इशारा किया। .

ऊपर के उदाहरणों तथा मन्त्रिमण्डल (जिसमें प्रधानमन्त्री भी सम्मिलित थे) के संयुक्त वक्तव्य से, जो उन्होंने पंचमढ़ी के समझौते के बाद प्रकाशित किया था और जिसका मैं आगे चल कर जिक्र करूंगा, यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रधान मन्त्री और मंत्रिमण्डल के अधिकांश सदस्यों के बीच का मतभेद न तो व्यक्तिगत था और न साम्प्रदायिक और न प्रान्तीय ही था इस मतभेद का मुख्य कारण राजनीतिक एवं एकमात्र शासन सम्बन्धी ही था। इसमें शक नहीं कि डाक्टर खरे ने इस झगड़े का वास्तविक कारण व्यक्तियों की टक्कर और प्रांतीयता की भावना ही बताया लेकिन वास्तविक तथ्यों

के सामने उनका स्पष्टीकरण निःसार हो गया।

ज्योंही डाक्टर खरे को उपरोक्त मंत्रियों का, इस्तीफे सम्बन्धी पत्र मिला उन्होंने महसूस किया कि अब उनका प्रधान मन्त्रित्व सुरक्षित हो गया है। और यही कारण है कि उन्होंने न तो वह इस्तीफे का पत्र गवर्नर के सामने रखा और न पार्टी की मीटिंग ही उस पर विचार करने के लिये बुलाई। बजाय इसके उन्होंने दूसरे ही रास्ते पकड़े। उन्होंने श्री गोले को बुलाया और उसके दिल में यह विश्वास जमाने की चेष्टा की कि उपरोक्त मंत्रियों ने उनके विरुद्ध प्रान्तीय आधार पर एक षड़यन्त्र रचा है। इस पर श्री० गोले ने अपना इस्तीफा वापस लेते हुए श्री० मेहता, शुक्लजी तथा मिश्रजी को ८ मई को एक पत्र लिखा। अपने इस्तीफे के वापस लेने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए श्री० गोले ने लिखा था—

"आज शाम को आप सब के साथ मैंने अपना इस्तीफा भी पेश किया था पर उसके बाद मैं डाक्टर खरे के निमन्त्रण देने पर उनसे मिला। मुझे डाक्टर खरे ने कहा कि उपरोक्त मन्त्रिगण मुझे महज प्रान्तीयता के पक्षपात वश मन्त्रिमण्डल से निकालना चाहते हैं। मैं उनकी तमाम बातों का यही अर्थ निकाल सका कि यह हिन्दुस्तानियों और महाराष्ट्रियों के बीच का सवाल है। मुझे उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि मैं मंत्रिमण्डल से इस्तीफा दे दूंगा तो नागपुर और बरार में मुझे अपनी इज्जत कायम रखना असंभव हो जायेगा। मैंने उन्हें कह दिया कि इस्तीफे का यदि यही अर्थ लिया जाता है तो इस समय इस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता ही नहीं थी। कार्यकारिणी के निर्णय होने तक मैं अपना इस्तीफा वापस ले लेना चाहता हूँ। मेरे यह कहने पर कि "श्री० मिश्रजी ने तो आपको गत वर्ष चुनाव में सहायता दी थी", उन्होंने कहा कि मुझे समझ में नहीं आता कि अब मिश्राजी मेरा विरोध क्यों करते हैं? इस समय

मैं महज प्रान्तीय भावना के कारण ही अपना इस्तीफा वापस लेना चाहता हूँ। कृपया मुझे क्षमा करें।"

इस सुबूत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि क्या महाकौशलीय मन्त्री एक महाराष्ट्रीय प्रधान मन्त्री को निकाल देने का षड्यन्त्र कर रहे थे? इसके विपरीत क्या यह नहीं कहा जा सकता कि प्रान्तीयता की भावना को सर्व प्रथम जाग्रत करने वाले एकमात्र प्रधान मन्त्री ही थे।

दूसरा रास्ता डाक्टर खरे ने यह इख्तयार किया कि दो मंत्रियों के खिलाफ कुछ इल्जाम लगाते हुए उन्होंने पत्र लिखा। मंत्रियों ने इल्जामों से साफ इन्कार करते हुए डाक्टर खरे पर ही इल्जाम लगाये। यह स्थिति देख कर डाक्टर खरे ने अपनी चालें एक-दम बदल दीं। इसके बाद शान्ति स्थापित करने के लिये एक शान्ति सभा [Peace Coufreuee] हुई उसमें डाक्टर खरे, समझौते सम्बन्धी प्रत्येक शर्त को मानने के लिये तैयार हो गये। उन्होंने बताया कि मृत्यु के वारन्ट को छोड़ कर वे प्रत्येक शर्त को खुशी-खुशी स्वीकार करने को तैयार हैं। ६ मई को यह निर्णय हुआ कि प्रधान मन्त्री डाक्टर खरे ही रहें। इसके साथ ही इस कान्फरेन्स में यह भी स्वीकृत हुआ कि यह समझौता स्वीकृति के लिये कांग्रेस कार्य कारिणी में भी रखा जाय।

उपरोक्त समझौते को लेकर मंत्रिगण १५ मई को बम्बई में होने वाली कार्यकारिणी की बैठक में सम्मिलित होने के लिये बम्बई पहुँचे। इस बीच में डाक्टर खरे ने उपरोक्त समझौते को कर्यान्वित करने में सहायता प्रदान करने के बजाय सरदार वल्लभभाई से यह सहायता चाही कि वे महाकौशल के मंत्रियों को इस बात के लिये राजी करलें कि डाक्टर खरे के विभाग के पास ही रह जायँ और उन्हें यह इजाजत भी दे दी जाय कि वे अपने मंत्रिमण्डल में आवश्य-

कतानुसार परिवर्तन कर सकें। इसके उत्तर में सरदार पटेल ने खरे साहब को इस कार्य में इसलिये सहायता पहुँचाने से इंकार कर दिया कि डाक्टर खरे ने खुद यह स्वीकार किया था कि पार्टी में उनका बहुमत नहीं है। डाक्टर खरे ने बम्बई में कांग्रेस कार्यकारिणी के कई सदस्यों को सूचित किया कि मैंने कई मंत्रियों के कार्यों की जाँच के लिये गुप्तरूप से कार्रवाई आरंभ करदी है।

कार्यकारिणी की बैठक बम्बई में १५ तारीख को हुई। गंभीरता पूर्वक सोच विचार करने के बाद कार्यकारिणी ने डाक्टर खरे को राय दी कि वे सी० पी० की पार्लियामेन्टरी पार्टी का अधिवेशन बुलायें और वहाँ संकट के निवारण के बारे में किसी निर्णय पर पहुँचे और साथ ही यह भी सूचित किया कि उन्हें इस संकट से निवारण के लिये किसी निश्चित कदम के उठाने की जरूरत है। कार्यकारिणी ने यह भी सलाह दी कि सी० पी० की पार्लिमेन्टरी पार्टी की बैठक सरदार वल्लभभाई पटेल—पार्लिमेंटरी सब कमेटी के अध्यक्ष—की अध्यक्षता में ही की जाय।

डाक्टर खरे और उनके साथी श्री० गोले और श्री० देशमुख इस निर्णय से प्रसन्न नहीं हुए। ९ मई को श्री० देशमुख ने प्रधान मंत्री खरे को इस प्रकार लिखा—

"मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस मामले का कोई भी स्थानीय निर्णय संभाव्य नहीं है। यदि कोई रास्ता निकल सकता है तो वह बाहर से ही संभव है।"

डाक्टर खरे यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि पार्टी की मीटिंग में वोट लिये गये तो महाकौशल के प्रतिनिधि उन्हें मत प्रदान नहीं करेंगे और वहाँ उनकी स्थिति डाँवाडोल हो जायेगी। अपनी इस धारणा की सूचना उन्होंने बम्बई में ही पार्लिमेंटरी सब कमेटी के सदस्यों को दे दी थी। इसके बाद श्री गोले ने पंचमढी से जो पत्र १७

मई को सरदार पटेल को लिखा उससे उनके दिमाग में कौन-सी बातें चक्कर काट रही थीं यह स्पष्ट हो जाता है।

पंचमढ़ी ही इस शाही युद्ध का अखाड़ा बनने वाला था, पर ऐसा हो न सका। मंत्रियों में आपसी समझौता हो गया। पार्लिमेंटरी सब कमेटी के जो सदस्य पंचमढ़ी में उपस्थित थे, उनको समझौते में दखल देने का कोई कारण ही नहीं था। डाक्टर खरे ने "अपने बचाव" नामक वक्तव्य में यह कहा था कि ७२ की कुल संख्या में ६८ मेम्बर उपस्थित थे, जिनमें ४४ के बहुमत से यह निश्चय हो चुका था कि यदि समझौता न हो सके तो डाक्टर खरे के साथ ही उनसे सम्बद्ध सभी मंत्री इस्तीफे दे देंगे। यदि खरे के इस वक्तव्य को सही मान लिया जाय तो भी यह तो स्पष्ट ही है कि पार्टी का बहुमत डाक्टर खरे के विरुद्ध था और इसलिये वे यदि कोशिश भी करते तो महाकौशल के मंत्रियों को हटा नहीं सकते थे। पंचमढ़ी का वातावरण समझौते के पक्ष में होने के कारण निम्नलिखित समझौते की शर्तें तै हुईं—

१—डाक्टर खरे अपने समस्त विभागों से हटा दिये जायँ और विभागों का वितरण पुनः किया जाय!

२—डाक्टर खरे अन्य मंत्रियों के कार्य में उन्हें सहायता प्रदान करते रहें।

३—मंत्रिमण्डल के विभागों का परिवर्तन सदस्यों के पंचमढ़ी से जाने के बाद फौरन ही हो। यदि कुछ समय लगे तो यह कार्य १ जुलाई से आगे नहीं जाने दिया जाय।

४—कोई भी दल समाचार पत्रों में प्रकाशित किसी वक्तव्य को समझौते के भंग करने का कारण नहीं बना सकता।

५—यदि विभागों के वितरण में मतैक्य न हो सके तो यह मामला महाकौशल, नागपुर और विदर्भ के अध्यक्षों के सामने पेश किया जाय और उनका निर्णय अन्तिम माना जाय।

६—अपने एक साथी मंत्री के आचरण के विषय में प्रधान मंत्री पुलिस द्वारा जांच न करायें और यदि मंत्री के विरुद्ध कोई आरोप हैं तो वे आरोप उस मंत्री तथा उसके साथियों के सम्मुख पेश किये जायँ और उसका जवाब तलब किया जाय।

डाक्टर खरे का अब यह कहना, जैसा कि उन्होंने "अपने बचाव" में कहा है कि "यह समझौता उनके ऊपर एक जबरदस्ती है" बेवक्त की बात है। जैसा कि डाक्टर खरे ने खुद ही स्वीकार किया है कि पंचमढ़ी में उनकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि उन्हें दो बुराइयों में से किसी एक को चुनना आवश्यक हो गया था। या तो उन्हें अपने प्रधानमंत्रित्व से हाथ धोना पड़ता या फिर यदि प्रधान-मंत्रित्व का रखना आवश्यक था तो अपने विभागों को छोड़ देना पड़ता। उन्होने दूसरा ही रास्ता पसन्द किया क्योंकि इसे उन्होंने कम बुराई का मार्ग माना और इस तरह समझौता हो गया। इस समझौते पर बड़ी ही सरलता से अमल भी होना आरंभ हो गया क्योंकि मंत्रीगण प्रधानमंत्री को हटाना नहीं चाहते थे बल्कि वे प्रधान-मंत्री के विभागों में जो खराबियां पैदा हो गई थीं उन्हें दूर करना चाहते थे। समझौते की मुख्य शर्त थी कि प्रधानमंत्री अपने विभागों को त्याग कर दूसरे मंत्रियों के कार्यों में सहायता प्रदान करें। इस मुख्य शर्त को बम्बई रवाना होने के पहिले ६ मई को ही सब से पहिले प्रधानमंत्री ने शास्त्रार्थ का मुख्य विषय बनाया। पंचमढ़ी में २५ मई को समझौता हो गया और निम्नलिखित संयुक्त वक्तव्य लिखकर सब मंत्रियों ने सरदार पटेल को सौंप दिया।

"पार्टी की इच्छा की पूर्ति के लिये जैसी कि उसने २४ मई को अपनी बैठक में प्रगट की थी, हम एकत्रित हुए और उन तमाम मसलों पर विचार किया जिनके विषय में हममें मतभेद थे। इनमें तीन प्रकार के मसले थे। कुछ तो जोश के कारण और कुछ भिन्न दृष्टिकोणों से

सोचने के कारण उत्पन्न हो गये थे। कुछ ऐसे थे जिनका सम्बन्ध मन्त्रियों के अन्दरूनी शासन-कार्यों में भिन्न मार्ग गृहण करने से था। हम सभी को इस बात की प्रसन्नता है कि हम सभी मसलों में एकमत हो गये हैं और हम पूर्ण भाईचारे के साथ आपस में मिलकर काम करने को भी राजी हो गये हैं। हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि आप हमें पूरा सहयोग प्रदान करेंगे।"

डाक्टर खरे की इच्छा के कारण ही समझौते की शर्तें प्रकाशित नहीं की गईं और उन शर्तों पर अमल करने में भी इसीलिये देर की गई कि खरे साहब को निष्कारण ही बुरा न लग जाय। पंचमढ़ी से २६ जून को श्री देशमुख ने तथा श्री एम० एस० अणे ने सरदार पटेल को ८ जून को यवतमाल से जो पत्र लिखे उनमें समझौते की चर्चा आई है। सत्य यह है कि आरम्भ में डाक्टर खरे ने कांग्रेस के अधिकारियों के दबाव में आकर समझौते पर कुछ अमल किया लेकिन आखिर को उन्होंने उसे ठुकरा दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सिर में यह बात समा गई थी कि अपने विभागों को छोड़ने के बजाय उन्हें मन्त्रिमण्डल में ही परिवर्तन करके महाकोशल के मन्त्रियों से पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये। इस कार्य के लिये उन्होंने बम्बई में सरदार पटेल पर मई में प्रभाव डाला, लेकिन इसमें डाक्टर खरे को सफलता नहीं मिली। फिर भी उन्होंने अपनी कोशिशें बन्द नहीं कीं। अपने कुछ साथी मन्त्रियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के प्रमाण एकत्रित करने के लिये उन्होंने पुलिस के द्वारा गुप्त रूप से जांच कराना आरम्भ कर दिया। कार्यकारिणी के जिन सदस्यों को यह बात ज्ञात होगई। उन्होंने इस तरह के बर्ताव का घोर विरोध किया। लेकिन उनके सख्त विरोध तक का असर डाक्टर खरे पर नहीं पड़ा। यहां यह कह देना भी जरूरी है कि जिन मन्त्रियों के विरुद्ध डाक्टर खरे ने भ्रष्टाचार के इल्जाम लगाये थे वे बिलकुल निराधार प्रमाणित हुए।

पंचमढ़ी के समझौते के बाद परिस्थिति में कुछ समय के लिये बाहरी सुधार अवश्य हो गया, लेकिन कठिनाई तो ज्यों-की-त्यों बनी रही। डाक्टर खरे ने समझौते की शर्तों का पालन नहीं किया और गुप्त रूप से मंत्रियों की जांच, वे बराबर कराते रहे। पुलिस के अलावा भी डाक्टर खरे ने पता लगाने के लिये कुछ खानगी साधनों का भी उपयोग जारी रखा। यह बात उन्होंने मुझे तथा मौलाना आजाद—दोनों को कही थी इस तरह के सुने सुनाये मामलों का पता लगाने के कारण सैक्रेटेरियट, नौकरशाही तथा जनता पर जिस प्रकार का असर पड़ा उसका यहाँ जिक्र करना व्यर्थ ही है, वह तो आसानी से ही समझा जा सकता है। तथ्य यह है कि एक उच्च अधिकारी ने एक कार्य स्थित मंत्री के विरुद्ध इस प्रकार की जाँच करने के विषय में सख्त विरोध किया और प्रधान मन्त्री ने जब इसी प्रकार की दूसरे मन्त्री की जांच कराने का आदेश दिया तो उस उच्च अधिकारी ने अपनी ओर से ऐसे आदेश पुलिस को देने से साफ इंकार कर दिया।

पंचमढ़ी के बाद वस्तुस्थिति में जो प्रगति हुई, उसका यदि सावधानी के साथ विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट ही हो जायेगा कि समझौते की शर्तों को महज डाक्टर खरे ने ही ठुकरा दिया। जून के अन्तिम सप्ताह में जब मैं और मौलाना आजाद कलकत्ते को लौट रहे थे, तो हमारी डाक्टर खरे से रेल में काफी लम्बी चौड़ी बातें हुईं। वहाँ हमने इसी बात पर जोर दिया कि डाक्टर खरे समझौते का पालन करना आरंभ कर दें और अपने साथियों के प्रति की जाने वाली गुप्त कार्रवाइयों को एकदम बन्द कर दें। हमने उनसे साफ-साफ यही पूछा कि यदि उनको अपने साथियों के प्रति कोई शिकायत थी तो उन्होंने अपने साथियों को ही वे बातें स्पष्ट क्यों नहीं कहीं ? इसके उत्तर में डाक्टर खरे ने कहा कि उन्हें चेतावनी दे दी जायेगी किन्तु किसी भी तरह वे उनके भ्रष्टाचार को पकड़ नहीं

सके। रेल में खरे के साथ मौलाना आजाद और मेरी जो बातचीत हुई उसका उन पर कोई असर नहीं पड़ा। हम सी० पी० के मन्त्रि-मण्डल के भविष्य के विषय में अरुचिकर भावनाएँ लिये हुए कलकत्ते को चले जा रहे थे। ८ जुलाई को डाक्टर खरे ने एक पत्र कार्य समिति के कई सदस्यों को लिखा जिसमें मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में से एक के विरुद्ध कुछ इल्जाम लगाये गये थे। उस पत्र से ऐसा प्रतीत हुआ कि वे महाकौशल के मन्त्रियों को हटाने पर ही तुले हुए हैं और अपनी इच्छानुसार मंत्रिमण्डल मे परिवर्तन करना चाहते हैं ?

पंचमढ़ी के समझौते को कार्यान्वित करने के लिये मंत्रियों की कई बैठकें हुई जिसमें आखरी बैठक १२ जुलाई को नागपुर में हुई। लेकिन इन बैठकों से लाभ ही क्या होने वाला था ? समझौते को मटियामेट करने के लिये श्रा० खरे, गोले, देशमुख आखिर तक इसी बात पर अड़ रहे कि पुलिस विभाग डाक्टर खरे के पास ही रहे। इन बैठकों में डाक्टर खरे ने घोषित कर दिया कि वे स्तीफा दे देंगे और दूसरे अपने साथियों से भी वे स्तीफा दिला देंगे। डाक्टर खरे ने १५ जुलाई को सरदार पटेल को दो पत्र लिखे। इन दोनों पत्रों में से किसी एक में भी उन्होंने यह इशारा तक नहीं किया कि वे स्वतः मंत्रिमण्डल से स्तीफा दे रहे हैं और अपने साथियों से भी स्तीफा दिला रहे हैं ! अलबत्ता एक पत्र में इतना जरूर लिखा था—"कि मैं समय-समय पर उन बातों से आपको सूचित करता रहूँगा जो होती रहेंगी।"

श्री गोले और देशमुख ने १३ जुलाई को डाक्टर खरे को अपने स्तीफे सौंप दिये। इसी दिन डाक्टर खरे ने रायपुर के ठाकुर प्यारेलाल से टेलीफोन पर बातचीत की। १६ जुलाई को ठाकुर प्यारेलाल का खरे साहब को पत्र मिला कि वे खरे साहब के नये मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होने को तैयार हैं। इसी अरसे में डाक्टर

खरे ने नागपुर में ही श्री० शुक्लजी, मेहता तथा मिश्रजी को लिखा कि क्या शर्तनामे के मुताबिक मेरे स्तीफा देने के साथ ही वे भी अपने-अपने स्तीफे मंत्रिमण्डल से देदेंगे ? इस पत्र पर तारीख १८ जुलाई लिखी थी किन्तु उन मंत्रियों को यह वास्तव में १६ जुलाई के तीसरे पहर मिला। मैं यहाँ श्री मेहता के उस पत्र का एक उद्धरण दे रहा हूँ जो उन्होंने डाक्टर खरे के पत्र के उत्तर में, डाक्टर खरे को, उनके गवर्नर के समेत इस्तीफा पेश करने के पूर्व, २० जुलाई को दिन के ११ बजे रूबरू में पेश किया था।

"आपको इस १८ जुलाई १६३८ के गुप्त पत्र को जो मुझे वास्तव में आज दिन के १२ बजे के बाद दिया गया है, पाकर बहुत आश्चर्य हुआ। आपको ज्ञान ही है कि मेरे कहने पर ही श्री० गोले ने १५ जुलाई शुक्रवार को सरदार वल्लभभाई पटेल का सन्देश आपको देते हुए यह निवेदन किया था कि आप जल्दी में कोई निर्णय न कर डालें और उनके इस प्रान्त में आने तक कोई कदम भी न उठायें। इसके बाद मैं आप से आप के मकान पर १७ तारीख की सुबह मिला। वहाँ आपके और मेरे बीच एक घन्टे तक वाद-विवाद होने के पश्चात् आपने मुझे यह कहा था कि "मुझे महसूस होता है कि मैंने आपके साथी श्री मिश्रजी को बिना जांचे तथा सत्यासत्य का निर्णय होने के पूर्व ही यह सूचित करके सख्त अन्याय किया है कि उनके विरुद्ध गंभीर आरोप हैं और उन आरोपों की सूचना मिश्रजी को देने के पूर्व ही महात्मा गान्धी तथा सरदार पटेल को भेज दी गई है। आपने मुझसे यह भी कहा था कि तब से आज तक आप बराबर सरदार पटेल को यही लिखते रहे हैं कि इस मामले को ही मैंने खत्म कर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि आपने मेरी उस सूचना को गलत बताया जिसमें मैंने आपसे कहा था कि आपने उन्हें मंत्रि-मण्डल में से हटाने की चेष्टा की है और उनके विरुद्ध आरोपित आरोपों की जांच के लिये पुलिस को आदेश दे दिया है। आप उस

समय इस बात के लिये भी राजी होगये थे कि एक सभ्य मनुष्य की तरह मुझे मिश्रजी से इस कुकृत्य के लिये क्षमा की याचना भी करना चाहिये। इसके लिये आपने मुझे यह कहा था कि ऐसी बैठक बुलाने की योजना की जाय जिसमें मैं उनसे क्षमा मांग सकूं। मैंने उस समय आप से यह भी कहा था कि यदि प्रधानमंत्री अपने आचरण में इस तरह का सुधार कर लेंगे और शान्ति स्थापित करने को कटिबद्ध हो जायेंगे तो मैं तथा मेरे सभी साथी उन्हें हर समय सहायता देने को तैयार हो जायेंगे। इस तरह के पूर्ण समझौता तथा पारस्परिक सद्भावना के वातावरण में मैंने आपको अपने सहयोग का वचन दिया था और कहा था कि इस प्रकार यदि पारस्परिक सद्भावना स्थापित हो गई तो उससे इस प्रकार के वातावरण को तैयार करने में भी सहायता मिलेगी जिससे आप पुलिस महकमे को सर्वसम्मति से अपने आधीन रखने मे सफल हो जाय। मैंने आपसे यह भी कहा था कि १६ जुलाइ तक श्री गोले और शुक्लजी यहाँ नही आ सकेंगे क्योंकि वे बाहर गये हैं, जब तक यहां नहीं आजांय अन्तिम रूप से किसी बात का निर्णय नहीं हो सकेगा।"

"सबसे पहिले, आप मुझे इस बात के कारण बताने की कृपा करें कि १७ जुलाइ के सुबह हां आप, मेरी और आपकी उपरोक्त बातों को एक तरफ रख कर ऐसे निर्णय पर क्यो किस तरह पहुँचे जो सरदार पटेल के उस सन्देश के बिलकुल विरुद्ध जाता था जो आपको गत शुक्रवार को सूचित किया गया था। दूसरे आप मुझे अपने खानगी विचारों को, कि इस कठिनाई से निकलने का एक ही उपाय है और वह है मन्त्रिमण्डल की बरखास्तगी, मनवाने के लिये, जिनसे मेरी रत्ती भर भी सहानुभूति नहीं है, मुझे जबरदस्ती मजबूर क्यों करते हैं? मुझे समझ में नहीं आता कि कार्य कारणी को जो शीघ्र ही होने वाली है अपनी तकलीफें सुनाये बिना ही आप

मन्त्रिमण्डल की बरखास्तगी के मामले में इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं। पंचमढ़ी के समझौते में एक शर्त यह थी कि आप पुलिस विभाग अपने अधिपत्य में नहीं रखेंगे पर आप आज भी उसे अपने आधीन रखने पर तुले हुए हैं। गत रविवार को आप और मेरे बीच समझौते के एक तरीके पर विचार हुआ था और आप और मैं दोनों ही उससे सहमत भी हो चुके थे। समझ में नहीं आता कि किन कारणोंवश आप उस समझौते को अब ठुकरा रहे हैं? ऐसी सूरत में अब हम सबके लिये एक ही रास्ता शेष रह गया है और वह यह कि हम सभी को अपनी कठिनाइयाँ कार्य कारिणी के समक्ष रखकर उसी से इन बातों का निर्णय कराना चाहिये। मैं मामूली मतभेदों को एक जबरदस्त संकट के रूप में परिवर्तित करने के विरुद्ध हूँ और न मैं पंचमढ़ी के समझौते का इस प्रकार उपहास ही चाहता हूँ। हमें दुनिया क्या कहेगी यदि हम में से एक व्यक्ति (और वह भी हमारा ही नेता) ने उस समझौते पर अमल करने से साफ इन्कार कर दिया जिसे बड़ी कठिनाइयों के बाद हम सबने पंचमढ़ी में स्वीकार किया था?"

"आपके पत्र के आखिरी हिस्से के विषय में मैं कहना चाहता हूँ कि हमारे इस मामले में आपने जो वैधानिक स्थिति अपनाने का सोचा है वही इसका आखिरी इलाज नहीं है। यदि साफ-साफ कहा जाय तो ये गलतियाँ आपके मंत्रिमण्डल के सदस्यों की नहीं बल्कि आपकी ही हैं। वह आपही हैं जिन्होंने अपने मंत्रियों से जो समझौता किया था उसे पूरा करने में असमर्थता प्रकट ही नहीं की बल्कि उसे हर प्रकार ठुकराने की भी चेष्टा की। आपके पास ऐसा कौनसा कारण है कि आप उस मंत्रिमण्डल को तोड़ देना चाहते हैं तो आपसे समझौते पर अमल करने के लिये निवेदन कर रहा है? यदि आपने-अपने वचन को नहीं निभाया तो वह आप नहीं आपके द्वारा सताये हुए आपके मंत्रिमण्डल के साथी हैं जिन्हें आपके विरुद्ध शिकायतें होनी चाहियें और यदि वे चाहें तो उन शिकायतों के

परिणाम स्वरूप मंत्रिमण्डल से इस्तीफा दे सकते हैं। यदि वे मंत्री आपसे सभ्यतापूर्वक एक मनुष्य की तरह यदि यह कहें कि आपको मानवोचित बर्ताव करना चाहिये तो आप उनको जबरदस्ती स्तीफा देने का आदेश देते हैं।"

"यहाँ तक मैंने स्वतंत्रतापूर्वक उस महान संस्था के विषय में ही चर्चा की है जिसके आधिपत्य में हमने सरकारी पदों को स्वीकार किया है। हम उसी महान संस्था के निरीक्षण, पथ-प्रदर्शन एवं अधिपत्य में मन्त्रित्व का कार्य कर रहे हैं। अतः हम अनुशासन-हीनता में अपराधी साबित हुए बिना, कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहते जो उस स्थिति में हमारे करने योग्य न हो। कार्य समित की बैठक २३ जुलाई को होने वाली है अतः मैं आपसे दुबारा निवेदन करना चाहता हूँ कि आप इन मामलों पर शान्ति और विकार रहित स्थिति में सोचें और हाय-हाय में तब तक कोई गलत कदम न उठायें।"

"इसके उपरान्त भी यदि आप अपना इस्तीफा गवर्नर को पेश करना ही चाहते हैं और मुझे भी इस कार्य के लिये मजबूर करना चाहते हैं तो यह साफ है कि मैं आपकी इस बात को बहुत दुख के साथ अस्वीकार करने के लिये मजबूर हूँ"

इसी लहजे में श्री शुक्लजी तथा मिश्र जी ने भी डाक्टर खरे को पत्रोत्तर दिये। श्रीयुत मिश्रजी का पत्र कुछ लम्बा था। उसमें उन्होंने अन्य बातों के सिवाय यह भी लिखा था—

आपके कुछ भी इरादे हों लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके सर्वसम्मत समझौते से मैं डरने वाला नहीं और न मुझे गवर्नमैन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट की किसी दफा से प्रेरित होजाने का चाव है। यह कितनी अनोखी बात है कि एक साल के अरसे में ही आप उस महान समझौते—अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दिल्ली के समझौते—को भूल गये जिसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने

आपको मुझे तथा मंत्रिमण्डल के अन्य साथियों को महान संस्था के प्रति हमेशा वफादार रहने की शपथ ग्रहण कराई थी। एक साल का थोड़ा-सा ही समय आपको, कांग्रेस के विधान को—जिसमें कार्य कारिणी को कांग्रेसियों के लिये, सर्वोच्च अधिकार सौंपे गये हैं, भुलाने के लिये किस प्रकार काफी हो सका, यह हमारी समझ में नहीं आसका।'

"फिर भी हम आपका यह अधिकार स्वीकार करते हैं कि आप अपने विषय में जो चाहें करें, लेकिन आप अपने मंत्रिमण्डल के साथियों से यह वचन नहीं ले सकते कि यदि आप कांग्रेस की उच्च सत्ता को ठुकरायें तो हम भी आपका साथ देने के लिये वैसा ही करें। एक सेनाध्यक्ष अनुशासन के नाम पर हमसे उसकी इच्छानुसार चलने के लिये कह सकता है पर एक बागी को हमसे ऐसे बर्ताव की भूलकर भी इच्छा नहीं रखनी चाहिये। अतः मैं आपको कह देना चाहता हूँ कि इस मामले में, हमारे इस्तीफा देने या न देने का निर्णय, अन्तिम रूप से, अखिल भारतीय कांग्रेस पर्लिमेन्टरी सबकमेटी और कार्य समिति दोनों ही कर सकती हैं।"

श्री शुक्लजी और श्री मेहता के दोनों पत्र डाक्टर खरे के पास उनके गवर्नर को इस्तीफा पेश कर देने के पहिले २० जुलाई को पहुँच गये और श्री मिश्रजी का पत्र उनके पास गवर्नर को इस्तीफा पेश कर देने के कुछ ही देर बाद उसी दिन पहुँचा। प्रायः दोपहरी में डाक्टर खरे और उनके साथी श्री० गोले तथा देशमुख का स्तीफा गवर्नर को मिला। इसके बाद की परिस्थिति कैसी रही, इसका पूरा दिग्दर्शन श्री० मिश्र जी, शुक्लजी तथा मेहता के संयुक्त वक्तव्य से, जो उन्होंने २१ जुलाई को दिया, हो जाता है।

"१२ बज कर ३० मिनिट पर हमें इत्तला मिली कि प्रधानमंत्री ने इस्तीफा दे दिया है और गर्वनर हमें मिलने के लिया बुला रहे हैं। ठीक २ बजे हम, गवर्नर से मिले और हमने उनसे कह दिया कि जब तक हमें हाई कमाण्ड (कार्य कारिणी) का आदेश प्राप्त नहीं

हो जाता, हम इस्तीफा नहीं दे सकते। रात को १० बजकर १५ मिनट पर हमारे एक साथी श्री० मेहता ने डाक्टर खरे को सूचित किया कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने उनके नाम एक पत्र भेजा है जो उन्हें आधीरात तक मिल जायेगा। श्री० मेहता ने उन्हें कहा कि आप इस पत्र के मिल जाने तक ठहर जाइये। हम तीनों को डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के पत्रवाहक ठाकुर छेदीलाल अपने साथ कुछ पत्र लाये जिनमें तीन पत्र तो आते ही उन्होंने श्री० मेहता, मिश्रजी तथा शुक्लजी को देदिये। शेष तीन पत्र डोक्टर खरे, श्री गोले व श्री देशमुख के नाम थे अतः उनको लेकर ठाकुर साहब उसी समय डाक्टर खरे के मकान पर पहुँचे। उन्हें वहीं श्री गोले तथा देशमुख मिल गये। दोनों के पत्र ठाकुर साहब ने उन्हें वहीं दे दिये लेकिन डाक्टर खरे का पत्र वहाँ कोई भी लेने को तैयार नहीं हुआ। ठाकुर साहब ने रात भर चेष्टा की कि डाक्टर खरे साहब का पत्र उनके घर वाले लेलें पर इसके लिये कोई भी तैयार नहीं हुआ। आखिर आज सुबह वह पत्र डाक से उनको भेजा गया। श्री० मिश्रजी, शुक्लाजी तथा मेहता को ठाकुर साहब ने रात के ११ बजकर ४५ मिनिट पर पत्र दिये थे। यहाँ यह गौर करने काबिल बात है कि २० जुलाई की रात को ठाकुर छेदीलाल के सामने ही डाक्टर खरे के पुत्र ने गवर्नमेंन्ट हाउस से आये हुए पत्र को लेलिया लेकिन ठाकुर छेदीलाल के व्यक्तिगत रूप से बारबार निवेदन करने पर भी खरे साहब के पुत्र ने राजेन्द्र बाबू का पत्र स्वीकार नहीं किया। उपरोक्त पत्र में डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने डाक्टर खरे को लिखा था कि वे श्री० गोले तथा देशमुख महाकौशल के मन्त्रियों को इस्तीफा देने के लिये न दबायें और बिना पूछे कोई कदम आगे न उठायें। उन्होंने हमें लिखा था कि आप अपने इस्तीफे न दें क्योंकि आप इस परिस्थिति में अनुशासन से बंधे हुए होने के कारण जबतक इस विषय में कार्य समिति कोई निर्णय न करे तब तक कोई भी कदम उठाने की स्थिति में नहीं हैं। इसके मुताबिक

हमने १ बजकर ५० मिनिट पर दोपहरी में गवर्नर को सूचित कर दिया और उन्हें जबानी और लेखी—दोनों तरह से अपनी स्थिति समझा दी।"

"जैसा कि हमने ऊपर कहा है हमारी बरखास्तगी के हुक्म हमें आज सुबह मिले। हमें विश्वास है कि हमने अपने प्रान्त की भलाई की ओर ही ध्यान दिया है और २३ तारीख को होने वाली कार्यकारिणी की बैठक में हम सही दिमाग और साफ हाथों से अपने मामलों को पेश करेंगे।"

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने डाक्टर खरे के इस्तीफा देने के समाचार सुन कर प्रत्येक सी० पी० के मन्त्री को २० जुलाई को जो अलग-अलग पत्र भेजे थे वे प्रायः एकसे ही मजमून के थे। डाक्टर खरे को डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा था—

"कांग्रेसियों ने सरकारी पदों को कांग्रेस उच्चसत्ता के आदेश से स्वीकार किया है। यह स्पष्ट है कि प्रधान मंत्रित्व जैसे पद से बिना कार्य समिति की आज्ञा के इस्तीफा दे देना एक गंभीर कदम है। अतः मैं आपको यह सलाह देता हूँ कि आप पार्लिमेंटरी सब कमेटी के सदस्यों के वहाँ पहुँचने का तथा २३ जुलाई को होने वाली कार्य समिति की बैठक का इंतजार कीजिये और तब तक के लिये अपना इस्तीफा वापस ले लीजिये। किसी भी तरह आपको इस संकट को टालने के लिये, गवर्नर को स्तीफे की कार्रवाई से २३ जुलाई तक के लिये रोक देना चाहिये। मैं समझता हूँ कि इस परिस्थित से बचने का यही श्रेष्ठ मार्ग है। यदि आप इस्तीफा वापस लेना अच्छा नहीं समझते तो आपकी जैसी मरजी हो कीजिये। यदि आपने मेरे इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया और महज ४८ घण्टे प्रतीक्षा न करके शीघ्र ही संकट पैदा करने की कोशिश की तो आप महसूस कर सकते हैं कि आपके इस कार्य से कितनी उलझनें जड़ पकड़ जायेंगी और कितनी तकलीफें आगे चलकर पैदा हो जायेंगी? मैं समझता हूँ कि

आप मुझे गलत समझने की कोशिश नहीं करेंगे और इसे एक मित्र की भावना से लिखा हुआ पत्र ही मानेंगे।" २० जुलाई को श्री० शुक्लजी, मेहताजी तथा मिश्रजी ने जो पत्र गवर्नर को लिखा वह इस प्रकार है—

"हम में से दो श्री० शुक्लाजी और मिश्रजी वर्धा से इसी समय लौटे हैं। वहाँ हम डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद—जो अखिल भारतीय कांग्रेस पार्लिमेंटरी सब कमेटी तथा अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की कार्य समिति के सदस्य हैं, से मिले थे। उनके साथ हमारी इस विषय पर बातचीत हुई। उन्होंने डाक्टर खरे, गोले तथा देशमुख को पत्र लिखे हैं जिसमें उन्होंने तीनों मंत्रियों से निवेदन किया है कि वे अपने इस्तीफे तब तक पेश न करें जब तक कि २३ जुलाई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की पार्लिमेंटरी सब कमेटी तथा कांग्रेस कार्य समिति इस विषय पर विचार न करले। पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्य वर्धा को रवाना हो चुके हैं पर वे अभी वहाँ पहुँचे नहीं हैं अतः हम उनसे कोई सलाह नहीं ले सके हैं। आज तीसरे पहर हमने आपसे निवेदन किया था कि हमारा पहला उद्देश्य काँग्रेस तथा कांग्रेस द्वारा संचालित उस संस्था का आदेश मानना है जो कार्रवाइयों की देखरेख के लिये पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के नाम से कायम की है। यही सब कमेटी का उन सब प्रान्तों के मंत्रि-मण्डलों को आदेश देती है जो काँग्रेस द्वारा स्थापित हुए हैं। हमने कांग्रेस के आदेश से ही पद ग्रहण किये हैं और उसी के आदेशानुसार उन पदों पर कार्य करते हैं। यद्यपि हम उस समझौते का अवश्य ही सम्मान करते हैं जिसमें प्रधान मंत्री और उनके साथियों ने यह स्वीकार कर लिया है कि जब भी उनसे कहा जायेगा वे अपने पदों से इस्तीफे दे देंगे, फिर भी हम उन जिम्मेदारियों से अलग हटने को तैयार नहीं जिन्हें हमने कांग्रेस के सामने स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया है। अतः हम आपसे निवेदन करते हैं कि आप उन इस्तीफों

पर अभी कोई भी कर्रवाई न करें, जो आपके पास आ चुके हैं।"

"हमें यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि संयुक्त प्रान्त, और बिहार में गंभीर संकटों को टालने के लिये ही मंत्रियों के इस्तीफों पर कोई कार्रवाई नहीं की गई थी। हमने जो कुछ ऊपर कहा है महज उसी के आधार पर, हम इस्तीफे पेश करने को तैयार नहीं हैं।"

इस पत्र के पहुँचने के बाद भी २१ जुलाई को ५ बजे सुबह महाकौशल के मन्त्री बरखास्त कर दिये गये। उसी दिन नये मन्त्रि-मण्डल के कुछ नये सदस्यों ने शपथ ग्रहण की।

२२ जुलाई को नये मन्त्रिमण्डल के सदस्य मुझसे तथा पार्लि-मेंटरी सब कमेटी के सदस्यों से मिले। कुछ बादविवाद करने के बाद, डाक्टर खरे और उनके साथी आपस में सलाह मशविरा करने के लिये एकान्त कमरे में गये। जब वे लौटे तो डाक्टर खरे ने अपनी भूल स्वीकार करली और मन्त्रिमण्डल से इस्तीफा दे देने की रजामंदी जाहिर की। इस कार्य में उनके साथी भी सम्मिलित थे। ठाकुर प्यारे-लालसिंह ने इस्तीफे का मसौदा तैयार किया। इस मसौदे में संशोदन भी हुआ इसके बाद उसकी पढ़ने योग्य नकल तैयार की गई। जिस रूप में वह गवर्नर को पेश किया गया वह इस प्रकार था—

"मेरे नये मन्त्रिमण्डल के बनाने व इस्तीफा पेश करने के बाद मैं कांग्रेस के अध्यक्ष और पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्यों से मिला। परामर्श कर लेने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि मेरे इस्तीफा देने व नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण कार्य म मैंने जल्दबाजी की और मैंने निर्णय करने में भी भूल की। अतः इस पत्र के द्वारा मैं तथा मेरे साथी आपको अपने इस्तीफे पेश करते हैं।"

उसी दिन रात को डाक्टर खरे ने यह पत्र टेलीफोन के जरिये गवर्नर को लिखवाया।

"अपने बचाव" में डाक्टर खरे ने उपरोक्त बैठक का वर्णन, श्री० देशमुख की कलम का लिखा हुआ, प्रकाशित करवाया है जो बहुत ही भ्रमोत्पादक तथा गलत है। उस वर्णन का यहाँ एक ही उदाहरण काफी होगा। श्री० देशमुख के वर्णन से सिर्फ यही विचार पाठक के दिल में आता है कि पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्य महाकौशल के बरखास्त किये हुए मन्त्रियों से उस समय गुप्त सलाह कर रहे थे जब डाक्टर खरे वहाँ पहुँचे। सचाई तो यह है कि महाकौशल के मन्त्री बिलकुल ही निश्चित समय पर पहुँचे थे। डाक्टर खरे और उनके दोनों साथी निश्चित समय के बाद आये थे। श्री० देशमुख तो डाक्टर खरे के आने के आध घन्टे बाद वहाँ पहुँचे थे। अतः श्री० देशमुख उस घटना के प्रत्यक्षदर्शी गवाह कैसे माने जा सकते हैं जो घटना उनके आने के बहुत पहिले वहाँ हो चुकी थी ?

२३ जुलाई को वर्धा में कार्यसमिति की बैठक हुई। बुलाने पर डाक्टर खरे भी वहाँ उपस्थित हुए। कार्यसमिति ने उन्हें यह जाहिर कर दिया कि उनने प्रधान मन्त्रित्व से इस्तीफा देदेने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि उन्हें अब एसेम्बली पार्टीसे भी इस्तीफा देना होगा। उन्होंने अपनी स्थिति को देखते हुए इस बात को स्वीकार कर लिया और कार्यसमिति को उन्होंने इस बात की सूचना भी दे दी कि एसेम्बली पार्टी के इस्तीफा स्वीकार कर लेने के बाद उन्हें उसी पद के लिये फिर से उम्मीदवार की हैसियत से खड़े होने का हक है। कार्यसमिति ने इसपर उन्हें स्पष्ट बता दिया कि जो बातें हो चुकी हैं उनको मद्दे नजर रखते हुए उनके लिये इस मार्ग को गृहण करना बिलकुल ही अनुचित होगा। डाक्टर खरे इस बात पर जिद पकड़े रहे कि नेतृत्व के लिये खड़े होने का उन्हें पूरा हक है। कार्यसमिति के सूचित करने पर, उनके इस्तीफा देने तथा उससे सम्बद्ध बातों के निर्णय के लिये, एसेम्बली पार्टी की एक बैठक डाक्टर खरे ने बुलवाई और उसमें निम्नलिखित मजमून का एक नोटिस तैयार किया गया—

"सी० पी० और बरार की कांग्रेस एसेम्बली पार्टी की एक विशेष बैठक २७ जुलाई बुधवार को वर्धा में सुबह ६ बजे होगी। जिसमें—

१—प्रधान मन्त्री तथा उनके साथी दो मन्त्रियों के इस्तीफा देने से उत्पन्न परिस्थिति, तथा महाकौशल के तीनों मन्त्रियों की बरखास्तगी, नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण और बाद में उसके इस्तीफे देने से उत्पन्न परिस्थिति तथा,

२—नेता के इस्तीफा दे देने और

३—नये नेता के चुनाव

पर विचार किया जायगा। भ्रमवश पार्टी के कतिपय सदस्यों को नागपुर में बैठक करने की सूचना के तार दिये जा चुके हैं। मेहरबानी करके वे इस बात को ध्यान में रखें कि उपरोक्त मीटिंग नागपुर में नहीं, वर्धा में होगी।"

२५ जुलाई को डाक्टर खरे को फिर बुलवाया गया और उन्हें फिर समझाया गया कि वे चुनाव लड़ने से बाज आयें लेकिन उन्होंने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया। उनके इस रुख को देखकर उन्हें कार्यसमिति ने मौका देते हुए सुझाया कि किसी निर्णय पर पहुँचने के पहिले महात्मा गांधी से मिल लें। डाक्टर खरे ने यह सुझाव फौरन ही मंजूर कर लिया और सेगाँव रवाना होगये। मैं और कार्यसमिति के कुछ सदस्य उनके साथ ही सेगांव गये। महात्मा जी ने डाक्टर खरे की गलतियों को जिस रूप में समझा था, उनसे साफ साफ कह दिया। इसके बाद गांधी जी और खरे के बीच वाद-विवाद भी हुआ। अन्त में डाक्टर खरे ने कहा—

"मैं बिना किसी हिचकिचाहट के अपने आपको आपके हाथों में सौंपता हूँ।"

इसी सिलसिले में महात्मा जी की मुलाकात के बाद उन्होंने जो वक्तव्य दिया वह इस प्रकार है—

"मैंने डाक्टर खरे का "अपना बचाव" पढ़ा। उस वक्तव्य का जितना अंश मुझसे सीधा सम्बन्ध रखता है, मैं उसीके विषय में अपने विचार प्रकट करने का जिम्मेदार हूँ। डाक्टर खरे के विरोध में कुछ कहने में मेरे हृदय को बहुत दुख होता है। डाक्टर खरे सेगांव अपनी ही इच्छा से आये थे। उन्हें यहाँ उनके एक दोस्त से मिलना था। जब वे यहाँ आये तो उनपर किसी का प्रभाव नहीं था। मेरे साथ पूर्णरूप मे वाद-विवाद करने के बाद ही उन्होंने उन आरोपों को स्वीकार किया जो मैंने उनपर आरोपित किये थे। जब उन्होंने मेरे तर्कों की शक्ति को महसूस किया तो एकदम उन्होंने अपने आपको बिना किसी हिचकिचाहट के मेरे हाथों में सौंप दिया। मैंने उनसे कहा कि "आपने स्वीकार किया है कि आपका मानसिक संतुलन नष्ट होगया है अतः यदि आप चाहें तो, मैंने, आपको जिनके नाम बताये हैं, उन अपने मित्रों से आप सलाह मशविरा करलें। इसमें जल्दी की कोई आवश्यकता नहीं है।" इसपर डाक्टर खरे ने कहा कि "मुझमें अपने विषय में निर्णय करने की शक्ति विद्यमान है अतः मुझे अपने अन्य मित्रों से सलाह लेने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।" इसके बाद मैंने उनसे कहा कि "अच्छा हो, जो कुछ आपने अभी स्वीकार किया है उसे आप लिखदें।" डाक्टर खरे ने कहा कि "कृपा करके आप ही लिख दें क्योंकि मैं मसौदे बनाने में पटु नहीं हूँ। यदि मैं समझूंगा कि जो बातें आपने स्वीकार करली हैं उन्हें आप पूर्णरूप से व्यक्त नहीं कर सके तो मैं उसे सुधार दूंगा या आवश्यकतानुसार उसमें जोड़ दूंगा। कुछ देर तक हिचकिचाने के बाद उन्होंने कागज़ और कलम उठाया और मसौदा तैयार करने लगे। इसके बाद वह मसौदा मैंने लिया और उसमें कुछ संशोधन किये तथा कुछ जोड़ा भी। मेरे सुधारों तथा बढ़ाये हुए अंशों को उन्होंने दो तीन बार पढ़ा और कहा कि "मैं इस प्रकार विश्वासघात को स्वीकार नहीं करूंगा। मैं किसी भी तरह यहाँ कोई वक्तव्य देना

नहीं चाहता। अलबत्ता मैं आपके इस सुझाव को स्वीकार करता हूँ कि पहिले मैं अपने मित्रों से इस विषय में सलाह-मशविरा करलूं।" दूसरे दिन ३ बजे वे अपने निर्णय की सूचना मुझे देने वाले थे। इसके बाद मैंने राष्ट्रपति श्री० सुभाष बोस, मौलाना अबुल कलाम आजाद और सरदार वल्लभभाई पटेल से, जो यहीं हैं, परामर्श किया। उन्होंने भी मेरे इस वक्तव्य को सही बताया।"

अपने दोस्तों से परामर्श करने के बाद डाक्टर खरे ने नागपुर में महात्मा गान्धी तथा कार्यसमिति की सलाह को अस्वीकार करने का निश्चय किया। २८ जुलाई को उन्होंने इसी आशय का टेलीफून से सन्देश भी दिन के प्रायः ३ बजे भेजा और उनका पत्र भी मुझे इसी दिन रात को ८ बजे मिल गया। उस पत्र में उन्होंने लिखा था—

"मैं इस बात को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हूँ कि मैंने किसी प्रकार का भी अनुशासन भंग किया है। मैं यह भी स्वीकार करने में असमर्थ हूँ कि मेरे कार्यों के कारण कांग्रेस के सम्मान को धक्का लगा है। मसौदे में मुझ पर कुछ ऐसे निराधार इल्जाम लगाये गये हैं जिससे यह प्रकट हो कि मैं कांग्रेस में किसी भी विश्वासनीय एवं जिम्मेदारी के पद पर काम करने के योग्य नहीं हूँ। मुझे खेद है कि मैं इन आरोपों को स्वीकार नहीं कर सकता।"

डाक्टर खरे के इस कड़े रुख को मद्देनजर रखते हुए कार्य-समिति के सामने इसके सिवाय कोई चारा ही नहीं था कि वह मामलों की अहमियत को देखते हुए अपना दुखद निर्णय सुना दे। अतः कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से जो निर्णय किया वह इस प्रकार है—

"पार्लमेंटरी सब कमेटी की तमाम बातें सुनकर तथा पंचमढ़ी में पार्लमेंटरी सब कमेटी के सदस्यों के सम्मुख मन्त्रियों और सम्बद्ध तीन प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों के बीच जो समझौता

हुआ था, उसके बाद से लेकर आज तक की तत्सम्बन्धी समस्त परिस्थितियों पर विचारपूर्वक गौर करने और डाक्टर खरे से इस बीच कई मुलाकातें कर लेने के बाद कार्यसमिति बड़े ही खेद के साथ इस नतीजे पर पहुँची है कि डाक्टर खरे ने कई अपराधों में, जिनका अन्त उनके इस्तीफा देने तथा दूसरे साथी मन्त्रियों से इस्तीफा दिलाने को मजबूर करने में होता है, निर्णय की भयंकर गलतियाँ की हैं जिसके कारण कांग्रेस का सी० पी० में बहुत उपहास हुआ और उसके सम्मान को भी गहरा धक्का लगा है। डाक्टर खरे पर अनुशासनहीनता का भी इल्जाम है क्योंकि कई बार मना किये जाने पर भी वे बिना सोचे-समझे आगे कदम उठाते और कांग्रेस के अनुशासन के विपरीत काम करते चले गये।"

डाक्टर खरे के इस्तीफा देने के ही कारण, जब से कांग्रेस ने पद-ग्रहण किया है तब से आज तक यह पहिला ही मौका था कि गवर्नर को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके उनके मन्त्रिमण्डल के तीन साथियों को बरखास्त करने का अवसर मिला। कार्यसमिति इस बात पर सन्तोष प्रकट करती है कि बरखास्तशुदा तीनों मन्त्रियों ने गवर्नर द्वारा इस्तीफे की मांग करने पर भी पार्लमेंटरी सब कमेटी की हिदायत प्राप्त किये बिना इस्तीफे पेश करने से साफ इन्कार कर दिया। इस कार्य द्वारा उन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी वफादारी का सुबूत दिया है। अनुशासन भंग करने का, खरे साहब के विरुद्ध दूसरा आरोप यह है कि नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण के लिये बुलाये जाने पर उन्होंने गवर्नर का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। यह कार्य कांग्रेस की साधारण कार्यप्रणाली के विपरीत था और इस बात से डाक्टर खरे वाकिफ भी थे कि बिना पार्लमेंटरी सब कमेटी और कांग्रेस कार्यसमिति की इजाजत के न तो वे नया मन्त्रिमण्डल ही निर्माण कर सकते हैं और न वफादारी की शपथ ग्रहण ही कर सकते थे। इस

सूरत में यह गुनाह और भी भयंकर हो जाता है जब कि डाक्टर खरे इस बात से पूर्णतया परिचित थे कि दोनों कमेटियों की बैठकें अत्यन्त निकट भविष्य में ही होने वाली हैं।"

अपने इन तमाम कार्यों द्वारा डाक्टर खरे ने यह साबित कर दिया है कि वे कांग्रेस में किसी भी जिम्मेदारी के पद पर काम करने में अयोग्य हैं। उनको ऐसा तब तक समझा जाता रहेगा जब तक एक कांग्रेसी की हैसियत से जो काम भी वे करें उससे यह साबित न हो जाय कि उनका दिमाग संतुलित है और वे सख्त से सख्त अनुशासन को भी पालन करते हुए अपने कर्तव्य को पूरा करने के हर प्रकार योग्य हैं।"

"साथ ही कार्यसमिति इस नतीजे पर भी पहुँची है कि मध्य-प्रान्त के गवर्नर ने बेढंगी जल्दबाजी करके तथा रात और दिन एक करके एक ऐसे संकट को कांग्रेस के ऊपर थोपा जो सारे प्रान्त पर आच्छादित हो गया। गवर्नर कांग्रेस को बदनाम और कमजोर करने के लिये उत्सुक था और यथाशक्ति उसने वैसा ही किया भी। कार्य-समिति का यह विश्वास है कि गवर्नर यह अच्छी तरह जानता था कि मन्त्रिमण्डल के सदस्यों में मतभेद जारी है और इस सम्बन्ध में पार्लमेण्टरी सब कमेटी की हिदायतें भी उसे ज्ञात थीं। फिर भी उसने अनावश्यक जल्दबाजी करके तीन मन्त्रियों के स्तीफे मंजूर कर लिये और दूसरे तीन मन्त्रियों से इस्तीफे की मांग की, उनके इस्तीफा देने से इन्कार करने पर उन्हें बरखास्त कर दिया। इसके बाद शीघ्र ही नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण के लिये डाक्टर खरे को आमन्त्रित करके जितने भी उपस्थित थे उनको कार्यसमिति की निश्चित रूप से होने वाली बैठक की प्रतीक्षा किये बिना ही शपथ ग्रहण करवा दी।"

कार्यसमिति ने एक दूसरे प्रस्ताव के जरिये २७ जुलाई को होने वाली ऐसेम्बली की बैठक के लिये भी कार्यप्रणाली निश्चित करते हुए

यह तय किया कि—

"कांग्रेस कार्यसमिति की हिदायत के अनुसार पार्लमेंटरी सब कमेटी की जो बैठक हुई, उसके सम्बन्ध में कार्यसमिति यह निश्चय करती है कि विशेष परिस्थितियों में अध्यक्ष बैठकों की अध्यक्षता कर सकता है और २६ जुलाई को कार्यसमिति ने जो निर्णय सी० पी० के मंत्रिमंडलके संकटके विषयमें किया है उसकी सूचना ऐसेंबली पार्टी को दे सकता और उसकी कार्यवाहियों का संचालन कर सकता है। कार्य-समिति यह भी निर्णय करती है कि अगली बैठक नवभारत विद्यालय वर्धा में हो।"

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ऐसेम्बली पार्टी की बैठक २७ जुलाईको सुबह ६ बजे मेरी अध्यक्षतामें वर्धा में हुई। इस बैठक में एक भी गैर हाजिरी नहीं थी। उपस्थिति में ऐसेम्बली पार्टी, पार्लियामेंटरी सब कमेटी के सदस्य, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जनरल सैक्रेटरी तथा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों (महाकौशल, नागपुर तथा विदर्भ) के तीनों अध्यक्ष—जो ऐसेंबली पार्टी के मतदाता सदस्य नहीं थे, तथा दो सदस्य केन्द्रीय ऐसेम्बली के भी थे। वोटिंग में सिर्फ ऐसेम्बली पार्टी के सदस्यों ने ही भाग लिया।

कुछ लोगों ने पार्लियामेंटरी सब कमेटी के मेम्बरों की उपस्थिति पर ऐतराज भी किया। ऐसे ऐतराज बच्चों जैसे हैं। वास्तव में उनके वहाँ उपस्थित होने का उनको अधिकार [illegible]। यदि उनके हक का प्रश्न अलग भी करा दिया जाय तो [illegible] को उनकी उपस्थिति पर कोई भी ऐतराज नहीं था। यदि किसी का यह खयाल हो कि वोटिंग पर उनकी उपस्थिति का असर पड़ा होगा तो कहना पड़ेगा कि सी० पी० के धारासभाइयों के विषय में उसकी धारणा बहुत ही भद्दी होनी चाहिये।

कार्यसमिति के निर्णय के पढ़े जाने से ही उपरोक्त बैठक का

कार्यारम्भ हुआ। इसके बाद मैंने डाक्टर खरे का दिया हुआ स्तीफा पढ़ कर सुनाया। वह सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। उसके बाद मैंने सदस्यों से नये नेता के चुनने के लिये कहा। एक सदस्य ने डाक्टर खरे का ही नाम रखा और उस पर समर्थन भी प्राप्त हो गया। इस पर एक ऐतराज हुआ कि डाक्टर खरे को अब चुनाव में खड़ा किया भी जा सकता है? मैंने कहा कि कार्यकारिणी का निर्णय आपके सामने मौजूद है, इसके बाद भी डाक्टर खरे का नाम वोटिंग के लिये लिया जाता है तो मैं इसमें रुकावट नहीं डालना चाहता। वोटिंग होने दिया जाय। मेरे इस निर्णय पर डाक्टर खरे का नाम वापिस ले लिया गया।

इसके बाद कई नाम पेश हुए, जिनमें श्रीयुत् जाजू जी, रवि-शंकर शुक्ल, गुप्ता, खाण्डेकर, मेहता तथा रामराव देशमुख के नाम प्रमुख थे। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि पार्टी के संशोधित प्रस्ताव के अनुसार पार्टी को तीन या चार नाम चुन लेना चाहिये था। इसके बाद कार्यसमिति को उन नामों में से किसी एक को पार्टी का नेता चुनने का अधिकार था। अतः कार्यसमिति की ओर से वहाँ यह घोषित किया गया कि वह नेता को चुनने की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेना चाहती। साथ ही वह इसमें अपनी राय भी देना उचित नहीं समझती और न यह उचित समझती है कि वह किसी नाम पर जोर दे, बल्कि वह चाहती है कि यह कार्य पूर्ण रूप से एसेम्बली पार्टी ही करे। दूसरा एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव श्री कलप्पा ने पेश करते हुए कहा कि जिन मन्त्रियों में आपस में मतभेद है उनमें से किसी को भी नेतृत्व के लिये खड़ा नहीं होना चाहिये। यह प्रस्ताव २५ के विरुद्ध ४२ वोटों से गिर गया।

जाजू जी का नाम नेतृत्व के लिये लिया गया था, पर इसमें उनकी स्वीकृति नहीं ली गई थी। अतः उनका नाम वापस ले लिया

गया। श्री गुप्ता, खाण्डेकर तथा मेहता ने अपने नाम वापस ले लिये। इस तरह पर सिर्फ दो ही व्यक्ति ऐसे रह गये जिन पर वोट लेना आवश्यक था। वे थे श्रीयुत् रविशंकर शुक्ल तथा रामराव देशमुख। वोटिंग हुआ। पण्डित रविशंकर शुक्ल के पक्ष में ४७ और श्री देशमुख के पक्ष में १३ मत आये। उपस्थिति में से १३ सदस्यों ने वोटिंग में भाग नहीं लिया। इसलिये प० रविशंकर शुक्ल सी०पी० और बरार को ऐसेम्बली पार्टी के नेता चुने गये।

शुक्लजी के नेता चुने जाने के बाद उन्होंने पार्लियामेंटरी सब कमेटी के सदस्यों से परामर्श किया और मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के चुनाव का निर्णय कर लिया गया।

नये मंत्रिमण्डल नें २६ जुलाई १६३८ को शपथ गृहण की।

अब यहां उन इल्जामों का जिक्र किया जायेगा जो डाक्टर खरे ने एसेम्बली पार्टी, कांग्रेस कार्यसमिति तथा महाकौशल के मंत्रियों के विरुद्ध आरोपित किये थे। लेकिन उन पर विचार करने के पूर्व यहां उन मूलभूत भ्रान्तियों का भी जिक्र कर देना जरूरी है जो खरे साहब के हर तर्क मे विद्यमान थीं।

डाक्टर खरे का यह कहना था कि वे पार्लियामेंटरी प्रतिज्ञाओं तथा लोकतन्त्र के सिद्धान्तों पर चलते हैं लेकिन कार्यसमिति या उसके कुछ सदस्य खरे के वैधानिक हकों को मानने के लिये तैयार नहीं थे। सचाई तो यह थी कि तमाम धारासभाओं के कांग्रेसी सदस्यों को चुनाव लड़ने के लिये कांग्रेस ने खड़ा किया था। उनकी उम्मीदवारी को आखिरी समय मे अखिल भारतीय पार्लिमेंटरी सब कमेटी ने स्वीकार भी कर लिया था। कांग्रेसी उम्मीदवार बननें के पहिले, उनको कांग्रेस के प्रतिज्ञापत्र पर दस्तखत करने पड़े थे। उस प्रतिज्ञापत्र में कई बातो के अलावा यह भी शर्तें थीं—

१—कि मैं कांग्रेस या कांग्रेस के किसी उच्चतम अधिकारी द्वारा निर्धारित नीति तथा सिद्धान्तों का पालन करूंगा और समय-समय पर

दी जाने वाली हिदायतों तथा नियमों पर अमल करूंगा तथा सदस्यों के मार्ग-प्रदर्शन के लिये दी जाने वाली हिदायतों और सूचनाओं का हमेशा पालन करूंगा।

ए—यदि कांग्रेस का उच्चतम अधिकारी मुझे अपने पद से हट जाने के लिये कहेगा तो मैं तुरन्त हट जाऊंगा।

इस प्रतिज्ञापत्र के प्रकाश में, जिस पर हर कांग्रेसी ने नम्रतापूर्वक हस्ताक्षर किये थे, यह सहज ही समझा जा सकता है कि कांग्रेस के धारा सभाइयों को किसके प्रति वफादारी प्रकट करने की आवश्यकता थी। यह वफादारी का प्रतिज्ञापत्र चुनाव के बाद उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पुनः दुहराया जाचुका था जब नेहरूजी ने, अखिल भारतीय कन्वेशन में जो १६३७ के मार्च महीने में दिल्ली में हुआ था, सभी धारासभाइयों से वफादारी की शपथ गृहण करवाई थी।

इससे यह स्पष्ट है कि जब कांग्रेसी धारासभाई, मंत्री या प्रधानमंत्री होगये तो उनकी जिम्मेदारियां और भी बढ़ गईं और उसके बाद के उनके आचरण और बर्ताव के लिये, हमेशा ही वे कांग्रेस के प्रति, जब भी काँग्रेस उनसे जवाब मांगे, जवाब देने को बाध्य थे। जिस प्रकार वे महान संस्था कांग्रेस को जवाब देने के लिये बाध्य थे। उसी प्रकार उसकी उच्चतम कार्यसमिति हाईकमाण्ड और सब कमेटियों के प्रति भी बाध्य थे। कोई भी मंत्री या प्रधानमंत्री वैधानिक प्रतिज्ञाओं और लोकतन्त्र के झूठे बहाने बनाकर काँग्रेस या उसकी कार्यसमिति की वफादारी से बच नहीं सकता।

डाक्टर खरे के हमदर्द, मामले को उलझाने की चेष्टा कर रहे थे जिसके प्रधानमन्त्री और उनके साथी जिम्मेदार थे। इस सिलसिले में, मैं अपनी ओर से कुछ भी न कहते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू का ज्वलन्त वक्तव्य ही पेश करना चाहता हूँ—

"वे अपने मतदाताओं, उनकी पार्टी और धारासभा, प्रांतीय

कांग्रेस कमेटियों और उनकी कार्यसमितियों, काँग्रेस कार्यसमिति तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रति जिम्मेदार हैं। मुकामी कांग्रेस कमेटियाँ भी सोचती हैं कि वे प्रांतीय सरकारों के काम में दखल दें। ये सब बातें ऐसी हैं जिनसे उलझनें पैदा होती हैं और उस हालत में समस्या और भी पेचीदा होजाती है जब कि वास्तव में स्थिति ऐसी है ही नहीं। मतदाताओं की क्या जिम्मेदारी है? मतदाता, कांग्रेसी उम्मीदवार की तरफ क्यों झुकते हैं, इसलिये नहीं कि वे उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं के कायल हैं बल्कि इसलिये कि वे कांग्रेस तथा उसके प्रोग्रामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इससे ज्यादा इस मामले को और क्या स्पष्ट किया जाय? जो वोट दिये गये, वे उन व्यक्तियों को नहीं, वरन् कांग्रेस को दिये गये। आज का कोई भी धारासभाई कांग्रेसी सदस्य, अपनी मूर्खता के कारण कांग्रेस का विरोध करके फिर से चुनाव में खड़ा होना चाहता है तो उसे निश्चय ही दूसरा काँग्रेसी पराजित कर देगा, फिर वह चाहे किसी भी दर्जे का व्यक्ति क्यों न हो। मतदाता ने तो वोट देकर सिर्फ काँग्रेस के प्रति वफादारी प्रकट की है। और काँग्रेस ही मतदाता के प्रति जिम्मेदार है। धारासभा के मंत्री तथा अन्य काँग्रेसी पार्टियाँ अपनी ओर से काँग्रेस के प्रति जिम्मेदार हैं और काँग्रेस के जरीये मतदाताओं के प्रति भी जिम्मेदार हैं।

काँग्रेस यद्यपि कई कमेटियों के जरिये काम संचालन करती है फिर भी वास्तव में वह एक ही वस्तु है और उसकी एक ही नीति है। अतः धारासभा में काँग्रेसी मंत्रियों अथवा काँग्रेसी पार्टी के लिये कोई दूसरी किस्म की वफादारी नहीं है। वार्षिक अधिवेशन में मूल नीति का निर्माण किया जाचुका है और उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने मान्य करके प्रचारित कर दिया है। कार्यसमिति जो अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की व्यवस्थापिका है, उस नीति का काँग्रेसियों से पालन करवाती है।

यहाँ अब कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी और कांग्रेस मंत्रियों, कांग्रेस तथा उसकी अन्य कमेटियों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध हैं, इस पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है। कांग्रेस के अखिल भारतीय दल— अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, कार्यकारणी, तथा व्यवस्थापिका और अन्य सब कमेटियाँ हमेशा इस बात की जांच करती रहती हैं कि कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी तथा कांग्रेस मन्त्रिमण्डल, जो तमाम देश में व्याप्त हैं, कांग्रेस की नीति तथा प्रोग्राम का पूर्णतया पालन कर रहे हैं या नहीं? कोई भी दल जो कांग्रेस के द्वारा निर्मित किया गया है, कभी भी कांग्रेस की मजबूती, पवित्रता और सम्मान को धक्का पहुँचाने वाला कार्य नहीं कर सकता। कांग्रेस की नीति और प्रोग्राम चुनाव घोषणापत्र (Election Manipesto) में वर्णित है और समय-समय पर होने वाली काँग्रेस, कार्य समित तथा उसकी व्यवस्थापिका की बैठकों में ये गृहीत किये गये हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक कभी-कभी ही होती हैं अतः ऐसेम्बली पार्टी तथा मन्त्रिमण्डलों के मार्ग-प्रदर्शन, सहायता एवं निरीक्षण आदि के लिये, कांग्रेस ने कार्य समिति और इस के अन्तरगत स्थापित सब कमेटियों को यह काम सौंप रखा है। इसमें सन्देह करने की कोई भी बात नहीं है कि किसी समय भी कार्यसमित तथा सब कमेटी मंत्रिमंडल तथा ऐसेम्बली पार्टी के उन कामों में जो कांग्रेस के सम्मान, नीति, प्रोग्राम, मजबूती और पवित्रता से सम्बन्ध रखते हैं, दखल दे सकते हैं। यह स्वाभविक ही है कि जब ब्रिटिश सरकार, गवर्नर आदि से मंत्रिमण्डलों का झगड़ा हो जायगा तो उस समय कार्य समिति और सब कमेटी का कर्तव्य हो जाता है कि वह मंत्रिमण्डलों का नियन्त्रण, सहायता तथा मार्ग को प्रदर्शन करे। जब संयुक्त प्रान्त और बिहार में राजनीतिक कैदियों के छोड़ने के प्रश्न पर तथा उड़ीसा में कार्य वाहक गवर्नर की नियुक्त के प्रश्न पर आपस में झगड़े हुए उस समय कार्य समित सब कमेटी ने ही झगड़े निबटाये थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, कार्य समिति और सब कमेटियों पर कांग्रेस की नीति, प्रोग्राम, सम्मान, मजबूती तथा पवित्रता कायम रखने के लिये जो जिम्मेदारियाँ आ पड़ी हैं, उनको दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके ऊपर दुहरे कार्य भार आ पड़ा है। उन्हें भिन्न-भिन्न ऐसेम्बली पार्टियों में तथा मंत्रि-मण्डलों में सहयोग स्थापति करना पड़ता है और साथ ही यह भी देखना पड़ता है कि ऐसेम्बली पार्टी और मंत्रिमण्डल हर प्रान्त में उचित ढंग से काम कर रहे हैं या नहीं यदि किसी ऐसेम्बली पार्टी और मंत्रिमण्डल में मतभेद या झगड़ा या पारस्परिक विरोध हो जाय तो बिना देर किये, कांग्रेस की उच्चतम सत्ता को बीच में दखल देना ही पड़ेगा। यह सोचना जबरदस्त भूल है कि कांग्रेस की उच्चतम सत्ता महज नीति और प्रोग्राम के मामले में ही दखल दे सकती है। कांग्रेस की नीति और प्रोग्राम को कार्यान्वित करने का अर्थ ही यह है कि एक अनुशासन सम्पन्न कांग्रेसी पार्टी अस्तित्व में आये। इसी लिये कांग्रेस उच्चतम सत्ता का यह कर्तव्य है कि वह यह निगरानी रखे कि मंत्रिमण्डलों तथा ऐसेम्बली पार्टियों में कांग्रेसी नीति, प्रोग्राम पवित्रता, मजबूती तथा सम्मान को कायम रखा जाता है या नहीं। जब आपसी झगड़े और साम्प्रदायक लड़ाइयों में हो जायँ तो झगड़ों का अन्त और आपसी मेल करने के लिये कांग्रेस उच्चतम सत्ता ही आगे आ सकती है। इस दृष्टि से, सी० पी० और बिहार जैसे सम्मिलित तत्वों के प्रान्त में कांग्रेस उच्चतम सत्ता की जिम्मेदारी और भी ज्यादा बढ़ जाती है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है जब बिहार में बिहारी और बंगाली झगड़ा उठा तो कार्य समिति बिहार मंत्रि मण्डल या बिहार ऐसेम्बली पार्टी के निर्णय की प्रतीक्षा न करके बीच में पड़ गई और मामले को निबटाया। कांग्रेस संस्था में नीति और प्रोग्राम उसकी इज्जत, उसकी मजबूती तथा पवित्रता, अनुशासन और सद भावना कायम रखने के लिये ही कांग्रेस को अक्सर ऐजेन्टों

की नियुक्ति करनी पड़ती है जो गंभीर तथा आपसी झगड़ों का पंच की तरह फैसला कर सकें। कभी-कभी ऐसे मामलों में प्रेजेन्टों को ही फैसला करने के लिये उस बैठक का अध्यक्ष भी बनना पड़ता है। २४ मई को पंचमढ़ी तथा २७ जुलाई को वर्धा में, सी० पी० एसेम्बली पार्टी की जो बैठकें हुई; उनमें कार्य समिति को एक अध्यक्ष भेजना आवश्यक हुआ, क्योंकि वहाँ मामला बहुत ही गंभीरतम रूप धारण कर चुका था। वर्धा में २७ जुलाई को होने वाली बैठक में बाहरी अध्यक्ष की ही आवश्यकता थी क्योंकि आमतौर पर ऐसी सभायों का अध्यक्ष होता था, उसने इस्तीफा दे दिया था और उसी के आचरण की जांच के लिये यह बैठक बुलवाई गई थी।

इसी सिलसिले में मैं देशभर के तमाम कांग्रेसियों को भी एक चेतावनी दे देना चाहता हूँ कुछ अंग्रेजी क्षेत्रों में यह धारणा जम गई है कि देश में प्रान्तीय स्वायत्त शासन के आरभ करने से, हमारा आन्दोलन वैधानिकता के कारण ठप हो जायगा। इससे अन्तर प्रान्तीय भावनाएँ जागृत होंगो और सी० पी० मद्रास, तथा बम्बई जैसे संयुक्त तत्वों वाले प्रान्तों में अन्दरूनी झगड़े होंगे। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसे प्रान्तों में जहां संयुक्त तत्वों का समावेश है यह जोखम भारी है। अतः ऐसे प्रान्तों में हमारी जिम्मेदारियां और भी बढ़ जाती हैं क्योंकि ऐसी जगहों पर यह डर है कि कहीं लोग विरोधियों—चाहे वे अंग्रेज हों या भारतीय के हाथों में खिलौने न बन जायँ। जहाँ तक सी० पी० के संकट का प्रश्न है, ऐसा प्रतीत होता है कि डाक्टर खरे गवर्नर के हाथों में खिलौना वन गये और गवर्नर ने पुरानी कांग्रेस केबिनेट (मंत्रिमण्डल) की एकता को बरबाद करवा दिया।

डाक्टर खरे का यह दावा था कि प्रधान मंत्री होने के नाते उनको यह हक था कि वे बिना कार्यकारिणी या पार्लिमेन्टरी सब कमेटी से पूछे इस्तीफा दे सकते हैं और नया मंत्रिमण्डल भी बना सकते

हैं। उनके, जुलाई १९३७ से लेकर जुलाई १९३८ के आचरण से यह दावा एकदम झूठा हो जाता है, क्योंकि इस अरसे में उन्होंने पार्लिमेन्टरी सब कमेटी से महत्वपूर्ण और साधारण कई तरह के मामलों के विषय में पूछताछ की थी। इस तरह के व्यवहार के उपरान्त उन्होंने २० और २१ जुलाई को बिना कार्य समिति या पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के पूछे ही क्रमशः अपना इस्तीफा देकर और नया मंत्रिमण्डल बना कर ऐसा गंभीर कार्य किया है जिसका न तो उनके पास कोई जवाब है न यह कार्य किसी प्रकार न्यायपूर्ण माना जा सकता है।

डाक्टर खरे का दूसरा यह दावा कि वे अपने मन्त्रिमण्डल के चुनाव में कतई स्वतंत्र हैं, बेबुनियाद है। यहाँ सिर्फ इतना ही कह देना अलम होगा कि जब १९३७ में पहिलीबार उन्होंने अपना मंत्रिमण्डल चुना तब उन्होंने पार्लिमेन्टरी सब कमेटी से पूछ कर ही वैसा किया था। सचाई तो यह है कि किसी भी प्रान्त के प्रधानमन्त्री ने बिना पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के पूंछे अपना मन्त्रिमण्डल नहीं बनाया। पार्लिमेन्टरी सब कमेटी और उसकी उच्चतम संस्था कार्यसमिति को ही मन्त्रिमण्डल के चुनाव में दखल देने का अधिकार है। उसका उसका उपयोग उसने भूतकाल में किया भी है।

मन्त्रिमण्डल में मतभेद हो जाने के बाद सी० पी० में यह हुआ कि डाक्टर खरे ने, अपनी कांग्रेस के प्रति जिम्मेदारी को भुलाकर, अपने मंत्रिमण्डल के कुछ साथियों को बिना काग्रेसी उच्चसत्ता से पूछे निकालने व नये मंत्रिमण्डल के बनाने लिये गवर्नर की शक्ति एवं सहायता का सहारा लिया। उनका सब से बड़ा अपराध यह है कि उन्होंने कांग्रेस की सत्ता को ही नहीं ठुकराया वरन् वैसा आचरण करने के लिये गवर्नर की सहायता भी ली। और आज डाक्टर खरे अपने उन कार्यों को वैधानिक समझौते और लोकतन्त्र के नाम पर न्यायपूर्ण कहना चाहते हैं।

उपरोक्त तर्क के अलावा, १९३७ की मार्च से लेकर १९३८ की

जुलाई तक डाक्टर खरे ने जो रवैया ग्रहण किया," वही आज के उनके "बचाव की ज्वलंत आलोचना है।

अ—३ अपेल १६३७ को डाक्टर खरे को सरदार पटेल ने लिखा—

"आपको मुझे हमेशा ही इस बात की सूचना देते रहना चाहिये कि आपके प्रान्त में क्या हो रहा है जिससे कि मौका आने पर मैं, यदि आवश्यकता हुई तो, आपको मार्ग-प्रदर्शन के लिये सलाह देता रहूँ।

आ—७ अप्रेल १६३७ को प्रान्तीय कन्वेन्शन (सभा) के लिये डाक्टर खरे ने सरदार पटेल को लिखा कि—मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप जो भी हिदायतें हमें देने की कृपा करेंगे वे ईमानदारी के साथ पालन की जायेंगी। आपकी लिखी हुई एक ही पंक्ति हमें सिर्फ आपका कृतज्ञ ही नहीं बनायेगी वरन हममें से जो उदासीन या आलसी हैं उन्हें फिर से जागृत कर देने के लिये बड़े काम की साबित होगी।

इ—सचमुच ही डाक्टर खरे निश्चित रूप से यह बात भूलगये कि जुलाई १६३७ में उनका प्रथम मंत्रिमण्डल किस प्रकार बना था। सरदार पटेल ने अपने पत्र नं १५६ ता० १० जुलाई १६३७ द्वारा बम्बई से, डाक्टर खरे को लिखा था—

मेरे यहाँ आने के बाद मैंने आज सुबह के पत्रों में पढ़ा कि आपको गवर्नर मंत्रिमंण्डल बनाने के लिये शीघ्र ही आमंत्रित करना चहाता है, क्योंकि अस्थायी मंत्रिमण्डल ने इस्तीफा देदिया है। आपने सी० पी० के मंत्रिमण्डल के निर्माण के विषय में ७ तारीख को मुझसे बातचीत वर्धा में की थी, लेकिन अपनी बातें अधूरी ही रह गयी थीं, क्योंकि उस समय अपने पास पूरी सूची नहीं थी। अब समय बहुत ही नजदीक है, अतः आप अपने साथियों से परामर्श करके मंत्रिमण्डल की सूची पूरी करने के लिये जितनी जल्दी हो सके बम्बई चले आयें। आपके पास जब मेरी

रजामन्दी के लिये पूरे प्रस्ताव तैयार हो जायँ, उन्हें आप फौरन मेरे पास तार द्वारा भेजें।"

ई—२१ जुलाई १९३७ को डाक्टर खरे ने जो तब प्रधानमंत्री थे, सरदार पटेल को नागपुर से लिखा था—

"केन्द्र की तरफ से मुझे पूरी सहायता देने व सद्भावना प्रगट करने के आपके वचन के लिये आपको बहुत बहुत धन्यवाद। मैं कुछ मामलों में आपकी सलाह चाहता हूँ। वे मामले इस प्रकार हैं—

१-मंत्रियों के मकान और मोटर के अलाउन्स

२-ऐसेम्बली के सदस्यों के अलाउन्स

३-पार्लिमेन्टरी सैक्रेटरी नियुक्ति करने का प्रश्न।

४-स्पीकर और डिप्टी स्पीकर के वेतन।

उ—सरदार पटेल ने डाक्टर खरे को अपने पत्र नं० १९० ता० ३० जुलाई १९३७ में लिखा था—

"मैंने गांधीजी की सलाह से हिदायतों का एक मसौदा तैयार किया है। इसे भेज रहा हूँ। इस पर अभी अध्यक्ष की रजामन्दी लेना शेष है। यह आपके मार्ग प्रदर्शन के लिये भेजा जारहा है। आपको अन्तिम हिदायतें तभी भेजी जायेंगी जब कि अध्यक्ष इस मसौदे पर स्वीकृति दे देंगे।

ऊ—जब डाक्टर खरे श्री अग्निभोज—धारासभा के एक हरिजन सदस्य के विरुद्ध उनके कांग्रेस के विरुद्ध बोलने के कारण, अनुशासन की कार्रवाही करना चाहते थे, तब उन्होंने २२ नवम्बर १९३७ को उचित सलाह देने के लिये लिखा। (श्री अग्निभोज वही हैं जो एक ही दिन कायम रहने वाली डाक्टर खरे की दूसरी नयी केबिनेट (मंत्रिमण्डल) के सदस्य होगये थे)

ए—शरीफ के मामले में, जफर हुसैन को क्षमा कर देने की गवर्नर की स्वीकृति तथा कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी और मंत्रिमण्डल के द्वारा

श्री शरीफ के कार्य को माफ कर देने के बाद भी, कांग्रेस कार्य कारणी ने दूसरा ही रुख इख्तयार किया और उसके फल-स्वरूप श्री. शरीफ को इस्तीफा देना ही पड़ा। जब शरीफ ने इस्तीफा दिया तब डाक्टर खरे ने कार्य समिति के निर्णय के विरुद्ध बगावत क्यों नहीं की ?

ऐ—८ मई १९३८ को जब मंत्रिमण्डल के ४ सदस्यों ने (श्री गोले, मिश्राजी मेहता तथा शुक्लजी) डाक्टर खरे को अपने इस्तीफे दिये तब डाक्टर खरे ने उनके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही न करते हुये, पार्लिमेन्टरी सब कमेटी से ही प्रार्थना की कि वह इस मामले पर विचार करें। जब यह मामला बम्बई में कार्य समिति के सामने पेश हुआ तो वहाँ यही तै हुआ कि इस मामले के विषय में कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी से ही पूछा जाय। जब यह मामला कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी के पास भेजा गया तो डाक्टर खरे, श्री.गोले तथा देशमुख को इसलिये बुरा लगा कि वे कार्य समिति से ही इसका निर्णय चाहते थे। इसके लिये श्री गोले ने सरदार पटेल को पंचमढ़ी से १५ मई को लिखा—

"सी०पी० मन्त्रिमण्डल के मामले मे कार्यकारिणी में जो वादविवाद हुआ था उसमें मै भाग लेना नहीं चाहता था, फिर भी मैं आपको यह अवश्य ही सूचित कर देना चाहता हूँ कि कार्य समिति ने कल जो निर्णय किया है, उससे मेरा चित्त बहुत ही उद्विग्न होगया है। कार्य समिति ने निर्णय किया है कि यह मामला ऐसेम्बली पार्टी के ही सिपुर्द किया जाय। मंत्रियों ने अपनी इच्छा से ही कार्य समिति के सामने अपने मतभेद पेश किये थे। अतः इसका यही मतलब होता था कि कार्य समिति जो भी निर्णय करेगी, वे उससे बाध्य होंगे। कार्य समिति ने मंत्रियों के दृष्टिकोण सुन कर स्वतः निर्णय करने के बजाय, सारा मामला तैयार कर के ऐसेम्बली पार्टी के सिपुर्द कर दिया कि वह इस मामले में क्या निर्णय करना

चाहती है। व्यक्तिगत रूप से मैं यह कभी नहीं चाहता कि मंत्रियों की अच्छाइयों और बुराइयों पर पार्टी में विचार किया जाय। यदि यही होने दिया गया तो पार्टी में मंत्रियों की स्थिति बहुत ही उपहास्यास्पद हो जायेगी। पिछले दस महीने से पार्टी के सदस्यों ने मंत्रियों के ऊपर बहुत भार डाल रखा है और वे यह चाहते हैं कि जो वे कहें वही मंत्रियों को करना चाहिये। ऐसी शक्ल में मंत्री कार्य समिति की ओर ही संकेत करेंगे और कहेंगे कि कुछ खास मामलों में सिवाय कार्य समिति की आज्ञा बिना वे कुछ भी करने मं असमर्थ हैं। कल की कार्य समिति के निर्णय का यह परिणाम होगा कि ऐसेम्बली पार्टी के सदस्य जबरदस्ती अपनी इच्छाएँ मंत्रियों पर लाद कर उनसे, उनकी इच्छाओं के विपरीत कार्य करवायेंगे। यदि ऐसा हुआ तो मंत्रियों की स्थिति वास्तव में दयनीय हो जायेगी।"

"मैं चाहता था कि इस विषय में अपने विचार कार्य समिति के समक्ष रखूँ। लेकिन मैं कार्य समिति के वाद-विवाद में भाग लेना ही नहीं चाहता था अतः चुप रहगया। मेरी इच्छा थी कि मेरे विचारों को मेरा कोई साथी कार्य समिति के सामने रखे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। अतः मैं कर्तव्यवश आपके सामने, कार्य समिति ने जो निर्णय किया है उसके बारे में अपने विचार रखना चाहता हूँ। कार्य समिति ने निर्णय किया है कि पार्टी की एक बैठक की जाय और वही इस मामले का निर्णय करे। मैं यह कह देना चाहता हूँ कि यदि इस मामले का निर्णय समिति करती तो मंत्रियों की प्रतिष्ठा में कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार कार्य समिति की जो उच्चतम स्थिति है वह भी कायम रहती। कल के कार्य समिति के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि उसने अपने तमाम अधिकार ऐसेम्बली पार्टी को सौंप दिये हैं। इससे मंत्रियों की स्थिति आगे चलकर

बिलकुल ही अरक्षित हो जायेगी।"

१—डाक्टर खरे अपने मंत्रिमण्डल के एक साथी श्री० मिश्रजी के खिलाफ कार्रवाई करना चाहते थे। इस विषय में उन्होंने, स्वतः कुछ न करते हुए ६ जुलाई १९३८ को सरदार पटेल को लिखा कि इस विषय में आप अपनी राय और हिदायतें देने की कृपा करें। इसके बाद अगले १० दिनों में ही ऐसा क्या होगया जिससे डाक्टर खरे ने अपनी राय कतई बदल दी!

२—१५ जुलाई को डाक्टर खरे ने नागपुर से सरदार पटेल को लिखा कि "मौजूदा स्थिति में मुझे इसके सिवाय कोई उपाय ही नज़र नहीं आता कि विभागों के पुनर्वितरण के मामले को आपके सिपुर्द करदूँ। कुछ मामलों के सम्बन्ध में मेरे निश्चित विचार हैं जिनसे भविष्य में मंत्रिमण्डलों का कार्य साधारणतया अच्छी प्रकार और प्रधानमंत्री का कार्य तो हर प्रकार सुचारु रूप से संचालित हो सकेगा। मैं आपसे अत्यन्त ही नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि आप इस सम्बन्ध में किसी निर्णय पर पहुँचे, इसके पूर्व, मैं स्वतः इस मामले को आपके समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

३—१५ जुलाई को पुनः डाक्टर खरे ने सरदार पटेल को नागपुर से लिखा कि "मुझे इस बात का बहुत ही खेद हुआ कि आपने मेरे पत्र का यह मतलब ग्रहण किया कि मैं मिश्रजी से जल्दी-से-जल्दी इस्तीफा दिलाने पर तुला हुआ हूँ और मैं उन्हें उनके विरुद्ध लगाये गये आरोपों की सफाई का अवसर तक भी नहीं देना चाहता। मेरा इरादा तो कार्य समिति के सामने भी मिश्रजी को अपराधी करार देने का नहीं है जब तक कि आप मुझे वैसा करने की इजाजत नहीं दे देते। गई मई की तकलीफों के बाद से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि आपको उन सब बातों की सूचना मिलती रहे जो यहाँ होती रहती हैं। ये सूचनाएँ मैं आपको इस-

लिये देते रहना चाहता था कि इनके सम्बन्ध में आप मुझे उचित हिदायतें प्रदान करते रहें।"

४—२० जुलाई के सङ्कट के उपरान्त २५ जुलाई को डाक्टर खरे ने एक वक्तव्य दिया—"मैं यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि काँग्रेस हाईकमाण्ड यह निर्णय करना चाहती है कि पहिले के मंत्रिमण्डल के सभी मंत्री हटा दिये जायँ और उनके बजाय दूसरे ६ काँग्रेसी धारासभाइयों को चुनकर नया मंत्रिमंडल बना दिया जाय, तो मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूँ" (इससे यह जाहिर होता है कि तीन मंत्री तो मंत्रिमण्डल से उन्होंने हटा ही दिये हैं, यदि पूरे छः ही हटा दिये जायँ तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं)

इन तर्कों और तथ्यों के देखते हुए डाक्टर खरे का यह कहना कि तीनों मंत्रियों की बरखास्तगी एक साधारण-सी बात है, कतई बेबुनियाद है। उनका यह तर्क भी उतना ही हल्का है कि वे कार्य समिति और पार्लिमेंटरी सब कमेटी से पूछे बिना ही, स्वतंत्रतापूर्वक अपना काम करते रहने के अधिकारी हैं। यह बहाना तो उनकी पिछली बुद्धि का द्योतक है अतः इस तरह के उनके धोखे में कोई भी नहीं फंस सकता। डाक्टर खरे जानते हैं और साथ ही सभी काँग्रेसी प्रधानमंत्री भी जानते हैं कि कोई भी काँग्रेसी प्रधानमंत्री बिना कार्य कारिणी तथा पार्लिमेंटरी सब कमेटी के पूछे इस्तीफा नहीं दे सकता। अपने ११ जुलाई के पत्र नं० ३५१ में, जिसका जवाब डाक्टर खरे ने १५ जुलाई को दिया, सरदार पटेल ने खरे को लिखा था—

"मुझे यह सुनकर बहुत ही आश्चर्य हुआ कि आप तीन आरोपों के आधार पर मिश्रजी से सीधे इस्तीफा लेना चाहते हैं। आपको हमारे मित्रों ने ऐसा आचरण न करने के लिये समझाया है और इस तरह पर उन लोगों ने आपको असावधानी का कार्य होजाने से बचाया है। आपको यह ज्ञात ही है कि २३ जुलाई को वर्धा में

कार्यसमिति की बैठक होने वाली है। मैं इस विषय में मौलाना अबुल कलाम को, पंचमढ़ी के समझौते के बाद से आज तक जो घटनाएँ हुईं, उनसे, पूर्णरूप से परिचित करा देना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आप इस मामले को, पूर्णतया कार्य समिति के हाथों में ही, निर्णय के लिये छोड़ दें।"

इस प्रकार डाक्टर खरे को पार्लिमेंटरी सब कमेटी के अध्यक्ष की ओर से, अपने साथी मन्त्रियों को इस्तीफे देने के लिये बाध्य न करने के विषय में, साफ-साफ हिदायतें दी जा चुकी थीं।

१७ जुलाई को सेठ जमनालाल बजाज ने, जो उस समय जयपुर स्टेट के सीकर नामक स्थान पर थे, डाक्टर खरे को वहाँ से एक तार भेजा--

"डाक्टर खरे प्रधानमन्त्री नागपुर। तुम्हारा १६ तारीख का (तार) मिला। संकट (की) रिपोर्ट (में) बहुत उद्विग्न हुआ। (इसे) रोकिये। इस मौके (पर) मेरी उपस्थिति आवश्यक (है) (ऐसा मैं) महसूस करता हूँ। लेकिन मजबूर हूँ। मेरी उपस्थिति यहाँ (आवश्यक है) क्योंकि सीकर की परिस्थिति भयानक है। मैं विशेषरूप से सलाह देता हूँ (कि आप) मौलाना, सरदार वल्लभभाई पटेल और राजेन्द्र-बाबू (की) सलाह (से) काम करें।

जमनालाल"

इसके बाद डाक्टर खरे ने सरदार पटेल पर वैमनस्य रखने का आरोप किया। लेकिन यह वह पत्र है जो सरदार पटेल ने १६ जुलाई १६३७ को डाक्टर खरे को लिखा था (पत्र नं० १६८)—

"मुझे आपका मंत्रियों की नियुक्ति विषयक तार प्राप्त हुआ। मुझे इस बात का हर्ष है कि आपने कार्यारंभ बहुत अच्छे ढङ्ग से किया। हमें आशा है कि आपके मंत्रिमण्डल का देश में—खासकर आपके प्रान्त में बहुत ही अच्छा स्वागत होगा। मुझे आशा है कि आपको आपके प्रयोगों में सभी दलों के लोगों से बहुत सहानुभूति एवं

सहयोग प्राप्त होगा। मेरी ओर से समस्त सद्भावनाएँ स्वीकार करिये। आपको विश्वास करना चाहिये कि केन्द्र से आपको सभी प्रकार की सहायता और सद्भावना प्राप्त होती रहेगी।"

इसके साथ ही ऐसे भी दस्तावेजी प्रमाण विद्यमान हैं जिनमें सरदार वल्लभभाई पटेल ने डाक्टर खरे को, पंचमढ़ी के समझौते पर पूर्णरूप से अमल करने को बार-बार समझाकर, इस महान संकट से साफ बचा लेने की चेष्टा भी की थी। इस कार्य के लिये सरदार पटेल ने श्री० देशमुख—मंत्री तथा लोकनायक अणे साहब से भी सहायता ली। दोनों ही सज्जनों ने भरसक कोशिश भी की। इसके अलावा ऊपर जो डाक्टर खरे और सरदार पटेल के पत्र-व्यवहार के उद्धरण दिये गये हैं, उनसे भी यही साबित होता है कि सरदार पटेल के खरे साहब से बहुत ही मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे।

डाक्टर खरे ने मौलाना अबुल कलाम आजाद के एक पत्र का, जो उन्होंने डाक्टर खरे को १४ जुलाई को लिखा था, उद्धरण दिया है। डाक्टर खरे ने उस उद्धरण का जो अर्थ निकाला है उस पर बड़ा आश्चय होता है। खरे का कहना है कि इस उद्धरण में यह इशारा है कि सी० पी० गैर कांग्रेसी प्रान्त करार दिये जाने वाला है। यह डाक्टर खरे की पिछली बुद्धि का ही नमूना है जो उन्होंने घोषित किया कि इस प्रान्त के गैर कांग्रेसी होने के भय से ही वे इस राजनीतिक संकट के लिये प्रेरित हुए। कुछ भी हो, डाक्टर खरे ही समस्त काँग्रेस में अकेले ऐसे व्यक्ति नहीं थे जिन्हें—सी० पी० और बरार गैर काँग्रेसी प्रान्त नहीं हुआ—यह देखने की दिलचस्पी हो। यदि मौलाना साहब के पूरे पत्र का परायण किया जाय तो डाक्टर खरे ने उसका जो आशय निकाला है उससे बिलकुल ही भिन्न आशय प्रकट होता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मौलाना आजाद ने उपरोक्त पत्र डाक्टर खरे के पत्र ता० ६ जुलाई के उत्तर में लिखा था,

जिसमें खरे ने मिश्रजी पर कई आरोप लगाये थे। मौलाना आजाद का पत्र इस प्रकार है—

"आपका ६ जुलाई का पत्र प्राप्त हुआ। आपने श्री मिश्रजी के विषय में दो बातें लिखीं हैं, पर मेरी राय में वे बातें गम्भीर आरोप नहीं मानी जा सकतीं। इसमें शक नहीं कि इन बातों का उनसे जवाब तो अवश्य ही लिया जाना चाहिये। प्रधानमंत्री होने के नाते आपका कर्तव्य है कि आप अपने साथियों के ऐतराज़ के काबिल कामों पर ध्यान दें और उनको आपस में निबटा लें। यदि आपस में ही निबट जाय तो बहुत ही अच्छा है नहीं तो आपको उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाने का प्रयास, यदि आवश्यकता हो तो, करना चाहिये और यदि इतने पर भी मामला न निबटे तो पार्लिमेंटरी सब कमेटी के सामने मामले को रखना चाहिये। इसमें कोई शक नहीं कि आप और आपके मन्त्रियों के बीच न तो किसी प्रकार का दुख और न किसी प्रकार की गलत फहमी ही होना चाहिये। यदि आपस में ही इस प्रकार के भेद-भाव, दुराव-छिपाव चलते रहे तो निश्चय ही सारा किया-कराया चौपट हो जायेगा। हमने आपके और आपके साथियों के बीच एकता की भावना और पारस्परिक विश्वास कायम रखने के लिये ही पंचमढ़ी में अन्तिम रूप से प्रयत्न किया था। यदि इसके उपरान्त भी वही पुराने मन-मुटाव जारी हैं तो यह स्थिति बहुत ही खेदजनक है। इन बातों का आवश्यक परिणाम यही होगा कि प्रान्त की भलाई के लिये सी० पी० मंत्रिमण्डल ही खत्म कर दिया जाय, क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रान्त की साधारण परिस्थिति को देखते हुए कॉंग्रेस सी० पी० में अपना मन्त्रिमण्डल कायम रखने की जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं लेगी। मैंने आपको यही सलाह पहिले भी दी थी कि पीछे की बातों को भुला देना चाहिये और आगे के लिये पंचमढ़ी के समझौते पर आपसी सद्भावना, पारस्परिक विश्वास के साथ सभी को अमल करना चाहिये। आपको ऐसी शिकायत का

मौका नहीं देना चाहिये जिससे लोग यह कहने लगें कि आप अपने साथियों के साथ पवित्र हृदय से काम नहीं कर सकते। यदि आपके साथी भी इसी भावना से काम करें तो गलत फहमी में गिरने की कोई बात नहीं है। यदि उनसे कोई बुरी बात होगई तो वे इसके जिम्मेदार हैं। ऐसी सूरत मे, जैसा कि आप उनके साथ काम नहीं करना चाहते और मन्त्रिमण्डल में उनके बजाय दूसरे लोगों को लेना चाहते है, आपकी स्थिति और भी कमजोर हो जायेगी।

"अपने बचाव" में २२ जुलाई की मीटिंग का जिक्र करते हुए डाक्टर खरे ने कहा है कि मौलाना आजाद ने मुझे इस बात का आश्वासन दिलाया है कि यदि मन्त्रियों ने अपनी इच्छा से इस्तीफे दे दिये तो स्थिति की दृष्टि से सारे मामले पर विचार करने के लिये फिर रास्ता साफ हो जायेगा। मौलाना आजाद चाहते थे कि हम इस बात पर विश्वास करें कि उन्होंने इस बात से यही परिणाम निकाले है कि वैसा करने से उनकी प्रधान मन्त्री की हैसियत से स्थिति मजबूत हो जायेगी। पर वास्तव मे मौलाना ने न तो कोई आश्वासन ही दिया था और पत्र में खरे साहब के कहने के अनुसार न कोई सकेत ही था। वास्तव मे उन्होंने जो कुछ उर्दू में कहा उसका यही अर्थ होता है कि डाक्टर खरे ने हमारे मार्ग में एक दीवार खड़ी कर दी है। उस दीवार को या तो गिरा देना होगा या मार्ग साफ करना होगा। और यह कार्य या तो डाक्टर खरे को ही करना होगा या फिर कार्य-समिति करेगी। डाक्टर खरे को खुद ही रास्ता साफ करने का तरीका ज्यादा पसन्द आया। वह तरीका यह था कि यदि डाक्टर ने खुद इस्तीफा नहीं दिया तो कार्यसमिति उनसे इस्तीफा दिलवायेगी।

पत्रों में अभी तक जो कुछ भी प्रकाशित हुआ है उससे सिद्ध है कि हमारी उस चिन्ता का कि डाक्टर खरे हमारी सलाह को मान लें, बहुत ही दुरुपयोग हुआ है।

२३ जुलाई को कार्यसमिति की बैठक हुई और उसने आरम्भ से ही डाक्टर खरे के आचरण पर गम्भीर दृष्टिपात करना आरम्भ किया। ऐसी भी सम्भावना थी कि यदि कार्यसमिति को मामले की स्थिति पर सोचने की स्वतन्त्रता देदी जाय, तो परिणाम् यह होगा कि डाक्टर खरे के खिलाफ बहुत ही सख्त कार्रवाई की जायेगी। इस भयंकर परिणाम को टालने के लिये ही यह निर्णय किया गया कि डाक्टर खरे अपने कृत्यों पर स्वयं विचार करें और खुद ही अपना निर्णय करलें। यह तो स्पष्ट ही था कि डाक्टर खरे ने अपने कार्यों को उस नज़र से नहीं देखा जिस नज़र से दूसरों ने देखा। अतः उन्हें फिर से उनके कार्यों को निश्पक्ष तथा तात्विक दृष्टि से देखने के लिये मजबूर किया गया। २२ जुलाई की मीटिंग में हमें यही आशा थी कि वे हमारी हिदायतों के अनुसार अपने आपको उनके कृत्यों का उत्तरदायी मान लेंगे। इसी भावना को लेकर हमने उन्हें २३ जुलाई की तथा २५ जुलाई की कार्यसमिति की बैठक में बुलाया भी और इसी भावनावश हम उन्हें लेकर महात्मा गांधी के पास भी गये। आरम्भ में तो वे गांधी जी की बातों को मान गये किन्तु आगे चलकर वे अपनी स्थिति से फिसल कर इस बात पर आगये कि वे पहिले अपने नागपुर के दोस्तों से परामर्श करना चाहते हैं। जब हम सेगाँव से खरे साहब के साथ वर्धा लौट रहे थे तो मैंने उन्हें गांधी जी की राय मान लेने के लिये मजबूर भी किया मैंने उन्हें बताया कि ऐसा करना न सिर्फ कांग्रेस के लिये ही हितकारक होगा बल्कि उनके लिये भी। अब यही एक कल्याण कर मार्ग रह गया हैं। इसके बाद रात को मैं अकेला ही डाक्टर खरे से मिला। उस समय भी मैंने उन्हें हम लोगों की सलाह मान लेने के लिये जोर दिया और कहा कि अब वे अपने नागपुरी दोस्तों के चक्कर में न आयें। मैं डाक्टर खरे को विश्वास दिलाने में यहाँ तक आगे बढ़ गया कि यदि वे हमारी सलाह पर अमल करने को उद्यत हों तो कार्यसमिति उनके इस निर्णय की

सराहना में एक प्रस्ताव तक स्वीकार कर लेगी। यदि वे स्वतः अपने आपको कांग्रेस के हाथों में छोड़ दें और यदि वे कांग्रेसी की तरह वफादारी के साथ काम करने को तैयार हों तो कुछ समय के बाद ही फिर से आगे आने से उन्हें कोई भी नहीं रोक सकता। मैंने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि कार्यसमिति उनसे बदला लेने की भावना नहीं रखती। लेकिन वर्तमान स्थिति में उन्होंने जो भयंकर गलतियाँ की हैं उनकी कीमत तो उन्हें चुकानी ही पड़ेगी अतः उन्हें यह सब हंसते-खेलते झेलने को तैयार होजाना चाहिये।

यह महसूस किया गया कि हमें अदालती कार्रवाई की तरह ही कार्य समिति के सामने इस मामले को पेश करके निर्णय करवाना चाहिये। हम इस अरुचिकर स्थिति को टालना चाहते थे और निश्चित रूप से हमने यह स्थिति टाल भी दी होती यदि डाक्टर खरे हमारी बात मान लेते। २५ जुलाई की रात को एक मित्र की तरह मैंने उन्हें समझाया था पर डाक्टर खरे ने इरादतन मेरी उन बातों का गलत अर्थ लगाते हुए उनका बहुत ही बेहूदा प्रचार किया। यदि वे हमारी सलाह मान लेते तो उनकी क्या हानि हो जाती ? वे आज भी कांग्रेसियों के द्वारा सम्मान की दृष्टि से देखे जाते, उनकी बातें गौर से सुनी जातीं और कई मामलों में आज भी हमें उनकी राय की जरूरत पड़ती। यह कहना कोई उन्हें जाल में फँसाना नहीं था। हमारा लक्ष्य तो, केवल उन्हें यह बताने का था कि उनके अमुक काम के अमुक परिणाम हो सकते हैं। हमारे इस तरह के झुकाव का गलत अर्थ लगाना उनके बिगड़े हुए दिमाग का द्योतक है।

डाक्टर खरे ने नागपुर-विदर्भ-महाकौशल के संयुक्त बोर्ड के कामों की भी बहुत आलोचनाएँ की हैं। उन्होंने उस संयुक्त बोर्ड के लिये कहा कि इसकी स्थापना मुझे प्रधानमन्त्रित्व से हटाने के लिये ही हुई है और मजाक में वे इस बोर्ड को "कन्ट्रोल बोर्ड" कहा करते हैं। उनके इस आरोप में कोई भी तथ्य नहीं है। डाक्टर खरे ने अपने

वक्तव्य में खुद ही कहा है कि एक संयुक्त बोर्ड की स्थापना करना मेरी ही बुद्धि की उपज है। पंचमढ़ी के समझौते के बहुत पहिले नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने एक प्रस्ताव पास करके तीनों प्रान्तों का एक संयुक्त बोर्ड कायम किया था। आरम्भ में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों में बोर्ड के लिये प्रतिनिधित्व की क्या व्यवस्था की जाय, इस विषय में मतभेद था। अतः इस बोर्ड के ठीक तौर से स्थापित होने में समय ज्यादा लगा। पंचमढ़ी में तीनों प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष एकत्रित हुए थे अतः उन्होंने स्वतः ही वहाँ इस प्रश्न पर विचार किया। वहाँ यह निश्चय हुआ कि एक सलाहकार समिति बनाई जाय जिसमें तीनों प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों के अलावा हर प्रान्त की कांग्रेस कमेटी का एक निर्वाचित सदस्य भी रहे। जैसा कि निश्चय किया जा चुका था, इस बोर्ड का उद्देश्य मन्त्रि मण्डल को उसके कामों में परामर्श देना और यदि आवश्यकता हो तो मन्त्रिमण्डल के कार्यों को पार्लमेंटरी सब कमेटी को सूचना देना था। इस बोर्ड की स्थापना के समय इसके उद्देश्य तथा सदस्यों की सूची आदि सभी पत्रों में छपी थी और इस बात को तीनों प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियाँ अच्छी तरह जानती हैं। इसके बाद कुछ दोस्तों तथा कुछ पत्रों ने इसे "कन्ट्रोल बोर्ड" कहना आरम्भ कर दिया। और इस प्रकार एक तरह की गलतफहमी पैदा करना चाहा। इस बात का पता लगते ही मौलाना आजाद और बोर्ड के सेक्रेटरी श्रीयुत बियाणी जी ने वक्तव्य प्रकाशित किये, जिनका आशय यह था, कि यह सलाह देने वाला बोर्ड है, कन्ट्रोल बोर्ड नहीं। खरे के झगड़े में इस बोर्ड ने किसी का भी पक्ष नहीं लिया। पंचमढ़ी के समझौते के बाद, जब नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सामने बोर्ड के एक सदस्य के चुनाव का प्रश्न आया तो डाक्टर खरे ने इसमें तथा सदस्य के चुनाव तक में गहरी दिलचस्पी ली।

"अपने बचाव" में डाक्टर खरे ने इस बोर्ड पर जो रिमार्क

दिया है उससे स्पष्ट है कि वे इस बोर्ड को सन्देह की दृष्टि से देखते थे। लेकिन २१ मई को उन्होंने सेठ जमनालाल बजाज को—जो बोर्ड के एक सदस्य थे, तार भेजा—

"मन्त्रिमण्डल में संकट (पैदा होगया है) आपकी सहायता और उपस्थित आवश्यक है।—खरे।"

१६ जुलाई को उन्होंने श्रीयुत् बृजलाल बियाणी को अकोला में पत्र भेजते हुए लिखा—

"मुझे आपको यह सूचित करते हुए दुःख होता है कि दुर्भाग्य से हम विभागों के पुनर्वितरण के मामले में एकमत न हो सके। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि परसों आप नागपुर में ही थे, लेकिन मुझे खेद है कि मैं आपसे मिल नहीं सका। मुझे इस बात से बहुत ही प्रसन्नता होगी यदि आप इस समस्या को सुलझाने में मेरी मदद कर सकें।"

डाक्टर खरे की यह शिकायत है कि कार्यसमिति के सदस्यों ने उनके साथ जबरदस्ती की है। २४ और २५ जुलाई को पंचमढ़ी में, २२ जुलाई को वर्धा और २५ जुलाई को सेगाँव में उनके साथ अन्याय और जबरदस्ती की गई है। पंचमढ़ी में उनको समझौते में जबरदस्ती डाला गया है। वर्धा में उन्हें जाल में लेकर उनसे, प्रधानमन्त्रित्व पद से इस्तीफा दिलवाया गया है। सेगाँव में भी उन पर जबरदस्ती होने वाली थी, पर वे बच निकले। कुछ भी हो, ऐसा लगता है कि खरे साहब का "बल प्रयोग" या जबरदस्ती" का अस्त्र दुधारी है। इससे यह तो जरूर होता है कि कई मामलों में सफाई देने से वे बच जाते हैं लेकिन यह तो निश्चय है कि "जबरदस्ती" के बहाने में उनकी कमजोरी भी स्पष्ट ही दिखाई देती है। कोई भी व्यक्ति गम्भीरतापूर्वक यह कैसे विश्वास कर सकता है कि सी० पी० और बरार जैसे प्रान्त का प्रधानमन्त्री हर बार लोगों के हाथों में "जबरदस्ती" का शिकार

बनता चला गया ? यदि इस बात पर विश्वास कर लिया जाय तो दूसरे अर्थों में यही कहा जायगा कि डाक्टर खरे पूर्ण रूप से अयोग्य होने के अपराधी हैं।

डाक्टर खरे ने कहा है कि मन्त्रिमण्डल का इस्तीफा देना तो अनिवार्य ही था, क्योंकि मन्त्रिमण्डल के तीन साथी—पंडित रविशंकर शुक्ल, पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र तथा मेहता जी उनके कहने में चलते ही नहीं थ। फिर उन्होंने २० जुलाई को अपने नये मन्त्रिमण्डल में एक सीट श्रीयुत् मेहता को क्यों दी ? २५ जुलाई को उन्होने जो वक्तव्य प्रेसों मे छपवाया उसमे यह बात व्यक्त क्यों की ?

"मैं जनसाधारण तथा कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी के सदस्यों को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि मेरा यह इरादा है कि बरखास्त शुदा मन्त्रियों मे से एक को लेन के लिये गवर्नर से पुनः सिफारिश करूँ, यदि मुझे पुनः नये मन्त्रिमण्डल के निर्माण का मौका मिले।"

डाक्टर खरे ने कांग्रेस हाई कमाण्ड पर पक्षपात का आरोप लगाने जैसी धृष्टता करते हुए महान संकट उत्पन्न हो जाने की धमकी भी दी। हमारा खयाल है कि यदि वे कांग्रेस हाई कमाण्ड के पक्षपात के कार्यों सम्बन्धी जो कुछ भी मसाला उनके पास हो, उसे पत्रों में प्रकाशित करके, वास्तव में कांग्रेस की जबरदस्त सेवा करने के हकदार होंगे।

खरे साहब ने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद पर, ता० २० जुलाई को यह लिखने पर कि आपको जल्दी मे कोई भी कार्रवाई नहीं करना चाहिये, ऐतराज किया है। लेकिन ऐतराज करने के पहिले डाक्टर खरे यह बड़ी आसानी से भूल गये कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष, कार्यसमिति के जबरदस्त सम्माननीय सदस्य तथा पार्लियामेंटरी सब कमेटी के एक सदस्य हैं। जरूरत के वक्त, जब कि

पार्टी के दो सदस्य बाहर गये थे, डाटक्र राजेन्द्रप्रसाद को पार्लिया-मेंटरी सब कमेटी की तरफ से बोलने का पूरा-पूरा अधिकार था। इस विशिष्ट मामले में तो, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने जो कुछ भी किया उसमें कार्यसमिति तथा पार्लियामेंटरी सब कमेटी का पूरा-पूरा सहयोग उन्हें प्राप्त था। इस सिलसिले में मैं ६ जुलाई के उस पत्र के कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ जो डाक्टर खरे ने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को लिखा था—

पुनः मैं यह महसूस करता हूँ कि यह मेरा आवश्यक कर्तव्य है कि आपको यह समस्त परिस्थितियाँ समझा दूँ। आपको मालूम ही है कि मेरे इस विषय में क्या मत हैं? मैं जानना चाहता हूँ कि क्या मैं इस विषय में कोई कार्रवाई करूँ? और यदि करूँ तो वह क्या होनी चाहिये? मैं इसके लिये आपका बहुत कृतज्ञ होऊँगा।

अगर डाक्टर खरे की दृष्टि में डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद कोई चीज नहीं थे तो खरे साहब ने अपने आप ही उनकी राय लेने के लिये पत्र क्यों लिखा था?

डाक्टर खरे ने यह भी ऐतराज किया है कि २० जुलाई को उनके साथ इस्तीफा न देकर महाकौशल के मन्त्रियों ने यह साबित कर दिया है कि वे प्रधानमन्त्री के प्रति बफादार नहीं थे। इस ऐतराज के करने के साथ ही डाक्टर खरे को यह भी खटका था कि जब वे स्वयं ही कांग्रेस उच्चसत्ता के प्रति बफादार नहीं हैं तो वह यह कैसे चाह सकते हैं कि उनके साथी उनके प्रति बफादार रहेंगे? यदि अपने बागी प्रधानमन्त्री का महाकौशल के मन्त्रियों ने आँख मींचकर अनुकरण किया होता तो सचमुच ही उनसे यह एक जबरदस्त गलती होती। इसके अलावा उनके पास डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की साफ-साफ हिदायतें मौजूद थीं कि वे कार्यसमिति के निर्णय होने तक इस्तीफा पेश न करें। डाक्टर खरे और उनके दोनों साथी मन्त्रियों को भी

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने इस्तीफा वापस ले लेने को कहा था। किन्तु डाक्टर खरे और उनके महाराष्ट्री साथी मन्त्रियों ने उनका कहना नहीं माना। महाकौशल के मन्त्रियों ने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की बात मान ली। यही कारण है कि कार्यसमिति ने अपने निर्णय में महाकौशल के मन्त्रियों के वर्ताव पर सन्तोष प्रकट किया।

डाक्टर खरे ने यह भी शिकायत की थी कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने २० जुलाई को स्वतः उनको कोई टेलीफून नहीं किया। यह तो डाक्टर खरे का ही काम था कि यदि पार्लियामेंटरी सब कमेटी के सदस्यों ने उनसे सम्पर्क स्थापित नहीं किया तो ऐसे महत्वपूर्ण मामले में खुद उनको ही आगे बढ़ कर डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद से राय लेनी थी। डाक्टर खरे ने इस पर नाराजी प्रकट की है कि हर मन्त्री के साथ पार्लियामेंटरी सब कमेटी के सदस्यों को सम्पर्क रखना ही चाहिये। इसी से साफ हो जाता है कि डाक्टर खरे को अपने महत्व का बहुत ही अतिरंजित अभिमान था। यह सिर्फ ऐतराज के काबिल ही नहीं बल्कि निश्चित रूप से वांछनीय भी है कि उच्चतम स्थिति के मनुष्य को अपने नीचे काम करने वालों का पूरा ज्ञान होना चाहिये। इस कार्य मे गवर्नर का उदाहरण देना बेकार है, क्योंकि वह विदेशी आदमी है और हम जानते है कि वह हमारे बीच में झगड़े पैदा कराने पर ही उद्यत रहा करता है। अतः जहाँ तक हो सके हमारे मन्त्रियों को उससे अलग-अलग मुलाकात लेने से हमेशा ही बचना चाहिये। लेकिन यह सिद्धान्त कांग्रेस के नेताओं पर लागू नहीं हो सकता।

जब से सी० पी० मन्त्रिमण्डल में दुर्भाग्यपूर्ण मतभेद पैदा हो गया है, तब से कार्यसमिति और पार्लियामेंटरी सब कमेटी के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वे मन्त्रिमण्डल के कार्यों में हस्तक्षेप करती रहें। मन्त्रिमण्डल के दोनों दलों मे आपसी समझौता हो गया। समझौते पर अमल करने के सिलसिले में भी यदि किसी बात पर

दोनों दल एक मत न हो सकें तो किसी एक दल या दोनों दलों का फर्ज है कि वे निर्णय के लिये कार्यसमिति या पार्लियामेंटरी सब कमेटी के पास पहुँचें। जब प्रधानमन्त्री इस हद तक बढ़ जाता है कि अपने साथी मन्त्रियों को अपने सामने कीड़े-मकोड़े और अगण्य समझे तब मामला बहुत ही बेढब हो जाता है। ऐसे समय दोनों के सम्बन्धों को ठीक करने के लिये उच्चतम सत्ता को दखल देना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि आगे चल कर इसका नतीजा यह होता है कि वह अपने साथियों से काम नहीं ले सकता। डाक्टर खरे इस बात को बड़ी सफाई के साथ भूल गये कि जब भी मन्त्रिमण्डल में पहिले मतभेद हुए उन्होंने उच्चतम सत्ता से ही उन मामलों का निर्णय करवाया था।

डाक्टर खरे की यह शिकायत है कि मई महीने तक उनके महाकौशल के साथी उनके प्रति वफादार थे और जुलाई में वे बागी हो गये। इसका कारण खोजने के लिये बहुत दूर तक जाने की आवश्यकता नहीं है। मई में खरे साहब खुद कांग्रेस की नीति और अनुशासन के मुताबिक काम करते थे। अतः उनके साथी उनके कहे अनुसार चलने को बाध्य थे। जुलाई में ज्यों ही वे बागी हुए कि अपने साथियों से जिस वफादारी को पाने का उनका अधिकार था, उसे उन्होंने स्वतः ही छोड़ दिया। जब प्रधानमन्त्री के कहने पर महाकौशल के मन्त्रियों ने इस्तीफा देने से साफ इन्कार कर दिया तभी मन्त्रियों ने खरे साहब को साफ-साफ कह दिया कि वे कार्यसमिति या पार्लियामेंटरी सब कमेटी की जो आज्ञा होगी वही करेंगे। डाक्टर खरे को इस बात से ही समझ लेना चाहिये था कि वे जो काम मई में आसानी से करा सकते थे वही काम वे जुलाई में करवा लेने में कतई असमर्थ थे। ऐसा दो ही महीने में कैसे हो गया? जो कार्य वे मई में कांग्रेस उच्चतम सत्ता से दरयाफ्त करके करा सकते थे, वही

काम अब जुलाई में बिना उच्चतम सत्ता के पूछे, वे कैसे करा सकते थे ?

डाक्टर खरे अपने इस विश्वास में बिलकुल ही गलती पर थे कि बिहार और यू० पी० के मंत्रिमण्डलों ने बिना कार्यसमिति के पूछे ही गत फरवरी मास में इस्तीफा दे दिया। इसके बजाय सचाई यह थी कि हरीपुरा कांग्रेस के पहिले कार्यसमिति की बैठक फरवरी में वर्धा में हुई थी। उस बैठक में उपरोक्त दोनों मन्त्रिमण्डलों के विषय में जो तय हुआ था, उसी के अनुसार मन्त्रिमण्डलों ने अमल किया था।

डाक्टर खरे के "अपने बचाव" में उन्होंने स्पष्ट भोलेपन का खेल खेला है। उनका कहना है कि उनके मन्त्रिमण्डल में से हटा देने के विषय में साजिश चल रही थी। लेकिन सवाल तो यह है कि उनको बाहर कौन निकाल सकता था, यदि उन्होंने पंचमढ़ी के समझौते पर अमल किया होता और अपने साथियों के विरुद्ध गुप्त जांच करने की कार्यवाही बन्द करदी होती ? उनका कहना है कि पंचमढ़ी में उनको निकालने में महाकोशल के मंत्री सफल न हो सके। यदि ऐसा ही है तो यह भी स्पष्ट है कि वे स्वतः भी महाकौशल के मन्त्रियों को निकाल देने में सफल नहीं हुए। एक जगह उन्होंने कहा है कि महाकोशल के मंत्री प्रान्तीयता के मरीज़ थे। पर उसी सांस में उन्होंने यह भी कह दिया है कि "महाकौशल के धारा-सभाइयों को प्रान्तीयता से परे रहने के लिये मैं धन्यवाद देता हूँ।" अब इन परस्पर विरोध वक्तव्यों में से हमें किस पर विश्वास करना चाहिये ?

डाक्टर खरे ने कहा है कि महाकौशल के मन्त्रियों ने मन्त्रि-मण्डल में एक दल बना लिया है। सत्य बात तो यह है कि जब मई के आरम्भ में आपसी विद्रोह के आसार नज़र आये तब यह मामला प्रान्तीय नहीं था। इसी कारण महाकौशल के तीनों मन्त्रियों के

साथ महाराष्ट्री मंत्री श्री० गोले ने भी इस्तीफा देदिया था। पर बाद में वे डाक्टर खरे ही थे जिन्होंने प्रान्तीयता का भूत खड़ा करके श्री० गोले को भड़काया और उन्होंने इस्तीफा वापिस ले लिया।

डाक्टर खरे के कथानुसार, कांग्रेस में उनकी स्थिति इस प्रकार थी। कांग्रेस कार्य समिति उनके विरुद्ध थी और इसी तरह परामर्शदाता बोर्ड भी उनके विरुद्ध था। कांग्रेस ऐसेम्बली पार्टी का बहुमत और उनके मन्त्रिमण्डल के तीन सदस्य भी उनके विरुद्ध थे। उनकी ऐसी स्थिति कैसे और क्यों हुई ?

डाक्टर खरे ने गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एक्ट १९३५ का जो भाष्य किया है, उस तरह का भाष्य तो कोई वैधानिक वकील भी करने का साहस नहीं कर सकता। वे डाक्टर खरे थे जिन्होंने महाकौशल के मन्त्रियों का कार्य काल समाप्त कर दिया, किन्तु गवर्नर का नहीं। लेकिन गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एक्ट १९३५ की ५१ वीं धारा क्या कहती है ?

१— गवर्नर के मन्त्रियों का चुनाव और उनका आह्वान भी वही करेगा। मन्त्रियों को कांउसिल के सदस्य की हैसियत से शपथ ग्रहण करने के बाद, उसकी इच्छा नुसार अपने पद का कार्य करना होगा।

५— मंत्रियों के चुनाव, आह्वान और बरखास्तगी तथा उनके वेतन का निर्णय इस धारा के अन्तंगत् गवर्नर ही अपनी इच्छानुसार करेगा।

यह एक दिलचस्प प्रसंग है कि गवर्नर ने एक नरम शब्दावली "Terminate tenure" "कार्यकाल की समाप्ति" का, "Dismiss" "बरखास्तगी" के बजाय प्रयोग किया तो डाक्टर साहब ने यह समझ लिया कि वास्तव में गवर्नर ने मंत्रियों को बरखास्त नहीं किया है।

कार्यसमित के निर्णय में Special Powers (विशेषाधिकार) के विषय में काफी कहा जा चुका है। इस शब्द का साधारण उपयोग इस अर्थ में ही होता है—"साधारण शक्ति के अलावा कुछ स्पष्ट अधिकार" —इसका विशिष्ट (Technical) अर्थ होगा—"इच्छा-नुसार शक्ति" क्योंकि एक्ट में बरखास्तगी गवर्नर की इच्छा का विषय माना गया है। गवर्नर अपने मंत्रियों को महज अपनी "इच्छा-नुसार" शक्ति के प्रयोग द्वारा ही बरखास्त कर सकता है।

जहाँ डाक्टर खरे अनुशासनहीनता के अपराधी थे वहाँ उनके तर्क भी बाल की खाल निकालने के समान ही थे। वे अपने निर्णय पर पहुँचने की भूल को तो स्वीकार करते हैं पर अपने अनुशासन-हीनता से इन्कार करते हैं। इसके लिये ऊपर लिखे अनुसार उन्हें कई हिदायतें भी दी गईं। साथ ही वे तत्सम्बन्धी कांग्रेस नीति तथा विधान को भी खूब जानते थे। ऐसी सूरत में उन पर अनुशासनहीनता का जो इल्जाम लगाया गया वह तथ्य पूर्ण ही था।

महात्मा गांधी के वक्तव्य की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा है कि कार्य समिति ने उनसे अपराध स्वीकार करने के लिये कुछ भी नहीं कहा। ऐसी स्थिति में यदि वे अपराध स्वीकार नहीं करते तो यह अनुशासन भंग करना नहीं हुआ। यह तर्क तो एक ताक्-छली का तर्क हुआ। एक सामूहिक दल के रूप में कार्य समिति ने भले ही इस अर्थ का निर्णय नहीं भी किया हो पर इस में कोई शक नहीं कि कार्य समिति ने ऐसा करने के लिये निश्चित रूप से उनसे कहा था और उन्होंने इन्कार कर दिया था।

"अपने बचाव" का सबसे अधिक मनोरंजक भाग वह है जहाँ उन्होंने व्यक्त किया है कि उनको कार्यवाही करने की आवश्-यकता क्यों पड़ी ?

अपने साथियों की बेवफाई और यह भय से कि कहीं सी० पी० गैर कांग्रेसी प्रान्त न करार दे दिया जाय इन दोनों बातों के

आधार पर उन्होंने यह गम्भीर कदम उठाने का साहस किया। उनको यह नहीं सूझा कि अनुशासनहीनता से बचने तथा अपने प्रधान मंत्रित्व के पद को सुरक्षित रखने के लिये सिर्फ एक ही काम करने की आवश्यकता थी और वह कार्य था पंचमढ़ी के समझौते पर अमल करके मंत्रियों को अपने विश्वास में ले लेना। यदि उन्होंने वैसा किया होता तो वह अपने पद पर चट्टान की तरह दृढ़तापूर्वक जमे रहते और कोई भी शक्ति उन्हें वहाँ से हटाने में समर्थ नहीं हो पाती। लेकिन पुराने मंत्रिमण्डल को तोड़ कर तथा नये मंत्रिमण्डल का निर्माण करके उन्होंने कार्य समिति का मुकाबला किया, बस, इसी में उन्होंने अपने आप को भी खण्ड-खण्ड कर डाला।

डाक्टर खरे ने अभी तक अपने कार्यों को वाह्य रूप से नहीं देखा है, यह जानकर विशेष दुख होता है। अभीतक वे अपने कार्यों की सफाई ही देते चले जारहे हैं और अभी तक वे यह बात छिपाने की चेष्टा ही कर रहे हैं कि उनसे कोई भी गलती नहीं हुई। यह उनके लिये कितनी दयनीय स्थिति है कि उनके इस प्रकार के आचरण से कांग्रेस को काफी नुकसान उठाना पड़ा और उसके सम्मान को भी गहरा धक्का लगा है। साथ ही यह भी उतना ही खेदजनक है कि उन्होंने आजतक यह स्वीकार नहीं किया कि उन्हें इस परिस्थिति में पहुँचाने वाला गवर्नर ही है जिसने उनसे अत्यन्त ही शीघ्रतापूर्वक सभी काम करवाये और रात और दिन एक करके उन्हें बरबाद करने के मार्ग सुझाये। इन बातों को सभी अच्छी तरह जानते हैं। खरे साहब ने दांयी और बांयी सभी ओर से कांग्रेस के अपने साथियों पर गालियों की बौछार की। २२ जुलाई को उन्होंने अपनी मरजी से गवर्नर को इस्तीफा भेजा और अब वे कहते हैं कि हम तो उसे परेशान करना चहाते थे। उनको सावन के अन्धे की तरह हर चीज ही हरी नजर आती है इसीलिये वे यह महसूस नहीं कर सकते कि कार्य समिति ने

उनके विरुद्ध सख्त निर्णय करके सी०पी० में कांग्रेस के अस्तित्व को समूल नष्ट होजाने से बचा लिया है। इस्तीफा देने जैसी गलती करके वे कुछ क्षणों के लिये भले ही गवर्नर के प्रशंसापात्र बन गये हों लेकिन उस कार्य से उन्होंने अपने व्यक्तित्व को तथा कांग्रेस के सम्मान को जो धक्का दिया, वह बात वे आज भी नहीं समझ सके।

डाक्टर खरे ने महात्मा गांधी की भी निहायत ही गन्दी आलोचनाएँ की हैं। लेकिन परिस्थितियों पर विचार करने से यह सिद्ध है कि उनकी ही राय सर्वोत्तम थी। डाक्टर खरे को उनकी राय पर ही चलना सर्वश्रेष्ठ था। महात्माजी के मसौदे के विषय में यदि कहा जाय तो हर निष्पक्ष दिमाग वाला आदमी यही कहेगा कि डाक्टर खरे के मसौदे में उन्होंने जो संशोधन किये तथा जो कुछ बढ़ाया था वह मामले के तथ्यों को देखते हुए उचित ही था। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर किसी भी निष्पक्ष दिमाग रखने वाले व्यक्ति की यह धारणा नहीं हो सकती कि डाक्टर खरे के साथ कार्य समिति ने न्याय नहीं किया है।

श्री० सुभाष बाबू की व्यक्तिगत सफाई—

"देश का प्रत्येक व्यक्ति महाराष्ट्र और महाराष्ट्रियों के साथ के मेरे सम्बन्धों को जानता है। डाक्टर महाराष्ट्री ही नहीं, मेरे एक दोस्त भी हैं। कार्य समिति में भी उनके कई दोस्त हैं। उनको यह जानना चाहिये कि न तो महात्मा गांधी और न हम ही उनके साथ अन्याय कर सकते हैं और न इसके लिये हम किसी के द्वारा प्रभावित ही होसकते हैं। मैं जानता हूँ कि उनसे गलतियाँ करवाई गई हैं, इस पर उन्हें भी विश्वास है इसके पहिले भी कई व्यक्तियों ने ईमानदारी के साथ इस बात पर विश्वास किया है कि उनसे गलतियाँ करवाई गई थीं। फिर भी गलती पर तो वे थे ही। अतः एक दोस्त के नाते मैं खरे साहब से निवेदन करता हूँ कि वे इन निराधार तथा

गन्दे आक्षेपों को बिलकुल बन्द करके एक अनुशासित कांग्रेसी की तरह काम करें। मुझे इसमें रत्ती भर भी शक नहीं है कि इस तरह उनके दोस्त ही उनके साथ सहानुभूति और सदभावना प्रदर्शित नहीं करेंगे वरन वे भी उनको निश्चित रूप से सहारा प्रदान करेंगे जिन्हें आज वे अपना दुश्मन समझ रहे हैं।

पार्लियामेन्टरी सब कमेटी का वक्तव्य

डाक्टर खरे के प्रधान मंत्रित्व से इस्तीफा देने और कांग्रेस पार्टी के नये नेता पण्डित रविशंकर शुक्ल के चुने जाने जैसी घटनाओं में सी० पी० तथा देश की जनता को बहुत ही दिलचस्पी रही है और उसने सुनी-सुनाई बातों पर से कई परिणाम भी निकाल लिये हैं। इन बातों को मद्देनजर रखते हुए जनता को गलतफहमी से बचाने के लिये यहाँ सही बातो पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

१९३७ के मई महीने के मध्य में बम्बई में होने वाली कार्य-समिति के कुछ ही पहिले, उस समय के सी० पी० के मंत्रियों में कुछ आपसी मतभेद नजर आये थे जिसके परिणाम स्वरूप चार मंत्रियों ने प्रधानमंत्री को इस्तीफे भी दे दिये थे। उनमें से एक ने बाद में इस्तीफा भी वापस ले लिया। बिना ऐसेम्बली पार्टी का विश्वास प्राप्त किये ही सभी मंत्री बम्बई आये और कार्यसमिति से सहायता की प्रार्थना की। इस प्रकार यह मामला कार्यसमिति के सामने पेश हुआ। कार्यसमिति ने पार्लिमेंटरी सब कमेटी को यह आदेश दिया कि वह सी० पी० ऐसेम्बली पार्टी की एक बैठक करे और वहीं अपना झगड़ा निबटा ले।

इसके अनुसार ऐसेम्बली पार्टी की एक बैठक पंचमढ़ी में हुई। इसमें पार्लिमेंटरी सब कमेटी के अध्यक्ष व पार्टी का एक सदस्य तथा बरार, नागपुर और महाकौशल प्रान्तों की कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्ष भी सम्मिलित हुए। इस बैठक में मन्त्रियों ने कहा हमने स्वतः ही

अपने मतभेद मिटा लिये हैं और आपसी समझौता करके आपस में मिलकर काम करने को भी तैयार हो गये हैं।

ऐसेम्बली पार्टी और पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्य वहां से इस आशा के साथ उठे कि सी० पी० के मन्त्रिमण्डल के आपसी मतभेद मिट गये हैं और वे अब आपसी समझौते के अनुसार ही काम करेंगे। साथ ही आगे चलकर अब कभी ऐसे अनावश्यक दृष्य नजर न आयेंगे। लेकिन ये सभी आशाएँ निराशा में परिणत होगईं और पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल के पास चारों ओर से ये रिपोर्टें पहुँचने लगी कि डाक्टर खरे समझौते पर अमल नहीं करते। सरदार पटेल ने डाक्टर खरे को समझाया कि वे सम्मानपूर्वक समझौते की शर्तों का पालन करें तथा उनसे सरदार ने यह भी कहा कि यदि आपस में कोई मतभेद हो तो मामला कार्य-समिति के सिपुर्द करदें।

कुछ दिनों तक तो कार्य ठीक ढंग से चलता रहा पर १२ जुलाई को फिर तनातनी बढ़ गई और अखबारों में यह खबर छपी कि मंत्रि-मण्डल के दो मंत्रियों—श्री देशमुख और श्री गोले ने अपने इस्तीफे प्रधानमन्त्री डाक्टर खरे को पेश कर दिये हैं। १५ जुलाई को डाक्टर खरे ने सरदार पटेल को पत्र लिखते हुए बताया कि पंचमढ़ी के समझौते को कार्यान्वित करने के लिये उन्होंने कौन से कदम उठाये हैं और साथ ही पत्र में आज तक की मन्त्रिमण्डल की गतिविधि पर भी खरे साहब ने प्रकाश डाला था। इसके अलावा उन्होंने यह भी लिखा था कि आज तक वे आपस में किसी भी समझौते पर नहीं पहुँचे हैं, क्योंकि सभी में दृष्टिकोणों का बहुत ही गहरा अन्तर है। डाक्टर खरे ने अपने पत्र में पटेल साहब को विश्वास दिलाया था कि अब वे इस मामले में नहीं उलझेंगे और सारा मामला निर्णय के लिये पटेल साहब के ही सिपुर्द कर देंगे। उन्होंने सरदार पटेल से यह भी प्रार्थना की थी कि अन्तिम निर्णय करने के पूर्व उन्हें भी अपने दृष्टिकोण को

सामने रखने का अवसर अवश्य दिया जाय। उन्होंने यह भी लिखा था कि वे समय-समय पर उन्हें दैनिक गतिविधि की सूचना देते रहेंगे। यह सब तो डाक्टर खरे ने अपने पत्र में लिखा लेकिन उपरोक्त मन्त्रियों के इस्तीफा देने का कहीं जिक्र भी नहीं किया। यहां यह भी याद रखने लायक बात है कि कार्यसमिति की बैठक का वर्धा में ६ जुलाई को होना तै हो चुका था, लेकिन कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट के बीमार हो जाने से वह २३ जुलाई के लिये स्थगित करदी गई थी।

डाक्र खरे द्वारा इस बात का विश्वास होजाने पर, पार्लिमेंटरी सब कमेटी के अध्यक्ष ने यह सोच लिया कि अब २३ जुलाई तक कोई नई बात पैदा नहीं होगी और इसके बाद तो पार्लिमेंटरी सब कमेटी मामले के ऊपर पूर्णरूप से विचार कर लेगी और यदि जरूरत हुई तो कार्यसमिति भी उस पर विचार करेगी। इसलिये सरदार पटेल बम्बई एसम्बली पार्टी की बैठक में सम्मिलित होने के लिये पूना चले गये और इसके बाद शराबबन्दी के कार्यक्रम में भाग लेने के लिये अहमदाबाद पहुँचे।

१६ जुलाई को डाक्टर खरे ने अपने साथियों को लिखा कि वे इस्तीफा दे रहे हैं और यह भी साथियों को सूचित किया कि पार्लिमेंटरी विश्वासों के अनुसार जब प्रधानमन्त्री इस्तीफा देता है तो उसके मन्त्रिमण्डल को भी इस्तीफा देना पड़ता है। अतः डाक्टर खरे ने अपने मन्त्रियों से इस बात का वचन लेना चाहा कि वे भी पार्लिमेंटरी विश्वासों का आदर करें और उनके साथ ही इस्तीफे देदें। २० जुलाई को श्री शुक्लजी, मिश्रजी और मेहताजी ने प्रधानमन्त्री को लिखा कि वे तब तक इस्तीफे देने में असमर्थ हैं जब तक उन्हें पार्लिमेंटरी सब कमेटी या कार्यसमिति इस विषय में कोई हिदायत न दे। उसी दिन दोपहरी में डाक्टर खरे ने अपने व अपने दो साथियों—श्री देशमुख और श्री गोले—के इस्तीफे गवर्नर के सामने रख दिये। गवर्नर ने पार्लिमेंटरी विश्वासों के अनुसार शेष तीनों मन्त्रियों के भी इस्तीफे चाहे।

यह २० जुलाई के शायद दोपहरी की बात है। श्री शुक्लजी तथा उनके साथियों ने टेलीफोन पर सरदार पटेल से बात करने की चेष्टा की पर पटेल साहब उस वक्त अहमदाबाद में नहीं थे। इसलिये शुक्लजी के दल के दो व्यक्ति महाकोशल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेन्ट श्री० ठाकुर छेदीलाल के साथ वर्धा रवाना हुए। वहाँ उन्होंने डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को परिस्थति से परिचित कराया। फिर वे सब सेवाग्राम पहुँचे, पर गांधीजी ने उन्हे कोई भी सलाह नहीं दी जैसा कि उन्होंने इसके कुछ समय पहिले डाक्टर खरे को सलाह देने से इंकार कर दिया था।

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने उन्हें यही सलाह दी कि वे नागपुर जाकर गवर्नर को, उनके कार्यसमिति तथा पार्लिमेंटरी सब कमेटी से जो सम्बन्ध हैं, उन्हें, स्पष्टरूप से समझाते हुए उन पर जोर डालें कि प्रधानमन्त्री या अन्य मन्त्रियों ने अपने स्पष्टीकरणों के साथ भले ही उनके सामने इस्तीफे पेश कर दिये हैं पर वे २३ जुलाई तक उन पर कोई कारवाई न करेगे। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने डाक्टर खरे, देशमुख और गोले को तथा श्री शुक्लजी, मेहताजी तथा मिश्रजी को अपनी सलाह देते हुए पत्र भी लिखे। उन्होंने अपने पत्र में डाक्टर खरे को सलाह दी कि व्यर्थ ही मामले को तूल न दें और कार्यसमिति की बैठक का २३ जुलाई तक इन्तजार करें। पत्र में उन्होंने यह भी संकेत किया कि पार्लिमेंटरी सब कमेटी के तमाम सदस्य २२ जुलाई तक वर्धा पहुँच जायेगे। तब तक उन्हें मामले को उलझाने की जरूरत नहीं है उन्होंने खरे साहब को यह भी सलाह दी कि वे या तो अपना इस्तीफा वापस ले लें और नहीं तो गवर्नर को कह दें कि २३ जुलाई तक वह उस पर कोई कार्रवाई अमल में न लाये।

डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने देशमुख और गोले को जो पत्र लिखे, उनमें उनको भी यही लिखा कि वे अपने इस्तीफे वापस ले लें और कार्यसमिति की बैठक की प्रतीक्षा करें। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने जब

ये पत्र खत्म किये उस समय रात के १० बजे थे। लिखने के बाद सभी पत्र उन्होंने ठाकुर छेदीलाल को देदिये कि वे इन्हें यथा स्थान पहुँचा दें। ठाकुर छेदीलाल ने वर्धा से खरे साहब को टेली फोन के जरिये नागपुर में सूचित करदिया कि आपके पास कुछ महत्वपूर्ण पत्र पहुँचाये जारहे हैं। यह खबर डाक्टर खरे को उस समय मिली जब उनके पास देशमुख और गोले बैठे हुए थे।

ठाकुर छेदीलाल आधीरात के बाद नागपुर पहुँचे और सीधे खरे साहब के मकान पर गये। वहाँ उन्हें देशमुख और गोले मिले। ठाकुर साहब ने इन दोनों के पत्र उसी समय उन्हें दे दिये। डाक्टर खरे को उनका पत्र इसलिये नहीं दिया जासका कि वे मकान पर नहीं थे। यह सूचना ठाकुर सहाब को डाक्टर खरे के लड़के ने दी। ठाकुर छेदीलाल कुछ समय के बाद फिर डाक्टर खरे के मकान पर आये और उनके नौकर से मालूम हुआ कि डाक्टर खरे मकान पर ही हैं। ठाकुर छेदीलाल ने इस पर २ बजे रात तक खरे साहब की प्रतीक्षा की। इसी बीच गवर्नमेंट हाउस से एक आदमी कुछ कागजात लेकर आया जिसे डाक्टर खरे के लड़के ने दस्तखत करके ले लिये। इस बात को देखकर ठाकुर साहब ने खरे साहब के लड़के से कहा कि मैं डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद का पत्र लाया हूँ इसे आप लेलें, लेकिन खरे साहब के लड़के ने पत्र लेने से साफ इन्कार कर दिया। डाक्टर खरे के लड़के का यह कहना है कि ठाकुर छेदीलाल उस पत्र के पाने की रसीद चाहते थे, इस लिये उसने लेने से इन्कार कर दिया।

रात को २ बजे शुक्लजी, महताजी व मिश्रजी गवर्नर से मिले। वहाँ उन्होंने गवर्नर को वे कारण बताये जिनकी वजह से उन तीनों ने इस्तीफे नहीं दिये थे गवर्नर ने उन्हें वहीं सूचित कर दिया कि आप लोगों को बरखास्त करदिया गया है और इस बात की सरकारी तौर पर सूचना उन्हें २१ जुलाई के सुबह ५ बजे दे दी गई। २१ जुलाई

की दोपहरी में ही डाक्टर खरे ने दूसरा मंत्रिमण्डल निर्माण करके उन मंत्रियो से शपथ भी दिलवा दीं जो वहाँ उस समय हाजिर थे।

२२ जुलाई की सुबह जब पर्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्य वर्धा पहुँचे तो उन्हें उस समय की कुल घटनाओं का हाल मालूम होगया। उन्हें डाक्टर खरे को उसी समय तार दिया कि वे बरखास्त हुए मंत्रियों तथा अपने साथियों को लेकर आजही शाम को वर्धा चले आवें। इस तार के अनुसार सभी वर्धा पहुँचे। तब तक कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट श्री सुभाषचन्द्र बोस भी वहाँ आगये थे। कांग्रेस के प्रेसीडेन्ट, कार्य समिति के उपस्थित सदस्यों तथा पर्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्यों ने डाक्टर खरे, देशमुख, गोले तथा प्यारेलाल से बातें कीं और उनसे नागपुर की घटनाओं का हाल पूछा। उस समय वहाँ महाकौशल और विदर्भ की कांग्रेस कमेटियों के प्रेसीडेन्ट भी उपस्थित थे।

वहाँ यह बात प्रकाश में आई कि १७ जुलाई को डाक्टर खरे ने एक आदमी ठाकुर छेदीलाल के पास भेजकर यह जानना चाहा था कि क्या वे नये मंत्रिमण्डल में सम्मिलित होना चाहते हैं? उपरोक्त बात के प्रकाश में आने से यह स्पष्ट होगया कि १५ जुलाई को डाक्डर खरे ने जो पत्र सरदार पटेल को लिखा था कि वे हर घटना की सूचना पटेल साहब को देते रहेंगे, वह झूठ था और डाक्टर खरे उसी समय से नये मंत्रिमण्डल के निर्माण की योजना कर रहे थे।

ठाकुर प्यारेलाल ने १८ जुलाई को डाक्टर खरे को सूचित किया था कि वे नये मंत्रिमण्डल में शरीक होने को तैयार हैं। डाक्टर खरे ने पर्लिमेन्टरी सब कमेटी के सामने स्वीकार किया कि वे १६ जुलाई को गवर्नर के सैकेटरी से मिले थे और उसे अपना यह इरादा भी जाहिर कर दिया था कि वे शीघ्रही इस्तीफा देकर नये मंत्रिमण्डल के बनाने का इरादा कर रहे हैं।

डाक्टर खरे जो कुछ भी करते रहें उसकी इत्तला उन्होंने न तो अपने साथियों, न पार्लियामेन्टरी सब कमेटी और न कार्य समिति को ही दी। यहाँ तक कि उन्होंने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के प्रेसीडेन्टों तक को किसी बात की सूचना नहीं दी। ठाकुर छेदीलाल से स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद ही उन्होंने शुक्लजी तथा उनके दल से कहा कि उनका इस्तीफा देने का इरादा है और वे यह भी चाहते हैं कि उन्हीं के साथ शुक्लजी आदि भी इस्तीफे दे दें। २२ जुलाई को जब ठाकुर प्यारेलाल ने शपथ गृहण करने का वायदा कर लिया तब डाक्टर खरे ने ठाकुर साहब को सरदार पटेल के उपरोक्त पत्र के कुछ हिस्से पढ़कर सुनाये और उन्होंने विश्वास दिलाया कि उन्होंने कोई भी गलती नहीं की है। इस पत्र में सरदार पटेल ने मंत्रियों को हिदायतें दी थीं कि वे अपने नेता की इच्छा के अनुसार ही कार्य करें। पर जब सरदार पटेल ने ऐसा कोई पत्र डाक्टर खरे को कभी भी भेजने से इन्कार किया तो डाक्टर खरे ने बताया कि ऐसा पत्र सरदार पटेल ने म्यूनिसिपल बोर्ड के झगड़े के सिलसिले में किसी एक म्यूनिसिपल्टी के सदस्य को मई में लिखा था।

जब ये सब राज डाक्टर खरे और उनके साथियों के सामने प्रकट किये गये तो उनको यह भी बता दिया गया कि उनके जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति के योग्य ये काम नहीं थे। डाक्टर खरे तथा उनके साथियों से दरयाफ्त किया गया कि क्या वे अपनी भूलों और शरारतों को स्वीकार करते हैं? यदि वे उन्हें स्वीकार करने के लिये तैयार हों तो प्रायश्चित के रूप में वे क्या करने को तैयार हैं? इसपर डाक्टर खरे श्री देशमुख और गोले पारस्परिक बात चीत के लिये पास के एक कमरे में चले गये। परामर्श के बाद डाक्टर खरे आये और उन्होंने अपनी गलतियाँ स्वीकार करलीं और प्रधान मंत्रित्व के पद से इस्तीफा देने को भी राजी हो गये। उनके साथियों ने भी खरे साहब का ही अनुमोदन किया। इस पर ठाकुर छेदीलाल ने एक मसविदा

तैयार किया जो तथ्यों में ठीक वैसा ही था जैसा कि २३ जुलाई को गवर्नर को इस्तीफा देते हुए पत्र लिखा गया था। आधीरात को नागपुर से रवाना होने के पहिले डाक्टर खरे ने अपने निर्णय की सूचना गवर्नर के सेक्रेटरी के पास भेज दी। २३ जुलाई को सुबह खरे साहब ने इस्तीफे का पत्र गवर्नर को भेज दिया और इसकी सूचना पार्लिमेन्टरी सब कमेटी को भी देदी।

२३ तारीख को जब कार्य समिति की बैटक हुई तो परिस्थिति के सिंहावलोकन के लिये डाक्टर को खरे वहाँ बुलाना जरूरी समझा गया। डाक्टर खरे तीसरे पहर कार्य समिति की बैठक में आये। वहाँ उनको यह बताया गया कि कांग्रेस एसेम्बली पार्टी की एक बैठक बुलायी जाय और वहीं डाक्टर खरे के पार्टी के नेतृत्व से इस्तीफा देने के मामले पर विचार करके पार्टी का नया नेता भी चुन लिया जाय। डाक्टर खरे इस बात पर भी सहमत हो गये और उन्होंने उपरोक्त मामलों पर विचार करने के लिये पार्टी की मीटिंग २७ जुलाई को करने की सूचना निकाल दी। डाक्टर खरे ने यह इच्छा भी जाहिर की कि नये नेता के चुनाव मे उन्हे भी खड़े होने का अवसर दिया जाना चाहिये। कांग्रेस के अध्यक्ष और कार्य समिति के सदस्यो ने खरे साहब के हितों को दृष्टि में रखते हुए उन्हें चुनाव में खड़े होने से मना किया। खरे साहब ने इस सलाह को कतई स्वीकार नहीं किया। कार्य समिति के दिल में यह बात जम गई कि खरे साहब निश्चय ही नये चुनाव में खड़े होंगे।

२५ जुलाई को डाक्टर खरे को फिर बुलाया गया और उन्हें समझाया गया कि वे चुनाव में खड़े न हों। जब उन्होंने फिर भी इन्कार कर दिया तो उन्हे यह सलाह दी गई कि वे सेवाग्राम में जाकर गांधीजी से मिलें। डाक्टर खरे, श्री सुभाषबाबू तथा कार्य समिति के कतिपय सदस्यों के साथ गांधीजी से मिलने गये। वहाँ उनका वाद विवाद हुआ और वे इस बात पर राजी हो गये कि

चुनाव में खड़े नहीं होंगे और इस के बाद उन्होंने स्वयं ही एक मसविदा बनाया। गांधीजी ने उसमें कुछ संशोधन किया और कुछ बढ़ाया भी डाक्टर खरे इस पर चौकन्ने हो गये। उनको यह भी सलाह दी गई कि वे हाथ-हाथ में कोई भी काम न करें और अपने मित्रों से मशविरा करलें और अपना निर्णय २६ जुलाई को दिन के ३ बजे तक देदें।

२६ जुलाई को ३ बजे डाक्टर खरे ने टेलीफोन के जरिये से एक सन्देशा भेजा कि वे कल रात के मसविदे के अनुसार कोई की वक्तव्य देना नहीं चाहते और वे अपना जवाब श्री देशमुख के साथ भेज रहे हैं जो वर्धा प्रायः ५ बजकर ४५ मिनट पर शाम को बम्बई मेल से पहुँचेंगे। कार्य समिति ने देशमुख .का ७ बजे तक इन्तजार किया, बाद में अपना निर्णय कर दिया जो पत्रों में प्रकाशित हुआ है। डाक्टर खरे का पत्र प्रायः ८ बजे रात को कार्य समिति को मिला।

यहाँ पर मंत्रिमण्डल के संकट से सम्बद्ध तथ्यों और 'घटनाओं का जिक्र इसलिये किया गया है कि जिससे यह समझमें आजाय कि कार्य समिति के निर्णय पर इसका क्या असर हुआ है? यह तो साफ ही है कि पंचमढ़ी के समझौते के बाद भी मंत्रियों में आपस में पारस्परिक प्रेम स्थापित नहीं हुआ था। डाक्टर खरे ने समझौते के तोड़ने सम्बन्धी कई शिकायतें सरदार पटेल को लिखी थीं। उनमें से कुछ शिकायतें तो बहुत ही साधारण थी और डाक्टर खरे ने भी पटेल साहब को विश्वास दिलाया था कि वे इन बातों पर कोई सख्त कदम नहीं उठायेंगे और जहाँ तक होगा समझौते की शर्तों का स्वयं भी पालन करेंगे और दूसरों से भी करवायेंगे। तनातनी भीतर ही भीतर इतनी बढ़ चुकी थी कि १३ जुलाई को देशमुख और गोले ने इस्तीफे ही पेश कर दिये। डाक्टर खरे ने इन इस्तीफों की सूचना पार्लिमेन्टरी सब कमेटी को नहीं भेजी। इसके विरुद्ध उन्होंने १५ जुलाई को सरदार पटेल को लिखा कि कोई भी ऐसा कदम नहीं

उठाया जायेगा जिससे संकट और भी बढ़ जाये और वे समय-समय पर परिस्थितियों की सूचना पटेल साहब को देते रहेंगे। पटेल साहब को यह पत्र भेज देने के बाद वे नये मंत्रियों की खोज में लग गये जिससे वे जिन्हें हटाना चाहते थे, उनके स्थान पर दूसरे नियत कर सकें। ठाकुर प्यारेसिंह को उन्होंने १७ जुलाई को सन्देशा भेजा। इसकी भी इत्तला उन्होंने न तो अपने साथियों को ही दी और न पार्लिमेन्टरी सब कमेटी को ही भेजी। जब खरे साहब को उनकी मरजी के मुआफिक नये मंत्री मिल गये तो उन्होंने गवर्नर के सैक्रेटरी को इस बात की सूचना दी कि वे नया मंत्रिमण्डल कायम करना चाहते हैं। १६ जुलाई को उन्होंने अपने साथियों को भी लिखा कि उनका इरादा इस्तीफा देने का है और वे चाहते हैं कि उनके साथ दूसरे मंत्री भी इस्तीफा देदें। २० जुलाई को उन्होंने इस्तीफा दे भी दिया।

इस समय तक उन्होंने इन बातों की सूचना न तो पार्लिमेन्टरी सब कमेटी को ही दी थी और न कार्य समिति को ही। २० जुलाई की शाम को उन्होंने अपने इस्तीफे की सूचना तार के जरिये सरदार पटेल के पास भेजी। उस समय वे इस्तीफा गवर्नर को दे चुके थे। जिस समय तार पहुँचा उस समय सरदार पटेल अहमदाबाद थे। उनका अहमदाबाद का प्रोग्राम बहुत पहिले से ही तै हो चुका था और उसका काफी विज्ञापन भी हो चुका था। यह तार सरदार पटेल को बम्बई लौटने के बाद २१ जुलाई को मिला जबकि सी० पी० में नया मंत्रिमण्डल बन चुका था।

कार्यसमिति को अब इस निर्णय पर पहुँचने में कोई बाधा नहीं है कि डाक्टर खरे अपने मंत्रिमण्डल में से उन लोगों को निकालने पर तुले हुए थे जिनके साथ उन्होंने पंचमढी में समझौता किया था। जिन मंत्रियों को वे निकालना चाहते थे, उन्हें बिना सूचित किये ही वे नये मंत्रिमण्डल के बनाने में जुट गये थे। दूसरी ओर उन्होंने

सरदार पटेल को यह विश्वास दिला दिया था कि वे मंत्रिमण्डल के किसी भी झगड़े में नहीं पड़ेंगे और यहाँ जो कुछ भी होगा उसकी सूचना समय समय पर पटेल साहब को देते रहेंगे। इस प्रकार उन्होंने कांग्रेस को अंधकार में रखकर गवर्नर से यह तै कर लिया कि वह उन्हें नया मंत्रिमण्डल बना लेने देगा जिससे वे उन मंत्रियों को आसानी से निकाल दें जिन्हें वे अपने मंत्रिमण्डल में रखना नहीं चाहते। कांग्रेस असेम्बली पार्टी के कुछ सदस्यों ने डाक्टर खरे को सूचित भी किया कि वे पार्टी की एक बैठक बुलायें पर उन्होंने उसकी भी परवाह नहीं की। वे सिर्फ यही चाहते थे कि महाकौशल के तीनों मंत्रियों—शुक्लजी, मेहताजी और मिश्रजी—को हटाकर कार्यसमिति उन्हें अपनी मरजी का मंत्रिमण्डल बनाने की आज्ञा प्रदान करदे। जब उन्होंने कार्यसमिति से अपना मतलब सिद्ध होता नहीं देखा तो कार्यसमिति की बैठक के दो दिन पूर्व ही नया मंत्रिमण्डल बना डाला। कार्यसमिति यदि ऐसे मामले में हस्तक्षेप नहीं करेगी तो वह अपने कर्तव्य से च्युत मानी जायेगी।

कांग्रेस के जनरल सैक्रेटरी का वक्तव्य—सी० पी० के मंत्रिमण्डल के संकट ने देश में बेहद सनसनी फैला रखी है। कांग्रेस के विरोधी इस घटना का बेजा फायदा उठाकर परिस्थिति को बिगाड़ने में व्यस्त हैं। तटस्थ लोगों का इस समय यह नारा होगया है कि "लोकतन्त्र संकट में है।" कोई कहता है कि "कांग्रेस फैसिस्टसंस्था है।" चारों तरफ इसी तरह के नारे लगाये जारहे हैं।

हमें देखना यह है कि क्या कार्यसमिति ने लोकतन्त्रों के सिद्धान्तों को किसी प्रकार की चोट पहुँचाई है? हम किसी पूर्व निश्चित एवं वैज्ञानिक परिणाम पर पहुँचें, इसके पहिले हमें लोकतन्त्र के विशेष कार्यों को समझना आवश्यक है। लोकतन्त्र के कार्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—उच्चतम व्यवस्थापिका की नियुक्ति और उस पर आधिपत्य।

२—व्यवस्थापिका द्वारा समय समय पर महत्वपूर्ण कार्यों का निरीक्षण।

३—आवश्यकता होने पर अविश्वास के प्रस्ताव द्वारा व्यवस्थापिका को बरखास्त करना।

अब हमें देखना यह है कि क्या लोकतन्त्र के इन कार्यों पर कार्यसमिति के निर्णय से कोई धक्का लगा है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कार्यसमिति ने जो निर्णय किया वह शुद्ध व्यवस्था सम्बन्धी ही है, वह कोई कानूनी निर्णय नहीं है। यदि कार्यसमिति का निर्णय अनुचित एवं स्वेच्छा चरितापूर्ण है तो लोकतन्त्र उसकी निन्दा करने के लिये स्वतन्त्र है और यदि आवश्यकता हो तो वह मौजूदा व्यवस्था को भी बदल सकता है। किसी ने भी अभी तक अखिल भारतीय कांग्रेस पर कोई आक्षेप नहीं किया है, जिसके परिणाम स्वरूप कार्यसमिति के वर्तमान निर्णय पर पुनः विचार किया जाय।

आज के लोकतंत्र प्राचीन ग्रीस के शहरी लोकतन्त्र के समान नहीं हैं। मौजूदा लोकतन्त्र राष्ट्रीय लोकतन्त्र हैं। यही कारण है कि आज के राष्ट्रों पर एक ही लोकतन्त्र का आधिपत्य नहीं है बरन् उत्तरोत्तर लोकतन्त्रों के समूहों का आधिपत्य है। राष्ट्र में स्थानीय और वर्गीय लोकतन्त्र कार्य कर रहे हैं। ये प्रादेशिक लोकतन्त्र अपनी व्यवस्थापिका की खुद ही नियुक्ति करते हैं। ये व्यवस्थापिकाएँ जहाँ अपने लोकतन्त्रों के प्रति जिम्मेदार हैं और उन्हीं के द्वारा शासित होती हैं वहाँ ये लोकतन्त्र अपनी व्यवस्थापिकाओं के प्रति जिम्मेदार और उन्हीं के द्वारा शासित भी हैं। यह बिलकुल ही असंभव है कि एक स्थानीय व्यवस्थापिका एक कानून बनाये और केन्द्रीय व्यवस्थापिका उसे रद्द करदे। कभी कभी ऐसे नियम भी बनाये जाते हैं जिससे उपरोक्त प्रकार की रुकावटों को बन्द किया जासके। अक्सर इसके लिये कुछ नियम तो होते ही हैं लेकिन ज्यादातर ऐसी रोकें आपसी

समझौतों या आपसी इकरारों के आधार पर ही होती हैं। इन इकरारों से उन बातों की रोक की जासकती है जो केन्द्रीय व्यवस्थापिका लोकतन्त्रीय आधार पर स्थापित प्रादेशिक व्यवस्थापिकाओं पर लागू करती हैं। साधारण काल में ऐसी रोक की कोई खास जरूरत नहीं महसूस होती। ऐसे प्रतिबन्धों की आवश्यकता बहुत ही गंभीर और उलझे हुए मामलों में ही होती है जो राष्ट्र के हितों को जबरदस्त धक्का पहुँचाने वाले होते हैं। खास अवसरों पर केन्द्रीय व्यवस्थापिका के अधिकार अत्यन्त विस्तृत और आम हो जाते हैं। अक्सर बीच में पड़ने की आवश्यकता वहाँ होती है जहाँ प्रादेशिक इकाइयों में आपसी तनातनी होजाती है। उस समय केन्द्रीय व्यवस्थापिका न्यायाधीष एवं पंच का कार्य करती है। यह बहुत ही मुमकिन है कि ऐसी तानातनी में प्रादेशिक व्यवस्थापिका, केन्द्रीय व्यवस्थापिका के विरुद्ध अपने ही लोकतन्त्र से सहायता चाहे। जब ऐसा संकट पैदा हो जाता है तो झगड़ों का अन्त करने के लिये कुछ नियम बनाने पड़ते हैं। यदि झगड़ा नियमों या इकरारों से भी नहीं सुलझे तो झगड़े को प्रादेशिक और केन्द्रीय लोकतन्त्रों के सुपुर्द कर देना पड़ता है। ऐसे झगड़ों में, अवैधानिक तरीकों से बचने के लिये, केन्द्रीय लोकतन्त्र की ही इच्छा सर्वोपरि रहती है।

कांग्रेस के संगठन में सर्वोपरि राष्ट्रीय लोकतन्त्र है, जिसमें तमाम सदस्य सम्मिलित हैं। उसके अन्तरगत सदस्यों के प्रादेशिक दल द्वारा चुने हुए प्रान्तीय, जिलों, तहसीलों, टप्पों और देहातों के लोकतन्त्र होते हैं। इन सभी पर केन्द्रीय संगठन का ही आधिपत्य रहता है जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का प्रतिनिधित्व करता है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी कार्यसमिति के द्वारा ही कार्य संचालन करती है। कार्यसमिति, अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रति जिम्मेदार है और उसी के जरिये कांग्रेस के प्रति भी। जब कभी केन्द्रीय कार्यसमिति किसी मुकामी कार्यसमिति के काम में

दखल दे तो ऐसा वह नियमों और इकरारों द्वारा प्राप्त अधिकारों के आधार पर ही करती है। ऐसा दखल देना लोकतन्त्रीय नियमों के विरुद्ध नहीं है। सभी लोकतन्त्रीय राष्ट्रों में भी यही नियम है। जब तक कोई लोकतन्त्र अपनी किसी व्यवस्थापिका को रद्द नहीं कर दे तब तक वह व्यवस्थापिका उस लोकतन्त्र की प्रतिनिधि है। जब कभी प्रादेशिक व्यवस्थापिका और प्रादेशिक लोकतन्त्र का केन्द्रीय व्यवस्थापिका और केन्द्रीय लोकतन्त्र से झगड़ा हो जाय तो इसका मतलब होगा कि एक कम प्रतिनिधि वाले लोकतन्त्र का विशेष प्रतिनिधित्व सम्पन्न लोकतन्त्र से झगड़ा हुआ। यदि उसे वैज्ञानिक बोली में कहें तो यह केन्द्रीय एकतन्त्र और स्थानीय लोकतन्त्र का झगड़ा नहीं बल्कि यह तो व्यवस्थापिका के जरिये केन्द्रीय लोकतन्त्र और व्यवस्थापिका के जरिये ही स्थानीय लोकतन्त्र का झगड़ा हुआ। सार यह कि यह झगड़ा राष्ट्र की इच्छा और राष्ट्र के एक दल की इच्छा के बीच हुआ।

कांग्रेसी विधान और उसके अन्तर्गत नियमों और इकरारों से ही ऐसे झगड़े सुलझ सकते हैं। साधारण अवसरों तथा साधारण मामलों में स्थानीय व्यवस्थापिका और सर्वोच्च लोकतन्त्रीय प्रान्तीय हुकूमत—प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी—ही ऐसे झगड़ों को निबटा लेती है। लेकिन महत्वपूर्ण मामलों तथा अपीलों में बीच में पड़ना आवश्यक हो जाता है। यह बीच में पड़ना कभी कभी इस हद तक पहुँच जाता है कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी तक को स्थगित किया जा सकता है या उसके आधीन किसी भी लोकतन्त्र को स्थगित किया जा सकता है। कांग्रेस-विधान में भी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों को स्थगित करने की गुंजायश है। ऐसी परिस्थिति में कार्यसमिति को अधिकार है कि वह प्रान्त के दूसरे उम्मीदवारों की प्रान्तीय कमेटी बनाने के लिये नामजद कर दे। अक्सर ऐसा होता रहा है कि गवर्नमेंट की रुकावट के कारण स्थानीय कांग्रेस कमेटियाँ अपने प्रतिनिधि नहीं चुन पातीं। ऐसी

स्थिति में कार्यसमिति खुद उस प्रान्त के उम्मीदवारों को नामजद कर देती है। ऐसा सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में कई वर्षों तक होता रहा। मिदनापुर (बंगाल) में भी ऐसा कई बार हुआ। कांग्रेस-विधान की तत्सम्बन्धी धाराएँ ये हैं—

१—कोई भी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी और स्थानीय कांग्रेस कमेटी को कार्यसमिति तब तक स्वीकार नहीं कर सकती जब तक कि कांग्रेस-विधान में इस सम्बन्ध में जो नियम हैं, उन्हें वह पूरा न करले या उसके मातहत जो नियम बनें, उन्हें वह पूरा न कर ले।

२—यदि कोई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी विधान के अनुसार काम नहीं करे तो कार्य समिति कांग्रेस का कार्य उस प्रान्त में जारी रखने के लिये दूसरी कमेटी बना सकती है।

इसलिये हमारा दावा है कि कार्यसमिति सी० पी० के मामले में बीच में पड़ी तो न तो इसमें उसने कोई विधान के विरुद्ध अमल किया और न किसी ज्ञात लोकतन्त्र के सिद्धान्तों के विपरीत ही आचरण किया। कार्यसमिति को ऐसे अवसरों पर बीच में पड़ने का पूरा वैधानिक अधिकार है और इन अधिकारों का उपयोग उसने कई अवसरों पर किया भी है। कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट और जनरल सैक्रेटरी के जरिये कांग्रेस हमेशा ही इन अधिकारों का उपयोग करती रही है और इस सम्बन्ध में आज तक किसी ने उस पर आक्षेप नहीं किया। कांग्रेस के पार्लियामेंटरी दल ने हमेशा ही अपने मार्ग प्रदर्शन के अधिकार को माना है और जरूरत होने पर सम्पूर्ण भारतीय लोकतन्त्र की प्रतिनिधि कार्यसमिति के बीच में पड़ने के अधिकार को स्वीकार किया है। कांग्रेस की तरफ से धारासभा के सभी उम्मीदवार कार्यसमिति के जरिये, उसी के द्वारा, इसी उद्देश्य के लिये बनाई गई पार्लियामेंटरी सब कमेटी की इच्छा और स्वीकृति से ही निर्वाचित

होते हैं। स्थानीय लोकतन्त्र अपनी व्यवस्थापिकाओं के जरिये उम्मीदवारों के नाम सुझा सकते हैं, लेकिन अन्तिम स्वीकृति की जिम्मेदारी पार्लियामेंटरी सब कमेटी ही को है। इतना होते हुए भी पार्लियामेंटरी सब कमेटी के निर्णय में कार्यसमिति दखल दे सकती है।

कांग्रेसी प्रान्तों के मन्त्रिमण्डल पार्लियामेंटरी सब कमेटी की सलाह से ही निर्मित हुए थे और उनका निरीक्षण और मार्ग-प्रदर्शन भी वही सब कमेटी करती थी। महत्वपूर्ण मामलों में प्रान्तीय प्रधानमन्त्री पार्लियामेंटरी सब कमेटी से ही सलाह लेते हैं या वह जिसे इस कार्य के लिये अधिकार दे दे उससे सलाह लेते हैं। बहुत ही महत्वपूर्ण मामलों में कार्यसमिति की सलाह ली जाती है। पद-ग्रहण सम्बन्धी बहुत ही उच्च कोटि के मामलों में प्रान्तीय पार्लियामेंटरी पार्टी ही निर्णय नहीं कर सकती। यह कार्यसमिति ही करती है। यदि यह कार्य प्रान्तीय लोकतन्त्रों को ही सौंप दिया गया होता तो कुछ प्रान्त बिना किसी शर्त की पाबन्दी के ही पद ग्रहण कर लेते। यह भी ज्ञात हो चुका है कि संयुक्तप्रान्त जैसे प्रान्त पद-ग्रहण करने के ही विरुद्ध थे। लेकिन प्रादेशिक लोकतन्त्रों और पार्लियामेंटरी पार्टियों को इस प्रकार के मामलों का निर्णय करने का अधिकार नहीं था। उस समय यह आवाज किसी ने भी नहीं उठाई कि "लोकतन्त्र खतरे में है।" पद-ग्रहण कर लेने के बाद संयुक्तप्रान्त, बिहार और उत्कल में ही यह सवाल पैदा हुए। ये सवाल या तो कार्यसमिति के इशारे पर हुए थे या उनमें कार्यसमिति की पहिले से ही राय ले ली गई थी या स्वीकृति हासिल कर ली गई थी।

डाक्टर खरे ने स्वयं कार्यसमिति के इस अधिकार को स्वीकार किया है और उसके अनुसार काम भी किया है। कुछ समय पहिले जब ४ मन्त्रियों ने इस्तीफे पेश किये थे तब उन्होंने उन्हें स्वयं स्वीकार न करते हुए कार्यसमिति के सामने रख दिये थे। कार्यसमिति ने उन्हें

पार्टी की बैठक पंचमढ़ी में करने की सलाह दी थी। पार्टी की बैठक का नोटिस भी कार्यसमिति के आदेशानुसार बम्बई से ही प्रचारित किया गया था। समझौते की जो शर्तें तय हुई थीं वे पार्टी की बैठक में पेश नहीं की गईं। वे शर्तें तमाम मन्त्रियों, तीनों प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के प्रेसीडेण्टों तथा पार्लियामेंटरी सब कमेटी के सदस्यों को ही ज्ञात थीं। उस समय डाक्टर खरे ने कोई आक्षेप नहीं किया, न उन्होंने उस समय यह कहा कि यह सब लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत है और न यह जाहिर किया कि यह सब पार्टी के नेता होने के नाते उनके अधिकारों और मन्त्रिमण्डल के प्रधान होने के नाते उनके स्वत्वों के विरुद्ध है। इसके बाद समय-समय पर वल्लभभाई पटेल भी उन्हें याददिहानी कराते रहे कि पंचमढ़ी के समझौते पर अमल होते रहना चाहिये। डाक्टर खरे पटेल साहब के पत्रों का उत्तर देते हुए हमेशा ही यह विश्वास दिलाते रहे कि उनकी आज्ञाओं का पालन बराबर हो रहा है और वे स्वयं किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालना चाहते। खरे ने यह भी पत्रों में स्पष्ट कर दिया था कि वे पटेल साहब को समय-समय पर घटनाओं से अवगत कराते रहेंगे।

खरे साहब ने जब इस्तीफा दे दिया तो पार्लियामेंटरी सब कमेटी ने उन्हें बुलाया। वे २२ जुलाई को कमेटी के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने वहाँ अपनी यह भयंकर भूल स्वीकार करली कि उन्होंने पार्लियामेंटरी सब कमेटी तथा कार्यसमिति से पूछे बिना ही अपने इस्तीफे देने और नये मन्त्रिमण्डल बनाने के कार्य में गलत निर्णय किया है। उन्हें वहाँ यह सलाह दी गई कि वे अपने नये मन्त्रिमण्डल के साथ इस्तीफा दे दें। उन्होंने इस आज्ञा का भी पालन किया। दूसरे दिन उन्हें कार्यसमिति के सामने फिर बुलाया गया। वहाँ वे ऐसेम्बली पार्टी के नेतृत्व से अलग होने तथा पार्टी की एक बैठक बुला कर अपने इस्तीफे पर विचार करने तथा नये नेता का चुनाव करने पर

भी राजी हो गये। कार्यसमिति में यह भी तय हो गया कि होने वाली पार्टी की बैठक का नेतृत्व डाक्टर खरे नहीं करेंगे वरन् कांग्रेस के अध्यक्ष ही उस बैठक के प्रेसीडेण्ट रहेंगे। शुरू से आखिर तक कार्यसमिति के आदेशों को डाक्टर खरे स्वीकार करते चले गये। डाक्टर खरे ने जितनी भी भूलें कीं और अपने जरिये से करवाईं—वे सब की सब हर्षोत्पादक नहीं थीं—उनमें उन्होंने कहीं भी लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों की अवहेलना का सवाल नहीं उठाया। इसके बाद कार्यसमिति ने डाक्टर खरे के आचरण के विषय में जो निर्णय किया वह उनकी स्वीकृतियों का स्वाभाविक परिणाम ही था और देखा जाय तो कार्यसमिति ने किया ही क्या? कार्यसमिति चाहती तो डाक्टर खरे को अयोग्य भी साबित कर सकती थी, पर उसने वैसा नहीं किया। उसने तो सिर्फ उनके आचरण के सम्बन्ध में महज अपनी राय भर ही दी। इसके बाद उनके नाम को प्रस्तावित करने के लिये बैठक में इजाजत चाही गई। इसकी भी इजाजत दे दी गई। बुद्धिमानी यही रही कि उस पर अमल नहीं किया गया। यदि कांग्रेस वास्तव में एक फासिस्ट संस्था होती तो डाक्टर खरे का भविष्य क्या होता? इसका निर्णय हम नेताओं की इच्छा पर ही छोड़ते हैं।

डाक्टर खरे के विषय में जो निर्णय हुआ वह पार्लिमेंटरी सब कमेटी और कार्यसमिति का निर्णय था। दोनों—सब कमेटी और कार्यसमिति को, इस तरह का निर्णय करने के पूरे अधिकार थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा कांग्रेस के आरम्भिक सदस्य के लिये, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य के जरिये, यह बिलकुल ही खुला हुआ है कि वह कार्यसमिति के किसी भी कार्य या कार्यों पर, जो इससे सम्बद्ध हैं, टीका-टिप्पणी करे। जब तक कोई ऐतराज नहीं करता और उसका कार्यसमिति द्वारा निर्णय नहीं हो जाता तब तक कार्यसमिति का आदेश, कांग्रेस लोकतन्त्र का सर्वोच्च आदेश है। कार्यसमिति चाहे कितनी ही सर्वोच्च क्यों न हो, उसे

पार्टी की बैठक पंचमढ़ी में करने की सलाह दी थी। पार्टी की बैठक का नोटिस भी कार्यसमिति के आदेशानुसार बम्बई से ही प्रचारित किया गया था। समझौते की जो शर्तें तय हुई थीं वे पार्टी की बैठक में पेश नहीं की गईं। वे शर्तें तमाम मन्त्रियों, तीनों प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के प्रेसीडेण्टों तथा पार्लियामेटरी सब कमेटी के सदस्यों को ही ज्ञात थीं। उस समय डाक्टर खरे ने कोई आक्षेप नहीं किया, न उन्होंने उस समय यह कहा कि यह सब लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत है और न यह जाहिर किया कि यह सब पार्टी के नेता होने के नाते उनके अधिकारों और मन्त्रिमण्डल के प्रधान होने के नाते उनके स्वत्वों के विरुद्ध है। इसके बाद समय-समय पर वल्लभभाई पटेल भी उन्हें याददिहानी कराते रहे कि पंचमढ़ी के समझौते पर अमल होते रहना चाहिये। डाक्टर खरे पटेल साहब के पत्रों का उत्तर देते हुए हमेशा ही यह विश्वास दिलाते रहे कि उनकी आज्ञाओं का पालन बराबर हो रहा है और वे स्वयं किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालना चाहते। खरे ने यह भी पत्रों में स्पष्ट कर दिया था कि वे पटेल साहब को समय-समय पर घटनाओं से अवगत कराते रहेंगे।

खरे साहब ने जब इस्तीफा दे दिया तो पार्लियामेटरी सब कमेटी ने उन्हें बुलाया। वे २२ जुलाई को कमेटी के सामने उपस्थित हुए। उन्होंने वहाँ अपनी यह भयंकर भूल स्वीकार करली कि उन्होंने पार्लियामेंटरी सब कमेटी तथा कार्यसमिति से पूछे बिना ही अपने इस्तीफे देने और नये मन्त्रिमण्डल बनाने के कार्य में गलत निर्णय किया है। उन्हें वहाँ यह सलाह दी गई कि वे अपने नये मन्त्रिमण्डल के साथ इस्तीफा दे दें। उन्होंने इस आज्ञा का भी पालन किया। दूसरे दिन उन्हें कार्यसमिति के सामने फिर बुलाया गया। वहाँ वे ऐसेम्बली पार्टी के नेतृत्व से अलग होने तथा पार्टी की एक बैठक बुला कर अपने इस्तीफे पर विचार करने तथा नये नेता का चुनाव करने पर

भी राजी हो गये। कार्यसमिति में यह भी तय हो गया कि होने वाली पार्टी की बैठक का नेतृत्व डाक्टर खरे नहीं करेंगे वरन् कांग्रेस के अध्यक्ष ही उस बैठक के प्रेसीडेण्ट रहेंगे। शुरू से आखिर तक कार्यसमिति के आदेशों को डाक्टर खरे स्वीकार करते चले गये। डाक्टर खरे ने जितनी भी भूलें कीं और अपने जरिये से करवाईं—वे सब की सब हर्षोत्पादक नहीं थीं—उनमें उन्होंने कहीं भी लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों की अवहेलना का सवाल नहीं उठाया। इसके बाद कार्यसमिति ने डाक्टर खरे के आचरण के विषय में जो निर्णय किया वह उनकी स्वीकृतियों का स्वाभाविक परिणाम ही था और देखा जाय तो कार्यसमिति ने किया ही क्या ? कार्यसमिति चाहती तो डाक्टर खरे को अयोग्य भी साबित कर सकती थी, पर उसने वैसा नहीं किया। उसने तो सिर्फ उनके आचरण के सम्बन्ध में महज अपनी राय भर ही दी। इसके बाद उनके नाम को प्रस्तावित करने के लिये बैठक में इजाजत चाही गई। इसकी भी इजाजत दे दी गई। बुद्धिमानी यही रही कि उस पर अमल नहीं किया गया। यदि कांग्रेस वास्तव में एक फासिस्ट संस्था होती तो डाक्टर खरे का भविष्य क्या होता ? इसका निर्णय हम नेताओं की इच्छा पर ही छोड़ते हैं।

डाक्टर खरे के विषय में जो निर्णय हुआ वह पार्लिमेंटरी सब कमेटी और कार्यसमिति का निर्णय था। दोनों—सब कमेटी और कार्यसमिति को, इस तरह का निर्णय करने के पूरे अधिकार थे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य तथा कांग्रेस के आरम्भिक सदस्य के लिये, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य के जरिये, यह बिलकुल ही खुला हुआ है कि वह कार्यसमिति के किसी भी कार्य या कार्यों पर, जो इससे सम्बद्ध हैं, टीका-टिप्पणी करे। जब तक कोई ऐतराज नहीं करता और उसका कार्यसमिति द्वारा निर्णय नहीं हो जाता तब तक कार्यसमिति का आदेश, कांग्रेस लोकतन्त्र का सर्वोच्च आदेश है। कार्यसमिति चाहे कितनी ही सर्वोच्च क्यों न हो, उसे

कांग्रेसी-विधान बदल देने का अधिकार नहीं है। यह एक वैधानिक कार्य है। कार्यसमिति न तो कांग्रेस के किसी निर्णय से पीछे हट सकती है और न अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के किसी निर्णय के विपरीत ही जा सकती है। यह भी एक किस्म का वैधानिक कार्य ही है। कार्यसमिति को अलबत्ता यह अधिकार तो है कि वह कांग्रेस के विधान तथा किसी निर्णय को दुहरा सकती है। व्याख्या करने का यह अधिकार तमाम लोकतन्त्रीय व्यवस्थापिकाओं को प्राप्त है। इस पर भी अन्तिम रुकावट अवश्य ही रखी गई है। इस तरह के सवाल या तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में पेश किये जा सकते हैं या खुले अधिवेशन में भी रखे जा सकते हैं। इस प्रकार वह व्याख्या जाब्ते में आ जाती है और फिर व्यवस्थापिका को उसका निर्णय करना ही पड़ता है।

डाक्टर खरे सी० पी० कांग्रेस पार्लिमेंटरी पार्टी की ओर से उसके नेता चुने गये थे। उनका चुनाव कांग्रेस के विरोधियों या कार्य-समिति ने नहीं किया था। इस प्रकार वह ऐसेम्बली पार्टी के प्रति ही जिम्मेदार थे न कि कार्यसमिति के प्रति। यदि यही बात थी तो मि० शरीफ के मन्त्रिमण्डल में से इस्तीफा देने के मामले में उन्होंने और उनके मन्त्रिमण्डल ने कार्यसमिति से न्याय की मांग क्यों की थी ? उनके मन्त्रिमण्डल ने तो शरीफ साहब के माफिक ही निर्णय किया था और ऐसेम्बली पार्टी ने उनके लिये विश्वास का प्रस्ताव भी पास कर दिया था। कार्यसमिति ने इस निर्णय को उलट दिया। डाक्टर खरे और उनके साथियों ने कार्यसमिति के इस निर्णय की कोई भी अवहेलना नहीं की। और न उन्होंने शरीफ साहब के साथ इस्तीफे ही दिये। फिर मन्त्रिमण्डल की संयुक्त जिम्मेदारी कहां गयी ? आज जो समाचार पत्र कार्यसमिति के दखल देने पर चिल्ला रहे हैं उन्होंने उस समय कार्यसमिति के दखल देने पर उसकी सराहना क्यों की थी ? उस समय डाक्टर खरे ने अपने प्रभुत्व और अपनी पार्टी

के. जो सी० पी० के प्रादेशिक लोकतन्त्र की प्रतिनिधि है, अधिकारों के प्रभुत्व में दखल देने पर केन्द्रीय लोकतन्त्र के प्रतिनिधि दल—कार्य समिति के खिलाफ शिकायत क्यों नहीं की? डाक्टर खरे और प्रेस के उस दल ने जो आज आलोचनाएँ कर रहा है, उस समय यह क्यों नहीं कहा कि "लोकतन्त्र खतरे में है?"

इसके बाद गत मई में डाक्टर खरे को ४ मन्त्रियों ने अपने इस्तीफे पेश किये, तब उन्होंने मन्त्रिमण्डल के नेता होने के नाते उन्हें स्वीकार क्यों नहीं किया? कम-से-कम उन्हें ऐसेम्बली पार्टी की मीटिंग के सामने तो उन इस्तीफों को विचारार्थ रखना था? उन्होंने उस समय वल्लभभाई पटेल तथा कार्यसमिति से क्यों परामर्श किया? उन्होंने कार्यसमिति के संकेत पर पंचमढ़ी में मीटिंग क्यों बुलवाई? जब वे खुद ही नेता थे तो पार्टी की मीटिंग में पार्लिमेंटरी सब कमेटी के अध्यक्ष को उन्होंने अध्यक्ष क्यो बनने दिया? अभी-अभी उन्होंने ऐसेम्बली पार्टी की अवज्ञा क्यों की, जब कि कुछ सदस्यों ने उनसे पार्टी की बैठक करने की प्रार्थना की थी? अपने इस्तीफे तथा नये मन्त्रिमण्डल के चुनाव के विषय में न तो उन्होंने अपने साथी मंत्रियों से और न ऐसेम्बली पार्टी से ही परामर्श किया। जब उन्होंने दूसरी बार इस्तीफा देने का इरादा किया तब भी उन्होंने पार्टी द्वारा प्रदर्शित सी० पी० के लोकतन्त्र को स्मरण नहीं किया। जब वे अपने मन्त्रि-मण्डल में से महाकौशल के तीनों मन्त्रियों को निकालने के षड़यन्त्र मे व्यस्त थे, तब वे इस बात को भूल नहीं गये थे कि अब उनका पार्टी में बहुमत बिलकुल भी नहीं रहा है। यह सभी को ज्ञात है कि पार्टी में उनका बहुमत महज़ इसलिये था कि महाकौशल के एक मन्त्री उनकी मदद पर थे। अतः यदि उन्होंने यही सोचा कि सर्वोच्च व्यवस्थापिका से परामर्श करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, तो कम-से-कम अपनी पार्टी के बहुमत द्वारा तो उन्हें अपने आपको सुरक्षित कर लेना था! ऐसा उन्होंने पहिले एक बार अवश्य ही किया था जब मि० शरीफ

के मामले को उन्होंने अपनी पार्टी के साथ कार्यसमिति के सामने रखा था। जब मि० शरीफ के मामले में उन्होंने विश्वास का प्रस्ताव पार्टी के द्वारा स्वीकृत कराकर कार्यसमिति को अधीन कर लिया था तब, इस समय उनका इस्तीफा देना और नया मंत्रिमण्डल बना लेना—ये ऐसी बातें नहीं थीं, जिससे कार्यसमिति के सामने वे विश्वस्त ठहराये जा सकते, और उनके उच्चतम पद का खयाल रखा जाता। इतना ही नहीं, उनके द्वारा यह सिद्ध नहीं होसका कि वे भारत की जनता का प्रतिनिधित्व करते है, जो कि उनका सबसे बड़ा कर्तव्य था। भारत की जनता ने उन पर जो विश्वास किया था, उसे भी उन्होंने अपने उपरोक्त कार्यों द्वारा नष्ट कर दिया। उन्होंने यह साबित कर दिया कि दुनिया के सब से शक्ति सम्पन्न, साधन सम्पन्न, सुदृढ़ साम्राज्यवाद के खिलाफ जीवन-मरण के संग्राम के लिये वे अयोग्य नेता हैं। कोई भी चाहे वह दोस्त हो या दुश्मन, यह न सोचे कि वह भारत की जनता के हितों के सिवाय, जिसके कि सेवक या दोस्त होने का उसको गर्व है, कांग्रेस कार्यसमिति को धोखा दे सकता है। आज कांग्रेस के सिवाय देश भर में ऐसा कोई भी संगठन नहीं है जो उसके समान ईमानदार, पवित्र और वर्गीय हितों से परे हो और जिसके सदस्य स्वार्थों से परे और भ्रष्टाचार से बहुत दूर हों। ऐसी एकमात्र संस्था, यदि कोई है तो वह कार्यसमिति ही है। इन सदस्यों ने अपने कार्यों के द्वारा कई बार लोकतन्त्र तथा उसके सिद्धान्तों की रक्षा की है।

मंत्रिमण्डल की संयुक्त जिम्मेदारी के विषय में काफी कहा गया है जैसे कि यही लोकतन्त्र के सर्वोच्च सिद्धान्त हों और इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर जैसे लोकतन्त्र विकसित होते या नष्ट होते हों। लोकतन्त्र के सिद्धान्त समानरूप में नहीं चलते बल्कि नैतिकता के सिद्धान्तों की तरह एक दूसरे में गुथे रहते हैं। कार्यसमिति के सामने यह सबसे कठिन समस्या थी। क्या कार्यसमिति किसी प्रान्त

के लिये या इस स्थिति में किसी प्रान्त के लिये नहीं तो किसी व्यक्ति के लिये—जिसकी उसकी पार्टी में ही स्थिति सन्देहास्पद हो—अपने स्वस्थ आधिपत्य को खतरे में डालेगी ? आज के भारतीय मामलों में, मंत्रिमण्डल की संयुक्त जिम्मेदारी, प्रान्तों पर केन्द्रीय और सम्मिलित आधिपत्य से विशेष महत्वपूर्ण है। हमने यह पहिले ही स्पष्ट कर दिया है कि केन्द्रीय आधिपत्य, विशाल और गहन लोकतन्त्र का प्रतिनिधित्व करता है, यदि ऐसा नहीं हो तो भारत भौगोलिक दृष्टि से तितर बितर और कई इकाइयों में विभाजित होजाय।

आखिर इस मामले में तथ्य क्या है ? क्या कोई प्रान्त अपने आदमियों, साधनों और प्राचीन गौरव के बल पर कांग्रेस के लिये सफलतापूर्वक चुनाव लड़ सकता है ? क्या कोई अकेला प्रान्त बिना केन्द्र की सहायता के, गवर्नर, वायसराय और ह्वाइट हाल के अधिकारों का मुकाबला कर सकता है ? प्रान्त का आम मतदाता, किसी खास प्रादेशिक कांग्रेस या किसी खास कांग्रेसी को ही मत नहीं दे सकता, बल्कि वह पूरी कांग्रेस और उसकी राजनीति को मत प्रदान करता है। इस प्रकार कांग्रेस अपने पूर्ण रूप में, उस व्यक्ति के प्रति जिम्मेदार रहती है। यह एक सत्य है और इसकी जांच कभी भी की जासकती है कि आम मतदाता का केन्द्रीय कांग्रेस संगठन तथा कार्यसमिति के प्रति पूरा विश्वास होता है। इसलिये जब प्रान्त की सुरक्षा और शक्ति के कायम रखने के लिये केन्द्र से सेना भेजी जाय तो लोकतन्त्रीय पद्धति से बने हुए केन्द्र का आधिपत्य राजनीति में सर्वोच्च लोकतन्त्रीय सिद्धान्त बन जाता है।

अब हमें मंत्रिमण्डल की संयुक्त जिम्मेदारी का विश्लेषण करना चाहिये। यह लोकतन्त्र की मूलभूत कल्पना नहीं है। लोकतन्त्रीय संस्थाओं के सुविधापूर्वक काम करने का यह एक महत्वपूर्ण तरीका है। सुविधाजनक वैधानिक और न्याय-संगत तरीका कभी भी राजनीतिक अस्तित्व पर हावी नहीं हो सकता। सारी दुनिया में

इसी प्रकार काम चल रहा है। लेकिन जिन लोगों ने शासन सम्बन्धी तथा लोकतन्त्र का शिक्षण, वास्तविक जीवन, श्रम-साध्यकार्यों तथा लम्बी लड़ाइयों द्वारा न सीखकर, पाठ्य पुस्तकों और रिपोर्टों के द्वारा सीखा है, वे यदि सम्मान के बजाय साधारण सिद्धान्तों पर अड़ जायें और परिस्थिति की आवश्यकताओं को नज़र अन्दाज़ करदें तो इसमें उन्हें दोष नहीं दिया जासकता। आज भारत की जो स्थिति है, उसको देखते हुए यदि केन्द्र में किसी भी प्रकार की शिथिलता हो तो वह तमाम भारत के लिये ही मुसीबत का कारण नहीं होगी बल्कि उसके जुजो के लिये भी एक जबरदस्त खतरा हो जायेगी। वे जुज़, हमेशा उनके हितों को दृष्टि मे रखते हुए ही, आधिपत्य मे लिये जायेंगे। ऐसे कार्यों का जिनसे छोटी इकाइयों की रक्षा होती है साधारण से बीच बचाव के लिये, गलत अर्थ लगाकर मामला उलझाया नहीं जासकता। इसे फासिज्म नहीं कहते। यह तो लोकतन्त्र का पूरक कार्य है। कुछ भी हो, कांग्रेस संयुक्त जिम्मेदारी के लोकतन्त्रीय साधनों पर आधारित है। इसके लिये, यदि उस पर कोई हमला भी करे तो वह बरदास्त करने को तैयार है। जो कुछ सी० पी० मे हुआ उसे नियम के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिये। वह तो एक दुखान्त अपवाद था। गंभीर मामलों से ही सख्त कानूनों की उत्पत्ति होती है। कांग्रेस इस तरह के गंभीर मामलों को निरंकुशता के उदाहरण नहीं बनने दे सकती। जैसा कि प्रसिद्ध है कि कांग्रेस संयुक्त जिम्मेदारी के लिये ही लड़ी थी।

कुछ भी हो, फिर भी संयुक्त जिम्मेदारी का सवाल, सी० पी० के उपरोक्त संकट के लिये एक बहुत ही छोटा-सा सवाल है। यह बिलकुल मुमकिन था कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद महाकौशल के तीनों मंत्रियों से इस्तीफे देने के लिये कह देते, जबकि गवर्नर ने उन्हें वैसा करने के लिये कहा था। उन्होंने इस प्रकार की सलाह नहीं दी इसका यही मतलब हुआ कि गंभीर राजमीतिक संकटों में वैधानिक

बातों का ध्य[illegible]हीं रखा जाता। यदि ऐसे संकट का सफलतापूर्वक मुकाबला नहीं किया जाता तो इससे कांग्रेसी सत्ता और उसके सम्मान को बहुत ही गहरा धक्का लग जाता। मान लीजिये कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने इस्तीफे को ब उम्मीद मंजूरी ही मान लिया होता तो क्या ऐसा करने से डाक्टर खरे की बचत हो सकती थी? ऐसी हालत में क्या कार्यसमिति उस निर्णय से पीछे हट जाती जो उसने डाक्टर खरे के आचरण पर आपत्ति करते हुए उन्हें किसी भी जिम्मेदारी के पद के अयोग्य ठहरा कर किया? जो लोग ऐसा सोचते है उन्होने सी० पी० के संकट के सम्पूर्ण पहलुओं पर विचार करके उसके राजनीतिक महत्व को बिलकुल ही नहीं समझा। उदारदली पत्रों ने इस मामले में जो होहल्ला मचाया उसका कारण यही था कि उन्होंने शुद्ध राजनीतिक सवाल को वेधानिकता के रंग में रंगकर बहुत ही पेचीदा बना लिया था। उदारदली लोगों ने बड़े-बड़े राजनीतिक सवालों को भी हमेशा वैधानिकता के स्केल से ही नापा है। उन्होंने यह हल्ला ऐसे समय मचाया जबकि कांग्रेस ने पद ग्रहण करने के लिये कुछ शर्तें रखदीं। एंग्लोइंडियन प्रेस जब कभी भी किसी राजनीतिक उलझन पर विचार करना चाहता हे तो वह कानूनी और वैधानिक बातों को अलग रख कर ही उस पर दृष्टिपात करता है। इस मामले में Statesman ने कार्यसमिति के निर्णय के राजनीतिक आधारों पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया है। उसने लिखा था—

"पार्टी की हैसियत से कांग्रेस अपनी नीति के लिये सारे देश में कार्य कर रही है। और उसने अपनी नीति के प्रयोग और प्रचार के लिये सात प्रान्तों में सफलतापूर्वक अपने मंत्रिमण्डल बनाये हैं। हमे यह मानना ही पड़ेगा कि कांग्रेस की नीति, कार्यों और सहायता के कारण मंत्री उसी स्थिति मे हैं जिसमे उन्हें होना चाहिये। परिस्थिति के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप उन्हें हिदायतों के लिये कांग्रेस

हाई कमाण्ड की शरण में ही जाना पड़ता है। कांग्रेस बिना किसी हिचकिचाहट के इन सातों प्रान्तों के मंत्रिमण्डल को एक विशाल सेना के सात भागों के समान मानती है जो स्थानीय परिस्थितियों को मद्दे-नज़र रखकर सेनापति के निर्णय के अनुसार आम योजनाओं पर उसके सुधारों और सुझावों के अनुसार कार्य करती है। यही कारण है कि मंत्रिगण, अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज बन जाना चाहते हैं।"

कार्यसमिति के निर्णय के उस भाग पर जिसमें गवर्नर के कार्य का जिक्र किया गया है, काफी आलोचना हुई है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि तीनों महाकौशल के मंत्रियों को बरखास्त करके सरकार वैधानिकता के अनुसार ही कार्य कर रही थी। गवर्नर की बदनामी उसके वाजिबी कार्य के लिये नहीं वरन् राजनीतिक कार्य के लिये हुई है। गवर्नर से थोड़ा-सा समय मांगा गया था जिससे मंत्री कांग्रेसी उच्चसत्ता से परामर्श करलें। उसने शासन करते हुए मंत्रियों को जरा भी समय नहीं दिया। गवर्नर को वैधानिकता की दृष्टि से चाहिये था कि वह डाक्टर खरे को हिदायत देदे कि वे अपने तथा अपने साथियों के इस्तीफों की स्वीकृति के लिये जल्दी न करें। वह चाहता तो इस्तीफे ४८ घन्टों के लिये रोके जासकते थे। कुछ भी हो, उसे इस कार्य में दिन और रात एक नहीं कर देने थे। उसकी यह जल्दबाजी न्याय-संगत नहीं मानी जासकती। उसकी जल्दबाजी के पीछे कोई न कोई राजनीतिक चाल अवश्य ही थी।

गवर्नर इस बात से नावाकिफ नहीं था कि डाक्टर खरे ने जो इस्तीफा दिया उसी से यह सिद्ध हो जाता है कि पार्टी में अब उनका बहुमत नहीं रहा है। यदि वह चाहता तो इस बात का फायदा उठा सकता था। गवर्नर को कुछ समय तक ठहर कर यह देखना चाहिये था कि अब पार्टी में किसका स्पष्ट बहुमत है। जब डाक्टर खरे ने कार्यसमिति के आदेश से दूसरी बार इस्तीफा दिया, तब भी गवर्नर को कुछ समय तक ठहरना आवश्यक था और पार्टी के निर्णय को

देखना चाहिये था। उसे नये मंत्रिमण्डल के बनाने में शीघ्रता से काम नहीं लेना चाहिये था। संयुक्त प्रान्त और बिहार के गवर्नरों ने गत फरवरी में एक पखवाड़े से भी ज्यादा समय तक अपने अपने मंत्रि-मण्डलों के इस्तीफे रख छोड़े। यदि उन प्रान्तों के प्रधानमंत्री चाहते तो गवर्नरों को इस्तीफे जल्दी मंजूर करने के लिये मजबूर कर सकते थे लेकिन उन्होंने पूरी सभ्यता का पालन किया। इसी प्रकार कांग्रेस भी गवर्नरों से पूर्ण सभ्यता का पालन चाहती है। विधान में गवर्नर की स्थिति एक मार्ग-दर्शक और मित्र की बताई गयी है। गवर्नर डाक्टर खरे को उचित सलाह और वास्तविक मार्ग प्रदर्शन करने में असमर्थ रहा। आखिर गवर्नर का क्या इरादा था? राजनीति और सामाजिक आचरण में, बाहरी कार्य ही इरादे के मार्ग-दर्शक होते हैं। इसके सिवाय मानवीय इरादों को जांचने के लिये कोई दूसरा ताप मापक यंत्र नहीं है। इसलिये गवर्नर के आचरण और इरादे के बारे में कार्यसमिति के निर्णय में जो कुछ भी कहा गया है वह बिलकुल ही न्याय है।

हमने इस पूरे प्रश्न पर आम लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के दृष्टि-कोण से ही कि वे किसी ज्वलंत राजनीतिक परिस्थिति पर किस प्रकार लागू होते हैं, विचार किया है। हमारा विश्वास है कि कार्य-समिति ने हल्के से हलका अधिकारों का प्रयोग किया है और उसने किसी भी तरह लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों पर कुठाराघात नहीं किया है। कार्यसमिति का यह कार्य दुनिया भर के लोकतन्त्रों की परम्परा के अनुरूप ही है। कार्यसमिति पर तानाशाही और फासिस्ट तरीकों के उपयोगों का इल्ज़ाम लगाना जानबूझ कर उसके कार्य को गलत समझना है। हमारा विश्वास है कि यदि इस मामले पर जनमत लिया जाय या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने यह मामला रखा जाय तो कार्यसमिति के निर्णय को सर्वसम्मिति से ही स्वीकार किया जायेगा। हमारा यह भी विश्वास है कि यदि कार्यसमिति ने

दूसरे मार्ग को ग्रहण किया होता तो वह विश्वास जो लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उस पर जनता रखती है, उसने खोदिया होता।

गाँधीजी का वक्तव्य——

सी० पी० के मंत्रिमण्डल के संकट के विषय की प्रेस की कतरनों को पढ़ना एक शिक्षाप्रद वाचन है। कार्यसमिति का वह निर्णय, जिसमें पुराने नेता डाक्टर खरे के आचरण को निन्दनीय बताया गया है, यदि कठोर आलोचनाओं का विषय बन गया, तो यह तो होना ही था। लेकिन मुझे यह ज्ञात नहीं था कि आलोचक कार्यसमिति के कर्तव्यों के विषय में इतने अनभिज्ञ हैं।

डाक्टर खरे पार्लिमेन्टरी बोर्ड की हिदायतों की अवज्ञा करने तथा अनुशासन भंग करने के ही गुनहगार नहीं हैं बल्कि उन्होंने एक नेता होते हुए, गवर्नर के हाथों में पड़कर अपने आपको मूर्ख बनाते हुए अपनी अयोग्यता भी प्रदर्शित करदी है। वह यह नहीं समझ पाये कि इस प्रकार के आचरण से उन्होंने कांग्रेस को भी लज्जित किया है। उन्होंने कार्यसमिति के इन आदेशों की कि वे अपने गुनाहों को स्पष्ट रूप से स्वीकार करके पार्टी के नेतृत्व से हट जायँ, अवज्ञा करके अनुशासन-हीनता को बहुत बढ़ा लिया है। कार्यसमिति अपने कर्तव्य से विमुख होकर एक भयंकर भूल करती यदि वह डाक्टर खरे के कार्यों की निन्दा नहीं करती और उन्हें अयोग्य प्रमाणित नहीं करती।

मैं इन पंक्तियों को दुख के साथ लिख रहा हूँ। मुझे कार्यसमितिको यह सलाह देनेमें कोई प्रसन्नता नहीं हुई है कि वह उपरोक्त निर्णय करे। डाक्टर खरे मेरे मित्र हैं। जब कभी भी मुझे शीघ्र डाक्टरी सहायता की आवश्यकता हुई, वे फौरन भागते हुए मेरे पास आये। वे अक्सर मेरे पास सलाह लेने और मार्ग-दर्शन के लिये आते

रहे और हमेशा वे मेरे आशीर्वादों को प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहे।

मेरी और उनकी मैत्री में २५ तारीख को उलझन पड़ गई, जबकि मैंने उनसे बहादुरी के साथ पीछे हट जाने और एक साधारण से कार्यकर्ता की तरह काम करने को कहा। वह खुद तो राजी थे पर उनके सलाहकारों ने उन्हें बहुत ही गलत सलाह दी। उन्होंने न सिर्फ कार्यसमिति की सलाह को ही ठुकराया बल्कि कार्यकारिणी की समस्त कार्रवाई पर भी, जो उसने उनके शीघ्र तथा गलत सलाह के बल पर दिये गये इस्तीफे तथा उसके बाद शीघ्र ही नये मन्त्रि-मण्डल के निर्माण के फलस्वरूप की थी, ऐतराज करते हुए एक पत्र लिखा। मुझे आशा थी कि प्रौढ़ विचारों के बाद उन्हें अपने आचरण की भूलें समझ में आ जायंगी और वे कार्यसमिति के निर्णय को एक बहादुर आदमी की तरह स्वीकार कर लेंगे। इस निर्णय में नैतिकता का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। डाक्टर खरे एक अच्छे योद्धा हैं। वे अपने दोस्तों की आर्थिक सहायता करने के लिये भी प्रसिद्ध हैं। ये वे गुण हैं जिनका किसी भी व्यक्ति को गर्व हो सकता है। लेकिन इन विशेषताओं के बल पर कोई भी अच्छा प्रधानमन्त्री या शासक नहीं हो जाता। मैं एक मित्र की हैसियत से उनसे आग्रह करता हूँ कि वे कुछ समय तक साधारण सेवक की तरह काम करें और उन विशेषताओं के जरिये, जिनका मैंने ऊपर जिक्र किया है, कांग्रेस का हित करें।

यदि डाक्टर खरे अपने विद्रोही साथियों से उदासीन हो गये थे, तो उन्हें गवर्नर के पास दौड़कर नहीं जाना था, बल्कि कार्यसमिति के सामने अपना इस्तीफा पेश करना था। यदि उन्हें कार्यसमिति के निर्णय पर विश्वास नहीं था तो उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में अपना मामला पेश करना था। लेकिन किसी भी शकल में आपसी

मामलों के लिये एक प्रधानमन्त्री की हैसियत से उन्हें गवर्नर के पास नहीं जाना था और बिना कार्यसमिति की रजामन्दी के उससे मामला नहीं सुलझवाना था। यदि कांग्रेस का कार्य ढीला है तो उसे तीव्र भी बनाया जा सकता है। यदि कर्णधार निकम्मे हैं तो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी उन्हें हटा भी सकती है। डाक्टर खरे ने उनके दुखों के निवारण के लिये ही होने वाली कार्यसमिति की बैठक के अवसर पर सीधे से मार्ग को छोड़, गवर्नर के पास जाकर अपने मामले का निराकरण कराना चाहा, यह भयंकर भूल थी। यह भी सुझाया गया है कि डाक्टर खरे के जो उत्तराधिकारी चुने गये हैं वे अयोग्य हैं और वे आचरण के मामले में डाक्टर खरे की समानता नहीं कर सकते। यदि वे वास्तव में ऐसे ही हैं जैसा कि उनके आलोचकों ने बताया है तो निश्चय है कि वे उन जिम्मेदारियों को पूरा करने में अवश्य ही असफल साबित होंगे जो उन्होंने अपने ऊपर ले ली हैं। लेकिन यहाँ यह कह देना भी जरूरी है कि कार्यसमिति भी अपनी निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही काम करती है। वह प्रान्तों पर मन्त्रियों को थोप नहीं सकती। कुछ भी हो, आखिर वे चुने हुए सदस्य हैं और यदि वह पार्टी जो उन्हे चुनने का अधिकार रखती है, ऐसा ही करना पसन्द करे, तो कार्यसमिति को बीच में पड़ने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक कि वे अनुशासन में हैं और ऐसे मनुष्य साबित नहीं हुए हैं जिन पर जनता को कोई विश्वास नहीं है।

इस संकट ने तमाम मन्त्रियों को बड़े संकट में डाल दिया है। अब यह उनका काम है कि वे अपने बर्ताव द्वारा यह साबित कर दें कि उनके विरुद्ध आलोचक जो आरोप लगाते हैं वे निराधार हैं और वे अपने विश्वास का योग्यता और निस्वार्थता के साथ सदुपयोग कर रहे हैं।

कई पत्रों ने कार्यसमिति के निर्णय के उस अंश की, जिसमें

सी० पी० के गवर्नर के इस कार्य में पड़ने का जिक्र है, काफी निन्दा की है। मुझे पत्रों की यह निष्पक्षता बहुत ही अच्छी लगी। मेरी, विरोधियों को शीघ्रता से जाँच लेने की आदत नहीं है। निर्णय पर जो आलोचनायें हुई हैं, उनको देखने से मुझे यकीन हो गया है कि गवर्नर के साथ कार्यसमिति ने कोई अन्याय नहीं किया है। गवर्नर के कार्य को जाँचने के लिये समय ही सब से बड़ी कसौटी है। डाक्टर खरे और उनके दोनों साथियों का इस्तीफा स्वीकार कर लेना और शेष तीनों मन्त्रियों से इस्तीफे माँगना और उनसे जल्दी ही उत्तर चाहना, ये ऐसी बातें है जिनका संक्षेप में यही अर्थ होता है कि गवर्नर उन तीनों मन्त्रियों से उनके जवाब नहीं चाहता था बल्कि उनको बरखास्त करना चाहता था। इसके लिये वह स्वयं भी रात भर जागा, अपने कर्मचारियों को भी रात भर जगाया और मन्त्रियों को भी रात भर परेशान किया। इस प्रकार गवर्नर ने जो जल्दी की और प्रधान-मन्त्री को धोखा दिया, उसके इन कार्यों को भले आदमी का काम तो नहीं कहा जा सकता। यदि वे उसी क्षण डाक्टर खरे का इस्तीफा मंजूर न करते हुए कार्यकारिणी की बैठक का, जो दो दिन बाद ही होने वाली थी, इन्तजार कर लेते तो उनका कोई नुकसान नहीं था। बंगाल के इसी तरह के संकट के समय वहाँ के गवर्नर ने दूसरा ही रुख इख्त्यार किया था। यह माना कि इस कार्य के द्वारा गवर्नर ने कानून की इज्जत तो रख ली लेकिन उन्होंने उस मैत्री की भावना को नष्ट कर दिया जो पद-ग्रहण करने के पूर्व सरकार और कांग्रेस के बीच स्थापित हो गई थी। कार्यसमिति के निर्णय पर आलोचना करने वालों को बड़ी ही सावधानी से तैयार किये गये वायसराय के उस भाषण को पढ़ना चाहिये जिसमें दूसरे वक्तव्यों की तरह ही वायसराय ने कार्यसमिति को पद-ग्रहण करने के प्रयोग करने के लिये बढ़ावा दिया है। आलोचकों को वायसराय के उस वक्तव्य को पढ़ कर अपने

दिल से पूछना चाहिये कि गवर्नर को इन बातों को सरकारी तौर पर जानने की कोई भी जरूरत नहीं थी कि कार्यसमिति, डाक्टर खरे और उनके साथियों में आपस में क्या हो रहा है। इन विवाद-रहित तथ्यों से ही समझ में आ जाता है कि गवर्नर ने कांग्रेस को नीचा दिखाने की उत्सुकता में रात्रि भर जागरण किया और जान-बूझ कर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिससे कि कांग्रेस को नीचा देखना पड़े। कांग्रस और सरकार के बीच का बिना लिखा हुआ यह मैत्री-सम्बन्ध एक सभ्य मनुष्य का इकरारनामा था, जिसमें दोनों को अपने हृदय की सचाई को व्यक्त करने का अवसर था। अतः कार्यसमिति के इस निर्णय ने अंग्रेजी शासकों को इतना जबरदस्त सम्मान प्रदान किया है जितना उन्हें आलोचक भी प्रदान नहीं कर सकते थे। अंग्रेज खिलाड़ी लोग हैं। उनमें विनोद की भावना भी बड़ी प्रबल है। वे दूसरों पर बार भी करारा करते हैं और दूसरों का बार भी गर्व के साथ सहन कर लेते हैं। मुझे यकीन है कि गवर्नर कार्यसमिति के निर्णयसे अच्छा ही सबक लेंगे।

चाहे गवर्नर इसका ठीक अर्थ ले या न ले, कार्यसमिति तो, जैसा उसकी समझ में आया, उसे व्यक्त करने के लिये बाध्य थी। वह चाहती थी कि यदि हो सके तो वह संघर्ष को टाले, पर यदि वह होना ही था तो वह उसके लिये भी तैयार थी। यदि लड़ाई टालनी है तो गवर्नर को कांग्रेस को एक ऐसी महान राष्ट्रीय संस्था माननी ही होगी जो एक न एक दिन ब्रिटिश सरकार का शासन अपने हाथ में ले लेगी। संयुक्तप्रान्त, बिहार और उड़ीसा के गवर्नरों ने संकट उत्पन्न होने पर कांग्रेस के नेतृत्व की प्रतीक्षा की। इसमें कोई शक नहीं कि इन तीनों मामलों में उन्होंने अपने-अपने फायदों के लिये ही वैसा किया। क्या यह कहा जाना उचित होगा कि सी० पी० में अंग्रेज अपने स्वार्थों के लिये ही उपरोक्त संकट में पड़े जिससे कि किसी भी

तरह कांग्रेस को नीचा दिखाया जा सके ? कार्यसमिति का निर्णय तो अंग्रेजी सरकार को एक मैत्रीपूर्ण चेतावनी है कि यदि वे कांग्रेस से खुला संघर्ष नहीं करना चाहते हैं तो उन्हें २० जुलाई की रात को नागपुर में जो कुछ भी हुआ, उसे नहीं दुहराना चाहिये।

अब हमें कांग्रेस के कर्तव्यों के विषय में भी विचार करना है। अन्दरूनी विकास और व्यवस्था के लिये वह दुनिया भर के तमाम लोकतन्त्रीय संगठनों जितनी ही अच्छी दशा में है। लेकिन इस लोकतन्त्रीय संगठन की उत्पत्ति संसार के वर्तमान तमाम साम्राज्यों से शक्तिशाली साम्राज्यवाद से लड़ने के लिये हुई है। अपने इस बाहरी कार्य के लिये वह एक सेना के समान ही है। ऐसी स्थिति में वह लोकतन्त्रीय संगठन के रूप में नहीं रहती। उसकी केन्द्रीय सत्ता के सार्वभौम अधिकार हैं और वह अपने अन्तर्गत काम करनेवाली संस्थाओं तथा भिन्न-भिन्न इकाइयों के द्वारा अनुशासन को पालन करवा सकती है। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ और प्रान्तीय पार्लियामेंटरी सब कमेटियाँ इसी केन्द्रीय सत्ता के आधीन हैं।

यद्यपि मेरा यह भाष्य उचित है फिर भी मुझे सुझाया गया है कि जब सत्याग्रह के रूप में वास्तविक युद्ध जारी है तब सत्याग्रह के मुल्तवी करने का क्या मतलब है ? सत्याग्रह के मुल्तवी करने का अर्थ युद्ध का मुल्तवी करना नहीं है। यह युद्ध तो तभी समाप्त होगा जब भारतवर्ष खुद अपना विधान बनाकर उसके अनुसार शासन-संचालन करे। तब तक कांग्रेस एक सेना के रूप में ही रहेगी। लोकतन्त्री ब्रिटेन ने भारत में चतुराई के साथ एक ऐसी शासन व्यवस्था कायम की है जिसे यदि आप उसके नग्न स्वरूप में देखें तो और कुछ नहीं सिर्फ सर्वोत्तम ढंग से संगठित योग्य सेना का आधिपत्य है। वर्तमान गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट में भी इससे कम कोई बात नहीं है। वास्तविक आधिपत्य को देखा जाय तो मन्त्री तो महज खिलौने जैसे

हैं। कलक्टर और पुलिस जो आज मन्त्रियों को "सर" कहके आदर के साथ सम्बोधित कर रहे हैं, वही गवर्नर के एक इशारे पर—अपने सच्चे मालिकों की जरा-सी इच्छा पर—मन्त्रियों को हटा सकते हैं, गिरफ्तार करके उन्हें जेलों में बन्द भी कर सकते हैं। इसलिये मुझे इतना कहना पड़ा कि कांग्रेस ने इसलिये पद-ग्रहण नहीं किये हैं कि वह ऐक्ट को बनाने वालों के इरादों को पूरा करती रहे। वह तो इस-लिये रजामन्द हुई है कि वह इस ढंग से काम करना चाहती है कि उसके खुद के बनाये हुए मौलिक विधान पर वह जल्दी से जल्दी अमल कर सके।

अतः कांग्रेस को युद्ध में व्यस्त होते हुए भी, अधिकारों का केन्द्रीकरण तथा प्रत्येक विभाग और कांग्रेस का मार्ग-प्रदर्शन करना ही पड़ता है। फिर चाहे वह कांग्रेसी कितना ही बड़ा उच्च अधिकारी क्यों न हो। कांग्रेस हमेशा आज्ञा-पालन चाहती है। युद्ध इनके अलावा दूसरी शर्तों पर लड़े ही नहीं जा सकते। लोग कहते हैं कि यह तो शुद्ध फासिज्म है। पर वे यह भूल जाते हैं कि फासिज्म एक नगी तलवार है। फासिज्म अपनाया जाता तो डाक्टर खरे का सिर ही काट लिया गया होता। कांग्रेस तो फासिज्म के बिलकुल विपरीत संस्था है क्योंकि वह तो शुद्ध और पवित्र अहिंसा के सिद्धान्तों पर आधारित है। उसकी सभी स्वीकृतियाँ नैतिक होती हैं। उसकी शक्ति का आधार शस्त्रों से लैस काली कुरती वाले नहीं हैं। कांग्रेस के शासन में डाक्टर खरे अभी भी नागपुर के नागरिकों और विद्यार्थियों के नेता रह सकते हैं। इसके लिये दूसरे लोग मुझे या कार्यकारिणी को श्राप भी दे सकते हैं कि कांग्रेस के विरुद्ध प्रदर्शन करने वालों के शरीरों का, अहिंसात्मक होने के कारण, एक बाल भी किसी ने नहीं छुआ।

कांग्रेस का यही प्रताप और यही शक्ति है, यह उसकी कम-

जोरी नहीं है। उसकी शक्ति का स्रोत है उसका अहिंसात्मक आचरण मेरी जानकारी में, तमाम दुनिया में सिर्फ यह एक महत्वपूर्ण शुद्ध अहिंसात्मक राजनीतिक संगठन है। कांग्रेस को इस बात का अभिमान भी है कि वह अपने अनुयायियों से,—यहाँ तक कि प्राचीन सेवक डाक्टर खरे से भी, जब तक कि वे इस संस्था में हैं, राजी-खुशी से आज्ञा-पालन करवा सकती है।

"मैं हारा और तुम जीते!"

१६३८ के साल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना रियासतों में होने वाली अपूर्व जाग्रति थी। यद्यपि हरिपुरा कांग्रेस का रियासतों सम्बन्धी प्रस्ताव प्रत्यक्ष तौर पर रियासती जनता का विरोधी समझा गया था, लेकिन इसका परिणाम बहुत कुछ अनुकूल ही हुआ। इससे रियासती जनता ने स्वाभिमान और आत्म-निर्भरता सीखी। काश्मीर, मैसूर, त्रावणकोर, हैदराबाद, बड़ोदा, तलचर, ढेंकानल, राजकोट, उदयपुर आदि अनेकों रियासतों में स्टेट कांग्रेस या प्रजा-मण्डलों की ओर से जन आन्दोलनों का श्रीगणेश हुआ। रियासतों के अधिकारियों ने दमन करने में अंग्रेजों को भी मात कर दिया।

गिरफ्तारियाँ, मारपीट, लूट, लाठी प्रहार, फसलों का जलाया जाना, जनता को हाथियों के पैरों तले रौंदना आदि दर्दनाक समाचारों से अखबारों के कालम काले पड़ गये। पर कहीं दमनों से भी प्रजा की जागृति कम हुई है ? दमनों ने तो आन्दोलनों में घी का काम किया। कांग्रेस कमेटियों का इन आन्दोलनों से कोई भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था, लेकिन अनेक रियासतों में प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने व्यक्तिगत रूप से काफी भाग लिया। इनमें सरदार वल्लभभाई पटेल का स्थान सर्वोपरि है। राजकोट आन्दोलन के तो वे प्रमुख नेता ही थे। इसी कारण इसमें राजकोट के ही नहीं, ब्रिटिश भारत के भी कई प्रमुख कांग्रेसी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए। अखिल भारतीय देशी राज्य लोकपरिषद् के प्रधानमन्त्री श्री० बलवन्तराय मेहता, कुमारी मणिबेन पटेल (सरदार पटेल की सुपुत्री), कुमारी मृदुला साराभाई आदि विशिष्ठ व्यक्ति गिरफ्तार होगये। लेकिन कुछ समय के बाद राजकोट के ठाकुर साहब ने सरदार पटेल को निमन्त्रण देकर समझौता कर लिया। राजकोट के ठाकुर ने एक उपसमिति द्वारा सिफारिश की गई शासन सुधार सम्बन्धी योजना को स्वीकार करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन में बदनाम और आन्दोलन को कुचलने वाले अंग्रेज दीवान सर पैट्रिक कैडल बरखास्त कर दिये गये। यह रियासती जनता की बड़ी भारी विजय थी।

राजकोट के इस आन्दोलन में कांग्रेस भी अप्रत्यक्ष तौर पर बहुत दिलचस्पी ले रही थी। इसका एक खास कारण यह था कि अंग्रेज दीवान रियासतों में भी ब्रिटिश हुकूमत चला रहे थे और राजा और प्रजा में सीधा सम्बन्ध स्थापित होने में बाधक बन रहे थे। ब्रिटिश सरकार की फौज व पुलिस की सहायता भी दमन में ली जाने लगी थी। कांग्रेस तो ब्रिटिश सरकार से भारत की सभी श्रेणियों को मुक्ति दिलाने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध थी। महात्मा गांधी ने राउण्ड टेबल कान्फरेन्स के अधिवेशन में कांग्रेस को "राजाओं की प्रतिनिधि" भी

कहा था। महात्मा गांधी ने रियासतों में ब्रिटिश सरकार के अंग्रेज अधिकारियों की प्रमुखता और उनके अनुचित प्रभाव की कठोर शब्दों में निन्दा भी की थी। कांग्रेस कार्यसमिति ने वर्धा की दिसम्बर की बैठक में रियासतों के सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण घोषणा की थी, उसका एक प्रमुख अंश इस प्रकार है—

"कमेटी उन शासकों की कार्रवाइयों की खासतौर पर निन्दा करती है, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता से अपनी प्रजा को दबाने की कोशिश की है, और इस बात का ऐलान करती है कि अगर उत्तरदायी शासन की माँग के लिये चलाये गये रियासती जनता के आन्दोलनों को ब्रिटिश सरकार की पुलिस या फौज की सहायता से दबाने का प्रयत्न किया जायेगा तो उस हालत में कांग्रेस को पूरा अधिकार होगा कि वह पुलिस और फौज द्वारा किये गये अनियंत्रित दमन से जनता की रक्षा करे।"

इस प्रस्ताव के आरम्भ में रियासतों की जागृति का स्वागत करते हुए शासकों की छत्रछाया में जिम्मेदार सरकार की स्थापना के आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट करके रियासती शासकों की दमन नीति की निन्दा की गई थी। प्रस्ताव के उत्तरार्ध में कहा गया था कि—"कमेटी हरिपुरा कांग्रेस के उस प्रस्ताव की ओर ध्यान दिलाती है, जिसमें कांग्रेस ने रियासतों के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित की है। यद्यपि कांग्रेस को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता और जिम्मेदार सरकार की स्थापना के लिये पूरा काम करे, लेकिन मौजूदा परिस्थिति में कांग्रेस को अपना कार्य क्षेत्र सीमित रखना पड़ा है और नीति की दृष्टि से कांग्रेस रियासतों के भीतरी झगड़ों में एक संस्था की हैसियत से नहीं पड़ना चाहती। यह नीति जनता की भलाई के लिये बनाई गई थी, ताकि उसमें आत्म निर्भरता और शक्ति आवे। उस नीति का आशय रियासतों के प्रति कांग्रेस की सद्भावना प्रकट करना भी था और उससे कांग्रेस ने यह आशा भी

इसी लेख में गांधी जी ने आगे चलकर लिखा था कि—

"जनता की विजय अवश्यम्भावी है। यहाँ तक कि वह ठाकुर साहब को भी रेजीडेन्ट के पंजे से स्वतन्त्र कर सकेगी। वह इस विजय से साबित कर दिखायेगी कि वह कांग्रेस की सर्वोच्च सत्ता के मातहत राजकोट की सच्ची शासक है।"

कुछ साल पूर्व ब्रिटिश भारत जिस आन्दोलन का क्षेत्र बना हुआ था, उस युद्ध का क्षेत्र अब भारतीय भारत हो गया था।

राजकोट में दमन जोरों पर हो रहा था। गांधी जी ने राजकोट की घटनाओं के लिये रेजीडेन्ट पर "सुसंगठित गुण्डेपन" का आरोप लगाया। सत्याग्रहियों को दूर-दूर लेजाकर नङ्गा करके पीटने; और बिना सहारे छोड़ने की आम खबरें प्रचारित होने लगीं।

इसी बीच लीम्बड़ी (जयपुर) से बड़े ही रोमान्चकारी समाचार प्राप्त हुए। सभापति दरबार गोपालदास को स्टेशन पर सैकड़ों बदमाशों ने घेर लिया। प्रजापरिषद के व्यक्ति ढूँढ़-ढूँढ़ कर पीटे जाने लगे। गांवों में लूटमार और हत्याएँ बढ़ गईं। इस बीच चूड़गर ने गांधीजी को जयपुर के प्रधान मन्त्री सर बीचम से हुई बातचीत का हाल लिखा कि सर बीचम ने कहा कि अहिंसात्मक युद्ध भी तो एक प्रकार का बल प्रयोग ही है, इसका मुकाबला मैं दूसरे बल–मशीनगनों से करूँगा। इसका उत्तर देते हुए गांधीजी ने लिखा—

"जयपुर का प्रधान मंत्री अगर बगैर सत्ता के यह सब कर रहा हो तो कम से कम पद से तो उसे हटा ही देना चाहिये।"

वास्तव में देखा जाय तो देशी राज्यों की प्रजा का आन्दोलन एक दूसरे के अत्यन्त निकट आरहा था। देशी राज्य प्रजा परिषद् के सभापति दो सालों से डाक्टर पट्टाभि थे। वे रियासतों के मामले में बहुत ही दिलचस्पी ले रहे थे। परिषद् के लुधियाना अधिवेशन में पंडित जवाहरलाल नेहरू सभापति चुने गये। परिषद् का यों तो कांग्रेस से कोई सम्बन्ध नहीं था, लेकिन गांधीजी और सरदार पटेल

के आन्दोलन के नेत्रत्व, बदले हुए समय, और नेहरू जी के सभापतित्व के कारण यह परिषद कांग्रेस के अत्यन्त निकट आगई और लुधियाना अधिवेशन में तै होगया कि परिषद कांग्रेस के सहयोग और नेत्रत्व में ही काम करेगा। नेहरू जी रियासतों के मामलों में वैसे ही बहुत उग्र थे और अब तो गांधी जी की उग्रता ने उन्हें अपने विचार और भी स्पष्ट रूप से कहने का मौका दे दिया।

इस परिषद के एक प्रस्ताव में कहा गया था कि रियासती प्रजा के अधिकार प्राप्ति संग्राम और उसके प्रति कांग्रेसी नीति देखते हुए अब समय आ गया है, जबकि इस अन्दोलन का भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन से, जिसका यह भी एक अंग है, समन्वय कर दिया जाय। इस तरह पर सम्मिलित एक भारतीय अन्दोलन स्वभाविक तौर पर कांग्रेस के परामर्श से ही संभव है। यह कान्फरेन्स इस सहयोग को खुशी से स्वीकार करती है। इसलिये यह कान्फरेन्स वर्किंग कमेटी को आदेश और अधिकार देती है कि राष्ट्रीय कांग्रेस या उसके द्वारा नियत उप समिति के सहयोग व नेत्रत्व से अन्दोलन चलाये अमल में आने पर यह प्रस्ताव "कांग्रेस को वस्तुतः अखिल भारतीय राष्ट्रीय रूप" दे देगा।

एक दूसरे प्रस्ताव में रियासती शासन पद्धति को बिलकुल असामयिक, सामन्तशाही सी तथा उन्नति के लिये बाधक बताते हुए जल्दी से जल्दी उत्तरदायी शासन की मांग की गई थी। एक प्रस्ताव में बीस लाख से कम आबादी और ५० लाख रुपये से कम आमदनी वाली रियासतों को शासन प्रबन्ध तथा फेडरेशन में एक स्वतंत्र अंग की भांति सम्मिलित होने के लिये असमर्थ बताते हुए यह मांग पेश की गई थी कि उन्हें पड़ौसी प्रान्त के साथ या आपस में मिला देना चाहिये। कांग्रेस से भी इस सम्बन्ध में जांच कमेटी बैठाने की प्रार्थना की गई थी। भिन्न-भिन्न रियास्तों में होने वाले दमन या नागरिक स्वाधीनता अपहरण की निन्दा की गई। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव में

आज से १५० साल पहिले की गई राजाओं की सन्धियों के सम्बन्ध में कहा गया कि वे संधियाँ करने वाले देशी राजा वस्तुतः अधिकारी नहीं थे, वे तो केन्द्रीय मुगल सरकार के कमजोर होने पर खुद मुख्तार बन बैठे थे। इन संधियों को सरकार स्वंय समय समय पर तोड़ती रही है। आज बदली हुई स्थिति में रियासती जनता पर १०० साल पहिले की गई संधियों को जिनमें उनकी कोई चिन्ता नहीं की गई, मानने के लिये जोर नहीं दिया जा सकता। इन संधियों का उपयोग ब्रिटिश सरकार रियासती जागृति के दमन के लिये ही करती थी।

कांग्रेस की रियासती नीति का एक विशेष परिणाम यह हुआ कि कुछ राजा समय की गति विधि को पहचानने लगे और यह समझ गये कि भारत का भविष्य कांग्रेस के ही हाथों में ही है। अतः वे अब पोलीटिकल डिपार्टमैन्ट से सलाह न लेकर कांग्रेस नेताओं से परामर्श करने लगे। औंध नरेश ने तो बम्बई प्रान्त के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री खरे से उत्तरदायी शासन समारोह का उद्घाटन भी करा दिया। इस विधान की रूप रेखा कांग्रेस की सलाह से बनाई गई थी सांगली आदि कुछ अन्य रियासतों ने भी देखादेखी इस ओर कदम उठाया। इन बातों से यह स्पष्ट झलकने लगा था कि फेडरेशन की तत्कालीन समस्या पर कोई गंभीर निश्चय करने से पहिले कांग्रेस रियासतों को उत्तरदायी शासन की दिशा में ब्रिटिश भारत के प्रान्तों की सतह में ले आना चहती थी।

उन्हीं दिनों राष्ट्रपति के चुनाव को लेकर देश में एक गंभीर संकट हो गया था और इधर गांधीजी ने राजकोट की समस्या को देशव्यापी महत्व देकर दूसरा संकट उपस्थित कर दिया। ये दोनों संकट तो टाले भी जा सकते थे पर अचानक राजकोट के प्रश्न को लेकर गांधीजी ने अपने आमरण अनशन का निश्चय प्रकट करके देश को विषम परिस्थिति में डाल दिया। राजकोट दरबार के अलावा उन्होंने रेजीडेन्ट पर भी सत्याग्रहियों के साथ भयंकर ज्याद-

तियाँ करने के अरोप लगाये थे। इसी सिलसिले में फरवरी के अन्तिम सप्ताह में राजकोट के रेजीडेन्ट मि० गिबसन से उनकी तार द्वारा बातचीत चल रही थी। रेजीडेन्ट ने पुलिस व अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को असत्य बतलाया। गांधीजी ने उनसे शिकायत की थी कि कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। इन आरोपां की स्वयं जांच करने के लिये गांधीजी २५ फरवरी को वर्धा से राजकोट की ओर रवाना हो गये। इस से पहिले उन्होंने राजकोट सत्याग्रह के संचालक सरदार पटेल को राजकोट सत्याग्रह स्थगित करने की सलाह दी, ताकि शान्त वातावरण में जांच हो सके। इसके अनुसार सरदार पटेल ने सत्याग्रह स्थगित करवा दिया। इन दिनों गाँधीजी की मनोदशा क्या थी, यह उस समय के उनके वक्तव्यों से प्रकट हो जाती है।

"मैं सचाई की खोज और शान्ति की प्रतिष्ठा के रूप में राजकोट जा रहा हूँ। मेरी गिरफ्तार होने की इच्छा नहीं है। मैं स्वयं सारी बातें जानना चाहता हूँ। अगर सहकारियों पर झूठे आरोप लगाने का दोष सिद्ध होगा, तो मैं स्वयं उसका प्रायश्चित करूँगा। राजकोट के ठाकुर साहब के वचन भंग से मुझे बड़ी तकलीफ हुइ। शायद पूरी बात हम लोगों को मालूम नहीं हुई किन अवस्थाओं में लाचार होजाने के कारण राजकोट के ठाकुर साहब को जनता को दी हुई प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी। मैं यह कहता हूँ कि अगर सारे हिन्दुस्तान का नहीं, तो कम से कम काठियावाड़ के राजाओं का यह कर्तव्य है कि वे भूल सुधार करवायें। अगर विश्वास ही नहीं रहा तो फिर कोई सम्मानजनक पारस्परिक समझौता ही असंभव हो जायेगा। जब मैं विश्वास भंग देखता हूँ, जैसा कि इस मामले में हुआ है, तो मुझे अपना जीवन भार सा मालूम होने लगता है।"

गांधीजी ने राजकोट पहुँचकर २७-२८ फरवरी व १ मार्च को पुलिस की ज्यादतियों की स्वयं जांच की। राजकोट के ठाकुर ने

२६ दिसम्बर को सुधार समिति बैठाने की घोषणा की थी, उसकी रोशनी में ठाकुर के पिछले व्यवहार को भी जांच की। इसके बाद महात्मा गांधी ने राजकोट के ठाकुर साहब को एक पत्र लिखते हुए सात मागें पेश कीं—

१—२६ दिसम्बर को जिस घोषणा द्वारा प्रजा को शासनाधिकार देने पर विचार करने के लिये एक सुधार समिति नियत करने की बात कही गई थी, उसे पुनरुज्जीवित किया जाय।

२—२१ फरवरी का वह नोटिस रद्द किया जाय, जिसके द्वारा पहिले नोटिस का खण्डन किया गया था।

३—प्रजा परिषद् के ५ प्रतिनिधियों को सुधार समिति में लिया जाय और उनमें से एक सत्याग्रह आन्दोलन के नेता श्री ढेवर हों।

४—शासन सुधार समिति के अध्यक्ष श्री० ढेबर ही हों।

५—कमेटी के तीन सरकारी प्रतिनिधियों को वोट देने का अधिकार न हो।

६—राजकोट एडवाइजरी कौंसिल २६ दिसम्बर की घोषणा की भावना का पालन करे। और शासन सुधार समिति के सदस्यों की नियुक्ति गांधीजी की सलाह से की जाय।

७—तमाम सत्याग्रही आज ही गुरुवार को रिहा कर दिये जांय। जुरमाने वापस कर दिये जाय और तमाम दमनकारी आज्ञाएं वापस लेली जाँय।

इसके बाद गांधीजी ने अपने पत्र में लिखा कि—

"अगर कल शुक्रवार की दुपहर को १२ बजे तक आप मेरी मांगें स्वीकार न कर सकें, तो मेरा अनशन आरम्भ हो जायेगा और वह तबतक जारी रहेगा, जब तक कि मेरी मांगें स्वीकृत न होजायं।"

महात्मा गांधी को राजकोट के ठाकुर साहब के वचन भंग से जो दुख हुआ था, उसका प्रकटीकरण करते हुए उन्होंने २ मार्च को प्रेस प्रतिनिधियों को निम्निलिखित वक्तव्य दिया—

"इस नाजुक मौके पर तो मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि रातभर के जागरण के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जो लड़ाई स्थगित हो चुकी है, उसे फिर से शुरू न करना हो और जिन अत्याचारों के बारे में मैंने बहुत कुछ सुना है और जिनका मुझे अखबारों में दिये हुए अपने वक्तव्य में भी जिक्र करना पड़ा है, उन्हें भी फिर से शुरू न करना हो, तो मुझे इस मर्मान्तिक वेदना का अन्त करने के लिये कोई कारगर उपाय करना चाहिये और ईश्वर ने वह उपाय मुझे बतला दिया। यह भी याद रखना चाहिये कि मेरा राजकोट व उसके शासकों से घनिष्ट सम्बन्ध है। ठाकुर साहब को अपने पुत्र की भाँति समझते हुए मुझे उनके स्वभाव को बदलने का अधिकार है। बचन भंग मुझे अन्दर तक हिला देता है, विशेष कर तब, जबकि मेरा भी वचन देने वाले से सम्बन्ध हो, और यदि उसे ठीक समझने में मुझे अपना जीवन भी देना पड़े, तो मैं एक पवित्र व गंभीर वचन को पूरा करने के लिये उसे देने को तय्यार हूँ।"

गांधीजी को ३ मार्च शुक्रवार के १२ बजे तक राजकोट के ठाकुर का कोई उत्तर नहीं मिला। इसलिये उन्होंने १२ बजे की प्रार्थना के साथ ही राष्ट्रीय शाला में अग्नि परीक्षा का व्रत आरंभ कर दिया। प्राय १॥ बजे ठाकुर साहब का उत्तर मिला, जिसमें गांधीजी के समिति सम्बन्धी परामर्श को २६ दिसम्बर की घोषणा के अनुकूल न मानते हुए, मानने से इन्कार कर दिया। रियासत के शासन की सारी जिम्मेदारी अपनी मानते हुए किसी दूसरे के हस्तक्षेप की इजाजत देने में भी असमर्थता प्रकट की। गांधी जी ने इस उत्तर को पढ़कर कहा कि—

"यह पत्र तो आग में घी डालने के ही समान है। मुझे आशा है कि मैं इस अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊँगा। मैं यह भी जानता हूँ, कि जो कार्य मेरे जीवन में नहीं हुआ वह मेरे बलिदान के बाद

अवश्य ही पूरा होगा। मेरे व्रत से अपनी राजनीति को शुद्ध और पवित्र बनाने का व्रत लें।"

गान्धीजी के इस आमरण अनशन के समाचार ने सारे देश में एक तहलका सा मचा दिया। राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने ५ मार्च को राजकोट दिवस मनाने की आज्ञा दी। यह दिवस तमाम देश में बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। सारे देश ने सरकार से भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति की प्राण रक्षा करने के लिये हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया। महात्मा गांधी के आमरण अनशन के केवल ३५ करोड़ भारतीयों के हृदय को ही नहीं हिला दिया था, वरन् भारत सरकार भी इससे चिन्तातुर हो गई थी। अनेक प्रान्तीय सरकारों ने स्थिति की भीषणता और उनके इस्तीफे देने की संभावना से केन्द्रीय सरकार को परिचित कर दिया था। ब्रिटिश सरकार भी परेशान थी क्योंकि सारी जिम्मेदारी उसी पर डाली जा रही थी। वैसे भी सर्वोच्च सत्ता होने के नाते उसका कर्तव्य था कि वह इस मामले में हस्तक्षेप करे। महात्मा गांधी के शब्दों में यह कहा गया था कि यदि सर्वोच्च सत्ता प्रान्तों में कांग्रेस का सहयोग चाहती है तो उसे रियासतों में भी कांग्रेस से मैत्री भाव रखना होगा। यदि वह यहाँ मैत्री भाव नहीं दिखा सकती तो उसे प्रान्तों में कांग्रेस के सहयोग की आशा छोड़ देनी चाहिये। वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने स्थिति की भीषणता समझने में देर नहीं की। वे एकदम अपना राजपूताने का दौरा स्थगित करके दिल्ली पहुँच गये। रेजीडेन्ट की मार्फत गांधीजी ने वायसराय को स्थिति से पूर्णतः परिचित कराया। वायसराय ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए विचार विनिमय के बाद शीघ्र ही निर्णय किया और गांधीजी को रेजीडेन्ट की मार्फत निम्न आशय का जवाब दिया—

"मैं आपकी स्थिति समझता हूँ। आप वचन भंग को बहुत महत्व देते हैं, यह आपके वक्तव्य से स्पष्ट है। मैं यह भी अनुभव

करता हूँ कि ठाकुर साहब की २६ दिसम्बर को घोषणा और उसके साथ सरदार पटेल को भेजे जाने वाले पत्र का अभिप्राय समझने में सन्देह नहीं हो सकता है। लेकिन मेरी सम्मति में इसका सर्वोत्तम हल यह होगा कि भारत वर्ष के सबसे प्रमुख न्यायाधिकारी·फेडरल कोर्ट के चीफ जस्टिस— के पास निर्णय के लिये यह मामला भेज दिया जाय। चीफ जस्टिस ही यह निर्णय करें कि ठाकुर की घोषणा व सरदार पटेल को भेजे गये पत्र के प्रकाश में सुधार समिति का किस प्रकार संगठन किया जाय। यदि इसके बाद भी उक्त घोषणा के सम्बन्ध में कोई सन्देह हो, तो न्यायाधीष ही उसका अन्तिम निर्णय करें। जहाँ ठाकुर साहब घोषणा में की गई प्रतिज्ञा को पूरा करने का वायदा करते हैं, वहाँ मैं भी यह आश्वासन देता हूँ कि मैं अपने प्रभाव का पूर्ण उपयोग करूंगा कि ठाकुर अपने वचन का पालन करें। इससे आपकी सब आशंकाए दूर हो जायेंगी।"

महात्मा गांधी ने लिखा कि—

"यद्यपि आपका सन्देशा कई बातों में मूक है तो भी वह अनशन व्रत समाप्त करके करोड़ों भारतीयों की चिन्ता दूर करने के लिये पर्याप्त है जिन बातों का जिक्र आपके पत्र में नहीं है, उनका दावा मैं नहीं छोड़ता, लेकिन वे बातें परस्पर बातचीत से भी तै हो सकतीं हैं। ज्योंही डाक्टरों ने मुझे आज्ञा दी कि मैं दिल्ली आऊँगा।"

७ मार्च के दोपहरी में २ बजकर २५ मिनट पर ६६ घन्टों के अनशन के बाद गांधीजी ने सन्तरे का रस लेकर अपना अनशन तोड़ दिया और इस प्रकार राष्ट्र पर आने वाले महान संकट को, जिसने समस्त भारत को छा रखा था, टाल दिया।

अनशन की समाप्ति के बाद गांधीजी ने पत्र प्रतिनिधियों को एक वक्तव्य दिया कि "मेरी सम्मति में उपवास की यह मंगल समाप्ति करोड़ों व्यक्तियों की मंगल प्रार्थना का उत्तर है। मैं यह भी जानता हूँ

कि भारत से बाहर शेष संसार के भी अनेकों मनुष्यों को सहानुभूति और प्रार्थनाएँ मेरे साथ थीं, लेकिन समझौते का मुख्य श्रेय वायसराय ही को है। इस व्रत से लोगों का ध्यान रियासतों की ओर केंद्रित हो गया है। मुझे आशा है कि सभी यह स्वीकार करेंगे कि रियासती समस्या को सुलझाने में देरी नहीं होनी चाहिये। मैं राजाओं को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं राजकोट मे उनके मित्र के ही रूप में आया था। मैंने यहाँ आकर देखा कि सत्याग्रही दबाये नहीं जा सकते, उन पर किये गये भीषण अत्याचारों की कहानियाँ भी मैंने सुनीं और अनुभव किया कि यदि राजकोट में सत्याग्रह जारी रहा तो मानव स्वभाव की नीच प्रकृति खुलकर खेलने लगेगी। और न केवल राजकोट के शासकों व सत्याग्रहियों में, बल्कि सर्वत्र राजा और प्रजा में भीषण संग्राम छिड़ जायगा। मैं जानता हूँ कि भारत में यह विचार जोर पकड़ रहा है कि राजाओं का सुधार तो हो ही नहीं सकता। और बर्बरता के युग के इस अवशेष का अन्त किये बिना भारत स्वतन्त्र नहीं हो सकता। राजाओं का भी भारत में एक स्थान है। भूतकाल की प्रथाओं को नष्ट किया भी नहीं जा सकता मेरा खयाल है कि यदि राजा भूतकाल से कुछ शिक्षा लेंगे और समय के साथ चलेंगे तो सब ठीक हो जायगा। लेकिन थिगड़ियाँ लगाने या थोथे सुधारों से यह समस्या हल न हो सकेगी। उन्हें साहस पूर्ण कदम उठाने होंगे। वे भले ही राजकोट का अनुकरण न करें लेकिन उन्हें जनता को पूर्ण पर्याप्त अधिकार अवश्य ही देने चाहियें। इसके सिवाय भारत में रक्तमय क्रान्ति को रोकने का मेरी सम्मति में और कोई उपाय नहीं है।"

"मुझे ठाकुर साहब की चिन्ता है, मुझे दरबार बीरवाला की भी चिन्ता है। मैंने उनकी कठोर आलोचना भी की है, लेकिन मित्र के नाते। मैं यह फिर दुहराता हूँ कि मैं ठाकुर साहब के लिये पिता के समान हूँ। अपने आलसी कामचोर लड़के के साथ जैसा मैं

करता हूँ, उससे अधिक कठोर व्यवहार मैंने उनके प्रति नहीं किया।"

७ मार्च को राजकोट सत्याग्रह पटेल साहब के आदेश पर स्थगित हो गया और सभी सत्याग्रही रिहा कर दिये गये।

गांधीजी राजकोट से रवाना होकर १५ मार्च को दिल्ली पहुँच गये। उनकी वायसराय से मुलाकात हुई। वायसराय से गान्धी जी की, इसी दौरान में, तीन चार मुलाकातें भी हुईं। ३ अप्रेल को फेडरल कोर्ट के चीफ जस्टिस सर मारिस ग्वायर ने अपना निर्णय भी दे दिया। यह फैसला गांधीजी के पक्ष में था। फैसले का सारांश इस प्रकार है—

"यह स्पष्ट है कि दोनों पार्टियों—सरदार पटेल व ठाकुर साहब—में एक समझौता होचुका था। इसके अनुसार ठाकुर साहब सरदार पटेल के सिफारिशी नामों को सुधार कमेटी में स्वीकार करने के लिये वचन बद्ध हैं, बशर्ते कि वे नाम रियासत के बाहर के लोगों के न हों, यह सच है कि कमेटी के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सिर्फ ठाकुर साहब के ही हाथों में है लेकिन वे सरदार पटेल द्वारा सिफारिशी नामों में से ही सात को नियुक्त कर सकेंगे।" कमेटी के सभापति के सम्बन्ध में भी सर मारिस ग्वायर ने फैसला किया था। इसके अनुसार दस सदस्यों में से ही ठाकुर साहब किसी को सभापति चुन सकते हैं। न कि उनके अलावा ११ वें को सभापति नियुक्त कर सकते हैं। जैसा कि वे पीछे से कहने लगे थे। इस फैसले के अनुसार राजकोट में जो सुधार कमेटी बनेगी, उसके ७ सदस्य तो सरदार पटेल के सिफारिशी नामों में से रखे जावेंगे और तीन सदस्य ठाकुर स्वयं नामजद कर सकेंगे।

इस फैसले के बाद गांधी जी वायसराय से ४ अप्रैल को मिले। इन दिनों गांधी जी का पूरा ध्यान रियासतों की ओर ही था। वे शायद संघ विधान के निर्माण के पूर्व सब रियासतों को भी ब्रिटिश

भारत की सतह पर लाने को उत्सुक थे। गांधी जी ने वक्तव्य प्रकाशित करके एक एक करके सभी रियासतों को सलाह दी कि वे अपने यहाँ का सत्याग्रह बन्द करदें। इसके अनुसार जयपुर में जोरों से चलने वाला सत्याग्रह मेवाड़ में शान्त किन्तु दृढ़ता से चलने वाला सत्याग्रह और ट्रावनकोर म फिर नये सिरे से चलने वाला सत्याग्रह आदि सभी बन्द हो गये। इस प्रकार गांधी जी ने समस्त रियासतों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। उन्होंने एक वक्तव्य में आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भी सत्याग्रह में उतरने की सम्भावना प्रकट की। उन्होंने कहा कि इन दिनों सत्यागृह बन्द रहने से मुझे भावी मार्ग निर्णय में बहुत बल मिलेगा।

गांधी जी की तीव्र इच्छा थी कि राजकोट में शासन सुधार शीघ्र ही काम करने लगे और इसलिये वे स्वयं राजकोट गये। उन्हें यह आशा थी कि सर मारिसग्वायर के निर्णय और वायसराय के आश्वासन के बाद सुधार समिति बनने मे कोई देर नहीं लगेगी, लेकिन वहाँ कइ कल्पनातीत भीषण बाधाएँ उपस्थित हो गयीं। ब्रिटिश भारत की प्रगृति मे बाधक साम्प्रदायिकता वहाँ भी मुसलमानों, भय्यतों और गिरासियों की साम्प्रदायिकता के रूप में अड़ङ्गा लगाने लगी। साम्प्रदायिकता ने वहाँ महा भयंकर रूप धारण कर लिया। न ये लोग प्रजापरिषद का साथ देने का वायदा करते थे और न मार्ग से अलग ही होते थे। राजकोट के अधिकारी इस साम्प्रदायिकता के विष को बढ़ाने मे कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। दरबार बीरवाला ने गांधी जी के प्रत्येक समझौते की शर्त को ठुकरा दिया। अन्त में गांधी जी ने उसके अन्तर की सत्प्रवृत्ति पर विजय पाने के लिये सभी कुछ उसके हाथों में छोड़ दिया और "मैं हारा और तुम जीते" कहकर वे १५ दिन की निरन्तर किन्तु असफल कोशिशों के बाद वापस आगये। उन्होंने मारिसग्वायर के निर्णय का भी उपयोग नहीं किया। राजकोट

से लौटने पर उन्होंने जो वक्तव्य दिया, उससे ज्ञात होता है कि राज-कोट के कुचक्रों ने उन्हें बेहद निराश कर दिया था।

महान विप्लव के पूर्व

"अंग्रेजों की अपेक्षा डाकू ही हम पर राज्य करें तो ज्यादा अच्छा है"

—सरदार पटेल : ८ अगस्त १९४२

द्वितीय महायुद्ध के समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने जब युद्ध के उद्देश्यों पर प्रकाश डालने से इन्कार कर दिया तो मन्त्रिमण्डल संकट में पड़ गये। यदि वे अपने पदों पर रहते हैं तो इसका मतलब होता है कि देश की जनता महायुद्ध में अंग्रेजों के साथ है। इस भयानक स्थिति का अन्त कर देने के लिये कांग्रेस ने जहर का घूंट पीना ही श्रेष्ठ समझा। जब "भारत छोड़ो" आन्दोलन का सूत्रपात हो रहा था, तब गांधी जी ईश्वरीय आवाज को सुन रहे थे और सरदार पटेल गांधी जी को। अर्थात् उस समय देश की ऐसी विकट परिस्थिति हो गयी थी कि एकदम किसी को कोई कारगर रास्ता ही नहीं दिखाई

दे रहा था। इस सम्बन्ध में यह कह देना जरूरी है कि "भारत छोड़ो" प्रस्ताव के जरिये गांधी जी अहिंसा की नीति से एक इंच भर भी नहीं फिसले। अहिंसा तो उनके जीवन का निचोड़ था। अहिंसा तो वास्तव में गांधी का पर्याय है। सच पूछो तो अहिंसा का स्वाभाविक परिणाम ही "भारत छोड़ो" आन्दोलन था। १६४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह "भारत छोड़ो" आन्दोलन का ही आरम्भिक रूप था। १६४२ की परिस्थितियों को देखते हुए १६४२ का आन्दोलन गांधी जी का सबसे सही कदम था। इसमें जितना भयंकर दमन हुआ वह अंग्रेजों की नासमझी का कारण था। वे आन्दोलन की आध्यात्मिकता को कभी समझ ही नहीं पाये।

"एशिया एशियावासियों का ही है—मैं इस सिद्धान्त को नहीं मानता। मुझे यह ऐसा प्रतीत होता है जैसे यूरोपियनों के विरुद्ध कोई संगठन हो। हम एशिया एशियावासियों के लिये ही है—यह कहकर तभी सन्तुष्ट हो सकते हैं जबकि हम अपनी स्थिति कूप मण्डूकवत् स्वीकार करलें। लेकिन एशिया कुँए के मेंढक की तरह नहीं रह सकता। यदि एशिया को जीवित रहना है तो दुनिया को देने के लिये उसके पास एक सन्देश है।"

"हरिजन" में गांधी जी २४ दिस० १६३८

"गुलामी से भरा हुआ दिमाग ही यह सोच सकता है कि जापान हमें आजादी दे देगा। यदि कोई भारतीय यह कहे कि हम जापानियों का स्वागत करेंगे तो मैं कहूंगा कि उसकी गुलामी से भरी हुई मनोवृत्ति है, जो मालिकों के परिवर्तन में ही विश्वास करती है किन्तु स्वतन्त्रता की भावना के अर्थों पर कभी यकीन ही नहीं करती। यदि हमारा अंग्रेजों से मतभेद है तो इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि हम जापानियों या किसी दूसरे आक्रान्ता का अपने देश में स्वागत करें।" —मौलाना आजाद; कांग्रेस कीइलाहाबाद की बैठक मे भाषण ता० २६ अप्रैल १६४२

"भारतीयों ने गत शताब्दी में ही यह सीख लिया है कि साम्राज्यवादी देशों के क्या तरीके हैं चाहे फिर वह यूरोप हो या एशिया। समय आने पर हम जापान के बादशाह तोजो की मदद के बिना ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेंगे। तोजो ने टोकियो से रेडियो पर बोलते हुए अभी अभी कहा था कि वह भारत पर हमला नहीं करेगा, यह उपहासास्पद बात है। हमारी स्वतन्त्रता के लिये हमें जापानियों की हमदर्दी नहीं चाहिये। भारत जापानी घोषणाओं में विश्वास नहीं करता। उसके कारनामों को देखना हो तो मँचूरिया, चीन तथा अन्य देशों में देखे जा सकते हैं।"

—अब्दुलगफ्फार खाँ सीमान्त गांधी
ता० २ अगस्त १९४२

"बाहर या ऊपर से मुक्ति की आशा न रखो। स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर ही विद्यमान है। यह तुम्हारा कार्य है कि उसे खोज निकालो या बरबाद करदो।"

डाक्टर पट्टाभि सीतारमैय्या
१ जुलाई १९४२

"यदि विरोधी ताकतें इस महायुद्ध में कामयाब होजायँ तो भारतवर्ष एकदम निकृष्ट गुलाम हो जायेगा और फिर जापान, जर्मनी और इटली दुनिया के लिये श्राप के समान हो जायेंगे।"

आसफअली, ३ जुलाई १९४२

"मैं इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि कांग्रेस यदि इस समय आन्दोलन छेड़ रही है तो वह दुश्मनोंको मदद पहुँचा रही है।"

—आचार्य कृपलानी, २६ जुलाई १९४२

"जापान ही इस देश का निकट शत्रु है अतः जापान से ही लड़ना जरूरी है और उसे शीघ्र ही परास्त करना होगा।"

—सत्यमूर्ति, २३ मार्च १९४२

"भारत कभी भी जापानियों की शक्ति को स्वीकार नहीं कर

सकता। यहाँ जो भी हुकूमत रहेगी वह भारतीयों की ही होगी।"

—बी० जी० खेर ६ अप्रैल १९४२

"यह शर्म और अज्ञानता से भरी हुई बात है कि जापानी हमारा भला कर सकते हैं। बाहरी कोई भी ताकत हमें स्वराज्य नहीं दिला सकती।"

—मीराबेन, २७ मई १९४२

"हम दुनिया से नाज़ीवाद और फासिस्टवाद को मिटा देना चाहते हैं। हम अपने देश की सुरक्षा का प्रबन्ध राष्ट्रीय आधार पर करना चाहते हैं जिसकी सुरक्षा आज गहरे खतरे में पड़ गई है। यह तभी सम्भव हो सकता है जब भारत स्वतन्त्र होकर अपनी राजनीति का स्वयं निर्माता हो जाय और इसकी प्राप्ति के लिये वैसे ही उपायों को काम में लाये। मि० एमरी हमेशा ही गलत बातों का तथा शरारत से भरे हुए वक्तव्यों का सहारा लेता है। फिर भी अंग्रेज़ों के साथ भारत की कोई लड़ाई नहीं है। भारत तो हमेशा ही उनकी भलाई चाहता है और मजलूमों के प्रति उसे पूरी सहानुभूति है।"

—गोविन्द वल्लभ पन्त, ३१ दिस० १९४१

स्वतन्त्रता दिवस के उपलक्ष में १६ जून १९४० को अहमदाबाद में बोलते हुए सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा—

"कि १९३० और १९३२ के आन्दोलनों में कांग्रेस में विरोधी शक्तियों का जमाव नहीं था। आज कांग्रेस में एक से अधिक आवाजें पैदा हो गयी हैं। यदि वे शक्ति की परिचायिका हैं तो उनका स्वागत है, और यदि उनका उद्देश्य आपस में एक दूसरे का विरोध और बरबादी है, तो निश्चय ही हमारी हार सामने है। देश में सिर्फ एक ही सर्वमान्य नेता है। यदि दूसरा कोई है तो वह हमें रास्ता दिखाने के लिये सामने आये। लेकिन जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें बिना किसी संकोच के महात्मा गांधी का अनुकरण करना चाहिये। महात्मा गांधी का कहना है कि हमें रोजाना कातना चाहिये। कांग्रेस के सैनिकों को कातना ही चाहिये। उनका नेता बराबर २० वर्षों से

चरखा कात रहा है और उसने अपने हथियारखाने में इससे ज्यादा कारगर दूसरा कोई हथियार नहीं पाया है। जो चरखे के ऊपर विश्वास नहीं करते, उन्हें उन लोगों को रोकना नहीं चाहिये जो उसपर विश्वास करते हैं।"

"महात्मा गांधी १६३० की तरह स्वतन्त्रता दिवस के नाते देश की नब्ज को टटोलना चाहते हैं। जैसे गांधी जी के पास १६३० में भी कोई पूर्व निर्धारित योजना नहीं थी, उसी प्रकार आज भी ऐसी कोई निश्चित योजना नहीं है। जब समय आयेगा तो वे आपका नेतृत्व अवश्य ही करेंगे। इस क्रिकट समय में वे लड़ाई छेड़कर उसके सेनापति बनने की जोखिम सिर पर नहीं लेना चाहते। यदि लड़ाई गले आ ही पड़ी तो वे जोखिम उठाने के लिये भी तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार से कांग्रेस ने महायुद्ध में सम्मलित होने के उद्देश्य जानना चाहे थे लेकिन सरकार ने कोई उत्तर नहीं दिया।"

"बम्बई धारा सभा की कांग्रेस पार्टी के इस्तीफे दे देने के बाद, उनकी पहिली बैठक में पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से सरदार पटेल ने कहा—"मन्त्रिमण्डलों के इस्तीफा दे देने के बाद, कांग्रेस के अन्दरूनी मतभेद तथा झगड़े स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं। चरखे के पीछे सत्याग्रह का दर्शन--शास्त्र छिपा हुआ है। यदि किसी को इस बात पर विश्वास न हो तो वह शान्त रहे। जब संग्राम जोरों पर हो तब आलोचकों को चुप ही रहना उचित होता है। यह काम तो सेनापति का है कि वह किस हथियार के सहारे से लड़ेगा। २६ जनवरी हमारी जांच का दिन होना चाहिये। हमें अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये योग्य बनना चाहिये। सेनापति तब तक नहीं लड़ सकता जब तक कि सेना पूरी तरह तैयार न हो। मि० जिन्ना का यह कहना कि कांग्रेस तो एक हिन्दू संस्था है, कांग्रेस के लिये आत्मघात करने के समान है।"

"यह पहिला अवसर है जबकि मन्त्रिमण्डलों इस्तीफे के देने

के बाद सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि यहाँ एकत्रित हुए हैं। यह आवश्यक ही था कि हम बड़े दिनों की तातीलों में देश की वर्तमान परिस्थिति, हमारी कठिनाइयों तथा हमारे भविष्य के प्रोग्राम के विषय में आपस में सलाह मशविरा करलें। जहाँ तक सम्भव हो, अब हमें हर माह देश की परिस्थिति के विषय में विचार करने के लिये आपस में मिलते रहना होगा। हमे इस विचार को लेकर लौटने की जरूरत नहीं है कि भविष्य में हमें कुछ भी नहीं करना है और सरकार की जैसी इच्छा होगी, अपना शासन कार्य करती चली जायेगी। मौजूदा परिस्थितियों में ब्रिटिश हुकूमत ज्यादा दिनों तक टिक ही नहीं सकती। शासन का सम्पूर्ण भार आज नहीं तो कल हमारे ही कन्धों पर पड़ने वाला है चाहे हम उसके सम्भालने के योग्य हों या न हों।"

"आप सब जानते ही है कि मुस्लिम लीग ने अभी कुछ दिनों पहिले ही "मुक्ति-दिवस" (Day of Deliverance) मनाया था। उनके मनाने का ढंग ऐसा था जैसे कि मंत्रिमण्डलों को जबरदस्ती निकाला गया हो। मुस्लिम लीग ने यह इस भय के कारण किया था मानों कांग्रेस का अंग्रेजी सरकार के साथ कोई गुप्त समझौता होगया हो। लेकिन मुस्लिम लीग के समझने में यह भूल होगयी कि कांग्रेस के मंत्रीगण अपने पदों से हटाये नहीं गये हैं वरन् उन्होंने सैद्धान्तिक मतभेद के कारण ही इस्तीफा दिया है। यदि हम चाहते तो "मुक्ति दिवस" के दिन ही फिर से मंत्रिमण्डलों की स्थापना कर सकते थे। मंत्रिमण्डलों के अपने पदों पर से हट जाने के लिये भगवान से प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यह तो कांग्रेस के लिये सिद्धान्त का सवाल था और इसीलिये उसने वैसा किया। हमने हमारे मतदाताओं को यह वचन दिया है कि हम यदि अपने देश-वासियों का हित नहीं कर सकेंगे तो अपने पदों से उसी समय हट जायेंगे। ऐसा भी समय आगया जब हमें यह निश्चय होगया कि अब हमारा इन पदों पर बने रहना हमारे दिये हुए वचनों तथा देश

के हित के लिये बुरा है। मैं आपको पूरी तौर से विश्वास दिलाता हूँ कि अब कांग्रेस तब तक पद ग्रहण नहीं करेगी तब तक कि स्वतंत्र भारत में उसे शासन के लिये पूरी शक्तियाँ प्राप्त न हो जायँ।"

"जब महायुद्ध का आरम्भ हुआ तो गांधीजी ने अपनी ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति जाहिर की। चूंकि हम तो पहिले से ही वचन बद्ध थे अतः हमारी नाजीवाद के प्रति किसी प्रकार की भी सहानुभूति नहीं थी। यहाँ यह स्वीकार करना हमारा कर्तव्य है कि प्रथम महायुद्ध के अन्त में अंग्रेजों ने वरसेल्स की जो संधि (Treaty of versailles) जर्मनी के साथ की थी वह बहुत ही स्वार्थ एवं निर्दयतापूर्ण थी। उसी के परिणाम स्वरूप जर्मनी में नाजीवाद का जन्म हुआ। फिर भी गांधीजी ने यह स्पष्ट कर दिया कि इस प्रश्न पर वे कांग्रेस से सहमत नहीं हैं। कांग्रेस गत महायुद्ध के कड़वे अनुभवों से भली भांति परिचित है।"

"यह कौन बता सकता है कि अन्त में जीत किस की होगी? कुछ भी हो, इस युद्ध में जो हारेगा वह तो मिट ही जायेगा और जो जीतेगा वह इतना कमजोर हो जायेगा कि फिर कभी भी संभल भी न सकेगा। अपने पुराने अनुभवों के आधार पर ही कांग्रेस इस बात का अंग्रेजी सरकार से स्पष्ट उत्तर चाहती है कि क्या लड़ाई के खतम हो जाने पर वह भारत को स्वराज्य दे देगी? हमारी यह मांग उचित और स्वाभाविक ही है। पर अंग्रेजी सरकार हमें यह उत्तर देती है कि हमारे में एकता नहीं है, हम अल्पसंख्यकों को समान संरक्षण देने में असमर्थ हैं और हम नरेशों से मिलकर काम नहीं करते। जब ब्रिटिश सरकार का हमारे प्रति यह रुख है तो हम सरकारी पदों पर कैसे रह सकते थे?"

"हमारा अङ्गरेजों के साथ समझौता नहीं हो सकता। जब तक हमारे बीच में तीसरा दल विद्यमान है तब तक अल्पसंख्यकों और कांग्रेस के बीच समझौता हो ही नहीं सकता। इसका हमें पूरा

अनुभव है। हम यह कभी भी भूल नहीं सकते कि जब हमारी एकता की बातचीत इलाहाबाद सम्मेलन में चल रही थी तब सर सैम्यू अलहोर ने मुस्लिमों को हिन्दुओं के कितना विरुद्ध कर दिया था! दुनिया की सहानुभूति जीतने के लिये ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बराबर यही दुहराते चले जारहे हैं कि यदि भारतीयों में एकता कायम हो जाय तो आज उन्हें स्वराज्य दिया जासकता है। "मुक्ति-दिवस" की योजना महज़ इसीलिये की गई कि तमाम दुनिया और खासकर अङ्गरेज लोग यह देखलें कि भारतीयों में एकता का पूर्ण अभाव है और हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे के सख्त विरुद्ध हैं। जब "मुक्ति दिवस" के खिलाफ मुसलमानों के कई दलों ने आवाज़ें बुलन्द कीं तो हिन्दुओं के विरोध में मनाये जाने वाला दिन अम्बेडकर—जिन्ना--बैरामजी का सम्मिलित विरोधी दिवस बन गया और इन्होंने सम्मिलित रूप से कांग्रेस और हाई कमाण्ड के खिलाफ खूब विष वमन किया। कुछ लोगों ने हमें यह भी सुझाया कि कहीं यह विरोध गृह युद्ध का रूप न धारण करले। हम इस प्रकार के भय से अपने सिद्धान्तों को नहीं त्याग सकते। यदि कोई हिंसात्मक कार्यों को उत्तेजना देना चाहे तो हम उस आग में भी कूद पड़ने को तैयार हैं क्योंकि हमने अहिंसा की प्रतिज्ञा ली है। हम किसी भी तरह अपने सिद्धान्तों को छोड़ने के लिये तैयार नहीं। हम हर कोशिश से देश में अहिंसात्मक वातावरण ही कायम रखना चाहते हैं।"

"मुस्लिम लीग की स्थिति को समझ लेना आसान काम नहीं है। वह आखिर चाहती क्या है? बार-बार कांग्रेस ने यही कोशिश की कि दोनों दलों में सम्मानपूर्ण समझौता होजाय पर हर बार जिन्ना साहब ने हमें झांसे दिये। कांग्रेस ने समझौते की खातिर अपने पुराने और आदरणीय नेता पंडित मदनमोहन मालवीय तक की बात टाल दी और साम्प्रदायिक निर्णय (Communal Award) को ठुकराया नहीं। मुस्लिम लीग हमेशा हमारी देन को ठुकराती रही।

और मज़ा यह कि अपनी मागें कभी भी पेश नहीं कीं। एंग्लो इंडियन पत्रों ने, जो समय समय पर लीग का पक्ष करते नज़र आये, संयुक्त मंत्रिमण्डलों का सुभाव रखा, लेकिन लीग ने कभी भी खुल कर इस बात का समर्थन नहीं किया और न इसके लिये कभी अपनी मांगें ही रखीं। कांग्रेस तो हमेशा ही दोस्ती का हाथ आगे बढ़ाती रही, पर किसके लिये ? यही तो सवाल है। दोस्ती हो ही कैसे सकती है, जब तक कि दोनों तरफ के दिलों में एक दूसरे के प्रति सद्भावना और प्रेम न हो। जिन्ना साहब कांग्रेस पर जुल्मों का आरोप करते हैं किन्तु आज तक उन्होंने आरोपों के प्रमाण पेश नहीं किये। इन आरोपों का उत्तर प्रान्तीय गवर्नरों को देना चाहिये था परन्तु उन्होंने इस भय के कारण अपने मुंह सी रखे हैं कि वास्तविकता का जिक्र करने से कहीं लीग नाराज न हो जाय। हर समझौते की चर्चा के पहिले लीग का यह प्रथम दावा रहता है कि समझौते की बात तभी शुरू हो सकती है जबकि कांग्रेस इस बात को स्वीकार करले कि मुसलमानों की सब से बड़ी और जिम्मेदार संस्था मुस्लिम लीग ही है। यदि कांग्रेस इस बात को स्वीकार करले तो सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश के पठानों का तथा भारतवर्ष के शिया मुसलमानों का क्या भविष्य होगा जो इस देश के ८ करोड़ मुसलमानों में आधे से भी ज्यादा हैं, क्या कांग्रेस इन मुसलमानों के साथ, जिनका भाग्य कांग्रेस के साथ बंधा हुआ है, धोखेबाज़ी करेगी ? इसके अलावा आज की कांग्रेस के निर्माताओं में से कुछ प्रमुख मुसलमानों जैसे मौलाना आज़ाद आदि को कांग्रेस कभी छोड़ सकती है ? देश के स्वातंत्र्य संग्राम में मौलाना आज़ाद की सेवाएँ और कुरबानियाँ देश के अन्य महान नेताओं से किसी तरह भी कम नहीं हैं। जिन्ना साहब की इस बेहूदी ज़िद का मतलब यह है कि यदि कांग्रेस झगड़ा निबटाने के लिये स्वीकार करले कि मुस्लिम लीग ही मुसलमानों की सबसे बड़ी और जिम्मेदार संस्था है तो वह फिर हिन्दू संगठन के

सिवाय कुछ रह ही नहीं जाती और जो मुसलमानी जमातें तथा मुस्लिम महान व्यक्ति आज तक कांग्रेस के साथ रहे हैं उनका भविष्य हमेशा के लिये खतरे में पड़ जाता है। कांग्रेस जिन्ना साहब की यह जिद पूरी करके आत्मघात करना नहीं चाहती। क्या हम मौलाना साहब और शिया कान्फरेन्स तथा जमीयत उलेमा के नेताओं से यह कहें कि वे राष्ट्रीय संस्था को छोड़कर साम्प्रदायिक संस्था के सदस्य हो जायँ ? ब्रिटिश सरकार चाहती है कि कांग्रेस को इस महायुद्ध के उद्देश्य बताने के पूर्व ही जिन्ना साहब से लड़वा दिया जाय और उन्हें अपनी ओर फोड़ लिया जाय। इस चाल में ब्रिटिश सरकार को निराशा के सिवाय कुछ भी पल्ले नहीं पड़ सकता। वह जब तक अपने परामर्शदाताओं के सहारे शासन करना चाहती है, तब तक करती रहे। चाहे हम मुट्ठी भर ही हैं फिर भी हम यह नहीं चाहते कि कांग्रेस राजनीतिक हाराकिरी करे, जैसा कि जिन्ना साहब उससे हाराकिरी करवाने पर तुले हुए हैं। यदि इस्तीफे देने से किसी को मुक्ति मिली है तो मंत्रियों को जो अपने विभागों के दैनिक कार्यों से बुरी तरह दबे जा रहे थे। इस्तीफा देने के बाद हमारे आपसी मतभेद बिलकुल दूर हो गये हैं। देश ने फिर गांधीजी का नेतृत्व स्वीकार कर लिया है, क्योंकि देश में वे ही एक ऐसे नेता हैं जो हमें विजय प्राप्त करा सकते हैं। वह चमत्कारी जीव हैं। अब हमें उन्हीं की रहनुमाई में कार्य करना है। यदि कांग्रेसियों में कोई ऐसा है जो गांधीजी के आदेशानुसार चलने में असन्तोष का अनुभव करता हो तो वह सामने आकर अपने रास्ते से हमें संचालित करे। पर मुझे भरोसा है कि ऐसा व्यक्ति स्वयं ही मिट जायेगा। गांधीजी की आज्ञाओं को ईमानदारी के साथ पालन करके ही हम जीत सकते हैं।"

जिन्ना साहब ने कांग्रेसी मंत्रियों पर जो आरोप लगाये थे उनका उत्तर देते हुए २६ दिसम्बर १६४१ को सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने जिन्ना साहब

के निराधार आरोपों का खण्डन करते हुए कहा था—"साधारणतया मुझे उस अपील से कोई सरोकार नहीं है जो "मुक्ति-दिवस" देश भर में मनाये जाने के लिये मुस्लिम लीग के प्रेसीडेन्ट मि० जिन्ना ने प्रकाशित की है। लेकिन जब उन्होंने अपनी अपील में "कांग्रेस हाई कमाण्ड" पर ही हमला किया है तब मेरा पार्लिमेंन्टरी सब कमेटी के अध्यक्ष होने के नाते यह कर्तव्य हो जाता है कि उन्होंने जो निराधार आरोप मंत्रियों और कार्यसमिति पर किये हैं उनका खण्डन करूं।"

"देश अब मि० जिन्ना के निराधार आरोपों से अच्छी तरह वाकिफ हो चुका है। ये आरोप अपनी बेहूदगी और अतिरंजन में इतने बढ़ते चले जारहे है कि इनका अन्त होना ही कठिन होगया है। जब मुस्लिम लीग ने पीरपुर कमेटी के जरीये कांग्रेस पर निर्णीत आरोप किये तब मैंने उन्हें सूचित किया था कि वे हर शिकायत की जांच करें और उसके बाद रिपोर्ट मेरे पास भेज दें। ये रिपोर्टें प्रान्तीय सरकारों द्वारा ही प्रकाशित कराई गईं थीं। इनके पढ़ने से ही स्पष्ट हो जाता है कि रिपोर्ट का प्रत्येक आरोप एकदम निराधार है। जब कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से अपने महायुद्ध के उद्देश्यों तथा भारत में उनके उपयोगों के विषय में एक घोषणा करने की मांग की तो मि० जिन्ना ने फिर मंत्रियों के जुल्मों के लिये आवाज़ बुलन्द की। तत्कालीन कांग्रेस प्रेसीडेन्ट डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने तमाम आरोपों को मय प्रमाणों के, किसी स्वतन्त्र पंचायत के सुपुर्द कर देने की मि० जिन्ना ने मांग की। किन्तु जिन्ना साहब ने इस मांग को यह कहकर ठुकरा दिया कि ये सभी आरोप वायसराय के समक्ष पेश किये जाचुके है। लेकिन वायसराय तो बोलने ही नहीं पाया, उसके पहिले ही उन्होंने अपनी संस्था मुस्लिम लीग तथा तमाम दुनिया से उन आरोपों का प्रमाणित सत्य के रूप मे स्वीकार कर लेने की प्रार्थना की। मेरी नजर में यह आरोप भयानक, भूठे तथा निराधार हैं और देश की साम्प्रदायिक शान्ति को खतरे में डालने वाले हैं। जब कांग्रेसी

मंत्रियों ने पद ग्रहण किये तब पार्लिमेंन्टरी सब कमेटी के प्रेसीडेन्ट की हैसियत से मैंने तमाम मत्रियों को हिदायत देदी थी कि वे अल्प-संख्यकों के हितों की रक्षा करें। साम्प्रदायिक ढङ्ग की शिकायतों पर पार्लिमेन्टरी सब कमेटी के सदस्यों ने हमेशा ही बड़ी सावधानी से विचार किया है। जब गवर्नर को यह ज्ञात हुआ कि मंत्रियों की कार्यवाही उचित नहीं है, तभी मंत्रियों ने मेरे आदेश से फौरन ही, अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों पर प्रभाव डालने वाले मामलों में गवर्नरों से हस्तक्षेप करने को कहा है। अभी जब मि० जिन्ना ने आरोप किये तब भी मैंने प्रधान मंत्रियों को फिर हिदायत दी कि इन आरोपों का सम्बन्ध गवर्नरों से भी है। अतः उन्हें इन आरोपों के मामलों में हस्तक्षेप करने दिया जाय। मुझे प्रधान मंत्रियों ने सूचित किया कि गवर्नर इन आरोपों को मिथ्या मानते हैं। गवर्नरों से कहा गया कि वे इन आरोपों का प्रतिवाद करें किन्तु गवर्नरों ने वैधानिकता की दृष्टि से वजनदार न होने के कारण उनका प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। लेकिन मुझे इस बात का भरोसा है कि गवर्नरों ने इन आरोपों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्टें वायसराय को अवश्य ही भेजी है। यदि गवर्नरों ने इन आरोपों में कोई तथ्य माना होता तो उन्होंने अवश्य ही अपने मन्त्रियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया होता। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि मि० जिन्ना, किसी भी स्वतन्त्र और निष्पक्ष पंच के सामने कांग्रेस, मन्त्रियों तथा हाईकमाण्ड के विरुद्ध जो आरोप उन्होंने किये हैं, कभी भी रखने का साहस नहीं करेंगे।"

"यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि अपने व्यक्तिगत कारणों वश वायसराय और गवर्नर अभी भी उन आरोपों का उत्तर नहीं दे रहे हैं जिनसे उनका भी उतना ही सम्बन्ध है जितना मंत्रियों का है। मंत्रियों ने गवर्नरों की प्रार्थना पर ही पद ग्रहण किये थे और वहाँ से हटे भी तो अपनी मरजी से। उनके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा प्रायः

सभी बड़े बड़े ब्रिटिश राजनीतिज्ञों, वायसराय और गवर्नरों ने की है। अतः मैं इस बात को अनुचित समझता हूँ कि उन मंत्रियों के पवित्र नामों के साथ उन गंदे आरोपों को जोड़ा जाय।"

यह समझ में नहीं आया कि जब पंडित जवाहरलाल नेहरू व जिन्ना साहब की आपसी समझौते के लिये रोजाना बातचीत चल रही थीं और नेहरू जी इस बात की खोज में लगे हुए थे कि समझौते का कोई न कोई मार्ग निकल आवे, उसी समय जिन्ना साहब ने कांग्रेस मंत्रियों के इस्तीफा देने पर मुस्लिमों के नाम मुक्ति दिवस मनाने के लिये अपील निकाली। यह तो सभी भली भांति जानते थे कि जिन्ना साहब समझौते की किसी भी कोशिश को सफलता के द्वारा तक नहीं पहुँचने देते। माननीय दृष्टि से समझौते में सफलता प्राप्त कर लेना ऐसी परिस्थिति में तो असंभव ही था जब कि बातचीत के दौरान में ही जिन्ना साहब ने मंत्रियों पर आरोप करदिये। कोई भी व्यक्ति या संस्था आत्माभिमान को छोड़कर समझौता करने को कभी भी तैयार नहीं हो सकती। और कांग्रेस जैसी विश्व विख्यात और सर्वोपरि संस्था के लिये तो ऐसे समय में समझौते की ओर कदम उठाना और भी अपमानजनक बात थी।

सरदार पटेल ने २६ जुलाई १९४२ को इलाहाबाद में क्रिप्स साहब के प्रस्तावों पर बोलते हुए कहा—

"सर स्टैफर्ड क्रिप्स के भारत आगमन से कांग्रेस और भी भ्रमीभूत होगई और उनके प्रस्ताव ने ही महात्मा गांधी को "भारत छोड़ो" अन्दोलन की ओर घसीटा है। कांग्रेस ने सरकार को कई अवसरों पर सहायता प्रदान की है। हमने पूना का प्रस्ताव महात्मा गांधी जैसी विभूति को त्याग कर भी किया था लेकिन सरकार ने हमारे इतने बड़े त्याग का मतलब भी गलत ही लगाया। हमारे अलग रहने की नीति का भी गलत ही अर्थ लगाया गया और सर स्टैफर्ड क्रिप्स को, अमेरिका और चीन की शिकायतों पर पर्दा डालने को,

भारत भेजा गया इस देस के किसी भी दल ने क्रिप्स प्रस्तावों को अच्छा नहीं कहा। क्रिप्स के प्रस्तावों पर से माहात्मा गांधी को अंग्रेजों की ईमानदारी पर रत्ती भर विश्वास नहीं रहा और उन्होंने होने वाले हमलों से भारत को बचाने के लिये अंग्रेजों को भारत से निकल जाने की सलाह दी। महात्मा गांधी का विश्वास था कि विदेशी हमलों से स्वतंत्र भारत ही सुरक्षित रह सकता है।"

"रूस का जहां तक सम्बन्ध है वहाँ तक तो इस महायुद्ध को जनता का युद्ध कहना उचित लगता है। और रूस ने इस युद्ध में जिस बहादुरी और साहस का परिचय दिया है उससे सभी देश के स्वतंत्रता प्रिय व्यक्तियों को अपार प्रसन्नता हुई है। भारत को जान बूझ कर "एटलान्टिक चार्टर' से अलग रखा गया है और महायुद्ध की समाप्ति के बाद से ब्रिटेन और रूस की आपस में २० साल की सन्धि भी हो चुकी है, उसके अनुसार रूस ब्रिटिश साम्राज्यवाद के किसी भी अन्दरूनी मामले में नहीं हस्तक्षेप करेगा। इसका सीधा सच्चा अर्थ यह हुआ कि भारत की स्वतंत्रता से रूस को कोईभी सरोकार नही है। यह तो ठीक हुआ कि ३ साल के बाद कम्यूनिस्ट पार्टी पर का प्रतिबन्ध उठा लिया गया है। अंग्रेजों में यही खूबी है कि वे जिसे दोस्त बनाकर फायदा उठाना चाहते हैं उसे वे जिस समय चाहिये और जैसे भी बन सके दोस्त बना लेते हैं। जिस समय श्री० एन० एम० जोशी ने केन्द्रीय धारासभा में यह प्रस्ताव पेश किया था कि सरकार को कम्यूनिस्टों के साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये, उस समय सर रेजीनाल्ड मैक्सवैल ने कम्यूनिस्टों के खिलाफ जिस भाषा का प्रयोग किया था उसे आज भी देश की जनता भूली नहीं है।'

"इग्लैण्ड की लेबर पार्टी—मजदूर दल—की दशा दूसरे दलों से कोई अच्छी नहीं है। जब उसके हाथ में शासन था तब उसने ही गांधीजी को गिरफ्तार करवाया था और उसकी इच्छा से ही राउन्ड टेबल कान्फरेन्स हुई थी। मजदूर दल के नेता मि० रैम्जे मैकडानल्ड

ने ही हमें साम्प्रदायिक निर्णय—Communal Award—भेंट किया था जिसके कारण गांधीजी को आमरण अनशन जैसा खतरनाक कदम उठाने को मजबूर होना पड़ा। आज भी ब्रिटिश मंत्रिमण्डल मि० चर्चिल और मि० ईडन की प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति से ऊपर नहीं उठा है।"

बम्बई में विद्यार्थियों की विशाल सभा में भाषण देते हुए जुलाई १९४२ में सरदार पटेल ने कहा—

"कोई भी भरतीय भविष्य में होने वाले युद्ध से अलग नहीं रह सकता क्योंकि वह युद्ध अपने ढंग का निराला ही होगा। विद्यार्थियों को अपना अध्ययन छोड़ कर उसमें शरीक होना पड़ेगा माना कि देश के विद्यार्थियों में भी मतभेद हैं किन्तु युद्ध के आरंभ होते ही वे सब मिट जायेंगे। भारत के विभाजन की चेष्टा तीसरा दल जोरों से कर रहा है। लेकिन यदि देश कांग्रेस के सुपुर्द कर दिया गया तो वह शासन भार मुसलमानों के सुपुर्द कर देने को प्रसन्नता से तैयार है। वायसराय की कार्य कारणी के सदस्य कांग्रेस को समझा रहे हैं कि वह युद्ध आरंभ न करे। कांग्रेस ने २॥ साल को छोड़कर कभी भी सत्ता अपने हाथ में नहीं ली। उस समय जितनी भी हो सके जनता की सेवा ही उसका प्रमुख उद्देश्य था। लड़ाइयां तो कांग्रेस ने लड़ीं पर उसका फायदा दूसरों ने ऊंचे पदों के रूप में प्राप्त किया। उनका कहना है कि कांग्रेस के पक्ष में देश के केवल मुट्ठी भर ही लोग हैं? यह तो हमें तब दिखलाना है जब कि गांधीजी बम्बई में कांग्रेस की बैठक होने के बाद देशव्यापी आन्दोलन आरंभ करेंगे। उस समय हमारे आलोचक स्वंय देख लेंगे कि उनका कथन कितना मिथ्या है। ब्रिटिश और अमेरिका के अखबारों में हमारे अन्दोलन आरंभ करने के समाचारों को पढ़कर खलबली मच गयी है। हमसे कहा गया है कि लड़ाई के खत्म होने तक ठहर जावो। पर हम पूछते हैं कि जब लड़ाई के बाद ही देश को स्वतंत्र करना है तो उसके पहिले करने में

क्या रुकावट है ? गत महायुद्ध में जो वचन दिये गये थे उन्हें अंग्रेजी सरकार ने आज तक पूरा नहीं किया। गत महायुद्ध में भारत ने अंग्रेजों को जो सहायता दी थी उसके पुरुस्कार में अंग्रेजों ने हमें जालियांवाला बाग की दुर्घटना और रौलट एक्ट प्रदान किये थे। अब कांग्रेस पुराने अनुभवों के आधार पर होशियार हो चुकी है और भारत पर होने वाले हमलों से देश की रक्षा करने के लिये भारत में स्वतंत्रता चाहती है। भारत की स्वतंत्रता का अर्थ यह होगा कि दुनिया की आपसी लड़ाइयों का अन्त हो जायेगा।"

विश्व विख्यात "अगस्त प्रस्ताव" अर्थात "भारत छोड़ो" प्रस्ताव को कांग्रेस के खुले अधिवेशन में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया। उसका समर्थन करते हुए सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा—

"इन पिछले कुछ दिनों से, जब से कार्य समिति ने अगस्त प्रस्ताव को पास किया है, तब से बाहरी दुनिया में भारतवर्ष के प्रति काफी दिलचस्पी पैदा हो गई है। अब उनको इतना विज्ञापन प्राप्त होरहा है जितना कि आजतक उन्हें पैसे खर्च करने के बाद भी नहीं प्राप्त हो सका था। अब हमको वे लोग भी बिना किसी मुआवजे ही सलाह दे रहे हैं जिनका पहिले भारतवर्ष से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा और न कभी जिन्होंने देश के विषय में कोई दिलचस्पी ही ली थी। कुछ हमें परामर्श दे रहे हैं और कुछ हमें धमका भी रहे हैं और कुछ जो भारत के प्रसिद्ध शुभचिन्तक माने गये हैं वे घोषित कर रहे हैं कि इस समय युद्ध से कोई भी लाभ नहीं होगा। लेकिन मैं इन तमाम आलोचकों को इस समय कोई भी जवाब नहीं देना चाहता क्योंकि उन्हें मैं जो जवाब दूंगा वह उन तक कभी भी नहीं पहुँच सकेगा। खबरों के आवागमन के जो साधारण साधन हैं वे हमारे हाथों में नहीं है और न हमारे लिये खुले ही हैं। इस

समय बाहर सिर्फ वे ही खबरें आती हैं जो भारत सरकार के लिये लाभप्रद है।"

"यदि इंगलैण्ड और अमेरिका यह सोच रहे हों कि वे ४० करोड़ जनता की बिना सहायता के ही युद्ध में सफलता प्राप्त कर लेंगे तो यह सोचना उनकी पूरी मूर्खता है। लोगों को यह ज्ञात हो जाना चाहिये कि यह जनता की लड़ाई है और उन्हें अपने देश और अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिये लड़ना है। जब तक लोगों में यह भावना जागृत नहीं होती तब तक पत्रों तथा रेडियों द्वारा कितना ही प्रचार क्यों न किया जाय, सभी व्यर्थ जायेगा।"

"तीन वर्षों से कांग्रेस बराबर सरकार को नहीं सताने की नीति का पालन कर रही है। उसे कई बार उकसाया भी गया फिर भी वह बिलकुल ही शान्त बनी रही। लेकिन हमारा यह रुख सरकार को पसन्द नहीं आया। ब्रिटेन सोच रहा है कि हमेशा दुनिया में यही स्थिति बनी रहेगी। अब दुश्मन उनके दरवाजे पर ही आगया है, अब सुस्त बैठने से कई जोखमें सिर आ पड़ेगी।"

"ब्रिटिश सरकार हमसे जो कुछ भी कहती है, उसमें वह कभी भी ईमानदार नहीं रही। भारत में वह हमें मुस्लिम लीग का नाम बताकर कहती है कि दोनों में से किसको सत्ता सौंपी जाय। लेकिन बरमा के विषय में उन्होंने यह सवाल कभी भी नहीं किया। वे अपने रेडियो और पत्रों के द्वारा यह प्रचार कर रहे हैं कि बरमा की सरकार एक खिलौना सरकार है। लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि इस समय नई दिल्ली में किस प्रकार की सरकार काम कर रही है? भारतवर्ष के विषय में यदि कहा जाय तो, जो भारत के परम मित्र कहलाते हैं वे मि० एटली भी चर्चिल की भाषा में ही बोलते नजर आते हैं। अंग्रेज भारत की रक्षा महज इसलिये कर रहे हैं कि अंग्रेजों की आगे की पीढ़ियों के लिये भारत सुरक्षित और स्थायी हो जाय। रूस जो युद्ध

में उलझा है वह जनता का युद्ध है, चीन जो लड़ाई लड़ रहा है, वह भी जनता का ही युद्ध है। इन दोनों देशों में जनता स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये नहीं लड़ रही है बलिक अपने देश की रक्षा के लिये लड़ रही है। किन्तु जब भारत पर भारतीय जनता का ही अधिकार नहीं है, तो यह जनता का युद्ध कैसे कहा जा सकता है? अंग्रेज इसे "लोकतन्त्र की रक्षा के लिये युद्ध" कहते है। कांग्रेस ने सरकार को तीन साल की मोहलत इसीलिये दी थी कि वह इस सिद्धान्त को भारत पर भी लागू करे। जब चर्चिल ने स्पष्ट घोषित कर दिया कि भारत की समस्या शुद्ध रूप में ब्रिटेन से सम्बन्ध रखती है और यही मत ब्रिटिश सरकार ने भी घोषित कर दिया, तो जो अंग्रेज या अमेरिकन भारत से सहानुभूति रखते थे, उन्होंने भी अपनी आवाज बन्द करदी।"

'जापानियों की घोषणाओं तथा अच्छे इरादों पर भी देश को कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मंचूरिया, चीन तथा अन्य स्थानों में जापानियों ने जो कुछ किया, उसीसे स्पष्ट है कि जापान भी इन्हीं साम्राज्यवादी देशों का अनुकरण ही नहीं, वरन इनसे भी दो कदम आगे ही जारहा है। भारतवर्ष जापानी घोषणाओं में कभी भी विश्वास नहीं कर सकता।"

"अंग्रेजों को इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि सत्ता किसको हस्तान्तरित की जाये। वे जिसे चाहें उसे सत्ता सौंप दें। लीग को चाहें तो उसे सौंप दें, हिन्दू महासभा को देना चाहें तो उसे दे दें। पर वे हर सूरत में यहां से चल जायँ। अभी कुछ ऐसे लोग भी देश में हैं जो यह सोच रहे है कि सरकार और कांग्रेस में कुछ-न-कुछ समझौता हो ही जायेगा। मैं कहता हूँ कि लोगों को इस भ्रम में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है। अब ब्रिटेन के साथ समझौता होने की कोई भी उम्मीद नहीं रही। अब तो हमें अंग्रेजों ने मौका दिया है कि हम अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ें जैसा कि रूसी, चीनी तथा दूसरी

जातियाँ दूसरी जगहों पर कर रही हैं। जनता को इस मौके को हाथ से नहीं खो देना चाहिये क्योंकि ऐसे मौके बार-बार नहीं आया करते।"

हमारा जो युद्ध होने जारहा है वह बहुत ही भयंकर होगा। किन्तु जैसा कि महात्मा गांधी ने कहा है—"वह अत्यन्त ही संक्षिप्त एवं तीव्रगामी होगा। यह याद रहे कि इस समय युद्ध का स्वरूप जेल जाने तक ही सीमित नहीं होगा। इस समय ऐसा नहीं होगा कि हम साल-दो-साल तक जेलों में बन्द रहें और बाहरी परिस्थिति का हमें कुछ भी ज्ञान न हो सके। हमारा इरादा है कि जापानियों का भी मुकाबला किया जाये। इस बार की लड़ाई सिर्फ कांग्रेसियों तक ही महदूद नहीं रहेगी वरन् इसमें वे सभी शरीक होंगे जिन्हें भारतीय कहलाने में गर्वानुभव होता है। इसमें अहिंसात्मक आन्दोलन के सभी स्वरूपों का प्रयोग होगा और सम्भव है कुछ और भी तरीके अपनाये जायेंगे।"

इस भाषण के ६-७ घण्टे बाद ही देश के तमाम चोटी के नेताओं के साथ सरदार वल्लभभाई पटेल भी ता० ६ अगस्त १६४२ को सुबह ६ बजे गिरफ्तार किये जाकर अहमदनगर के किले में भेज दिये गये। डाक्टर सैयद महमूद ने इस पर कहा था कि "यह जेल खाना जेलखाने के अन्दर है। और बड़े फाटक के पास का पहिला कमरा ही सरदार पटेल का निवास स्थान है।" इससे यह सिद्ध हुआ कि सरदार पटेल जेल के भीतर भी सरदार ही की तरह रहे।

ज्वालामुखी के अन्तस्थल में

१६४२ की ६ अगस्त को सबेरे हीं सरदार पटेल तथा महासभा की कार्यसमिति के तमाम सदस्यों को गिरफ्तार करके अहमदनगर किले में बन्द कर दिया गया। इस स्थान का पता तो जनता को बहुत समय बाद लगा। सरदार पटेल भी किले में सभी कार्यसमिति के सदस्यों के साथ ही थे। इस कारावास-काल में सरदार पटेल को आंतड़ियों के दर्द ने बहुत ही परेशान किया। यहाँ अहमदनगर किले से जो पत्र उन्होंने अपनी पुत्रवधू को लिखे थे, उनसे स्पष्ट है कि जहाँ भारतीय जनता बाह्य रूप से सरदार पटेल को एक बहुत कठोर और चट्टान से भी ज्यादा मजबूत हृदय का व्यक्ति समझती है, वहाँ उसे यह भी ज्ञात हो जाना चाहिये कि उनका हृदय मोम से भी ज्यादा कोमल और ममतापूर्ण है। वे एकदम रूखे नहीं, महान सहृदय परिवारी भी हैं।

पुत्र-वधू के साथ पत्र-व्यवहार--

ता० १७—६—४३

चि० भानुमति,

.... मणिबेन (सरदार पटेल की सुपुत्री) का पत्र महीने में एक बार हमेशा ही आता है यरवड़ा से कोई समाचार नहीं आते। तुम्हारे पत्र से उनके समाचार मिल जाते हैं तब ही मुझे उनकी खबर मालूम होती है। उनसे जो भी खबर तुम्हें मिला करे उसे हर

हफ्ते तुम मुझे लिख भेजा करो। मैं अपनी तबियत की काफी साल-सँभाल करता रहता हूँ पर थोड़े दिनों से आंतड़ियों का दर्द बढ़ता जारहा है। यहाँ के जेल-सुपरिंटेण्डेण्ट ऐक्स-रे फोटो लेने को कह रहे हैं। यहाँ दूसरा कोई उपाय हो ही नहीं सकता तथा जेल के सुपरिंटेण्डेण्ट का भी इसके लिये बहुत आग्रह है। अतः यह फोटो शीघ्र ही ले लिया जायगा। दो वर्ष पहिले भी तो फोटो लिया गया था। इस कार्य में बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है।

आंतड़ियाँ बहुत ही निर्बल हो गई हैं। अतः जुलाब लेने या ऐनिमा लेने में बहुत तकलीफ पड़ती है। परन्तु जुलाब या ऐनिमा लिये बिना फोटो लिया ही नहीं जा सकता। इसलिये इस प्रस्ताव को भी स्वीकार करना ही पड़ा।

फोटो लिये जाने के बाद भी इस दर्द का क्या उपाय होगा, इस विषय में मुझे फिर भी सन्देह ही है। यहाँ जो डाक्टरी सहायता उपलब्ध है उसके सिवाय और किया ही क्या जा सकता है?

यहाँ गरमी तो पड़ी ही नहीं, यह कहें भी तो कोई आपत्ति नहीं है।

मेरी कोई भी चिन्ता मत करना। जितनी मुझसे बन रही है, उतनी फिक्र मैं कर ही रहा हूँ। ....

—बापू के आशीर्वाद।

❀ ❀ ❀ ❀

ता० २५—६—४३

चि० बाबा,

.... गये हफ्ते 'ऐक्स-रे' करवाया। इसमें तो कोई खास नुक्स नजर नहीं आया। बम्बई में ऐक्स-रे कराने पर आँतड़ियों की जो हालत नजर आई थी, वही आज यहाँ भी नजर आती है। इन लोगों का विशेष आग्रह था, इसलिये यह फोटो लिया गया था। बाकी इसकी कोई खास दवा तो है ही नहीं। खुराक वगैरह की साल-

सँभाल जितनी रखनी चाहिये उतनी रख रहा हूँ। मेरी चिन्ता कोई भी मत करना। बाहर जितनी साल-सँभाल मेरी होती रही है, उतनी ही साल-सँभाल रखने के लिये मैं यहाँ भी प्रयत्नशील रहता हूँ।............

—बापू के आशीर्वाद।

❀ ❀ ❀ ❀

ता० १—७—४३

चि० भानुमति,

.... मेरी तबियत के विषय में अपने पिछले दो पत्रों में मैंने लिखा था। किन्तु शायद वे दोनों पत्र तुम्हें मिले नहीं हैं। जब तुम्हारा समाचार आयेगा तभी मुझे यह ज्ञात हो सकेगा कि तुम्हें यह पत्र भी मिला या नहीं। तबियत के समाचारों के पत्र मिलते रहें तो लिखने में भी सूझ पड़े।

पिछले दो-तीन महीनों से दर्द धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता था, इसलिये "ऐक्स रे" कराने का यहाँ के अधिकारियों का विशेष आग्रह हुआ। इसमें मेरी इच्छा नहीं थी। क्यों कि ऐक्स रे कराने के पहिले जुलाब लेना पड़ता है और साथ ही ऐनिमा भी लेना ही पड़ता है। इसके बाद बेरियम के साथ फिर ऐनिमा लेना पड़ता है।

आँतड़ियाँ ये बोझ और कष्ट सहन करने में असमर्थ हैं, इसलिये मैंने इस बात को स्वीकार नहीं किया था। किन्तु आग्रह विशेष होता गया। इसलिये मैंने यह विधि भी पूरी कर डाली। २२ जून १९४३ को ऐक्स-रे फोटो लिया गया। इन क्रियाओं से आँतड़ियों पर गहरा असर पड़ा और परिणाम यह हुआ कि दर्द और ज्यादा बढ़ गया।

इस फोटो में आँतड़ियों में जो स्पेजम्स बढ़े हुए दिखाई देते हैं, उनकी दवा यहाँ तो कहीं मिलती नहीं हैं। बम्बई से मँगवाने की चेष्टा कर रहा हूँ। जब मिल जाय तब देखा जायगा।

इसके बाद जो असर होगा वह भविष्य की बात है। जब तक

दवा नहीं मिलती तब तक तो खुराक जितनी भी कम की जाय उतना ही अच्छा है। ऐसी हालत में तुम्हें लिखने से तुम व्यर्थ ही चिन्ता करोगी। तुम कुछ भी उपाय कर नहीं सकतीं, फिर चिन्ता करने से क्या लाभ? मुझसे जितनी सँभाल बन रही है, किये जा रहा हूँ।

ईश्वर की जब तक इच्छा होगी तब तक निभेगा। जब वह बुलाना चाहेगा, बुला लेगा। मैं तो तैयार ही बैठा हूँ। इस जीवन का कार्य जब खत्म हो जाय, तो जाना ही चाहिये और जब तक बाकी है, रहना पड़ता है। इन बातों की खबर किसे पड़ती है?

बिचारा जीव क्या कर सकता है और उसके हाथ में है भी क्या? महादेवभाई भर जवानी में आँख की पलक मारते-मारते चले गये। तुम्हारे पड़ोस में ही २८ वर्ष की कच्ची अवस्था में ही .... बिचारी चली गई। मुझे तो ६७ वर्ष हो गये हैं और जिन्दगी में जो कुछ करना था सभी कर लिया है और फिर भी अभी तक जिसे धर्म माना है उसे पूरा करना छूट जाय तो इससे ज्यादा दुर्भाग्य की और क्या बात हो सकती है?

इसलिये तुम कोई भी मेरी चिन्ता न करना। जो ईश्वर की इच्छा होगी, होगा। और उसकी इच्छा पर चलना अपना धर्म है।

यहीं से मैं हर हफ्ते पत्र लिखता रहूँगा। इस प्रकार तुम्हें मेरी खबर मिलती रहेगी। इसके सिवाय जो चिन्ताजनक कोई विशेष बात हो जायगी तो उसकी खबर तुम्हें सरकार की तरफ से मिल जायेगी ऐसा मेरा अनुमान है। सभी को कह देना कि कोई चिन्ता न करें।

—बापू के आशीर्वाद।

❀ ❀ ❀ ❀

ता० ३१—५—४३

चि० भानुमति,

मेरी चिन्ता न करो। देह नाशवान है। जब तक आयु पूरी नहीं होती तब तक कुछ भी अन्यथा नहीं हो सकता। बाहर होता तो

जो सम्भव हो सकता था, कर लेता और जितनी साज-सँभाल की जरूरत पड़ती, रखता।

मेरी आवश्यकतायें बहुत ही थोड़ी हैं। उनकी यहाँ पूर्ति हो जाती है। यहाँ कोई भी इस प्रकार की अड़चन नहीं है कि जिससे मुझे तकलीफ उठानी पड़े।

—बापू के आशीर्वाद।

❀ ❀ ❀ ❀

ता० ७—८—४२

चि० भानुमति,

मेरी तो तबियत इस प्रकार चला करती है। यहाँ उसमें सुधार करने लायक गुंजायश नहीं है। बाहर होता तो जो डाक्टर मेरे दर्द को जानते हैं, वे इसका कुछ इलाज करते। यहां तो अजनबी आदमियों से काम लेना पड़ रहा है। मुझसे जितनी हिफाजत हो सकती है, कर ही रहा हूँ।

मुझसे मिलने का प्रबन्ध हो जाय, ऐसा तो अभी संभव नहीं है। परन्तु ये मणिबेन को मुझसे मिलने दें यह बहुत ज्यादा सम्भव है। यदि मिलने के नियमों में कुछ हेर-फेर हो तो यह संभव हो सके और फिर डाह्याभाई (सरदार पटेल के सुपुत्र) को मिलने की इजाजत मिल जाय।

—बापू के आशीर्वाद।

महान विप्लव के बाद

[१]

शिमला-कान्फरेंस और चुनाव—

कार्यसमिति के तमाम सदस्य मय सरदार पटेल के ता० १४ जून १९४५ को अहमदनगर के किले से छोड़ दिये गये। जेल से छूटने के बाद से आज तक सरदार पटेल के जितने भी भाषण हुए, सभी आग के शोले जैसे हैं। बम्बई में ३० जून १९४५ को सरदार पटेल का प्रायः ६५० संस्थाओं ने; जिनमें व्यापारिक, औद्योगिक तथा राजनीतिक संस्थायें सम्मिलित थीं, स्वागत किया था। वहाँ भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"आप लोगों ने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिये मैं आपका बहुत एहसानमन्द हूँ। आप लोगों ने मेरा स्वागत ही नहीं किया है, बल्कि मेरे जरिये कांग्रेस का सम्मान किया है। यदि आपसे कोई कहे कि वर्तमान शासन अच्छा है, तो आप ऐसा कहने वाले से कहें कि जब सभ्यता और संस्कृति मे दूसरे देश भारत की समानता करने पर तुले थे उस समय ब्रिटेन अपनी आरम्भिक अवस्था में ही था। अगर वे यह सोचते हों कि उनका ही शासन सर्वोत्तम है तो निश्चय ही वे मूर्खों के स्वर्ग में रहते हैं। उनके कृत्यों का सबसे बड़ा उदाहरण वर्तमान महायुद्ध है। इससे पता चल जाता है कि पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता पतन की ओर जारहे हैं। अभी भी वक्त गुजरा

नहीं है, वे चाहें तो भारतवर्ष का अनुकरण कर सकते हैं।"

"कांग्रेस ने वर्तमान स्थिति पर अपना कुछ भी रवैया रखा हो, किन्तु हमें अगस्त के निर्णय को कभी भी नहीं भूलना चाहिये। हम उसे कभी भी नहीं भूलेंगे और न हम उनको भूलेंगे और धोखा देंगे जिन्होंने पिछले तीन सालों में काफी बहादुरी और साहस के साथ विप्लव में भाग लिया है। "भारत छोड़ो" प्रस्ताव का यह अर्थ नहीं है कि इस देश में से हर एक अंग्रेज चला जाय। हमारी अंग्रेजों से कोई लड़ाई या दुश्मनी नहीं है।"

"इन तीन सालों में कई घटनायें घट चुकी हैं। लेकिन उन सब में बंगाल का अकाल और लाखों लोगों की मृत्यु एक स्थायी शर्म की बात हो गई है। जब लोग भूखों मर रहे थे, तब पिछले वायसराय ने जो महात्मा गान्धी का मित्र होने का दावा करता था, सहानुभूति के रूप में न तो एक शब्द ही कहा और न उसने बंगाल जाकर लोगों की दशा देखी।"

शिमला में उन दिनों जो बात-चीत चल रही थीं, उसका जिक्र करते हुए सरदार पटेल ने कहा—"यदि कोई यह कहे कि हमने धोखा खाया है, तो मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं कर सकता। मुझे निराश होने का कोई कारण ही नजर नहीं आता। मैं आपको यह कहना नहीं चाहता कि जो भी मिले, उसे ले लो। यह तो भिखारी की भावना हुई। ऐसी भावना से तो मैं मर जाना ही अच्छा समझता हूँ। मैं अपने हकों और अधिकारों को वापस चाहता हूं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि महात्मा गान्धी, काग्रेस के अध्यक्ष और कार्यसमिति ऐसा कोई भी काम नहीं करेंगे जिससे जनता के हितों को हानि पहुँचे।"

"मैं यहाँ आपको वे सभी बातें बता देना चाहता हूँ जो शिमला में चल रही हैं। उन बातों पर से ही आप यह निश्चय करें कि ये प्रस्ताव ठुकरा दिये जायँ या अपनाये जायें। आप देख रहे हैं

कि वायसराय से जो बातें शिमला में चल रही हैं, उसमें प्रमुख भाग पण्डित जवाहरलाल नेहरू ले रहे हैं। इसीसे आप इस निश्चय पर पहुँच जायेंगे कि आपके साथ कोई भी धोखा नहीं कर सकता। यदि ब्रिटिश शासकों के हृदय में परिवर्तन हो गया है तो हम अपना संग्राम जारी नहीं रखेंगे। हम मैत्री पूर्ण वातावरण बिगाड़ना नहीं चाहते। हम उन्हें विदा होने लायक समय अवश्य ही देना चाहते हैं। स्वतंत्रता बाढ़ के पानी के समान आ रही है। मैं इस बात के लिये उत्सुक हूँ कि हम उसका प्रतीकार कैसे करें? अतः हमें पिछले तीन सालों में जो नाकामयाबी मिली हैं उन्हें हमारे ही आदमियों को बताकर हमारी शक्ति को छिन्न-भिन्न नहीं करना है।"

"वायसराय और कार्य समिति के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ था उसमें पिछले वायसराय ने बताया था कि जिन लोगों ने विप्लव का संगठन किया है, उन पर मुकद्दमे चलाये जायेंगे। सदस्यों ने भी चाहा था कि अवश्य ही उन पर मुकद्दमे चलाये जाएँ, पर जब ये सदस्य बाहर आये तो उपरोक्त वायसराय यहाँ से विदा ही हो गये। वे अपने पीछे बंगाल की दुखद स्मृतियाँ और शासन व्यवस्था में बेहद भ्रष्टाचार छोड़ गये हैं। हमने अभी तक कुछ भी नहीं खोया है। गवर्नमेंट अब यह अच्छी तरह समझ गई है कि अब उन्होंने यदि हिंसा से काम लिया तो अब देश इतना तैयार हो गया है कि हिंसा का जवाब उन्हें हिंसा से ही दिया जायेगा।"

अब आप लोगों का सब से बड़ा कर्तव्य यह है कि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी को जड़ से खोद फेंका जाय। लोगों को शिकायत है कि इस समय देश में "कन्ट्रोल राज" है। खाने में, रहने के मकानों में और जीवन की हर आवश्यक चीज में कन्ट्रोल है। लेकिन अफसोस यही है कि रिश्वतखोरी पर कोई भी कन्ट्रोल नहीं है। यदि कांग्रेस ने शासन व्यवस्था अपने हाथों में ले ली, तो वह भी रिश्वतखोरी के मामले में अहिंसा से ही काम लेगी। मेरा

अहिंसा और मर्यादित हिंसा में विश्वास है।"

"कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के समय, नये प्रस्तावों के तहत, कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया जब कि किसी भी गवर्नर को अपने विशेषाधिकारों का उपयोग करना पड़ा हो। बजाय इसके वाइसराय को खुद मालूम हो गया कि उसके ही आदमी मन्त्रिमण्डलों के लिये संकट उत्पन्न कर रहे हैं। कांग्रेस ने पदों की लोलुपता के लिये पद ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया था, वह तो मौजूदा विधान को नष्ट करना चाहती थी। लेकिन बीच में ही महायुद्ध आरंभ हो गया और मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये।"

"यदि हम केन्द्र में जिम्मेदारी के पद लेना चाहते हैं, और यदि वहाँ विश्वस्त आदमी नियत किये गये, तो डरने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के इस्तीफा देने पर, "मुक्ति दिवस" मनाया। मैं उनसे यह पूछना चाहता हूँ कि जब काँग्रेस अंग्रेजों तक का बुरा नहीं चाहती और न उनसे किसी प्रकार की शत्रुता ही रखती है और चाहती है कि वे यहाँ दोस्तों की तरह अपना व्यवसाय कायम रखें, तो फिर वह अपने ही देश भाइयों को कैसे नापसन्द कर सकती है ? परमात्मा हमें अविश्वास और पारस्परिक सन्देहों से बचाये। यदि हमें वास्तविक सत्ता प्राप्त हो गई तो निश्चय ही हमारे आपसी मतभेद मिट जायेंगे।"

"कांग्रेस अपना राष्ट्रीय स्वरूप नष्ट नहीं कर सकती और न वह सम्पूर्ण देश के प्रतिनिधित्व के दावे से ही पीछे हट सकती है। मि० जिन्ना भले ही यह दावा करें कि देश के तमाम मुसलमानों का प्रतिनिधित्व लीग ही करती है। कांग्रेस ऐसे दावों को मानने के बजाय अलग रहना ही ज्यादा पसन्द करेगी। शासन सत्ता भले ही लीग को सौंप दी जाय, हमें उसमें कोई एतराज नहीं। यदि लीग शासन प्रबंध की जिम्मेदारी लेने को तैयार न हो तो फिर कांग्रेस को दी जाय।

"मुझे उम्मीद है कि अवश्य ही शिमला की बातचीत से कोई

महत्वपूर्ण परिणाम निकलेगा ।" यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि शिमला में २५ जून १९४५ से १४ जुलाई १९४५ तक नेताओं और वायसराय के बीच बातचीत होती रही । ९ अगस्त १९४५ को बम्बई में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा "आज ९ अगस्त है ! आज जब मैं सुबह उठा और समाचार पत्रों को खोला तो सब से पहिली नजर मेरी उस समाचार पर पड़ी जिसमें बिहार के वीर नवयुवक महेन्द्र चौधरी को फांसी पर लटकाये जाने का जिक्र है । लार्ड वावेल हमें कहता है कि जो हो गया सो हो गया, उसे भुला देना चाहिये । नये भारत मंत्री ने कहा है कि ब्रिटेन भारत का बराबरी का साझेदार रहेगा । क्या इसका यह मतलब हैकि यदि यहां एक युवक फांसी पर लटकाया जायेगा तो ब्रिटेन में भी एक आदमी को फांसी दी जायेगी ।

"मैं आपसे कहता हूँ कि अब मुझे इन बातों पर गहरा शक हो गया है । हमारे राष्ट्रपति ने हमें आदेश दिया है कि ९ अगस्त का दिवस शान तथा अधिकार के साथ इस प्रकार मनाया जाय जिस से काँग्रेस की इज्जत बढ़े । आज तक हमने उनकी आज्ञाओं का मौन शान्ति के साथ पालन किया क्योंकि राष्ट्रपति चाहते थे कि कोई ऐसी बात नहीं कही जाय जिससे वातावरण बिगड़ जाये । लेकिन मैं अब राष्ट्रपति से ही दरयाफ्त करता हूँ कि इस बहादुर नौजवान को फाँसी के तख्ते पर लटकाने का क्या अर्थ है ? इस प्रत्यक्ष सत्य का यदि उनके पास कोई जवाब नहीं है तो फिर मेरे मुंह को कौन बन्द कर सकता है ? चाहे स्वराज्य इस प्रकार हमें मिले या न मिले । यह मानी हुई बात है कि हर कदम पर डरने से स्वराज्य मिलने वाला नहीं है । आज इस विषय पर बोलने का मेरा पहिले से कोई भी इरादा नहीं था किन्तु जब सुबह मैंने यह दिल दहलाने वाले समाचार पढ़े, तो मेरा दिल हो गया कि साफ साफ बातें कहने का अब समय आ गया है ।"

"पिछले तीन सालों में भारत ने कई परिवर्तन देखे हैं और तमाम दुनियां में भी कई परिवर्तन हो चुके हैं। इस शहर में जो कुछ हुआ उसके तो आप खुद भी गवाह हैं। जब हमें गिरफ्तार किया गया तो हमें यह तक नहीं बताया गया कि हमें कहां ले जाया जा रहा है। जब हम जेल में थे तो घोर अन्धकार में थे। हमें यह धमकी दी गई कि आप लोगों के विरुद्ध मामला चलाने की तैयारियाँ की जा रही हैं। वायसराय ने, जो अब यहाँ से जा चुका है, हमें लिखा था कि १६४२ के उपद्रवों के लिये आप पर मुकदमा चलाया जावेगा। हमने वायसराय की सूचना का दो कारणों से स्वागत किया। हमने सोचा कि इस बहाने से हमें दुनिया के सामने राष्ट्र की सत्यता रखने तथा वास्तविक अपराधियों का पर्दाफाश करने का अवसर मिलेगा। लेकिन ऐसा कहने वाला वायसराय तो यहाँ से विदा हो गया। यहां कई वायसराय आये और गये पर उनकी कार्य पद्धति आदि सभी एकसी ही हैं। भारत ने कई भारत मंत्रियों को आते और जाते हुए देखा है, लेकिन जो विप्लव के समय था ऐसे भारतमंत्री को पहिले कभी नहीं देखा होगा। मि० एमरी के पतन पर किसी ने भी आंसू नहीं गिराये। मैं यह नहीं जानता कि अपने पतन से उसे भी धक्का लगा या नहीं।"

"जब हम जेल से मुक्त किये गये तो हमें कहा गया कि गुजरी हुई बातों को भूल जाना चाहिये। हम से यह भी बड़ी नम्रता से कहा गया कि दोनों ओर से ही गलतियाँ हुई हैं। हमने उन पर भरोसा किया और सोचा कि अब इनके रुख में कुछ परिवर्तन अवश्य ही हो गया है, क्योंकि इसके पहिले कभी भी उन्होंने अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं किया था। इन बातों पर से ही हम इस इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शुद्ध हृदय से इनसे बातचीत करने में कोई हानि नहीं है। लेकिन जब आज सुबह मैं उठा और मैंने बिहार के इस बहादुर नौजवान के फांसी के समाचार पढ़े, तो मैंने सोचा कि भले

ही इन्होंने "पिछली बातें भूल जाओ" का मुहावरा नया तैयार कर लिया है फिर भी इनकी "ब्रिटिश शरारतें" ज्यों की त्यों विद्यमान हैं। बस इन्हीं बातों से भयंकर शंकाएँ मेरे दिल में उठी और मैंने कांग्रेस के अध्यक्ष से यह जानना चाहा कि आपके ६ अगस्त के दिन को शान्ति पूर्वक मनाने का हुक्म देने और सरकार का भी इसी आशय का वक्तव्य प्रकाशित करने का क्या आशय है ? यदि बीती हुई बातों को भुलाना ही है तो उन बातों पर परदा दोनों ओर से डालना होगा। लेकिन यदि एक तरफ ही थोड़ा बहुत ढकने की चेष्टा की जायेगी तो फिर हमें दूसरी बाजू का भण्डा फोड़ करने में किसी प्रकार की हिच-किचाहट नहीं होगी।"

"जापानी शहरों पर एटम बमों को अकस्मात् गिराने से बच्चे जवान, बूढ़े, तथा स्त्रियाँ आदि सभी मारे गये। पश्चिमीय सभ्यता का यह गंदे से गंदा स्वरूप है। कहा जाता है कि जापान को काफी अवसर दिया गया था। हो सकता है कि जापान ने जैसी फसल बोई थी वैसी ही काटी भी। लेकिन अगर ये महान राष्ट्र इसी सत्यानाशी मार्ग का अनुकरण करना चाहते हैं तो दुनिया के भले होने के सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं है कि वह महात्मा गांधी का अनुसरण करे। क्योंकि इस तरह के उपायों से तो दुनिया बरबादी की ओर ही जायेगी। ऐसा कहा जाता है कि ये "तीनों महान" अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करेंगे और ये एक नयी दुनिया की व्यवस्था कायम करेंगे। लेकिन मानवता को इनके इतिहास जानने की आवश्यता है। इसके बाद फिर कोई भी इनके दावों पर विश्वास नहीं करेगा। हम दो महानों" का इतिहास यदि एक तरफ रख दें तो भी हम "तीसरे महान" अंग्रेजों को तो खूब ही जानते हैं। वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं।"

"गांधीजी ने वायसराय को पत्र लिखे और उनसे निवेदन किया कि कम से कम इस युवक को फांसी पर नहीं लटकाना

चाहिये। कम से कम मानवता के हित के लिये तो ऐसा करना अनुचित है। जिन पर मुकदमें चलाये गये हैं, यदि वे वास्तव में अपराधी हैं, तो उन्हें और कोई सजा दी जा सकती है जो फांसी से कम हो। कई अभी और फांसी के तख्ते का इन्तजार कर रहे हैं।"

"इस नौजवान ने भावना में बहकर, शुद्ध राजनीतिक आदर्श के लये, कोई काम कर डाला। इस पर सरकार ने उसे फांसी की सजा देडाली लेकिन एक लड़के को फांसी देने से "पिछली बातों को भूल जाओ" इस नीति का पालन तो नहीं हुआ।"

"इस देश में ब्रिटिश मजदूर दल के शासन का यह आरम्भ है। जब एक पत्र प्रतिनिधि ने मुझसे मजदूर दली शासन की इस विजय की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में दरयाफ्त किया तो मैंने उससे कह दिया कि इसका जवाब तो उन्हीं से पूछना चाहिये क्योंकि जीत तो उनकी हुई है। हमको इस मजदूर दल के भी पहिले के बहुत कड़वे अनुभव है। आज मैं उनकी जीत पर न तो खुश हूँ और न नाराज। हम उनको कृत्यों द्वारा ही उनकी जांच करेंगे। कुछ बुद्धिमान व्यक्ति यह कह सकते हैं कि भारतीय शासन तो गवर्नरों के हाथ में है। कांग्रेस अभी भी इस मार्ग को गृहण करना नहीं चाहती। इसके विरुद्ध, हमने नौजवानों को यही सलाह दी है कि वे उस पथ का अनुसरण छोड़ दें। हमने उन्हें यह भी कह दिया हैं कि यदि वे उसी मार्ग पर चलेंगे तो सफल नही हो सकेंगे।"

"यद्यपि गांधीजी ने हमे अहिंसा का मार्ग दिखाया है फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि हमने उसे पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है। मुझे अभी एक व्यक्ति की और तलाश है जो गान्धीजी की तरह अहिंसा में पूर्ण विश्वास रखता हो। यदि आप हाथ में तलवार नहीं ले सकते तो कम से कम आप को तलवार का बचाव तो करना आना चाहिये। गांधीजी ने इसीलिये सिखाया है कि सरकार से दृढ़ता से "नहीं" कहदो।"

"१६४२ के विप्लव से जहा हमें कई लाभ हुए हैं वहाँ सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि महिलाओं में अपूर्व जागृति हो गई है। शहर के लोगों को इस बात की कल्पना भी नहीं होगी कि देहातों में विप्लव के जमाने में स्त्रियों पर कितने भयंकर अत्याचार किये गये हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विप्लव में कांग्रेस की हार नहीं हुई बल्कि वह तो और भी मजबूत हो गई। जब गान्धीजी ने लोगों को सम्मान के साथ सत्याग्रह करने के लिये सम्मिलित किया तो सरकार ने अपनी फौज को हर कानून तोड़ने के लिये खुली इजाजत देदी जिससे किसी तरह यह आन्दोलन दब जाय।"

"हिन्दू मुस्लिम प्रश्न के निर्णय की जिम्मेदारी सरकार के सिर पर किसने डाली है? यदि वे ईमानदार हैं तो उन्हें सता लीग या कांग्रेस किसी को भी हस्तान्तरित कर देना चाहिये। यदि दुनिया में कुछ भी ईमानदारी शेष रह गई है तो इस प्रश्न को किसी भी निष्पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय पंच द्वारा निबटवा लेना चाहिये। यदि सरकार यही कहती चली जायगी कि तब तक हम कुछ भी करने के लिये लाचार हैं जबतक आप दोनों आपस में मेल नहीं कर लेते तो कांग्रेस सरकार से बराबर युद्ध जारी ही रखेगी मैं यह जानना चाहता हूँ कि अब जब देश में किसी भी तरह का जन आन्दोलन नहीं हो रहा है तो सरकारने कांग्रेस पर प्रतिबन्ध क्यों लगा रखा है?"

"मैं कहता हूँ कि भारतीयों को ७ दिन के लिये ही ब्रिटेन, इंग्लैण्ड पर शासन करने का अधिकार देदे तो प्रतिज्ञा के साथ कहता हूँ कि वेल्स, स्कॉट लैण्ड और इंग्लैण्ड में जम कर युद्ध हो जाय!"

"मैं पूछता हूँ कि सरकार समाजवादी दल पर से प्रतिबन्ध क्यों नहीं उठाती, जबकि वह स्वयं ही एक समाजवादी सरकार है? इस मजदूर दली सरकार ने प्रस्तावित चुनावों को केन्द्रीय धारा-सभा में व्यर्थ की फिजूल खर्ची बताया है क्योंकि इतने सीमित मताधिकार के आधार पर फिर से चुनाव करना व्यर्थ ही है। कांग्रेस तो

आज भी प्रान्तीय चुनावों के लिये उद्यत है।"

इसके बाद सरदार पटेल ने व्यापारियों को चेतावनी दी कि वे अब ब्लैक करना कतई छोड़ दें और विद्यार्थियों और कांग्रेस के लोगों को कहा कि वे जैसे भी हो "ब्लैक" को खतम कर देने की चेष्टा करें। इसके बाद उन्होंने कहा कि अब हमें कांग्रेस को एक महत्वपूर्ण लोकप्रिय संस्था बनाना है और इसके लिये हमें रचनात्मक कार्यों की ओर अग्रसर हो जाना चाहिये। आगे चलकर सरदार पटेलने कहा—

"हम ८ अगस्त के प्रस्ताव में के क्रियात्मक भाग के किसी शब्दको, यहाँ तक कि अर्धविराम और पूर्णविराम तक को बदलने को तैयार नहीं है जिसका सम्बन्ध जनता के आन्दोलन से है।"

"यदि अंग्रेज ४० करोड़ जनता पर गैर जिम्मेदाराना ढंग से तथा इतनी दूर से राज करना चाहते है तो अब यही अच्छा है कि वे अब इस भार से मुक्त हो जांय और शासन की बागडोर उनलोगों के सिपुर्द करदें जो वास्तव में योग्य है। यदि फांसी पर लटकाना हीं उनके शासन का दैनिक कृत्य है तो यह बात वे हमें साफ कह दें।"

सरदार पटेल ने लार्ड वावेल की "पिछली बातों को भूल जाओ" वाली अपील की पुनः याद दिलाते हुए कहा कि—"अभी जेल में कितने हजार आदमी भरे पड़े हैं। अंग्रेज भी उन्हीं गुनाहों के जिम्मेदार हैं जिसके वे नेताओं को मानते हैं। यदि वे नही छोड़े जाते तो सरकार को नेताओं को फिर से जेल में भेज देना चाहिये।"

इसके बाद सरदार पटेल ने उन लोगों की काफी भर्त्सना की जो मजदूर दली सरकार को बड़ी आशा की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने बताया कि हारे हुए कन्जरवेटिव दल (Cowseruotives) की नीति के अनुसार ही मजदूर दली सरकार काम कर रही है। उन्होंने सर स्टैफर्ड क्रिप्स की भी मौजूदा प्रस्तावों के लिये काफी आलोचना करते हुए कहा कि वे मौजूदा गतिरोध को मिटाने के लिये सरकार कोई भी स्थायी हल पेश करना ही नहीं चाहती। उन्होंने

१६१६ के सुधारों की याद दिलाते हुए कहा कि सरकार ने हमसे कई वायदे किये थे। और खून की होली—जलियाँवाला बाग की दुर्घटना तथा रोलट एक्ट के रूप में—खेल कर सरकार ने वे वायदे खत्म कर दिये। ब्रिटिश अपनी विजय की खुशी में फिर उन कृत्यों को दुहरा भी सकते हैं। इस के बाद पटेल साहब ने ८ अगस्त की प्रतिज्ञा की सब लोगों को याद दिलाई। उन्होंने गरजते हुए कहा—

"भारत छोड़ो"—हमारे युद्ध का नारा है और यह नारा जब तक कायम रहेगा जबतक देश में देश भक्त विद्यमान हैं। इससे ज्यादा योजनाएँ और प्रस्ताव हमें नहीं चाहिये। भारत ने तो बलिदान और त्याग का ही मार्ग गृहण किया है।"

१ नवम्बर १६४५ को बम्बई में राष्ट्रीय योजनाओं पर बोलते हुये सरदार पटेल ने भारतीय व्यपारियों के चेम्बर में (committee cf the Indian merchant's chamber) कहा—

"हम वही स्वतंत्रता और बही आजादी चाहते हैं जो इंग्लैण्ड निवासी भोगरहे हैं। हम इससे कम पर सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं।"

" आर्थिक स्वतंत्रता और राजनीतिक स्वतत्रता अलग-अलग नहीं की जासकती जब तक भारत में राष्ट्रीय सरकार कायम नहीं होजाती तब तक राष्ट्रीय योजना और अन्य योजनाएँ व्यर्थ ही हैं। भारत उस आजादी से कम स्वीकार करने को कभी भी तैयार नहीं है जो ब्रिटेन इस समय भोग रहा है।"

" मैं अंग्रेजों को चेतावनी देदेना चाहता हूँ कि भारत की जनता और कांग्रेस अब अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करने के लिये तैयार नहीं हैं। ब्रिटेन भारत के वैधानिक भविष्य को घोटाले में डालने के लिये कमेटियों और कान्फरेन्सों के नाटक कर रहा है। देश को इस समय उनके शीघ्र और अन्तिम निर्णय की आवश्यकता है। ब्रिटिश सरकार का अब यह कहना बिलकुल ही बेकार है कि देश में एकता नहीं है। हिन्दू मुस्लिम समस्या तो अंग्रेजों की उपज है। कांग्रेस

हमेशा ही अन्तराष्ट्रीय पंचायत के फैसले को स्वीकार करने को तैयार है।"

"अब अंग्रेजों का यह कहना व्यर्थ है कि भारतवर्ष में एकता नहीं है। हमारी फूट को उत्पन्न करने वाली अंग्रेजी सरकार है। यदि ब्रिटेन में कुछ वर्षों विदेशी शासन होजाय तो इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्स में भी इसी तरह की फूट व्याप्त होजाय।"

"अंग्रेजों ने हमारे साथ जितने भी वायदे किये वे सभी झूठे साबित हुये। मजदूर दली सरकार के आने से परिस्थितियों में कोई भी अन्तर नहीं हुआ है। यदि कुछ हुआ भी है तो भारत की स्थिति उससे और भी ज्यादा खराब होगई है। मजदूर दली सरकार ने लार्ड वावेल को केन्द्र में अस्थायी सरकार के निर्माण करने से रोक दिया है। लार्ड वावेल अस्थायी सरकार केन्द्र में स्थापित करके अपनी योजना को कार्यान्वित करना चाहता था।"

"मि० एटली इंडोनेशिया के डच लोगों के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी की खूब दुहाई देरहे हैं जहाँ के स्वातंत्रता आन्दोलन को कुचलने के लिये भारतीय सेना भेजीगई थी। ऐसे राष्ट्र को, जिसने दो शताब्दियों से ४० करोड़ जनता को परतंत्रता में जकड़ रखा है, नैतिक प्रतिष्ठाओं और वादों की बातें करने का कोई भी अधिकार नहीं है। इंडोनेशिया के लोगों को जो स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये लड़ रहे थे, दबाने के लिये ब्रिटिश सरकार ने डच साम्राज्यवादियों का साथ दिया। क्या इसी को नैतिक अधिकार कहते हैं ?"

"भारतीय व्यापारी वर्ग को भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के प्रति अपने कर्तव्यों को भुलाना नहीं चाहिये। मैं स्वातन्त्र्य आन्दोलन के समय की उनकी दिक्कतों और सीमित मर्यादाओं को बखूबी जानता हूँ। लेकिन राष्ट्र से सम्बद्ध होने के नाते मैं चाहता हूँ कि वे भी इस स्वातन्त्र्य आन्दोलन में अपना कर्तव्य पूरा करें। देशवासी चाहे व्यापारी हो, किसान हो या कोई भी हो, स्वतन्त्रता सभी को समान रूप

से प्रिय है। देश के व्यापारियों को अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये विदेशी शासकों पर निर्भर नहीं रहना चाहिये। मुझे इस बात को कहते हुए हार्दिक दुख होता है कि जब १६४२ में लोग काफी संकट में थे तब कुछ व्यापारियों ने वे काम किये हैं जो उन्हें शोभा नहीं देते। वास्तव में यह बहुत ही खेदजनक बात है।"

"अब अंग्रेज लोग समझ गये हैं कि भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के पीछे कितनी शक्ति है और वे यह भी भली भांति जान गये हैं कि यदि दूसरा स्वातन्त्र्य आन्दोलन आरम्भ होगया तो वे कहीं के भी नहीं रहेंगे।"

"मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि यदि दूसरा संकट उत्पन्न हुआ तो तुम्हें गरीब और निस्सहाय जनता को और भी बरबाद नहीं करना चाहिये बल्कि तुम्हें उनके साथ रहकर उनकी पूरी मदद करनी होगी।"

"बङ्गाल के अकाल का जिक्र करते हुए सरदार पटेल ने कहा कि इस देश में अंग्रेजी शासन की और क्या निन्दा हो सकती है कि लाखों आदमी भूख और अकाल से मर गये। यदि ऐसा इंगलेण्ड में होगया होता तो उसी दिन वहाँ की सरकार निकालकर बाहर कर दी जाती। उस समय के वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने इतनी भी परवाह नहीं की कि वह भूख से मरते हुए बङ्गाल का दौरा ही कर लेता। यदि बङ्गाल के अकाल के सिलसिले में किसी को फाँसी की सजा दी जा सकती है तो वह लार्ड लिनलिथगो को ही होनी चाहिये।"

"अभी कुछ समय पहले जनरल आर्किन लेक—भारत के कमाण्डर इन चीफ ने कहा था कि सेना का सम्पूर्ण भारतीय करण किया जायेगा लेकिन उसने यह नहीं बताया कि भारतीय करण करने में उसे कितना समय लग जायेगा। अनिश्चित काल तक के लिये सेना, हवाई बेड़े तथा जहाजी बेड़ों के भारतीयकरण की बात करना हमें चिढ़ाना है। इसी तरह हमसे यह भी कहा जाता है कि शीघ्र ही तमाम शासन व्यवस्था भारतीयों के हाथों में सौंप दी

जायेगी। जनरल आर्किन लेक खुद नहीं जानते कि सेना के भारतीय करण में कितना समय लगेगा। क्या उन्हें यह नहीं मालूम है कि सुभाष बोस ने ६००८० सैनिकों की सेना तथा एक महिला रेजीमेन्ट १ साल से भी कम समय में तैयार कर लिया था। यह वही सेना है जिसे भारतीय सरकार छिन्न-भिन्न करने पर तुली है।"

"यदि ब्रिटिश सरकार के भारत को पूर्ण स्वायत्त शासन प्रदान करने के वायदे सच्चे हैं तो वे सुभाष बोस की सेना तथा फौज को नवीन भारतीय सेना के रूप में ग्रहण क्यों नहीं करते? क्या वे यह नहीं जानते कि भारतीयों को सुभाष बोस की फौज पर जबरदस्त नाज़ है? यदि यह फौज काम में ले ली जाय तो हमें आर्किन लेक जैसे फौजी विशेषज्ञों की कोई भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह कभी भी सेना का भारतीयकरण नहीं करेगा। इस देश में कई विशेषज्ञ हमारे यहाँ के लोगों को सिखाने के लिये आते है। वे आकर चले जाते हैं पर नतीजा कुछ भी देखने को नहीं मिला। लोगों की दरिद्रता और संकट ज्यों-के-त्यों बने है। यह महान दुर्भाग्य की बात है कि हमारे ही कई देशवासी इन विशेषज्ञों की बातों को तोते की तरह रट कर बोल देते हैं। वे यह नहीं जानना चाहते कि जब तक भारत आजाद न हो जाय तब तक उनकी विशेषता भारत के लिये किसी भी काम की नहीं है। मेरी राय में ऐसे व्यक्ति लाभ की अपेक्षा देश को हानि ही अधिक पहुँचाते हैं।"

"देश में जब तक राष्ट्रीय सरकार नहीं बन जाती तब तक राष्ट्रीय योजनाएँ बेकार सी चीज़ है। आज भारतीय सरकार में एक सूत्रता नहीं है और न आज सरकार किसी उचित नीति से ही काम चला रही है। आर्थिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक आजादी का पारस्परिक सम्बन्ध है और स्वतन्त्रता की समस्या के ये ही दोनों महत्वपूर्ण पहलू हैं।"

"कांग्रेस हाईकमाण्ड ने शिवाजी पार्क बम्बई में एक सभा

बुलाई थी जिसमें महात्मा गांधी 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद यानी ८ अगस्त १६४२ के बाद पहिली बार बोलने वाले थे। सरदार पटेल ने कहा—"मेरी बम्बई के लोगों से पहिली निवेदन यही है कि वे आने वाले चुनावों में—जिनमें भाग लेने का कांग्रेस निश्चय कर चुकी है—कांग्रेस का दिल खोलकर साथ दें। यह आपके हाथों में है कि आने वाले प्रान्तीय और केन्द्रीय धारा सभाओं के चुनाव, देश की मौजूदा स्थिति में बस आखिरी साबित हों और दूसरे चुनाव फिर स्वतन्त्र भारत ही में हों। ज्योंही भारत स्वतन्त्र हो जायेगा कि कांग्रेस अपना कार्य बन्द कर देगी और फिर देश का शासन भार भारत के योग्य पुत्रों के हाथों में आजावेगा।"

"१६४२ के बाद आज हम यहाँ एकत्रित हुए हैं और यह पहली बार है कि हम स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी समस्याओं पर विचार कर रहे है। जेल से अभी मुक्त होने के बाद नेता गण जहाँ भी गये उन्होंने देशवासियों में एक नया और अभूत पूर्व जोश पाया है। नेताओं की गिरफ्तारी और सरकार के अमानुषिक दमनचक्र के बाद भी लोगों का जोश और हिम्मत ज्यों की त्यों है। लोगों ने इस संकट काल में जिस बहादुरी का परिचय दिया वह अभूतपूर्व है और दुनिया के लिये वह इस बात का पक्का सबूत है कि देश के लोगों ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये तरह तरह के बलिदानकी पूरी तैयारी और निश्चय कर लिया है। हमारा अगस्त का प्रस्ताव अभी भी हमें कार्यान्वित करना है। हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। हमारा लड़ने का कारण न्यायोचित है इसलिये भारत के सम्बन्ध में पराजित होने का कोई कारण ही नजर नहीं आता।"

"हमें भारत सरकार की ईमानदारी का थोड़े ही दिनों में पता लग जायेगा। हमारा चुनाव लड़ने का कारण दुहेरा है। हम दुनिया को बता देना चाहते है कि दमन के उपरान्त भी सारा देश हमारी राष्ट्रीय संस्था-कांग्रेस-के पीछे है और लोग स्वतन्त्रता की प्राप्ति

का पूर्ण निश्चय कर चुके हैं। हमें आज कई उन समस्याओं को हाथ में लेना है जिनके कारण देश संकट में घिर गया है इसलिये हमें जनता के योग्य प्रतिनिधियों की सख्त जरूरत है। उन्हें फिर से संगठित होकर दूसरे युद्ध के लिये तैयारी करना है। इसके लिये उन्हें अपने साधनों और शक्ति को एक जगह केन्द्रित भी करना है।"

१५ जनवरी १९४६ को अहमदाबाद में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"कांग्रेस ने चुनावों को लड़ने का इसीलिये निश्चय किया कि देश को यह पता लग जाय कि कांग्रेस के पीछे जनता की कितनी शक्ति है। अगर कांग्रेस चुनावों से अलग रहती तो अयोग्य व्यक्ति कौंसिल में घुस जाते और फिर उनका उपयोग कांग्रेस के विरुद्ध किया जाता केन्द्रीय धारा सभा के चुनाव खत्म हो चुके लेकिन इससे देश की समस्याएँ हल नहीं हुई। पहिले की अपेक्षा कांग्रेसने ज्यादा सीटोंपर कब्जा कर लिया। मुस्लिम लीग ने तमाम मुस्लिम सीटों पर कब्जा कर लिया और बहुत सम्भव है कि वह अब विजय दिवस भी मनाये। वह देश वासियों को बताना चाहती है कि उसने पाकिस्तान प्राप्ति कर लिया है। लेकिन पाकिस्तान प्राप्त करने का यह तरीका नहीं है। पाकिस्तान देना ब्रिटिश सरकार के हाथ में नहीं है। यदि पाकिस्तान को हासिल करना है तो हिन्दुओं और मुसलमानों को लड़ना ही होगा। एक अच्छा खासा गृहयुद्ध होगा। कांग्रेस अब बराबर लीग के दरवाजे खट-खटाने नहीं जायेगी। कांग्रेस ने कई बार लीग से समझौता करने की चेष्टा की, लेकिन लीगने हरबार कांग्रेस को ठोकर ही मारी। अब कांग्रेस ने निश्चय कर लिया है कि जब तक लीग अपनी नीति में परिवर्तन नहीं करती तब तक उससे समझौते की बातें नहीं की जायँ। लीग जो चाहे हिंसा से ले सकती है।"

"अंग्रेजों का कहना है कि यदि हिन्दू और मुसलमान मिल जायँ तो हम सत्ता सौंपने को तैयार हैं। वायसराय कांग्रेस के दो प्रति-

निधियों तथा लीग के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृत फारमूला लेकर इङ्ग-लैण्ड गये थे। लौटने पर वायसराय ने एक नया फारमूला कांग्रेस के सामने पेश किया और कांग्रेस ने उसे स्वीकार कर लिया। वायसराय ने कांग्रेस की ईमानदारी और मि० जिन्ना की बुद्धि हीनता को स्वीकार कर लिया। परन्तु फिर भी उसका यही कहना है कि वह मि० जिन्ना को छोड़कर कुछ नहीं कर सकता। यदि फिर उसी नीति का पालन किया गया तो हम किसी भी बात को स्वीकार नहीं करेंगे। हमने सत्ता अपने हाथ में लेने का निश्चय कर लिया है। अब हम ब्रिटेन के शब्दों पर किसी भी तरह विश्वास नहीं कर सकते। अब ब्रिटेन का कर्तव्य है कि वह अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध करे कि वह अब सत्ता त्यागने को तैयार है। अब हम शिमला कान्फरेन्स वाली गलती दुहराना नहीं चाहते। हमको जब शिमला में बुलाया गया तब हमे विश्वास हो गया था कि सैनिक वायसराय निश्चित रूप से हमसे समझौता करना चाहता है। ऐसा कहा जाता है कि वह तो निर्णय के लिये तैयार था पर उसपर ऊपर से दबाव डाला गया। यदि ऐसी स्थिति थी तो वायसराय को इस्तीफा दे देना चाहिये था। लेकिन बात यह थी कि वह उस पद पर सैनिक नहीं राजनीति पर वायसराय की स्थिति में था। उसमे और दूसरे वायसरायों में भेद यही है कि वह दूसरों की अपेक्षा कम बोलता है।"

"कुछ लोगों का कहना है कि पंडित नेहरू आग शोलों जैसे भाषण दे रहे हैं और इस तरह वे क्रान्ति कर देना चाहते हैं अतः उनको गिरफ्तार कर लिया जावेगा। वे लोग यह भी नहीं समझते कि पहिले ही देश में क्रान्ति क्यों नहीं हो गई जिसकी कि पूरी जिम्मेदारी महात्मा गांधी की होती। महात्मा गांधी ने तो सैनिक का कार्य भी किया था फिर भी कई बार उन्हें जेल जाना पड़ा। २०० साल के बाद एक पार्लिमेन्टरी प्रतिनिधि मण्डल भारत में अध्ययन करने के लिये आया है यदि ब्रिटेन हमें सत्ता देने को तैयार है और हम

उसे लेने को तैयार हैं तो इसमें झगड़े की बात ही क्या है। लेकिन सरकारी पक्ष सत्ताको छोड़ने को तैयार कब है? इन्डोनेशिया में ब्रिटिश सरकार ने हमारे देशवासी क्यों भेजे? इन्डोनेशिया के लोग तो स्वतन्त्रता के लिये युद्ध कर रहे हैं। ब्रिटेन ने हमें तो गुलाम बनाया ही है और साथ ही हमारे पड़ौसियों को गुलाम बनाये रखने में हमारी सहायता ले रहा है।"

"मुस्लिम लीग ने महज उसी जगह चुनावों में सफलता प्राप्त की है, जहाँ चुनावों की लड़ाई नहीं हुई। केन्द्रीय ऐसम्बली के चुनावों में सीमित मताधिकार हैं। लेकिन प्रान्तीय चुनावों के मताधिकार का क्षेत्र व्यापक है। प्रान्तीय चुनाव साबित कर देंगे कि ११ प्रान्तों में से कितने प्रान्तों में लीग मंत्रमण्डल बनेंगे। केन्द्र में तो कोई शक्ति है ही नहीं। कांग्रेस फिर प्रान्तों में मंत्रिमंडल स्थापित करेगा। फिर हमें देखना है कि पाकिस्तान कहाँ बनेगा? विजय दिवस मनाने के लिये तो वही दिन उपयुक्त होगा। कांग्रेस वोटों की भिक्षा नहीं मांगती, उसका तो वोट पाना हक है। कांग्रेस के टिकटों के लिये दौड़ धूप नहीं की जाती। कांग्रेसी टिकटों की दरख्वास्तों का हक तो उनकी देश सेवा की पसन्दगी का प्रतीक है। क्या गांधीजी, नेहरू जी और मैंने कोई देश सेवा नहीं की है जो हम कौंसिलों में नहीं जा रहे हैं? हमने अपने सन्तरियों को कौंसिल में भेजा है जिससे कि देश द्रोही ही देश को हानि न पहुँचा सकें। जो कांग्रेसी उम्मीद वार नहीं चुने गये वे किसी से कम योग्य नहीं हैं। उनके सामने बाहर पूरा सेवा का क्षेत्र पड़ा है। बिना वालेंटियरों की प्रतिक्षा किये ही मत दाताओं को चुनाव के दिन वोट डालने के स्थानों पर जाकर कांग्रेसियों को ही वोट देने चाहिये। बीमारों को मत देने की जगह पर लेजाना चाहिये। कांग्रेस को चुनावों में धन खर्च करने की कोई आवश्यकता नहीं। कांग्रेस चुनाव छोटे मोटे हितों के लिये नहीं लड़ना चाहती वरन्

१९४२ के "भारत छोड़ो" प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये ऐसा करना चाहती है।"

"मेरे जेल जाने से पहिले मैंने आप लोगों को चेतावनी दी थी कि गवर्नमैन्ट की कागजी करेन्सी बेकार है। आज ५०० तथा इससे ऊपर के नोट बेकार हो गये हैं। कल ही १००) रु० का नोट भी बेकार हो सकता है। अभी तक ब्लैक मारकेट—चोर बाजार—क्यों जारी रखे गये हैं? अभी युद्ध के बाद की योजनाओं पर बोलने का समय नहीं है। हमारा वास्तविक कार्य चुनाओं के बाद ही आरंभ होगा। हम न तो किसी को चैन ही लेने देंगे और चुनावों के बाद हम भी क्षण भर को चैन नहीं लेंगे।"

"कांग्रेस पार्लिमैन्टरी डेलीगेशन से अवश्य ही मिलेगी। हम उसे ठुकरायेंगे नहीं। भारत दुनिया में किसी से भी लड़ना नहीं चाहता लेकिन हम विदेशियों को हमारे नौकरों की तरह रखना चाहते हैं, मालिकों की तरह नहीं। देश के विभाजन का किसी को अधिकार नहीं है। आप चाहे पाकिस्तान दिवस मनालें पर अभी तो हम सभी गुलाम हैं। पाकिस्तान तो देश के आजाद होने पर ही बन सकता है। कांग्रेस स्वतंत्रता का युद्ध अकेली ही लड़ने को तैयार है।"

२ फरवरी १९४६ को करांची मे भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"हमारा जहाज अब किनारे पर पहुँच गया है और अब हमारी स्वतंत्रता दिखाई देने लगी है। यह हमारा काम है कि हम उसे गृहण करलें और उससे फायदा उठावें। सिंध का भविष्य अब लोगों के हाथ में है और यह भविष्य तभी से खतरे में है जबसे इसे अलग किया है। कांग्रेस का यह प्रोग्राम भी है कि सिंध के लोगों में जान फूंक दी जाय और उन्हें विकास के मार्ग पर लगाया जाय। स्वतंत्रता पाना ही हमारे लिये आवश्यक नहीं है बल्कि उससे अधिक

यह आवश्यक है कि उस स्वतंत्रता को कायम किस प्रकार रखी जाय ?"

"यद्यपि यूरोप के राष्ट्र सभी स्वतंत्र हैं किन्तु हमेशा के युद्धों के कारण सभी जर्जरित हो रहे हैं। अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिये वे दूसरों को गुलाम बनाते हैं। हमें इस मामले में उनकी नकल करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।"

"भारत की स्वतंत्रता के बारे में यदि हमें विचार करना है तो हमें सिंध को तरक्की पर लाना ही होगा और उसे भारत का एक प्रधान अंग बनाना ही पड़ेगा। इस महायुद्ध से महज दो ही प्रान्तों को फायदा हुआ है १ सिंध और दूसरा पंजाब। हर एक प्रकार के घाटे का प्रान्त होते हुए भी सिन्ध एक जबरदस्त फायदे का प्रान्त बनगया है। उसने अपना तमाम कर्जा उतार दिया है और अब उसकी इतनी अच्छी हालत है कि भारत के दूसरे प्रान्तों को चावल और गेहूँ के लिये उससे भीख मांगनी पड़ती है। यह सिंधियों का ही काम है कि वे अपने प्रान्त को और उन्नत बनावें।

[२]

नाविकों का विद्रोह–

१९४६ की फरवरी के दूसरे ही हफ्ते में नविकों ने न्याय और समानता के नाम पर युद्ध छेड़ दिया। नविकों की हड़ताल की आग बात की बात में एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ पर, एक बन्दर गाह से दूसरे बन्दरगाह पर और एक शहर से दूसरे शहर में फैल गयी। बम्बई, करांची आदि शहरों की जनता भी अपने नाविक भाइयों की महानुभूति में उठ खड़ी हुई। २१ और २२ फरवरी १९४६ को सारे मुल्क में एक भयङ्कर क्रान्तिकारी तूफान उठ खड़ा हुआ। यह तूफान १८५७ और १९४२ के तूफान से किसी भी कदर कम महत्वपूर्ण नहीं था।

नाविकों की हड़ताल का मुख्य कारण गोरे अफसरों का नीच और घृणास्पद व्यवहार था। बाद की घटनाओं से यह भी स्पष्ट हो गया था कि नाविकों के पीछे किसी खास राजनीतिक दल का हाथ नहीं था। नाविकों की मांगे उचित और आवश्यक थीं। इन मांगों को यदि वर-वक्त ही पूरा कर दिया जाता तो इतना तूफान नहीं बढ़ता।

जाँच कमेटी की रिपोर्ट में बताया गया था कि नाविकों की मांगें उचित ही थीं अतः इन मांगों को फौरन ही पूरा करने की कोशिश की जाये। साथ ही उसमें यह भी कहा गया था कि धीरे-धीरे गोरे अफसरों को हटाकर नाविकों के बेड़े को भारतीय रूप देने का प्रयत्न किया जाय। हड़ताल सरदार पटेल साहब तथा जिन्ना साहब के बीच में पड़ने से इस शर्त पर समाप्त हुई थी कि नाविकों को हड़ताल के कारण कोई सजा न दी जायेगी। किन्तु अंग्रेज कौम समय का फायदा उठाने में बहुत पटु है। उसने यह शर्त भी मानली पर सरदार पटेल साहब की पूरी चेष्टाओं के बाद भी एक हजार नाविक नौकरी से हटा दिये गये। और अंग्रेजों के व्यवहार में भी कोई खास अन्तर नहीं पाया गया। क्योंकि इस हड़ताल के कुछ समय बाद ही गोरे अफसरों के अनुचित बर्ताव के कारण कोचीन बन्दरगाह के "कुकड़ी" जहाज में हड़ताल होगयी थी।

नाविकों की हड़ताल का मूल उद्देश्य ही यह था कि उनका पूरा बेड़ा सोलहों आने देश भक्त भारतीयों का बेड़ा बन जाय।

नाविकों की केन्द्रीय हड़ताल समिति ने लिखा था—

"देश के इतिहास में हमारी हड़ताल का एक विशेष महत्व है, क्योंकि इस हड़ताल में पहिली बार सरकारी और गैर सरकारी, फौजी और नागरिक आजादी के लिये एक साथ होकर लड़े। हम नाविक इसे कभी न भूलेंगे और हमें विश्वास है कि हमारे नागरिक भाई और बहिन भी इसे कभी न भूलेंगे।"

बम्बई, कोचीन, करांची, कलकत्ता, विजगापट्टम और दूसरे

छोटे बन्दरगाहों के जहाजों के नाविकों की संख्या प्रायः तीस हजार थी। ये नाविक हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागों—बङ्गाल, पंजाब दक्षिण तथा मध्यभारत के रहने वाले थे। इनमें हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, ईसाई भी थे। इनमें ऊंची जातियों के भी थे और अछूत भी थे। हर प्रान्त और हर समुदाय के नवयुवक थे किन्तु सभी देशभक्ति से ओतप्रोत थे। सभी अंग्रेजों से देश को स्वतन्त्र करने के लिये उतावले होरहे थे। ये नवयुवक या तो किसान या शोषितमध्यम वर्ग के थे। द्वितीय महायुद्ध में जापानियों और नाजियों के विरुद्ध लड़कर इन्होंने अपनी हिम्मत और वीरता का सिक्का दुनिया पर जमा दिया था। इन नौजवानों ने हिन्दुस्तान का नाम दुनिया में ऊंचा किया था। उनका बेड़ा छोटा था, उनके जहाज भी पुराने थे और उनके हथियार भी पुराने ही थे। फिर भी दुश्मनों के छक्के छुड़ाकर उन्होंने यह जाहिर कर दिया था कि हिन्दुस्तानी किसी भी उन्नत पश्चिमी राष्ट्र से कम अच्छे लड़ाकू नहीं हैं।

इन लड़ाकू वीर नाविकों ने गोरे अफसरों के वर्षों के दुर्व्यवहार से तंग आकर हड़ताल आरंभ कर दी। १८ फरवरी को, बम्बई के सिगनल स्कूल "तलवार" जहाज से हड़ताल आरम्भ हुई। वहाँ से यह आग की लपटों की तरह देखते-देखते सारे हिन्दुस्तानी बेड़ों में फैल गई। उसकी आंच से शाही बेड़े का कोई भाग न बच पाया। एक भी नाविक ऐसा न था जो देशप्रेम में पागल होकर इस आग में न कूद पड़ा हो। बेड़े के बड़े बड़े गोरे अफसर आये। उन्होंने कहा—तुम इसे रोक दो, यह तुम्हारे लिये खतरनाक है। बड़े फौजी दफ्तरों के आफीसर आये, उन्होंने कहा—तुम अपने लिये ही गड्ढा खोद रहे हो। ब्रिटेन की साम्राज्यवादी सरकार ने घोषित कर दिया—हम तुम्हारा सफाया कर देंगे, तुम्हारा अस्तित्व ही मिटा देंगे। परन्तु ये तीस हजार नाविक, एक सुदृढ़ चट्टान की तरह, पूरे पाँच दिन तक अपनी बात पर डटे रहे। उनके ऊपर हमले किये गये, उन पर गोलियाँ

चलाई गईं परन्तु वे डगमगाये नहीं। उन्होंने, जो हथियार उनके पास थे, उन्हीं से अपना बचाव किया और ऐसा उत्तर दिया कि गोरे अफसरों के दाँत ही खट्टे होगये।

अन्त में उन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया, गोरी नौकरशाही के सामने नहीं, वरन् हिन्दुस्तान की जनता के सामने—अपने विश्वस्त नेताओं की सलाह मानकर।

"तलवार" में नाविकों की संख्या ११०० थी। यही खबरें भेजने और पाने का स्कूल है। इस स्कूल में काम करने वाले दुनिया के सबसे अच्छे जहाजियों में माने जाते हैं।"

११ फरवरी १९४६ को "तलवार" के गोरे अफसर कमाण्डर किंग ने कुछ नाविकों को गालियाँ दीं, उन्हें "कुली की औलाद" और "कुतिया के बच्चे" कहा। नाविक अब तक काफी दुर्व्यवहार और गालियाँ बरदाश्त कर चुके थे। यह अपशब्द सुनकर उनका खून उबल गया। पिछले पाँच छः वर्षों से उनके साथ इसी तरह का दुर्व्यवहार होरहा था, परन्तु वे अपने गुस्से को रोक कर खामोशी से इस दुर्व्यवहार को सहते रहे। परन्तु युद्ध के खत्म होने के साथ ही देश की परिस्थिति में भी काफी परिवर्तन हो चुका था, साम्राज्यवाद के अत्याचारों के विरुद्ध अब तक दबी हुई विद्रोह की भावना सन १९४५ के खत्म होते-होते ज्वाला मुखी की तरह फूट पड़ने को तैयार थी। १९४२ का अमानुषिक दमन, बंगाल का अकाल, १९४३ से १९४५ तक की विषम आर्थिक परिस्थिति और इन सब बातों का हल करने में साम्राज्यशाही की असमर्थताआदि ने भारतियों की आँखें खोल दी थीं। नाविक अंग्रेजी शासन के खोखले पन के रहस्य को अच्छी तरह समझ गये थे। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया था कि उस शासन को बचाये रखने के लिये ही ब्रिटिश सत्ता का दमन चक्र चला करता है। उन्हीं दिनों आजाद हिन्द फौज के नेताओं की रिहाई का आन्दोलन भी चला। नौकरशाही की गोलियों को झेलते हुए

लाखोंकी तदाद में भारतीयों ने जो वीरता प्रदर्शित की, इसके सामने नौकरशाही को झुकना ही पड़ा। इसके बाद देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हड़तालों की ऐसी बाढ़ आई कि कोई भी महकमा इससे नहीं बचा। ये हड़तालें अंग्रेजों द्वारा पैदा की गई भूख और मंहगाई मिटाने के लिये लड़ी गईं।

जब देश में इस प्रकार सनसनी पूर्ण वातावरण व्याप्त हो रहा था तब यह असंभव था कि शाही बेड़े के नाविक ही जुल्म पर जुल्म सहन करते चले जायँ। वे भी आखिर इन्सान थे और उनकी रंगों में भी साम्राज्यशाही के लिये गुस्सा भरा हुआ था। वे खामोश न रह सके और उनमें भी लड़ाई छेड़ने की बातचीत शुरू हो गयी। ठीक इसी समय कमान्डर किंग ने उन्हें "कुली की औलाद" और "कुतिया के बच्चे" कह कर गालियाँ दीं। इन्हीं गालियों ने बारूद खाने में चिन्गारी का काम किया। नाविकों का क्रोध बरदाश्त के बाहर निकल गया।

नाविकों ने उसी समय इस दुर्व्यवहार का विरोध किया। उन्होंने शिकायतें कीं, अर्जियां दीं, जाब्ते की जो कार्यवाही हो सकती थी, सभी कर डाली। मगर अंग्रेजी आफीसरों के खिलाफ इस पराधीन देश में कभी कोई सुनवाई हुई है, जो उस समय होती। महज गालियाँ ही सब कुछ नहीं थीं। १५ फरवरी को उन्हें सड़ा खाना दिया गया। अब बात बरदाश्त के बाहर निकल गई। अत्याचार के विरुद्ध नाविकों का क्रोध भड़क उठा। "तलवार" के सभी नाविक बाहर निकल आये और उन्होंने हड़ताल कर दी। अफसरों के हुक्म पर काम करना तो दूर रहा, उन्होंने एक तिनका तक छूने से इन्कार कर दिया। कमाण्डर किंग ने जब यह सुना तो वह आग बबूला हो गया और क्रोध में बोला—"छोकड़ो! मैं तुम सबका कोर्ट मार्शल करूंगा! तुम में से एक-एक को इस गुस्ताखी का मजा चखाऊंगा। किन्तु किंग की इस गर्वोक्ति का नाविकों पर कोई असर नहीं हुआ।

दोपहर के बाद तमाम नाविकों ने एक स्थान पर एकत्रित हो कर एक सभा की जिसमें उन्होंने अपनी मांगों को—उन जरूरी मांगों को—जिनके पूरे हुए बिना उनका काम पर जाना असंभव ही था—दुगने उत्साह और दृढ़ता से दुहराया।

उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि जब तक अच्छा खाना नहीं मिलेगा, पूरा राशन नहीं दिया जायगा, कमाण्डर किंग को उसकी उद्दण्डता का दण्ड नहीं दिया जावेगा, उनकी तनख्वाहें गोरे नाविकों के समान नहीं होंगी, तब तक वे साहस के साथ लड़ेंगे। लेकिन इन मांगों के अलावा उनकी कुछ और मांगें भी थीं। इन मांगों का उनके देश और उनकी जनता से सम्बन्ध था। देश की चेतना और नवीन जागृति से उनके जीवन का सम्बन्ध है, यह जहाजी अच्छी तरह जानते थे। नाविकों की मांगें ये थीं—

१—सब राजनीतिक बन्दियों को, जिनमें आजाद हिन्द फौज के सिपाही भी हैं। रिहा किया जाय।

२—जावा से हिन्दुस्तानी फौजियों को वापिस बुलाया जाय।

विद्रोह का समाचार थोड़े ही समय में सारे शाही बेड़े में फैल गया। १८ और १६ फरवरी को किसी भी नाविक ने काम में हाथ नहीं लगाया। हर जहाज पर यही चर्चा हो रही थी कि "तलवार" के साथियों ने बहादुरी का कदम उठाया है, हम भी उनका साथ क्यों न दें? दिन भर इसी प्रकार की चर्चा होती रही।

दूसरे दिन सभी कमर कस कर तैयार हो गये। हड़ताल बम्बई भर में फैल गयी फोर्ट बैरक के ८०० नाविक, कासल बैरक के २५०० नाविक, बम्बई बन्दरगाह पर खड़े हुए सभी जहाजियों के, 'ठाणा' के "अकबर" के, "चीता" के, 'कोलाबा' और 'माहौल' के वायर लेस स्टेशनों के, "कुकड़ी" के "मछलीमार" के और "हमला" के कुल नाविक देखते-देखते विद्रोही बन गये।

विद्रोहियों की संख्या सौ दो सौ नहीं अब कुल बीस हजार

थी। इनमें २० बड़े और १०० छोटे जहाजों के, २० किनारे के जहाजों अड्डों यानी "तलवार" "कैसल बैरक" आदि के थे।

जहाजों पर से अफसरों के हथियार छीन लिये गये और उनको नीचे उतार दिया गया। नाविकों ने जहाजों पर अपना कब्जा कर लिया अब जहाजों परकी केवल रसद ही उनके हाथोंमें नहीं थी, बल्कि गोली, बारूद और हथियारों पर भी उनका अधिकार हो चुका था। पहरे के लिये स्थान-स्थान पर उन्होंने अपने संतरी खड़े कर दिये। जहाजों पर से यूनियन जैक उतार लिया गया और उसकी जगह पर तिरंगा हरा और लाल—इस प्रकार तीनों झण्डे साथ-साथ लहराये गये। इसके बाद फौरन "तलवार"से, महौल के वायर लेस से, और दूसरे जहाजों से हर बन्दरगाह को और हर जहाज को सिग्नल द्वारा खबर भेज दी गई कि—"हड़ताल शुरू हो गई है, संघर्ष छिड़ गया है। तुम भी आगे बढ़ो और हमारी सहायता करो।

इस खबर के पहुँचते ही करांची, कोचीन, कोलम्बो, विजगापट्टम, और सिगापुर आदि सभी स्थानों पर चहल-पहल मचगयी। हर जगह अपने साथियों की मदद की तैयारियाँ होने लगीं।

दूसरे दिन, मंगलवार को कुछ और रंग आया। बम्बई के जहाजियों ने सुबह ६ बजे आजाद मैदान में एक सभा की और अपनी मांगों को दुहराया। परन्तु इस बार सभा से ही उनकी कार्यवाही समाप्त नहीं हुई। उन्होंने दूसरा कदम भी बढ़ाया और शहर में एक जुलूस निकाला। जुलूस अपनी पूरी सजधज से निकला। बम्बई के नागरिक "जयहिन्द" "इन्कलाब जिन्दाबाद", "हिन्दू मुस्लिम एक हों", आजाद हिन्द फौजियों को रिहा करो।' के नारे सुनकर अपने को इस हड़ताल से दूर न रख सके। उन्हें लगा कि हम इन्हें अब तक सरकारी आदमी समझते थे, परन्तु यह तो हमारे साथ हैं। इनका सहयोग पाकर हम क्या नहीं कर सकते? उन्होंने भी नाविकों को पूरी मदद देने का दृढ़ संकल्प कर लिया। सड़कों पर भीड़ छा गयी थी।

नाविकों के इस साहस ने मुर्दों में भी जान फूंक दी। तिरंगे, हरे, लाल झण्डे लगाये उनकी लारियाँ सारे शहर का चक्कर लगा रही थीं। इसे देखकर अंग्रेजी साम्राज्यशाही की आँखों तले अंधेरा छा गया। फौरन पुलिस को लाठी चार्ज का हुक्म दिया गया। लाठी चार्ज हुआ, परन्तु अब परिस्थिति बदल चुकी थी। इस बार जनता घायल नहीं हुई। घायल हुआ पुलिस का अंग्रेज अफसर। उसे उठाकर लोग अस्पताल ले गये।

गोरे अफसर की अब समझ में आया कि मामला रंगीन है। अभी तक तो सरकारी फौज और जनता एक-दूसरे के खिलाफ रहा करते थे, परन्तु आज तो वे एक साथ थे। अभी तक लाठी-चार्ज होने पर जनता तितर-बितर हो जाती थी परन्तु आज तो मामला ही कुछ और था। उन्हें याद आया कि गोरा पुलिस अफसर अस्पताल में आ पड़ा है। फौरन रीयर एडमिरल रैट्रे दौड़ता हुआ हड़ताल के केन्द्र "तलवार" मे आया और बोला—"आप अपनी मांगों की सूची हमे दे दीजिये, हम उसे देखना चाहते हैं।" हड़तालियों ने जवाब दिया—"जब तक तुम यह वायदा न करोगे कि माँग पेश करने वालो को किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जायगा, तब तक हम तुम्हारी एक बात भी नहीं सुनेंगे।" रैट्रे उनके तमतमाये चेहरे और क्रोध से लाल आंखें देख कर सहम गया। उसने कहा—"शाम को साढ़े चार बजे तक आपकी सब बातो का जवाब दिया जायगा।" नाविकों ने उसे माँगों की सूची दे दी और वह चला गया। अब नाविक इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि देखें रैट्रे क्या जवाब देता है। परन्तु उत्तर मिलने वाला क्या था? उल्टे "हमला" जहाज पर उनके तीन सौ साथी नाविक गिरफ्तार कर लिये गये।

शाम को तमाम नाविक अपने-अपने अड्डों पर एकत्रित हुए और अपनी-अपनी हड़ताल-कमेटियाँ बनाई और केन्द्रीय हड़ताल-कमेटी के लिये सदस्य चुने। दूसरे ही दिन बुधवार को दोनों खीमों में

पूरी तैयारियां हो गईं। इधर अपनी उसी पुरानी चाल के अनुसार गोरे अफसरों ने भी अपना कदम बढ़ाया। एक ओर तो उन्होंने हर अड्डे पर फौजी पहरा बैठा दिया। दूसरी ओर उन्होंने नाविकों को फुसलाने के लिये अच्छे से अच्छा भोजन भेजा। परन्तु जहाजी अब इन चालों में फँसने वाले नहीं थे। उन्हें मंगलवार को ही रैट्रे साहब की हमदर्दी का पता लग चुका था। उन्होंने 'ओवत' जहाज पर अपनी एक सभा की और ऐलान किया कि हमारी सारी मांगें पूरी करो और पहरा उठाओ। सभा खत्म होने पर फिर उनका एक जुलूस शहर में से निकला। रैट्रे ने अब दूसरी चाल चली। उसने आफीसराना ढंग से यह हुक्म जारी किया कि—"सब जहाजी शाम को साढे तीन बजे अपने बैरकों में हाजिर हो जवें। नाविकों ने रैट्रे साहब के हुक्म पर कोई ध्यान नहीं दिया।

इसी दरम्यानमें बंबईके नाविकोंका सम्वाद करांची पहुँच गया था और वहाँ भी काफी सरगर्मी पैदा हो गई थी। एक रात पहिले ही "चमक" के नाविकों की कई गुप्त सभाएँ हो चुकी थीं जिनमें उन्होंने निश्चय किया था कि वे भी हड़ताल में शामिल होंगे।

२० तारीख तो करांची बन्दर में खड़े दो जहाज 'हिन्दुस्तान' और 'त्रावणकोर' हड़ताल में शामिल हो गये। किनारे के जहाजी अड्डों पर 'चमक', 'बहादुर' और 'हिमालय' में भी आंदोलन इतना बढ़ गया था कि वहां किसी भी समय हड़ताल आरम्भ हो सकती थी। कलकत्ते में 'हुगली' और 'राजपूताना' भी हड़ताल में शामिल होगये। सुदूर दक्षिणमें कोचीन के टारपीडो ट्रेनिंग स्कूल में भी हड़ताल होगई।

परन्तु बम्बई तो साक्षात् ज्वालामुखी बना हुआ था। "बैरकों को वापस जाओ"—रैट्रेके इस हुक्मने आगमें घी का काम किया था।

२१ फरवरी को बम्बई और करांची में नाविकों और साम्राज्य-के संरक्षक गोरे फौजियों का पहिला संघर्ष हो गया। बम्बई में हर अडडे पर गोरे अफसरों के हुक्म पर मराठा सिपाही २० फरवरी को

रात से ही तैनात कर दिये गये थे। मराठा सिपाहियों को अपने खिलाफ मोर्चे पर खड़ा देख कर रात को ही नाविकों ने कहा—"तुम भी हिन्दुस्तानी हो, हम भी हिन्दुस्तानी हैं, क्या तुम अपने ही भाइयों पर गोली दागोगे।"

इस पर मराठा सिपाहियों ने जवाब दिया—"साथियों! हम तुम पर गोलियां नहीं चलायेंगे, देखो हमारे पास खाली कारतूसें हैं।"

२१ फरवरी को इन सिपाहियों को "फ़ायर" करने का हुक्म हुआ। गोरों का खयाल था कि इन छूछे कारतूसों से ही नाविक डर जायेंगे। अतः उन्होने सिपाहियों को 'फायर' करने के बाद "कैसल" बारक पर हमला करने का हुक्म दे दिया।

किन्तु नाविक डरने वाले नहीं थे। वे वहाँ से झपटे और गार्ड रूम तोड़-फोड़ कर बराबर कर दिया और उसमें से ३० रायफल, २० पिस्तौलें और कुछ कारतूस निकाल लिये। यह सामान बात की बात में खास-खास नाविकों के हाथ में पहुँच गया और वे चन्द सैकण्डों में ही अपने-अपने मोर्चों पर तैनात हो गये। अफसरों और सिपाहियों ने जब यह रंग देखा तो वे चुपचाप पीछे हट गये।

इस घटना के ठीक दो घण्टे बाद फिर दोनों ओर से गोलियों की बौछार शुरू हुई। नाविकों को डर था कि गोलियाँ खत्म हो जाने पर वे क्या करेंगे? इसलिये एक हथियार-गोदाम तोड़कर उन्होंने १५० रायफलें, थोड़े से रिवाल्वर तीन मशीन गनें और बहुत सा गोला-बारूद अपने कब्जे में ले लिया। मशीनगनों को उन मोर्चों पर अड़ा दिया गया जहाँ से हमला होने की सम्भावना थी।

अब खुल कर लड़ाई छिड़ी। नाविकों का मुख्य लक्ष्य बैरकों के सामने था, जहाँ से गोरे सिपाही हमला कर रहे थे। फौरन मशीन गनों का धड़धड़ाना आरम्भ हो गया। दस्ती बमों से भी हमला किया गया। परिणाम यह हुआ कि कई गोरे फौजी घायल हुए और कई मारे गये। नाविकों का भी एक नौजवान साथी काम आया। साथी अपने

मृत साथी का शव नीचे ले आये। सब की आँखें सजल हो गईं। उन्होंने उसके मृत शरीर पर कपड़ा डाल कर उसके ऊपर खून से एक लाल क्रास बना दिया।

"कैसल बारक" के युद्ध की खबर से बंदरगाहों में खड़े जहाज भी सतर्क होकर मोर्चा लेने के लिये तैयार हो गये। शाही बेड़े के जहाज 'नर्मदा' ने सिग्नल भेजा कि "सब जहाज युद्ध के लिये तैयार हो जायँ।"

इसी समय 'आसाम' और 'पंजाब' नामक जहाजों ने यह देखा कि गोरे सिपाही एक ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुंचने की चेष्टा कर रहे हैं, जहाँ से वे 'कैसल बारक' के ऊपर घातक हमला कर सकते थे। फिर क्या था ? 'आसाम' और 'पंजाब' ने गोलियां उगलना आरम्भ कर दिया। गोरे सिपाहियों ने यह हमला देखा तो अपनी जान बचाकर भाग गये।

दूसरे अड्डों पर भी तैयारियाँ हो चुकी थीं। मौका लगते ही कूद पड़ने की देर थी। 'फोर्ट बैरक', 'तलवार', 'अकबर' आदि सभी बेतार के तार द्वारा एक दूसरे को सन्देश भेज रहे थे। 'बहादुरी से डटे रहो, हम भी तुम्हारे साथ हैं'—इस तरह के सन्देशों ने नाविकों के उत्साह को दुगुना कर दिया।

उसी दिन ढाई बजे शाही बेड़े के सबसे बड़े अफसर एडमिरल गॉडफ्रे ने रेडियो पर धमकी दी कि 'अगर नाविकों ने हथियार नहीं डाले तो हम सारे हिन्दुस्तानी जहाजी बेड़े को गारत कर देंगे।' सवेरे से ही ब्रिटिश हवाई जहाजों का एक झुण्ड बन्दरगाह पर मँडरा रहा था। ब्रिटिश बेड़े के कुछ बड़े-बड़े जंगी जहाज भी बाहर से मँगा लिये गये थे। मगर गॉडफ्रे की बातें सुनकर नाविकों का गुस्सा और जोश चौगुना हो गया।

इधर शहर के अन्दर जनता का जोश चौगुना उमड़ रहा था। जिसने हड़ताल की खबर सुनी, बन्दरगाह की ओर दौड़ा। अपोलो

बन्दरगाह और गेट वे आफ इण्डिया पर लोगों का तांता लग गया। जो भी नाविक जहाजों पर से किनारे पर आता उसकी झोली लोग फल, मेवा, मिठाई और सिगरेट आदि से भर देते।

जब गोलियां चलने लगीं तो जनता का रुख बदला। शहर में खबर उड़ गई कि गोरे अफसर हमारे जहाजियों को खत्म कर देना चाहते हैं। हर ओर आम हड़ताल करने की चर्चा आरम्भ हो गई। शाम होते-होते मामले ने और भी तूल पकड़ा।

उस दिन जहाजी बेड़े की केन्द्रीय हड़ताल-कमेटी ने नेताओं के, जनता के और सभी राजनीतिक पार्टियों के नाम अपनी पहिली अपील निकाली। अपनी हड़ताल का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा कि जब हमने अपनी मांगें सीधे-सादे ढंग पर पेश कीं तो हमें 'कुत्ते की औलाद' और 'कुली का बच्चा' कहा और जब हमने हड़ताल की तो गाडफ्रे साहब ने हिन्दुस्तानी बेड़े का नामो-निशान मिटा देने की धमकी दी। इसलिये हम कांग्रेस तथा लीग पार्टी के नेताओंसे अपील करते हैं कि वे जनता को एकत्रित कर हमारी मदद में शान्तिपूर्ण हड़ताल करने को कहें। जनता की शक्ति के सामने सिर फिरे अफसरों को झुकना ही पड़ेगा।

करांची में भी २१ फरवरी को हिन्दुस्तानी नाविकों को हथियारबन्द विदेशी फौजों का मुकाबिला करना पड़ा। बम्बई में हड़ताल का केन्द्र 'तलवार' था तो कराँची में हड़ताल का केन्द्र था 'हिन्दुस्तान'। उस दिन सुबह 'हिमालय', 'बहादुर', 'चमक' आदि किनारे के जहाजी अड्डों से आकर नाविक 'हिन्दुस्तान' में एकत्रित हुए। दोपहर तक वहां छः सौ जहाजी एकत्रित हो गये।

दोपहर के कुछ पहिले बलूची रेजीमेंट की दो पल्टनों को जिनमें कुल मिलाकर ६० आदमी थे, 'हिन्दुस्तान' पर कब्जा करने का हुक्म दिया गया। परन्तु बलूचियों ने अपने हिन्दुस्तानी भाइयों के खिलाफ हथियार उठाने से इन्कार कर दिया। झक मार कर साम्राज्यशाही

को गोरी फौजों को ही भेजना पड़ा। जब 'हिन्दुस्तान' के कमाण्डिंग आफीसर को जहाज से उतरनेका हुक्म दिया गया और उसने उतरते-उतरते रिवाल्वर से गोली चला दी तो उधर गोरी पल्टन ने गोलियों की बौछार आरम्भ कर दी।

नाविकों ने शीघ्र ही सुरक्षित स्थानों से अपनी हलकी आरलिकन गनों से जवाब देना आरम्भ कर दिया। गोरे फौजियों को मालूम हो गया कि हिन्दुस्तानी नाविकों को दबा देना आसान काम नहीं है। इसलिये वे पीछे हट गये। किन्तु थोड़ी ही देर बाद उन्होंने फिर नाविकों पर हमला किया। दो जहाजी मारे गये। अब नाविक समझ गये कि हल्की आरलिकन गनों से काम नहीं चलेगा, इसलिये उन्होंने तोपों से काम लेना शुरू कर दिया। गोरों पर गोले बरसने लगे। दूसरी बार उन्हें फिर जान बचाकर भागना पड़ा। उस दिन फिर उनको नाविकों पर हमला करने का साहस नहीं हुआ।

"चमक" बहादुर" और "हिमालय" आदि में नाविकों ने अपनी मीटिंग की और ब्रिटिश फौजों को फौरन ही हटा लेने की माँग की।

दूसरे दिन, २२ फरवरी को करांँची में सबसे भयानक लड़ाई हुई। यह तारीख करांची की जनता को सदा याद रहेगी। बात यह थी कि समुद्र में भाटा आजाने के कारण "हिन्दुस्तान" किनारे से दूर चला गया। तोपों का पूरा-पूरा इस्तेमाल करने का मौका नाविकों के हाथ से जाता रहा।

१० बजे दिन की ब्रिटिश सिपाहियों ने" हिन्दुस्तान" पर हमला किया। गलत मोर्चे पर होने पर भी नाविक उनका मुकाबला करते रहे। पूरे २५ मिनट तक घमासान युद्ध हुआ। छः जहाजी जानसे मारे गये। २५ घायल हुए। आखिर "हिन्दुस्तान" ने आत्म समर्पण कर दिया। फौरन उसके ३५० नाविकों को कैद कर लिया गया।

"हिन्दुस्तान" ही करांची में हड़ताल का केन्द्र था, अतः उसके

आत्म समर्पण करते ही दूसरे जाहाजियों ने भी आत्म समर्पण कर दिया। और हड़ताल खत्म हो गई किन्तु नाविकों के आत्मसमर्पण के बावजूद शहर की जनता ने आन्दोलन जारी रखा। करांची शहर आम हड़ताल होगयी और पुलिस और मिलीटरी द्वारा जनता पर गोलियाँ दागी गयीं।

हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ भी शाही बेड़े की टुकड़ियाँ थीं, वे हड़ताल के प्रभाव से नहीं बच सकीं। कलकत्ते में १७०० और को चीन में ७०० नाविक हड़ताल पर थे। परन्तु दूसरे ही दिन २२ तारीख को भयानक दमन हुआ और ३०० नाविकों को गिरफ्तार कर लिया गया।

जामनगर के "बलसुरा" जहाज पर भी हड़ताल हो गई। "बलसुरा" में नाथिकों की संख्या ३०० से कुछ अधिक थी। सभी नाविकों ने हड़ाल में भाग लिया और वह हड़ताल भी तभी खत्म हुई जब बम्बई की हड़ताल खत्म हुई।

परन्तु इन सबसे महत्वपूर्ण "काठियावड़" जहाज की कहानी है।

"काठियावाड़" एक छोटा सा जहाज था। इसमें १२० जहाजी थे। जिस समय हड़ताल शुरू हुई, उस समय यह जहाज़ गुजरात की मोखी नामक रियासत के बन्दरगाह पर था। हड़ताल की ख़बर पाते ही मोखी के नाविकों ने भी तुरन्त ही निश्चय कर लिया कि वे भी हड़ताल करेंगे।

२१ तारीख को सुबह उन्होंने एक मीटिंग की। उस मीटिंग में यह निर्णय हुआ कि जैसे ही जहाज बन्दरगाह से रवाना होगा, वे उस पर कब्जा कर लेंगे। इसके बाद वे जहाज को बम्बई ले जायेंगे। १० बजे दिन में जहाज़ बन्दरगाह से रवाना हुआ। नाविकों ने उसी समय चुपचाप एक स्थान पर सभा की। सभा हो ही रही थी कि उनको "हिन्दुस्तान" से बेतार के तार द्वारा सहायता के लिये दौड़ने का समाचार मिला। इसलिये उन्होंने बम्बई जाने का इरादा छोड़ दिया और करांची पहुचने का निश्चय किया।

तुरन्त उन्होंने जहाज के कप्तान और दूसरे आफीसरों को जहाज पर ही गिरफ्तार कर लिया। और जहाज पर अपना अधिकार करके उसे करांची की तरफ मोड़ दिया। जब यह जहाज करांची के रास्ते में था, उसी समय नाविकों ने सुना कि नयी दिल्ली का फौजी दफ्तर बम्बई को खबर भेज रहा था कि "हिन्दुस्तान" ने आत्म समर्पण कर दिया है। उन्होंने फौरन ही एक दूसरी सभा की। इस से उन्होंने तै किया कि करांची जाना बेकार है, इसलिये जहाज को बम्बई ही ले चलना ठीक है उन्होंने गिरफ्तार शुदा कप्तान को जाकर कहा कि "तुम्हें जहाज चलाने का अवसर एक बार फिर दिया जा सकता हैं, बशर्तें कि तुम जहाज को बम्बई ले चलो।"

कप्तान ने नाविकों की बात फौरन ही स्वीकार करली। उसे मुक्त कर दिया गया और जहाज बम्बई की ओर रवाना हो गया।

कप्तान को जहाज चलाने का हुक्म जरूर मिल गया था परन्तु जहाज पर हुकूमत नाविकों की ही थी। बम्बई के रास्ते में एक नाविक ने एक गजल छेड़दी—

काम है मेरा तग़य्युर नाम है मेरा शबाब,
मेरा नारा इन्कलाब ओ इन्कलाब ओ इन्कलाब

—जोश मलीहाबादी

सभी रास्ते भर उसे गाते चले। इस प्रकार "काठियावाड़" जहाज नाविकों की कमान में २३ फरबरी को बम्बई पहुँच गया यह पहिला भारतीय जहाज था जिसने देशप्रेमी भारतीय नाविकों की अध्यक्षता में आजादी का उद्देश्य लेकरसफर किया था। परन्तु जिस समय जहाज बम्बई पहुँचा, उस समय हड़ताल खत्म हो चुकी थी। "काठियावाड़" ने भी दूसरे जहाजों की तरह ही आत्म समर्पण कर दिया।

२२ फरवरी को नाविकों की हड़ताल चोटी पर थी। उसी दिन बम्बई के नागरिकों और मजदूरो ने आम हड़ताल करदी। जहाजी बेड़े की केन्द्रीय हड़ताल कमेटी के आदेश पर बम्बई की जनता उमड़

पड़ी। सरदार पटेल और अन्य कॉंग्रेसी नेताओं ने कोशिश की कि हड़ताल न होने पावे। उस समय नाविकों के प्रति जनता के हृदय में श्रद्धा और सम्मान के भाव जागृत हो चुके थे। दस बजते-बजते सड़कों पर हड़तालियों के दल के दल आगये। आज की हड़ताल अकेले विद्यार्थियों या मजदूरों की ही नहीं थी वरन् इसमें सभी वर्गों और पर्टियों के लोग सम्मिलित थे। अकेले मजदूरों की संख्या ३ लाख थी और विद्यार्थी ३० हजार थे। दूकानदारों, क्लर्कों आदि की संख्या तो बेशुमार ही थी। लोगों के हाथों में तिरंगे, लाल और हरे झंडे थे। सभी का उस समय एक ही नारा था—

"ब्रिटिश साम्राज्य शाही का नाश हो! इन्कलाब जिन्दाबाद!!"

एक ओर जनता देश प्रेममें पागल हुई बम्बई की हर सड़क पर साम्राज्य शाही का अन्त करने के नारे लगा रही थी, दूसरी ओर साम्राज्य शाही इस आन्दोलन को कुचलने के लिये नये-नये दाव पेंच सोच रही थी। नौकरशाही के होश खट्टे हो चुके थे। उसे अच्छी तरह यह समझ में आ गया था कि यह विद्रोही नाविकों की छुटपुट पटाखे बाजी नहीं है, इसके भीतर तो विद्रोही भारत का ज्वालामुखी छिपा हुआ है। इस ज्वालामुखी का यदि नाश नहीं किया गया तो एक ही विस्फोट में यह सारा साम्राज्यवाद खत्म हो जायेगा। किन्तु साम्राज्य वाद को अभी कुछ दिन भारत पर अपना प्रभाव और रखना था इसलिये उनके सौभाग्य से या दुर्भाग्य से कांग्रेसी उच्चकोटि के नेता इसके बीच में पड़ गये। इसी बीच बचाव के परिणाम स्वरूप दक्षिणी कमान के कमाण्डिंग अफसर जनरल लोकहार्ट को तुरन्त बम्बई बुल-वाया गया। लेकिन विदेशी आखिर विदेशी ही हैं। लोकहार्ट ने आते ही गोरी पलटन को बम्बई की सड़कों पर अड़ा दिया। इस फौज के पास छोटे से बड़े तक, सभी प्रकार के हथियार थे। टेंक, लारियाँ, ब्रेनगन कैरियर……। उनके हथियारों को देखकर यही प्रतीत होता था कि मानों उन्हें किसी जबरदस्त दुश्मन से टक्कर लेना हो। ये टैंक

और लारियाँ सड़कों के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक दौड़ने लगीं। बन्दूकों और मशीनगनों के मुँह खोल दिये गये। जिधर भी जनता की भीड़ नजर आई, उनके मुँह फेर दिये गये।

सड़कों पर बच्चों और महिलाओं की चीख पुकार ने लोगों के दिल हिला दिये। किसी के सीने में गोली लगी तो किसी के सर में। बम्बई के अस्पताल और मुर्दाघर घायलों और लाशों से पट गये। किन्तु फिर भी बम्बई की जनता ने गोरी पलटन का जगह-जगह पर मुकाबला किया। डिलाइल रोड पर ३।। घण्टे तक दोनों दलों में जम कर लड़ाई होती रही। डंकन रोड पर प्रायः ६–७ घण्टे तक छापेमार लड़ाई जारी रही। इस दमन कार्य के लिये केवल गोरी फौजें ही भेजी गयी थीं क्योंकि नौकरशाही को बम्बई की परिस्थिति देखकर यह विश्वास होगया था कि भारतीय फौज आज हमारे हुक्म से नहीं जनता के हुक्म से ही हथियार उठा रही है और वार भी जनता पर नहीं, हम पर ही करने को उद्यत है। इसलिये २२ तारीख को कहीं भी बम्बई में हिन्दुस्तानी फौज नहीं दिखाई दी।

देश की निहायत ही खराब हालत को देखते हुऐ सरदार पटेल ने एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया को २२ फरवरी, १९४६ को एक वक्तव्य देते हुए कहा—

"कांग्रेस ने नाविकों को सहायता करने के लिये जितनी भी कोशिशें की जासकती थीं, सभी कीं। कांग्रेस के सामने यह सबसे महत्व पूर्ण सवाल है कि उनकी शिकायतों का प्रबन्ध होना चाहिये। केन्द्रीय एसेम्बली में भी कांग्रेस का बहुत बड़ा बहुमत है और वहाँ भी इसके लिये बेहद कोशिशें जारी हैं। इसलिये मैं नाविकों से ईमानदारी के साथ अपील करता हूँ कि वे सब्र और शान्ति से काम लें और जनता से भी निवेदन करता हूँ कि वह सख्त अनुशासन का पालन करे। इस कठिन तम समय में वह कोई भी ऐसा कार्य न करे जिससे शहर की शान्ति भंग होजाय। इन दुर्भाग्य पूर्ण घड़ियों में कांग्रेस की

नाविकों को सिर्फ एक यही सलाह है कि वे अपने हथियार डालदें और आत्म समर्पण करदें। कांग्रेस इस बात की पूरी कोशिश कर रही है कि किसी भी नाविक को बरखास्त नहीं किया जाये और शीघ्र ही उनकी सभी मागें स्वीकार करली जांय। शहर में बेहद तना-तनी का दौर-दौरा है और चीजों और जानों का बेहद नुक्सान होरहा है। इस विद्रोह से नाविकों और अधिकारियों दोनों पर महान भार पड़ रहा है। उनकी वीरता और साहस की अपार प्रशंसा करने के बाद भी मेरी उनको यही सलाह है कि वे इस संघर्ष से पीछे हट जाँय। मुझे इन महान कष्टों के समय उनके प्रति पूरी हमदर्दी है। यह सलाह दोनों दलों के फायदे के लिये है।"

सरदार पटेल की यह सलाह अधिकारियों के पास भी पहुँच गयी और नाविकों ने भी इस विकट परिस्थिति में अपने आपको कांग्रेस के भरोसे पर ही छोड़ दिया था।

२१ मई १९४६ को जब इन्कायरी कमीशन में लेफटीनेन्ट नन्दा ने जो "तलवार" के डिवीजनल आफीसर थे, अपने बयान देते हुए कहा था कि—

" जब विद्रोह खत्म होगया तो मैं कुछ नाविकों के साथ सरदार पटेल से मिला। सरदार पटेल ने कहा कि हड़ताल करके नाविकों ने एक जबरदस्त गलती की क्योंकि इससे उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। सरदार पटेल ने बड़ी ही मनोव्यथा के साथ नाविकों से कहा कि इस समय वे बिना शर्त के आत्म समर्पण करदें, यद्यपि कांग्रेस ने आजतक के अपने इतिहास में कभी भी बिना शर्त के आत्म समर्पण नहीं किया है।"

हड़ताल कमेटी की अंतिम ऐतिहासिक बैठक २ बजे रात को शुरू हुई और सुबह ५॥ बजे तक काफी गरमागरम वातावरण में होती रही। वहाँ पर सरदार पटेल की राय पर विचार होता रहा। सुबह होते होते जिन्ना साहब की भी राय उन्हें मिल गयी कि बिना

शर्त आत्म समपर्ण ही इस समय सर्वोत्तम उपाय है। फिर क्या था। सभीने एक मत होकर बिना शर्त आत्म समर्पण का प्रस्ताव पास किया और सभी जहाजों पर काले झण्डे चढ़ा दिये गये।

इस प्रकार भारत के इतिहास मे इस अभूत पूर्व विद्रोह का इस प्रकार दुखद अन्त हो गया।

२३ तारीख को कलकत्ते में नाविकों की हमदर्दी में हड़ताल हुई और जबरदस्त विरोधी प्रदर्शन भी हुआ। २७ तारीख को त्रिचनापली और मद्रास में हड़ताल हुई जिसमें लाखों की संख्या में जनता ने प्रदर्शन किया। इसी दिन मदुरा में आम हड़ताल हुई शाही बेड़े के हवाबाजों और सैनिकों ने भी बम्बई, पूना, जैसोर, इलाहबाद आदि प्रायः सभी शहरों में जोरदार विरोधी प्रदर्शन किये।

२७ फरवरी १९४६ को बम्बई की एक विराट सभा में भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कम्यूनिस्टों को फटकार बताते हुए कहा—

"कम्यूनिस्ट पार्टी जनता को गलत पथ प्रदर्शन करा रही है और वह देश भक्ति का खात्मा करने पर उतारु है। वे ऐसा इसलिये करते हैं कि उनकी पार्टी की साख जम जाय। जब भारत १९४२ के "करो या मरो" आन्दोलन द्वारा भारत को आजाद करने का भयंकर युद्ध छोड़े बैठा था तब कम्यूनिस्टों ने साम्राज्यवादियों का दिल खोलकर साथ दिया। आज कम्यूनिस्टपार्टी साम्राज्यवादियों से लड़ने की बातें करती हैं। क्या कोई भी उनपर अब विश्वास कर सकता है? भारतीय जनता पर से उनका जो विश्वास उठ गया है उसको कायम करने के लिये उनकी ये कोशिशें बच्चों के खेल जैसी है। उनकी ये कोशिशें निश्चित ही असफल होंगी। इन गुमराहों की बात सुनने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

\+ + + + + + +

श्री जिन्ना ने मंत्रिमण्डल मिशन के सामने केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में शामिल होने के लिये अपनी मनमानी शर्तें रखी। कांग्रेस ने इसका

घोर विरोध किया और वे वायसराय तक ने अस्वीकार कर दी इसपर क्रुद्ध होकर जिन्ना साहब ने अपनी दुराग्रही नीति का सहारा लेते हुए कांग्रेस को और वायसराय आदि सभी को गालियाँ दे डाली और उन्हें युद्ध की भी धमकियां दी। मि० जिन्ना को मुँह तोड़ जवाब देते हुए सरदार पटेल ने ३ अगस्त १९४६ को कहा—"हाल ही में मी० जिन्ना ने कांग्रेस पर अनेक झूठे आरोप लगाये हैं। मैं आज यहाँ उनमें से कुछ का उत्तर दूंगा। सर्वप्रथम मैं कांग्रेस महासमिति व मुस्लिम कौंसिलों के अधिवेशनों की तुलना करता हूँ। कांग्रेस महा समिति की में मुसलिम लीग के विरुद्ध कोई आक्षेप नहीं किया गया पर और न वहाँ किसी ने भी उसपर किसी प्रकार की छींटा कशी ही की। लीग कौंसिल की बैठक में दी गई वक्तताएँ ब्रिटिश मंत्री मण्डल मिशन व कांग्रेस के प्रति अनेक गंदे आरोपों एवं गालियों से भरी हुई थीं। श्री जिन्ना व अन्य मुस्लिम लीगी नेताओं ने जो कीचड़ उछाली व जो गैर पार्लिमेन्टरी भाषा प्रयुक्त की, उस सब को यहाँ बतलाने से कोई लाभ नहीं है। किन्तु मैं यहाँ इतना अवश्य ही कहूँगा कि इन भाषणों में लीगी नेताओं की मनोवृत्ति का स्पष्ट आभास मिल जाता है। इससे यह साफ जाहिर होता है कि मुस्लिम लीग वस्तुतः समझौते की कोई इच्छा नहीं रखती।"

"श्री जिन्ना अब यह दावा करते हैं कि उन्होंने मुस्लिम लीग के हाथों में पिस्तौल रखदी है जो ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस दोनों के विरुद्ध इस्तैमाल की जा सकती है। लीग सदस्यों द्वारा छोड़े जा रहे खिताबों को एक महत्वपूर्ण घटना समझा जा रहा है। मेरी समझ में यह त्याग ब्रिटिश लोगों की इस घोषणा के बाद कि वे भारत छोड़ रहे हैं, कोई अर्थ नहीं रखता। इस प्रदर्शन का किसी पर क्या असर पड़ सकता है? लीग द्वारा की गई सीधी कार्रवाही की धमकी, यदि सच्ची है तो, अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं बल्कि कांग्रेस के विरुद्ध है। क्योंकि अंग्रेज यह पहिले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि वे भारत

में टिके रहने का कोई भी इरादा नहीं रखते। अतः लीग की इस धमकी के यह अर्थ हो सकते हैं कि वह कांग्रेस के विरुद्ध कुछ करना चाहती है। यदि यह कांग्रेस पर दवाब डालकर कुछ करने की चाल है, तो इसके सफल होने की बहुत कम संभावना है, क्योंकि कांग्रेस अपने सिद्धान्तों को कभी नहीं छोड़ेगी, और न ही धमकियों के सामने झुकेगी। श्री जिन्ना कहते हैं कि मैंने मंत्रि मिशन से, कांग्रेस की तरफ से कोई समझौता कर लिया है, और लीग की पराजय की जिम्मेदारी भी मुझ ही पर है। परन्तु श्री जिन्ना अपने इस कथन की पुष्टि के लिये अभी तक कोई प्रमाण पेश नहीं कर सके हैं। वास्तव में श्री जिन्ना ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने कांग्रेस की पीठ के पीछे गुप्त समझौता किया और कुछ वायदे प्राप्त किये थे, जो परिस्थितियों के कारण पूरे नहीं होसके। इसलिये वह अब उन वचनों और आश्वासनों के पूरा न होने की शिकायत करते हैं और उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक है। श्री जिन्ना की शिकायत यह भी है कि कांग्रेस ने मंत्रिमण्डल मिशन की १६ मई की घोषणा स्वीकार करली और लीग के लिये यह असंभव कर दिया कि वह कांग्रेस के बिना अपनी सरकार बना सके। श्री जिन्ना जानते हैं, जैसा कि प्रत्येक व्यक्ति को भी मालूम ही है कि कांग्रेस ने अपनी यह इच्छा जाहिर करदी थी कि यदि लीग चाहे तो अन्तःकालीन सरकार बनाले। लेकिन तथ्य यह है कि अकेली लीग सरकार बनाने में कतई असमर्थ है।"

"मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि कांग्रेस व लीग में सहयोग होजाने की कोई भी संभावना नहीं है क्योंकि दोनों के लक्ष्य एक दूसरे से कतई भिन्न हैं। यदि इन दोनों को मिलाने का कोई प्रयत्न किया गया तो उसका नतीजा विफलता के सिवाय कुछ न होगा। इंगलैण्ड में युद्ध के समय मजदूर व अनुदार दलों के बीच सहयोग होगया था किन्तु उस समय उनका एक सामान्य लक्ष्य था अर्थात्

जर्मनी व जापान को हराना। लेकिन यहाँ भारत में श्री जिन्ना का उद्देश्य भारत को पाकिस्तान व हिन्दुस्तान नाम के दो हिस्सों में विभाजित करना है जबकि कांग्रेस अखण्ड भारत की हामी है। ये दोनों दल कैसे मिल सकते हैं? इनका लक्ष्य सामान्य नहीं है। मेरी समझ में नहीं आता कि वह कौनसी नई स्थिति उत्पन्न होगई है जिसके कारण लीग ने मिशन की दीर्घकालीन योजना को नामंजूर कर दिया है। श्री जिन्ना पण्डित जवाहरलाल नेहरू की प्रेस मुलाकात की शिकायत करते हैं जिसमें उन्होंने यह कहा है कि कांग्रेस विधान निर्मात्री परिषद् में भाग लेने के लिये सहमत हो गई है और वह परिषद् में जो चाहे करने के लिये स्वतंत्र है।" श्री जिन्ना यह भूलते हैं कि उन्होंने भी स्वयं लीग कौंसिल की दिल्ली बैठक में मिशन योजन को स्वीकार करते हुए ऐसा ही कहा था। उन्होंने कहा था कि "लीग दीर्घ कालीन योजना को इसलिये स्वीकार करही है कि इसमें पाकिस्तान की नींव मौजूद है और लीग उस नींव पर पाकिस्तान की एक पूरी इमारत बनाने की आशा रखती है।" उसी भाषण में उन्होंने यह भी कहा था कि "कांग्रेस ने बूरे में लिपटी हुई पाकिस्तान की गोली को निगल लिया है"। दीर्घ कालीन योजना को स्वीकार करने वाले लीगी प्रस्ताव में भी ऐसा ही कुछ कहा गया था। फिर श्री जिन्ना का कांग्रेस के प्रधान के विरुद्ध शिकायत करना कहाँ तक उचित है?"

"कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव महासमिति द्वारा पूरी बहस के बाद अक्षरशः स्वीकार किया गया है। इसलिये महा समिति के इस गंभीर प्रस्ताव में किसी व्यक्तिगत राय या वक्तव्य से कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। कांग्रेस एक सम्मानित संस्था है और वह अपने नैतिक उत्तरदायित्व को कदापि नहीं छोड़ सकती। कांग्रेस की यह आदत नहीं है कि वह अपने एकबार गंभीरता से किये गये वचन से फिर जाय या दूसरे विचार मन में आते ही अपनी स्वीकृति वापिस ले ले। ब्रिटिश मंत्रि मिशन की योजना कांग्रेस

मुस्लिम लीग, नरेन्द्र मण्डल व ब्रिटिश सरकार—इन चारों दलों द्वारा मजूर की गई है। कांग्रेस ऐसे गंभीर वचन को भंग करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर कदापि नहीं लेगी अर्थात जो काम करने का उसने वायदा किया है, उससे पीछे नहीं हटेगी। यदि लीग अच्छी तरह से सोच विचार कर किये गये अपने वायदे से फिरना चाहती है तो उसे व्यर्थ के बहाने तलाश करने और अपनी जिम्मेदारी छोड़ने का दोष दूसरों के कंधों पर डालने का प्रयत्न नही करना चाहिये। उसे ऐसे किसी निश्चय के परिणामों का मुकाबला करने को तैयार रहना चाहिये।"

"श्री जिन्ना ही वह व्यक्ति थे, जिन्होंने उस दिन अन्तःकालीन सरकार मे परिगणित जातियों की आबादी के अनुपात से उपयुक्त प्रतिनिधित्व का विरोध किया था। उन्होंने इस बात पर जिद की थी कि अन्तःकालीन सरकार में परिगणित जातियों का प्रतिनिधित्व वैसे ही सीमित होना चाहिये जैसे अन्य अल्प संख्यक जातियों का वायसराय अन्तःकालीन सरकार में ५, ५ व २ के आधार पर समान प्रतिनिधित्व के दावे को पहिले ही खण्डित कर चुके हैं और श्री जिन्ना अब तक उसकी रट लगा रहे हैं। थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि वायसराय ने श्री जिन्ना को ऐसा कोई आश्वासन दिया था, तो मेरी समझ में नहीं आता कि श्री जिन्ना जैसे महान् व्यक्ति ने यह कैसे विश्वास कर लिया कि कांग्रेस ऐसे प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगी। कांग्रेस ने इस तथ्य को कभी भी छिपाने का प्रयत्न नही किया कि वह किसी प्रकार की भी समानता को स्वीकार नहीं करेगी और न ही अन्तःकालीन सरकार में किसी अल्प संख्यक जाति को प्रतिनिधित्व से वंचित रहने देगी।"

"श्री जिन्ना का वह गुप्त सौदा, जिसका उद्देश्य कांग्रेस को अन्तःकालीन सरकार से बाहर रखना था, पत्रव्यवहार के प्रकाशित होने से पूर्णतया प्रकाश में आ गया है। मैं पूछता हूँ कि अब श्री

जिन्ना को मंत्रि मण्डल मिशन पर धोखादेही व दगाबाजी के आरोप लगाने का क्या अधिकार है ? श्री जिन्ना ने कांग्रेस से एक ऐसी स्थिति, जिसमें वह एक साम्प्रदायिक संस्था समझी जाती, स्वीकार कराने का प्रयत्न किया था, और उनका यह प्रयत्न असंभव को संभव कराना था। उन्हें यह मालूम होना चाहिये कि कांग्रेस किसी भी ऐसे प्रयत्न का विरोध करेगी। उन्हें अपनी इस विफलता पर ब्रिटिश मंत्रि मण्डल मिशन से नाराज नहीं होना चाहिये। किन्तु श्री जिन्ना मंत्रि मंण्डल मिशन से इसलिये नाराज हैं, क्योंकि उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया है कि उन्होंने श्री जिन्ना के इस दावे को कभी भी स्वीकार नहीं किया कि मुस्लिम प्रतिनिधित्व का उन्हें ही एकाधिकार प्राप्त है। श्री जिन्ना अब कहते है कि—"मैं अपना संकेत कर चुका हूँ और अगला कदम कांग्रेस व ब्रिटिश सरकार को उठाना है"—यह जले पर नमक छिड़कने के समान है। उन्होंने मिशन व कांग्रेस दोनों को गालियाँ दी है। क्या उन्होंने यही संकेत किया ? क्या वह कांग्रेस व ब्रिटिश सरकार से अगला कदम उठवाना चाहते हैं, क्योंकि उन्होंने दोनों को ही गालियाँ दी है ? जब से श्री जिन्ना ने कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़ा है, तब से अबतक उन्होंने अपने सारे जीवन मे कभी भी कांग्रेस के साथ समझौता करने की चेष्टा नहीं की। कांग्रेस बार बार समझौते के लिये प्रार्थना कर चुकी है और बहुधा लीग की अयुक्ति युक्त मांगो को भी स्वीकार करलिया है किन्तु वह अतीत में धमकियों के सामने कभी नहीं झुकी और न ही आगे कभी झुकेगी।"

"अब तक मुस्लिम लीग पाकिस्तान प्राप्त करने के लिये अंग्रेजों की सहायता पर आशा लगा रही थी। लीग, मिशन के सामने अपने पक्ष को साबित नहीं कर सकी। उसने मिशन द्वारा पाकिस्तान की स्वीकृति मंजूर करली। अतः अब पुरानी आवाज को उठाना या गड़े मुर्दों को उखेड़ना नितान्त बेहूदा है। मिशन ने पाकिस्तान की

मांग पर अच्छी तरह विचार किया, किन्तु लीग उसका आर्थिक या राजनीतिक किसी भी दृष्टि से समर्थन नहीं कर सकी। इसलिये मंत्रि मिशन ने उसे स्वीकार नहीं किया। मैं श्री जिन्ना को विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वह साम्प्रदायिकता के चोले को छोड़कर राष्ट्रीयता का बाना पहिनलें तो, कांग्रेस उन्हें उनकी मरजी के अनुसार सरकार बनाने का पूरा अधिकार दे देगी और किसी भी प्रकार का विरोध नहीं करेगी। यदि श्री जिन्ना वाकई समझौता करना चाहते हैं तो उनका यह काम है कि वह मित्रों की तरह आगे हाथ बढ़ायें और धमकियाँ देने व आरोप लगाने का काम बन्द करें। अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निश्चय कर लिया है चाहे हम चाहें या न चाहें, पर वे किसी हालत में भी यहाँ नहीं ठहर सकते। इसलिये इसमें मुस्लिमों का ही अपना लाभ है कि वे वर्तमान धमकी पूर्ण रवैये को छोड़ दें और सहयोग के रचनात्मक मार्ग पर चलें।"

"कम्यूनिस्ट और कांग्रेस सोशलिस्ट नेताओं को मेरी सलाह है कि वे मजदूरों की जरा सी उद्विग्नता से अनुचित लाभ न उठावें। जब देश आजाद होजाय तब आप अपनी इच्छा के अनुसार इसे कम्यूनिस्ट राज बनाना या सोशलिस्ट राज्य बना सकते हैं। किन्तु अभी से शक्ति का अपव्यय करके देश की स्वतंत्रता का दिन आगे को हटा देना उचित नहीं है। वह भी ऐसे समय में जब कि अंग्रेज यहाँ से जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

ता० १ सितम्बर १९४६ को लार्ड वावेल ने अन्तःकालीन सरकार की स्थापना की। इसमें कांग्रेस ने भाग लिया किन्तु लीग अलग रही।

सरदार वल्लभ भाई पटेल ने १ दिसम्बर १९४६ को मंत्रिपद की शपथ ग्रहण की और उनके सिपुर्द गृह विभाग, सूचना विभाग तथा ब्राडकास्टिंग विभाग हुए।

२३ नवम्बर १९४७ को अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति के

५४ वें मेरठ अधिवेशन में सरदार पटेल ने कहा—

"ब्रिटेन में मजदूर दली सरकार बनी हुई है। उसने भारत को आजादी देने का ऐलान किया इसलिये हमें उस पर विश्वास करना पड़ा। श्री जिन्ना ने वायसराय को यह लिखित आश्वासन दे दिया था कि लीग अन्तःकालीन और दीर्घकालीन योजनाओं को स्वीकार करती है। जिन्ना ने अन्तःकालीन सरकार में भी सहयोग देने का वचन दिया था।"

"हम अन्तःकालीन सरकार से अलग होने के लिये नहीं आये हैं और यदि हटेंगे भी तो ऐसे वैसे न हटेंगे। (करतलध्वनि) सरकार को हमें बरखास्त करके ही हटाना पड़ेगा। अभी जो चाल चली जारही है वह कांग्रेस को अन्तःकालीन सरकार से हटाने की है। यदि हम स्वयं हट जायेंगे तो हम उनके फन्दे में पड़ जायेंगे। लीग नेहरू सरकार को वायसराय की शासन परिषद् कहती है। यदि लीग स्वराज्य नहीं चाहती तो न चाहे।"

"लोग कहते हैं कि कलकत्ता, नोआखाली और बिहार में जो हुआ, उसके बारे में केन्द्रीय सरकार कुछ क्यों नहीं करती? मैं सब बातें तो बता नहीं सकता लेकिन इतना कह देता हूँ कि सन् १९४६ की स्थिति सन् १९४२ से भिन्न है। लोग कहते हैं कि जिस तरह १९४२ में केन्द्रीय सरकार की आज्ञा पर राष्ट्रवादियों को जेल में डाल दिया गया उसी तरह प्रतिक्रियावादियों को गिरफ्तार कर सरकार उन्हें जेल में क्यों नहीं डाल देती? सन् १९४२ में हम अंग्रेजों के साथ पूरी ताकत से लड़ रहे थे। उन दिनों सरकार ने लड़ाई की आड़ में कई आर्डीनेंस जारी कर रखे थे, वे अब नहीं हैं। हमें आपस में मरने-कटने का अधिकार दिया गया है। बंगाल के गवर्नर ने बङ्गाल की घटनाओं को नहीं रोका जिसका परिणाम यह हुआ कि लोगों ने रक्षा की बाग-डोर अपने हाथ में ले ली। यदि आजादी चाहिये तो सरकार से रक्षा के लिये बार-बार सहायता प्राप्त करने की आशा न करो। आत्मरक्षा

करना सीखो। जब मुझसे पूछा गया कि केन्द्रीय सरकार क्या करेगी, तो मैंने कहा—"कुछ नहीं करेगी।" तुम अपने बचाव की तैयारी करो। तो फिर यह पूछा जा सकता है कि हम केन्द्र से क्यों नहीं हट जाते? परन्तु वास्तव में कोई भी हिन्दुस्तानी ऐसा नहीं चाहता। अंग्रेजों से लड़ने के लिये बुद्धिमानी और ताकत की जरूरत है।"

"यदि हमें केन्द्रीय सरकार से हटना ही पड़ा तो हम अंग्रेजों का मुँह काला करके ही हटेंगे। हम उनका मुँह इस तरह काला करेंगे कि वह दूसरे के सामने मुँह दिखाने लायक न रह जायँ।"

"आजकल जो दुर्घटनाएँ होरही हैं वह गुण्डों का काम नहीं, इसमें धार्मिक मकसद भी नहीं है, यह तो केवल राजनीतिक चाल है। बङ्गाल में चाहे २०० या ३०० ही मरे हों किन्तु इससे जितनी चोट लगी है, उतनी चोट १९४३ के दुर्भिक्ष से नहीं लगी। जब बङ्गाल में जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन किया जारहा था तब बहुत दिनों तक कोई लीगी मुसलमान नहीं बोला। उसी का नतीजा बिहार मे हुआ।"

"बङ्गाल में अब गाँधीजी क्या कर रहे है, वे अपनी खुराक काट कर शरीर गला रहे हैं। गाँधीजी सुलह के लिये छोटी-छोटी लड़कियों को गांवों में भेज रहे हैं। मैं कहता हूँ कि बङ्गाल में तब तक सुलह नहीं होगी जब तक लीगी यह न जान जायँ कि उसका बदला लिया जा सकता है। बिहार के मुसलमान को बङ्गाल में ले जाकर बसाने की चेष्टा हिटलर की चेष्टा की तरह बेकार होगी।"

"यदि पाकिस्तान लेना है तो हिन्दुस्तान में कभी शान्ति नहीं हो सकती। मैं लीग से कहता हूँ कि यदि वह विधान परिषद में नहीं आई तो केन्द्रीय सरकार से निकलना होगा। (करतल ध्वनि) क्योंकि उसने लिखित वायदा किया है। जब तक लीग जहर उगलना बन्द न करेगी तब तक शान्ति नहीं हो सकती।"

"सरकारी अफसर यदि सफाई से काम करना चाहते हैं तो ठीक है। नहीं तो उसका परिणाम बुरा होगा। मैं आपसे अपील

करता हूँ कि धोखे से पाकिस्तान लेने की बात न करो। हाँ, यदि तलवार से लेना है तो उसका मुकाबला तलवार से ही किया जा सकता है। आजकल पीछे से छुरा भोंकना शुरू होगया है। मैं आज सबसे कहता हूँ कि रक्षा करना सीखो, नहीं तो मर जाओगे।"

"मैं आशा करता हूँ कि जो गृहयुद्ध करना चाहते थे, अब उनका पेट भर गया होगा। ब्रिटिश हुकूमत तो हर हालत में जाने वाली है। वह जाते-जाते आखिरी चिगारी छोड़ जाना चाहती है।"

"आप ताकत का इस्तैमाल मारने के लिये नहीं किन्तु आत्मरक्षा के लिये जरूर करें। यदि ऐसा न करोगे तो कुछ नहीं होगा। ब्रिटिश सरकार ने संयुक्त भारत का सिद्धान्त मान लिया है। उसके बाद भी यदि लीग पाकिस्तान की मांग करती है तो उसके लिये सरकार मे कोई स्थान नहीं।"

"मैं बङ्गालियों से अपील करता हूँ कि आप अपना फर्ज अदा करें। सारा देश आपके साथ होगा।"

[३]

विधानों का निर्माता--

राजनीतिक भारत के अशान्त और अनिश्चित वातावरण के बीच भारतीय इतिहास में पहिली बार भारतीय विधान परिषद् की बैठक, कांग्रेस की अभूतपूर्व दृढ़ता और महात्मा गांधी के आशीर्वाद के परिणाम स्वरूप सोमवार ता० ६ दिसम्बर १६४६ को पहिली बार आरम्भ हुई। यह बैठक कौंसिल हाउस के कॉंस्टीट्यूशन हाल में आरंभ हुई। इसमें ब्रिटिश भारत के कुल २६६ निर्वाचित सदस्यों में से २०७ उपस्थित थे। मुस्लिम लीग के ७४ ही सदस्य अनुपस्थित रहे। बाद के अधिवेशनों में मुस्लिम लीगी सदस्य तथा रियासती सदस्य भी उपस्थित हो गये।

सरदार वल्लभभाई पटेल विधान परिषद् के प्रमुख सदस्यों में से हैं और वे बम्बई प्रान्त से निर्वाचित हुए हैं ।

१२ दिसम्बर १६४६ को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने "सार्वभौम भारतीय प्रजातन्त्र" वाला अपना सुप्रसिद्ध प्रस्ताव पेश किया। इस पर कई प्रमुख वक्ताओं के भाषण भी हुए। डाक्टर जयकर ने उपरोक्त प्रस्ताव पर बोलते हुए बताया कि "हमारे मार्ग में जो एकाध कठिनाइयाँ हैं, उनकी उपेक्षा करने से विधान परिषद का कार्य बिगड़ जाने की सम्भावना है। मैं इसे बिगड़ने से बचाना चाहता हूँ। दो पार्टियों-लीग और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में किसी प्रस्ताव की बात सोची ही नहीं जा सकती। जब कांग्रेस ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और वायसराय की ६ दिसम्बर की घोषणा को पूर्णरूप से स्वीकार किया है, तब उसे घोषणा की सीमा से बाहर नहीं जाना चाहिये।"

डाक्टर जयकर के विरोध का उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—"डाक्टर जयकर यहाँ देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं और अभी तक किसी भी देशी राज्य के प्रतिनिधि ने यह नहीं कहा कि अगर मुस्लिम लीग परिषद में शामिल न होगी तो वे भी नहीं आयेंगे। ऐसी हालत में एक हिन्दुस्तान के बजाय एक पाकिस्तान विधान और दूसरे राजस्थान विधान की आवश्यकता हम पर लादी जायेगी ऐसी दशा में केन्द्र में आपका संघ समाप्त ही हो जायेगा, फिर उसकी स्थापना हरगिज़ ही नहीं हो सकेगी। इस परिषद् को १६ मई की घोषणा के आधार पर आगे बढ़ना चाहिये और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के ६ दिसम्बर के वक्तव्य की कतई उपेक्षा कर देनी चाहिये।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सरदार पटेल के इस सिंहनाद से परिषद् की कार्यवाही में जान आ गई।

ता० २६ अप्रैल को विधान परिषद् में स्वतन्त्र भारत की नयी रूप-रेखा की बुनियाद डालने वाली रिपोर्ट—मूलाधिकार समिति की

रिपोर्ट—भारत सरकार के उपप्रधान तथा गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने पेश की—

मूलाधिकार समिति की रिपोर्ट

१—जहाँ प्रसंग वश अन्य अर्थ की आवश्यकता न हो, वहाँ—

१—राज्य—शब्द में यूनियन और उसकी इकाइयों की धारा सभाओं व सरकारों तथा यूनियन के प्रदेशों के अन्तर्गत नियुक्त समस्त स्थानीय व अन्य अधिकारियों या राजकीय संस्थाओंका समावेश होगा।

२—यूनियन—का अर्थ भारतीय संघ होगा।

३—यूनियन का नियम—शब्द में यूनियन धारासभा द्वारा बनाये गये तमाम कानूनों तथा उन सब वर्तमान कानूनों का समावेश होगा जोकि यूनियन या उसके किसी अन्य हिस्से में प्रचलित हों।

२—यूनियन के प्रदेशों की सीमाओं में प्रचलित वे सब कानून, आज्ञाएँ, रेग्यूलेशन, रीति, रिवाज, प्रथाएँ जोकि विधान के इस भाग के अन्तर्गत गारन्टी किये गये अधिकारों के साथ मेल न खाती हों, उस हद तक मंसूख समझी जायेगी जिस हद तक कि वे उसके प्रतिकूल न हों। यूनियन तथा उसकी कोई भी इकाई ऐसा कोई भी कानून नहीं बनायेंगे जोकि इन अधिकारों का अपहरण करे या संक्षिप्त करे।

३—प्रत्येक व्यक्ति जोकि यूनियन में पैदा हुआ है या यूनियन के नियमों के अनुसार उसका स्वाभाविक अङ्ग बना लिया गया है और उसके कानूनों द्वारा शासित है, यूनियन का नागरिक समझा जायेगा। यूनियन की नागरिकता को उपलब्धि व समाप्ति के बारे में अन्य कानून बनाये जा सकते हैं।

४—(१) राज्य, धर्म, नस्ल, जाति या लोक के आधार पर किसी भी नागरिक से भेदभाव नहीं किया जायेगा।

(२) किसी भी नागरिक से—

क—व्यापारिक प्रतिष्ठानों में, जिनमें सार्वजनिक विश्रांति गृह और होटल भी शामिल हैं, प्रवेश,

ख—पुलों, तालाबों, सड़कों एवं पूर्णतः सार्वजनिक कोष से बने व संचालित आम जनता के प्रयोग के बारे में तब तक धर्म, जाति, नस्ल, या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा, जब तक कि इनके बारे में स्त्रियों और बच्चों के लिये खास तौर से अलग व्यवस्था न की गई हो। स्त्रियों और बच्चों के लिये अलग व्यवस्था करने से, इस धारा से कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

५— क—सरकारी नौकरी के मामले में सब नागरिकों को समान अवसर प्राप्त होंगे।

ख—किसी भी नागरिक को यूनियन के भीतर केवल धर्म, जाति, नस्ल, लिंग, वंश या जन्म स्थान के कारण सरकारी नौकरी के लिये अयोग्य करार नहीं दिया जायेगा, किन्तु राज्य को किसी भी ऐसे वर्ग के लिये, जिसे उसकी राय में सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है, विशेष स्थान सुरक्षित करने का अधिकार प्राप्त होगा।

इस मसविदे की कोई भी चीज, ऐसा कोई कानून बनाने से रोक नहीं सकेगी जिसमें यह कहा गया हो कि किसी धार्मिक या वर्ग विशेष की संस्था के प्रबन्धक या व्यवस्थापक अधिकारी

अथवा उसकी व्यवस्थापक सभा के सदस्य उस विशिष्ट धर्म या वर्ग के ही सदस्य होने चाहिये।

६—अस्पृश्यता—समस्त रूपों में उठा दी जायेगी। तथा उसके आधार पर लागू की गई किसी भी प्रकार की सामाजिक अयोग्यता अपराध समझी जायेगी।

७—यूनियन कोई खिताब नहीं देगी।

यूनियन का कोई भी नागरिक किसी अन्य देश से कोई खिताब स्वीकार नहीं करेगा। राज्य के मातहत किसी लाभ या जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त कोई भी व्यक्ति यूनियन सरकार की अनुमति लिये बिना किसी अन्य देश से कोई उपहार, पारश्रमिक, पद या किसी प्रकार का खिताब स्वीकार नहीं करेगा।

८—सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता की रक्षा करते हुए निम्न अधिकारों के उपयोग में प्रत्येक नागरिक को आजादी होगी बशर्ते कि यूनियन या उसके अन्तर्गत किसी प्रदेश की सरकार ऐसी संकट कालीन स्थिति की घोषणा न कर दे जिसे कि वह अपनी सुरक्षा के लिये खतरनाक समझती हो।

अ—प्रत्येक व्यक्ति को भाषण या विचार प्रकाशन का अधिकार।

ब—नागरिकों का शान्तिपूर्वक व बिना हथियारों के एकत्र होने का अधिकार।

स—नागरिकों का संगठन व यूनियन बनाने का अधिकार।

द—प्रत्येक नागरिक का सारे यूनियन में आजादी से आने जाने का अधिकार।

इ—प्रत्येक नागरिक का यूनियन के किसी भी हिस्से में रहने और बसने, सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने और बेचने तथा कोई भी पेशा, व्यापार, धन्दा इख्तयार करने का अधिकार।

कानून बनाकर इस अधिकार पर ऐसी पाबन्दियाँ लगाई जा सकती हैं जो कि अल्पसंख्यक दल या कबीलों की रक्षा आदि सार्वजनिक हितकी दृष्टि से आवश्यक हों।

९—किसी भी व्यक्ति को कानून की उचित कार्यवाही किये बिना उसके जीवन या आजादी से वंचित नहीं किया जायेगा और न किसी व्यक्ति को यूनियन की सीमाओं के भीतर एक समान कानूनी बर्ताव से ही वंचित किया जावेगा।

१०—यूनियन के कानूनों के भीतर रहते हुए नागरिकों को परस्पर व्यापार, व्यवसाय की या एक प्रादेशिक इकाई से दूसरी प्रादेशिक इकाई में परस्पर सम्बन्ध की आजादी होगी।

कोई भी प्रादेशिक इकाई कानून बनाकर सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, व स्वास्थ्य की दृष्टि से या विशेष संकट-काल में इस अधिकार पर पाबन्दी लगा सकेगी।

इस धारा में कही गई कोई चीज किसी प्रादेशिक इकाई को किसी भी अन्य इकाई से आयातित माल पर भेदभाव किये बिना वही ड्यूटी लगाने से नहीं रोक सकती जोकि स्वयं उसके अपने तैयार किये गये माल पर लगाई जाती हो।

व्यापार या राजस्व आदि के किसी नियम के द्वारा किसी एक इकाई को दूसरी पर तरजीह नहीं दी जायेगी।

११—मनुष्यों का व्यापार, और बेगार अथवा इसी प्रकार की अन्य जबरन मजदूरी निषिद्ध समझी जायेगी। इस निषेध का भंग अपराध समझा जायेगा।

इस धारा से राज्य द्वारा सरकारी कार्यों के लिये धर्म, जाति, नस्ल या वर्ग का भेद किये बिना अनिवार्य सेवा लागू किये जाने में कोई बाधा नहीं होगी।

१२—चौदह वर्ष से कम उम्र का कोई बालक किसी कारखाने,

खान या अन्य किसी कठोर श्रमवाली नौकरी में नहीं लगाया जायेगा।

१३—सभी व्यक्तियों को आन्तरिक विश्वासों की समान आजादी रहेगी तथा सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता या स्वास्थ्य की रक्षा करते हुए तथा इस अध्याय की अन्य धाराओं का पालन करते हुए किसी भी धर्म के स्वाधीनतापूर्वक आचरण और प्रचार का समान अधिकार रहेगा।

स्पष्टीकरण—१—कृपाण का धारण या वहन करना सिख धर्म के पालन में समझा जायेगा।

२—उपरोक्त अधिकार में ऐसी आर्थिक, राजनीतिक, या अन्य सांसारिक प्रवृत्तियाँ शामिल नहीं होंगी जोकि धर्म पालन के साथ सम्बद्ध हों।

३—इस धारासभा में जिस धर्माचरण की आजादी की गारन्टी की गई है, उससे राज्य द्वारा सामाजिक कल्याण या सुधार के निमित्त बनाये गये कानून बनाने में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

१४—प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय, या उसके किसी अङ्ग को, यह अधिकार होगा कि वह धर्म के मामले में अपने कार्यों का स्वयं संचालन कर सके, और आम कानून का पालन करते हुए चल या अचल सम्पत्ति रख सके तथा प्राप्त कर सके और उसका संचालन कर सके एवं धार्मिक या पुण्य कार्यों के लिये संस्थाएँ खोल या चला सके।

१५—किसी भी व्यक्ति को किसी चीज़ पर कर देने के लिये विवश नहीं किया जायेगा, जिसकी आय का खास तौर से किसी विशिष्ठ धर्म या सम्प्रदाय की रक्षा व उन्नति के लिये विनि-

योग किया जाता हो।

१६—किसी भी व्यक्ति को जो सार्वजनिक कोष से संचालित या सहायता प्राप्त करने वाले किसी स्कूल में अध्ययन करता है, उस स्कूल में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने या स्कूल में तथा उससे सम्बद्ध पूजा गृह आदि में होने वाली धार्मिक पूजा में सम्मिलित होने केलिये बाधित नहीं किया जायेगा।

१७—दबाव या अनुचित प्रभाव के कारण किया गया धर्म परिवर्तन कानून द्वारा स्वीकृत नहीं किया जावेगा।

१८—(१) प्रत्येक प्रादेशिकि इकाई में अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि तथा संस्कृति की रक्षा की जायेगी और ऐसे कोई भी कानून एवं नियम जिनसे कि इन अधिकारों पर आघात होता हो, नहीं प्रचलित किये जायेंगे।

(२) धर्म, सम्प्रदाय अथवा भाषा, किसी भी आधार पर आश्रित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के साथ राजकीय शिक्षणालयों में प्रवेश के मामले में भेदभाव नहीं किया जायेगा और न उन पर किसी धर्म विशेष की शिक्षा ही जबरदस्ती लादी जायेगी।

(३) अ— धर्म, सम्प्रदाय अथवा भाषा किसी भी आधार पर आश्रित प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग की किसी भी प्रादेशिक इकाई में अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा संस्थाएँ खोलने व चलाने की आजादी होगी।

ब—धर्म, सम्प्रदाय अथवा जाति, किसी भी आधार पर आश्रित किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग के द्वारा संचालित किसी भी स्कूल के साथ सरकारी सहायता देने के मामले में भेद-भाव नहीं किया जायेगा।

१९—किसी व्यक्ति या कारपोरेशन कोई भी चल, अचल

संपत्ति जिसमें किसी व्यसाय या उद्योग में लगी हुई पूंजी भी शामिल है, सरकारी कार्य के लिये तबतक नहीं ली जायेगी जब तक कि कानून द्वारा इस प्रकार ली या अधिकार में की जाने वाली सम्पत्ति के लिये मुआविजा देने की व्यवस्था न कर दी गई हो। तथा यह स्पष्ट न कर दिया गया हो कि किन सिद्धान्तों पर व किस ढंग से यह सम्पत्ति ली जायेगी।

२०—(१) किसी भी व्यक्ति को तब तक जुर्म के लिये दण्ड नहीं दिया जावेगा जब तक कि उसने किसी ऐसे कानून का भंग नहीं किया हो जो कि उस जुर्म करने के समय प्रचलित हो। न किसी ऐसे व्यक्ति को कोई ऐसा दण्ड दिया ही जावेगा जो कि उस अपराध करने के लिये कानून द्वारा निहित दण्ड से बड़ा हो।

(२) किसी भी व्यक्ति पर एक ही अपराध के लिये एक से अधिक बार मुकदमा नहीं चलाया जावेगा, और न किसी व्यक्ति को किसी फौजदारी के मुकदमे में स्वयं अपने विरुद्ध गवाह बननेके लिये विवश किया जावेगा।

२१—(१) यूनियन तथा उसकी हर एक इकाई के सरकारी कानूनों, मिसलों (रिकार्डो) तथा अदालती कार्रवाईयों (प्रोसीडिंग्ज) की पूर्ण आदर व विश्वास के साथ स्वीकार किया जावेगा तथा इन कानूनों, रिकार्डों, तथा कार्यवाहियों की किस ढंग से तथा किन परिस्थितियों में साबित किया जावेगा तथा उनके परिणाम का निश्चय किया जावेगा, इसका प्रतिपादन यूनियन के कानून के अनुसार किया जावेगा।

(२) किसी भी प्रादेशिक इकाई में दिये गये अन्तिम फैसलों पर यूनियन के कानूनों द्वारा लगाई गई शर्तों का ध्यान

रखते हुए सारी यूनियन में अमल किया जावेगा।

२२—(१)—इस बात की गारंटी की जाती है कि किसी भी कानून को लागू कराने के लिये प्रत्येक व्यक्ति का समुचित विधि के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) से अपील करने का अधिकार रहेगा।

(२) इस सम्बन्ध में अन्य अदालतों को जो अधिकार दिये जायेगें उनपर आघात किये बिना सर्वोच्च न्यायालयको यह अधिकार होगा कि वह इस विधानमें जारी कियेगये अधिकार के अनुसारही वियस कार्पस, मंडेमस, कियेनिषेधाज्ञा, कोवारेन्टो, और सटीयोरेराई जारी कर सके।

(३) इन प्रतीकारक कानूनी कार्यवाइयों के प्रयोग का अधिकार तबतब मुल्तवी नहीं किया जावेगा जबतक कि विद्रोह, बाह्य आक्रमण, या अन्य गम्भीर संकेट काल में, सार्वजनिक सुरक्षा की दृष्टि से वैसा करना आवश्यक न हो।

२३—यूनियन की धारा सभा कानून बनाकर यह निश्चय कर सकती है कि विधान के इस अंग से गारन्टी किये गये किसी अधिकार को सशस्त्र सेनाओं तथा सार्वजनिक व्यवस्था रक्षाके लिये नियुक्त लोगों (पुलिस आदि) के लिये किसी हद तक सीमित या मंसूख किया जावे ताकि वे पूरी तरह अपने कर्तव्यों का पालन एवं अनुशासन की रक्षाकर सकें।

२४—यूनियन की धारासभा ऐसे कानून बानायेगी जिससे कि विधान के इस अंग में वर्णित उन चीजों पर, जिनक लिये ऐसे कानून की जरूरत है, अमल कराया जा सके, साथ ही वह इस अंग में अपराध घोषित किये गये ऐसे कार्यों के लिये दण्डों का भी विधान करेगी जिनके लिये अभी तक

कोई दण्ड व्यवस्था नहीं है।

जहाँ तक इस देश का सवाल है, मौलिक अधिकारों का प्रश्न सबसे पहिले स्वर्गीय श्री० चक्रवर्ती विजय राघवाचार्य ने पंजाब की अमृतसर कांग्रेस में १६१६ में उठाया था। जब दूसरे वर्ष नागपुर में वे स्वयं कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए तो इस प्रश्न को और अधिक महत्व मिला। दस वर्षों बाद करांची कांग्रेस में मौलिक अधिकारों का प्रश्न स्वीकृत हुआ और अगस्त १६३१ में बम्बई में कांग्रेस महा समिति ने विचारपूर्ण संशोधनादि द्वारा उसे व्यवस्थित रूप प्रधान किया। फलतः देश के सामने स्पष्ट रूप से वह खाका आया जो स्वतंत्र भारत के लिये परमवश्यक है।

"भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक विषय में जो कि कानून और सदाचार के विरुद्ध न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थाएँ और संघ बनाने तथा बिना हथियार के और शांति पूर्वक एकत्रित होने का इख्तयार है"— यह बताते हुए कांग्रेस द्वारा स्वीकृत मौलिक अधिकारों में घोषित किये गये प्रत्येक नागरिक को धार्मिक विश्वास एवं आचरण की स्वतन्त्रता है। अल्प सख्यक जातियों की संस्कृति, उपयोग की भाषा, और लिपि की रक्षा की जावेगी, सब नागरिक कानून की दृष्टि से समान हैं, सरकारी नौक-रियों और सार्वजनिक वस्तुओं में से किसी के साथ भेद नहीं किया जावेगा, कानूनी आधार के बिना न किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण किया जावेगा, न घर जायदाद में प्रवेश या कुर्की या जब्ती की जायेगी, धार्मिक तटस्थता, बालिग मताधिकार, भ्रमण स्वांतत्र्य, दासत्व, हीनता आदि का सब नागरिक उपभोग करेंगे।

अब देश का स्वप्न पूरा हो चुका है, और वास्तविक रूप में निर्माण हो चुका है, नयी परिस्थितियों एवं वास्तविकताओं को सामने रखकर, उपर्युक्त मौलिक अधिकारों को हम नये रूप में पायें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि

पहिले कांग्रेस का ही दिमाग इस कार्य में लगा था और एक तरह से अस्वाभाविक परिस्थिति में ही यह काम हुआ था। इसके विरुद्ध मुस्लिम लीग को छोड़ कर देश का सभी वर्ग इस कार्य में साझीदार हैं और ब्रिटेन से सत्ता प्राप्ति के बाद इसी के अनुसार काम चलाने के खयाल ने परिस्थिति में वास्तविकता ला दी है। सरदार पटेल द्वारा मौलिक अधिकारों का जो मसौदा पेश किया गया, यह वह नहीं है जो कांग्रेस द्वारा स्वीकृत हो चुका है। जहाँ तक वर्तमान मसौदे का सम्बन्ध है ऊंचे दर्जे के कानूनज्ञों और विधान शास्त्रियों का उसमें हाथ है। फिर भी भारतीय विधान परिषद् में हुई बहसों से स्पष्ट है कि अभी उसे और ठोस और परिपूर्ण बनाया जायेगा। हमारा विश्वास पूरा हुआ कि बहस और संशोधनों की कसौटी पर कसा जा कर वह ऐसे श्रेष्ठ और ठोस रूप में निर्मित हुआ कि विभिन्न देशों में स्वीकृत मौलिक अधिकारों की सभी अच्छाइयों का उसमें समावेश हो गया है और बुराइयाँ निकल गई हैं।

जो खाका इस समय हमारे सामने है वह कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारतीय संघ की नागरिकता की व्यवस्था बहुत ही उदार रखी गयी है, समानता की स्पष्ट गारन्टी है, अस्पृश्यता को उसके स्पष्ट रूप में खत्म किये जाने का उसमें एलान है, उपाधियों के प्रलोभनों से बचने का उसमें स्पष्ट संकेत है। जनता की शक्ति और नैतिकता को दृष्टि में रखते हुए 'स्वतन्त्र विचरण, संगठन, व्यवसाय, धर्मपालन, भाषा, लिपि, संस्कृति आदि की स्वतन्त्रता है, अल्प संख्यकों की हित रक्षा की गारन्टी है। बालिग मताधिकार है और १८ वर्ष से अल्पायु बालकों से कारखानों में काम न लेने का स्पष्ट विधान है। कौनसा मौलिक अधिकार किस रूप में व्यक्त होना चाहिये, यह निर्णय करना विधान शास्त्रियों का काम है। जैसी इस रिपोर्ट पर गम्भीर बहस हुई है, उसी से पता चलता है कि कोई भी खामी अब इसमें नहीं रही है। यह प्रसन्नता की बात है कि रियासती प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित

हुए थे। इसका यह अर्थ है कि जो मौलिक अधिकार निश्चित हुए हैं वे भारतीय संघ की अंग रूप रियासतों में भी उसी रूप में व्यवहृत होंगे। रियासती प्रजा और ब्रिटिश भारतीय प्रजा के बीच खड़ी कृत्रिम दीवारें इस प्रकार अनायास ही टूट गई हैं, यह कम महत्वपूर्ण नहीं है। विभाजन के बाद भी इस प्रकार भारत एक होरहा है, यह हमें भूलना नहीं चाहिये।

उपर्युक्त रिपोर्ट बोलते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"रिपोर्ट योंही ऊट पटांग नहीं बनादी गई है। न तो यह कृत्रिम है और न अकृत्रिम यह उन प्रमुख वकीलों ने तैयार की है जिन्होंने सब देशों के मूलाधिकारों का अध्ययन किया है। उपसमिति में दो दल थे। एक दल इतने अधिकार शामिल करना चाहता था, जितनों पर अदालत से अमल कराया जासके। दूसरा दल इन अधिकारों को बहुत ही आवश्यक बातों तक ही सीमित रखना चाहता था। इस रिपोर्ट में इन दोनों के बीच के विचार हैं। तीसरा दल जो पुलिस और कानून रखना ही नहीं चाहता था, उपसमिति में था ही नहीं। रिपोर्ट को सदस्यों के पास गये हुए १० घण्टे ही हुए हैं इतने मे ही इस पर १४८ संशोधन आचुके हैं। यही इस बात का सूचक है कि सदस्य बहुत ही अध्ययनशील हैं।"

"जो व्यक्ति भारतीय यूनियन में पैदा हुआ होगा या यूनियन के अनुरूप और उसके अन्तर्गत् रहकर बस गया होगा, यूनियन का नागरिक माना जायेगा।" —इस धारा पर जो बहस हुई उसका उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"जब साम्राज्य और संसार के अन्य भागों की नस्ल भेद सम्बन्धी नीति के विरुद्ध हम संघर्ष कर रहे हैं, तो हमें नस्ल भेद सम्बन्धी नीति को प्रश्रय नहीं देना चाहिये भारतीय नागरिकता को प्राप्त करने के लिये यहाँ कितने आदमी बच्चों को जन्म देने आयेंगे। हम लोगों को आकस्मिक जन्म के द्वारा आकस्मिक नागरिकता से

भयभीत नहीं होना चाहिये। यदि बाद में पता चले कि इस परिभाषा का दुरुपयोग किया जारहा है तो उसमें परिवर्तन भी किया जासकता है। नागरिकता सम्बन्धी अतिरिक्त व्यवस्था करने के अधिकार हाथ में रखने का अर्थ ही यह है कि इस प्रकार के मामलों की व्यवस्था रखी जायेगी।"

समानता के अधिकार वाली धारा पर बोलते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"यह भेद भाव को मिटाने वाला कानून अन्य देशों में प्रचलित कानून के आधार पर बनाया गया है। चूंकि भारत में अस्पृश्यता सम्बन्धी एक विशेष समस्या मौजूद है, इसलिये इस विशेष अवस्था का सामना करने के लिये कुछ खास व्यवस्था की गई है। कुछ लोग अभी तक दासत्व की मनोवृत्ति के शिकार हैं और उससे अभी तक पीछा नहीं छुड़ा सके हैं। श्री रोहणीकुमार चौधरी जिस बात की चर्चा कर रहे हैं, वह समय अब बीत चुका है। हां, यदि कोई नंगा होकर घुमना चाहे तो उसे घुमने नहीं दिया जायगा। अब वह जमाना आगया है, जब लोग जैसी चाहें, पोशाक पहिन कर जहाँ चाहे जा सकते हैं।"

श्री सोमनाथ लाहिड़ी के इस संशोधन का कि कबाइलियों को यह आश्वासन दिया जाय कि उनके लिये इस समय जो व्यवस्था मौजूद है, उसमें कोई अन्तर नहीं किया जायेगा, श्री सरदार पटेल ने उत्तर देते हुए कहा—

"श्री लाहिड़ी आन्तरिक व्यवस्था नहीं चाहते हैं। कबाइलियों की ओर से बोलने वाले सदस्य इन इलाकों को हमेशा ही पिछड़े हुए देखना चाहते हैं।"

इस प्रकार समस्त मूलाधिकार समिति की रिपोर्ट वादविवाद होने के बाद २ मई १९४७ को स्वीकृत होगई। उसकी कतिपय धाराएं परामर्श दात्री समिति के सिपुर्द विचारार्थ की गईं।

१५ जुलाई १६४७ को विधान परिषद की बैठक में सरदार वल्लभभाई पटेल ने प्रान्तीय विधान का मसौदा पेश करते हुए कहा—

"यह रिपोर्ट अंतिम रूप रेखा नहीं है । यह केवल रूप रेखा मात्र है जिसके आधार पर विधान शाम्त्री विधान बनाने का कार्य करेंगे। इसमें केवल सिद्धान्तों का प्रति पादन मात्र किया गया है। इसकी भाषा या शब्द रचना आदि की बहस में आप लोग न गिरें। यह पूरा नही, ८५ प्रतिशत कम है। अल्प संख्यकों एवं बहिष्कृत प्रदेशों सम्बन्धी उपसमितियों की रिपोर्ट आजाने पर ही शेप कार्य पूरा किया जावेगा। प्रान्तीय तथा संघीय विधान समितियों की संयुक्त बैठक में यह तै किया गया है कि भरतीय प्रान्तों का शासन अंग्रेजी पार्लिमेन्ट के तरीके पर हो। प्रान्तों के गवर्नरों को उस समय, जब कि प्रान्तों को शान्ति खतरे में हो, विशेषाधिकार होंगे। वे अधिकार मंत्रिमण्डल के अधिकारों पर हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कुछ सदस्यों का मत यह था कि ये अधिकार केवल संघ के राष्ट्रपति को सूचना देने तक सीमित होना चाहियें। गवर्नरों को प्रान्तीय धारासभा बुलाने का तथा भंग करने का अधिकार साधारणतया सभी देशों में होता है। तीसरा अधिकार निर्वाचनों के प्रबन्ध का है। उसके सम्बन्ध में मूलभूत अधिकार समिति की यह सिफारिश विधान परिषद ने स्वीकार की थी कि चुनावों के लिये संघीय अध्यक्ष एक कमीशन नियुक्त करे। पब्लिक सरविस कमीशन के सदस्यों को चुनने का जो अधिकार दिया गया है, वह मंत्रिमण्डल की राय से ही काम में लाया जावेगा, । एक स्वाधीन न्यायालय रखने की पूरी कोशिश की जायेगी और उसकी नियुक्ति आदि के विषय में भी पूरी पाबन्दियां लगाई जायेंगी। शेष ढांचा १६३५ के कानून के अनुसार ही है।

इसके बाद सरदार पटेल ने प्रांन्तीय विधान का मसौदा पेश किया—

प्रान्तीय विधान का मसविदा

पहिला भाग

गवर्नरों के प्रान्त–

गवर्नर—

जनता द्वारा बालिग मताधिकार के आधार पर प्रत्येक प्रान्त के लिये एक गवर्नर चुना जायेगा।

[प्रान्तीय विधान समिति का यह मत था कि प्रान्तीय एसेम्बली का आम चुनाव तथा गवर्नर का चुनाव एक ही अवसर पर होना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध में विधान बनाना कठिन है, क्योंकि ऐसेम्बली को अपनी निश्चित कार्य अवधि के दौरान में ही भंग किया जा सकता है।]

कार्य काल–

१—यदि किसी गवर्नर की बीच में ही मृत्यु नहीं हो जाती, या वह स्वयं इस्तीफा नहीं दे देता, या उसे हटा नहीं दिया जाता तो वह अपने पद पर चार वर्ष तक आरूढ़ रह सकेगा।

२—गवर्नर पर दुर्व्यवहार का आरोप साबित होने पर उसे हटाया जा सकता है। इस प्रकार का खुला अभियोग प्रान्तीय धारासभा अथवा उस प्रान्त में जहाँ धारासभाएँ हैं वहाँ लोअर हाउस (एसेम्बली) द्वारा लगाया जा सकता है। संघीय पार्लिमेन्ट के अपर हाउस (कौंसिल) द्वारा भी गवर्नर पर दुर्व्यवहार के बारे में मामला चलाया जा सकता है। गवर्नर के विरुद्ध इस प्रकार का प्रस्ताव सम्बद्ध हाउस के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा ही पास हो सकता है।

३—यदि गवर्नर ४ महीने से अधिक काल के लिये अपने पद से अलग रहता या अपने कर्तव्य पालन में अक्षम अथवा असफल साबित होता है तो उसे अपने पद से पृथक माना जायेगा।

४—गवर्नर फिर दुबारा गवर्नरी के चुनाव के लिये खड़ा हो सकता है किन्तु वह तिबारा चुनाव में खड़ा नहीं हो सकता।

आकस्मिक रिक्त स्थान—

१—यदि किसी गवर्नर का आकस्मिक तौर पर कोई स्थान रिक्त होता है तो उसकी पूर्ति प्रांतीय धारासभा द्वारा एकमात्र परिवर्तनीय वोटों से अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने गये व्यक्ति द्वारा ही की जावेगी। इस प्रकार जो नया गवर्नर चुना जायेगा, वह अपने पूर्ववर्ती गवर्नर के शेष काल तक ही अपने पद पर आरूढ़ रह सकेगा।

२—यदि कोई गवर्नर अपना कार्य भार संभालने के लिये चार महीने तक—यह अवधि चार मास से अधिक न होगी—उपस्थित नहीं हो सकता अथवा वह चार महीने तक अपना कर्तव्य पालन करने में अक्षम या असफल साबित होता है तो संघीय राष्ट्रपति असली गवर्नर के आने तक अथवा नया गवर्नर चुने जाने तक जिस व्यक्ति को ठीक समझे, नियुक्त कर सकता है।

आयु—

भारतीय संघ का कोई भी नागरिक जिसकी आयु ३५, वर्ष की हो चुकी है, गवनर चुना जा सकता है।

चुनाव सम्बन्धी झगड़ा—

गवर्नर के चुनाव सम्बन्धी झगड़े की जांच संघ का सुप्रीम कोर्ट—सर्वोच्च न्यायालय करेगा और वही इसका निर्णय भी देगा।

गवर्नर की शर्तें

१—गवर्नर प्रान्तीय धारासभा का सदस्य न होगा। यदि कोई धारासभाई गवर्नर चुन लिया गया तो उसकी धारासभा की सदस्यता समाप्त हो जायेगी।

२—गवर्नर कोई अन्य पद अथवा अवैतनिक कार्यभार गृहण नहीं कर सकता।

३—गवर्नर को सरकारी निवास स्थान मिलेगा तथा वेतन और भत्ते का निर्णय प्रान्तीय धारासभा के विधान के अनुसार किया जावेगा। इस बीच में गवर्नर के वेतन आदि की वर्तमान व्यवस्था ही बदस्तूर बनी रहेगी।

४—गवर्नर के कार्यकाल में उसका वेतन और भत्ता घटाया नहीं जा सकेगा।

प्रान्तीय व्यवस्था का अधिकार—

गवर्नर स्वयं अथवा अपने मातहत अफसरों के जरिये प्रान्तीय व्यवस्था सम्बन्धी अधिकारों का उपयोग करेंगे किन्तु ऐसा होने पर भी संघीय पार्लिमेन्ट अथवा प्रान्तीय धारासभा के मार्ग में मातहत अफसरों को आदेश देने में कोई बाधा न पड़ेगी।

प्रान्तीय व्यवस्था के अधिकार की सीमा—

जिस हदतक प्रान्तीय धारासभा को कानून बनाने का अधिकार होगा, वहाँ तक व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार का क्रिया क्षेत्र माना जायेगा। धारासभा का कानून बनाने का अधिकार विधान तथा अन्य विशेष समझौतों पर निर्भर होगा। (मान लो कि भविष्य में कोई रियासत या रियासती गुट अपने पड़ौसी प्रान्त से कोई सम-

झौता करता है, उस हालत में वह आवश्यक अधिकार सम्बद्ध प्रान्त को समर्पित कर देगा। किन्तु यहाँ यह न भूलना चाहिये कि संघ रियासतों से केवल संघीय विषयों के ही बारे में सम्बन्ध रखता है। प्रान्तीय मामलों के बारे में रियासतें प्रान्तों से कोई भी समझौता कर सकती हैं]

मंत्रिमण्डल—

गवर्नर को शासन कार्य चलाने में मदद देने के लिये मंत्रियों की एक कौंसिल होगी। वह गवर्नर का केवल उन मामलों में हाथ न बटावेगी जिन्हें विधान के अन्तर्गत् उसे अपने निजी निर्णय पर निबटाने की छूट दी गई है।

नोट—अधिकांश गवर्नर अपने मन्त्रिमण्डल की सलाह से काम करेंगे किन्तु निम्न विषयों के बारे में वह अपने निजी निर्णय से भी काम ले सकेगा।

१—प्रान्त की शांति भंग करने वाले किसी भयंकर खतरे को रोकने के लिये।

२—प्रान्तीय धारासभा को बुलाना अथवा भंग करना।

३—चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण।

४—प्रान्तीय पब्लिक सरविस कमीशन के चेयरमैन और सदस्यों तथा प्रान्तीय आडीटर जनरल की नियुक्ति करना।

यदि यह सवाल उठे कि अमुक विषय गवर्नर के निजी निर्णय की परिधि में आता है या नहीं तो इस बारे में स्वयं गवर्नर निर्णय करेगा और वह अन्तिम माना जायेगा।

गवर्नर को मंत्री जो कुछ सलाह देंगे, उसके बारे में कोई अदालत जांच पड़ताल अथवा पूछ ताछ न कर सकेगी।

मंत्रियों की नियुक्ति, वेतन आदि—

गवर्नर के मंत्री गवर्नर के द्वारा चुने और बुलाये जायेंगे और

तबतक पद पर रहेंगे जबतक गवर्नर की इच्छा हो।

१—अगर कोई मंत्री लगातार छः महीने तक प्रान्तीय धारासभा का सदस्य न रहे तो उस अवधि के बीत जाने पर वह मंत्री पद से हट जावेगा।

२—मंत्रियों का वेतन प्रान्तीय धारासभाओं द्वारा कानून के रूप में समय-समय पर निर्धारित किया जावेगा। जबतक धारासभाओं में ऐसा निर्धारित न हो तबतक गवर्नर उसे निर्धारित करेंगे, बशर्ते कि किसी मंत्री के वेतन में उसके कार्यकाल के दौरान में कोई अदल बदल न किया जावे।

उत्तर दायी शासन के शिद्धान्त मान्य—

मंत्रियों की नियुक्ति तथा उनके साथ अपने सम्बन्धों में गवर्नर को उत्तरदायी शासन के सिद्धान्तों से जो कि धारा (धारा के निर्माण होने पर) में प्रति पादित हैं, काम लेना चाहिये। किन्तु गवर्नर के किसी कार्य पर केवल इसलिये आक्षेप नहीं किया जा सकता कि वह उपरोक्त सिद्धान्तों के अनुसार पूरा नहीं हुआ है।

नोट—उपरोक्त धारा उस आदेश पत्र का स्थान ले लेगी जो कि गवर्नरों को दिया जा रहा है।

गवर्नर का विशेष उत्तरदायित्व—

१—प्रान्त में या प्रान्त के किसी भाग में शांति और व्यवस्था को खतरा पहुँचाने से रोकना गवर्नर का विशेष दायित्व होगा।

२—अपने विशेष दायित्व की अदायगी में गवर्नर जो कदम उचित समझे, उठा सकेगा।

यदि कोई ऐसा कदम उठाने से पहिले गवर्नर धारासभा द्वारा उस आशय का कानून बनाना जरूरी समझे और ऐसा कानून बनाने में असमर्थ हो तो उसे संघ के अध्यक्ष को

इस बारे में सूचित कर देना चाहिये, जिस पर संघ का अध्यक्ष अपने विशेष अधिकारों के अनुसार उचित कार्रवाई कर सकेगा।

एडवोकेट जनरल

१—सरकार को कानूनी मामलों में परामर्श देने के लिये गवर्नर एक ऐसे व्यक्ति को प्रांत का एडवोकेट जनरल नियुक्त करेगा, जो प्रान्त के सर्वोच्च न्यायालय का जज बनने की योग्यता रखता हो।

२—प्रधानमन्त्री के इस्तीफा देते ही एडवोकेट जनरल का भी कार्यकाल समाप्त हो जायगा लेकिन नये एडवोकेट जनरल के नियुक्त होने तक वह अपना कार्य जारी रखेगा।

३—एडवोकेट जनरल का वेतन गवर्नर द्वारा निर्धारित होगा। प्रतीय सरकार के तमाम शासनात्मक कार्य गवर्नरके नाम पर ही किये जायँगे। प्रांतीय सरकार के कार्यों के सहज संचालन तथा मंत्रियोंके कार्योंके बँटवारेके लिये गवर्नर नियम बनायेगा।

दूसरा भाग

प्रांतीय धारासभाओं का विधान

१—प्रत्येक प्रान्त मे एक प्रान्तीय धारासभा होगी जिसमें गवर्नर तथा व्यवस्थापिका सभा शामिल हैं। जो प्रान्त अपर हाउस की माँग करते हों उनमें लेजिस्लेटिव काउंसिल भी होगी।

२—धारासभाओं की सदस्य-संख्या आबादी के अनुसार होगी जो एक लाख पीछे एक सदस्य के हिसाब से अधिक न होगी और उसमें ५० सदस्यों से कम न होंगे। व्यवस्थापिका सभा का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होगा। बालिग वह है जिसकी आयु २१ वर्ष से कम न हो।

३—प्रत्येक प्रान्त की प्रत्येक धारासभा, पहिली बैठक की तारीख से लेकर ४ साल तक जारी रहेगी बशर्ते कि इससे पहिले उसको विसर्जित नहीं किया जाय।

४—जिन प्रान्तों में अपर हाउस भी हो, उनमें अपर हाउस की रचना इस प्रकार होगी—

१—अपर हाउस की सदस्य-संख्या लोअर हाउस की सदस्य-संख्या के एक चौथाई भाग से अधिक न हो।

२—अपर हाउस में आयरिश विधान के ढंग पर सीमित रूप से पेशे के अनुरूप प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

सदस्यों का बटवारा निम्न प्रकार से होगा—

आधे सदस्य पेशों के मुताबिक आयरिश विधान के ढङ्ग से चुने जायँगे। एक तिहाई सदस्य लोअर हाउस द्वारा अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने जायँगे।

कुल संख्या का ६ वाँ भाग मन्त्रियों के परामर्श से गवर्नर द्वारा नामजद किया जायगा।

नोट—मौजूदा विधान के अनुसार मद्रास, बम्बई, बंगाल, युक्तप्रान्त, बिहार व आसाम में दो हाउस हैं और शेष प्रान्तों में एक।

अब यह सिद्धान्त मान लिया गया है कि विधान परिषद के प्रान्त के सदस्य अलग-अलग इस बारे में मत देंगे कि प्रान्त के लिये एक अपर हाउस की आवश्यकता है या नहीं? व्यवस्थापिका सभाओं में विश्वविद्यालयों, मजदूरों व स्त्रियों के लिये विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं होगा।

धारासभाओं की रचना

व्यवस्थापिका सभा की बैठक होना, तोड़ दिया जाना, (जहाँ दो हाउस हों वहाँ) दोनों हाउसों का पारस्परिक सम्बन्ध, मत देने

का तरीका, सदस्यों के अधिकार, सदस्य होने की अयोग्यता, सभा संचालन प्रणाली जिसमें आर्थिक प्रणाली आदि भी शामिल हैं, आदि १९३५ के विधान की सम्बन्धित धाराओं के अनुसार ही होंगे।

भाषा

प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के कार्य प्रान्तीय भाषा या भाषाओं में अथवा हिन्दुस्तानी—हिन्दी या उर्दू—या अंग्रेजी में होंगे। (जहाँ अपरहाउस हो वहाँ) चेयरमेन या स्पीकर जहाँ उचित समझे किसी सदस्य के भाषण का खुलासा उक्त सदस्य द्वारा प्रयुक्त भाषा के अलावा अन्य किसी भाषा में हाउस को प्रस्तुत करने की व्यवस्था करेगा। ऐसा खुलासा हाउस के कार्यों के रिकार्ड में भी दर्ज किया जायगा।

प्रान्तीय धारासभा का अधिकार

प्रान्तीय धारासभा का समय-समय पर निम्नलिखित सारे या किसी विषय के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार होगा।

१—प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्र का सीमा-निर्देश।

२—निर्वाचन की योग्यता-निर्धारण तथा मतदाता-सूची तैयार करना।

३—किसी हाउस के सदस्य होने की योग्यता-निर्धारण।

४—किसी भी हाउस के खाली हुए स्थानों का पुनः निर्वाचन।

५—इस विधान के अनुसार निर्वाचन का संचालन तथा उसकी पद्धति का निर्धारण।

६—ऐसे चुनावों में उम्मीदवारों का व्यय।

७—चुनावों में भ्रष्टाचार या अन्य अपराध।

८—चुनाव सम्बन्धी तमाम सन्देहों और झगड़ों का निबटारा।

९—उपरोक्त विषयों के अन्तर्गत आने वाली कोई भी बात।

बशर्ते कि—

(१)—लोअर हाउस का कोई भी सदस्य २५ वर्ष से कम आयु का न हो।

(२)—चुनावों का निरीक्षण, निर्देशन, नियंत्रण, निर्वाचन-पंचों की नियुक्ति आदि के अधिकार गवर्नर के हाथों में निहित होंगे और वह इन मामलों में स्वयं जो उचित समझे; कर सके।

गवर्नर के वैधानिक अधिकार

१—यदि किसी समय प्रान्तीय एसेम्बली का अधिवेशन न हो रहा हो और गवर्नर यह समझे कि अविलम्ब कार्यवाही करने की स्थिति उत्पन्न हो गई है तो वह आवश्यकतानुसार आर्डीनेंस लागू कर सकता है।

२—इस धारा के अनुसार लागू किये गये आर्डीनेंस की शक्ति और प्रभाव वही होगा जो प्रान्तीय ऐसेम्बली द्वारा पास और गवर्नर द्वारा स्वीकृत कानून का होता है। किन्तु ऐसा प्रत्येक आर्डीनेंस—

अ—प्रान्तीय ऐसेम्बली की बैठक में उपस्थित किया जायगा और ऐसेम्बली की दुबारा बैठक के ६ सप्ताह बाद रद्द कर दिया जायगा। यदि अवधि समाप्त होने के पूर्व ऐसेम्बली इसके विरोध में प्रस्ताव पास करे तो गवर्नर इसे किसी भी समय वापस ले सकता है।

३—यदि इस धारा के अनुसार जारी किये गये आर्डीनेंस को प्रान्तीय ऐसेम्बली लागू नहीं करेगी तो वह अवैध हो जायगा।

नोट—वर्तमान विधान के अनुसार आर्डीनेंस-निर्माण के अधिकारों पर बहुत आलोचनाएँ हुई हैं। यहाँ पर यह बता देना जरूरी है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो

सकती है जबकि कानून का अविलम्ब जारी किया जाना आवश्यक हो जायगा और ऐसेम्बली की बैठक बुलाने का अवसर नही मिलेगा। १९२५ में लार्ड रीडिंग ने रुई पर से चुंगी उठाने के लिये आर्डीनेंस लागू करना जरूरी समझा था। देश के स्वार्थों को देखते हुए ऐसा कानून आवश्यक हो गया था। गवर्नर को, जो जनता द्वारा चुना जायगा और जिसे ऐसेम्बली के लिये जिम्मेदार मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करना होगा, आर्डीनेंस निर्माण के अधिकारों का दुरुपयोग नहीं करेगा।

बहिष्कृत क्षेत्र

बहिष्कृत और अंशतः बहिष्कृत क्षेत्र (सलाहकार समिति की रिपोर्ट प्राप्त होने तक इस अध्याय की धारा तैयार नहीं की जा सकेगी)।

१—१९३५ के भारत-विधान की हाईकोर्ट सम्बन्धी धाराएँ उचित तथा आवश्यक परिवर्तनों के बाद स्वीकार कर ली जायँ, परन्तु सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस, प्रान्त के गवर्नर तथा प्रान्तीय हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस के परामर्श से संघ के अध्यक्ष को जजों की नियुक्ति करनी चाहिये।

२—हाईकोर्ट के जजों को प्रान्तीय ऐसेम्बली के नियम के अनुसार भत्ते और वेतन दिये जायँगे।

३—कार्य-काल में जजों के वेतन एवं भत्ते कम नहीं किये जायँगे।

पब्लिक सर्विस कमीशन—

पब्लिक सर्विस कमीशन तथा आडीटर जनरल सम्बन्धी धाराएँ १९३५ के विधान की धाराओं के आधार पर तैयार की जायँ।

इनके सदस्यों एवं चेयरमैन की नियुक्त गवर्नर के निजी निर्णय के अनुसार होनी चाहिये।

संक्रान्ति कालीन व्यवस्था—

१—इस विधान के लागू होने से पूर्व किसी भी प्रान्त में गवर्नर के पद पर आरूढ़ व्यक्ति तबतक अपने पद पर आरूढ़ रहेगा जब तक उसके उत्तराधिकारी का चुनाव नहीं हो जायगा और वह पद ग्रहण नहीं कर लेगा।

२—मन्त्रिमण्डल, ऐसेम्बली तथा कौंसिल के सम्बन्ध में भी कुछ हेर-फेर के साथ धाराएँ बना ली जायँ।

नोट—यह व्यवस्था इसलिये जरूरी है जिससे नये विधान के लागू होने के बाद ऐसेम्बली तथा सरकार प्रान्तीय शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने को तैयार रहे।

३—प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त की सरकार विधान लागू होने से पूर्व समस्त प्रकार की सम्पत्ति, अधिकार तथा देना-पावना के प्रश्न पर पहिली सरकार की उत्तराधिकारिणी होगी।

मौलाना हसरत मोहानी के यह संशोधन पेश करने पर कि भारतीय संघ का प्रान्तीय विधान समाजवादी हो तथा एकतन्त्री भावना के विपरीत हो, सरदार पटेल ने उत्तर देते हुए कहा—

"इसमें कोई छिपाव या दुराव या चोर दरवाजे से एकतन्त्रता लाने की बात नहीं है। हमारे सामने सवाल यह है कि सिर के बल खड़े हों या पैर के बल। कुछ लोग भले ही सिर के बल खड़े होने के खेल दिखायें पर हम तो पैर के बल ही खड़े होंगे। इसलिये प्रान्तों से आरम्भ कर रहे हैं।

मोहानी साहब के 'गवर्नर' शब्द पर ऐतराज करने पर सरदार ने

उत्तर दिया—"संघ के अध्यक्ष को प्रेसीडेंट कहा जायगा, इसलिये प्रान्त के अध्यक्ष को गवर्नर कह दिया गया है ताकि भ्रम न हो। गवर्नर शब्द के सम्बन्ध में पुरानी धारणाओं को हमें अब बदल देना चाहिये।"

श्री अजीजुलअहमद खाँ ने गवर्नर के मन्त्रिगण को प्रान्तीय धारासभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व को परिवर्तनीय मत दान प्रणाली से चुने जाने पर ऐतराज किया। इसका जवाब देते हुए पटेल साहब ने कहा—

"यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो विधान की आधारशिला ही हट जाती है और उसपर दुबारा नये सिरे से विचार करना आवश्यक हो जायगा। पिछला विधान बड़ा पेचीदा था, उतना यह नहीं है। इसलिये उसकी बुराइयों की अब आशा नहीं करनी चाहिये। संशोधन के अनुसार बने हुए विधान को आगे चलाना तो और भी कठिन हो जायगा।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों की धारासभाओं में सदस्यों की अलग-अलग संख्या नियत करने विषयक संशोधनों का उत्तर देते हुए पटेल साहब ने कहा—

"स्त्रियों के विशेष स्थान या अधिकार न माँगने के आदर्श की पुरुषों को भी नकल करनी चाहिये। उड़ीसा में दूसरी सभा की अलग माँग करने की जरूरत नहीं। इसके लिये विधान में पहिले ही व्यवस्था कर दी गई है। सदस्यों को निर्वाचक वापस बुला लें, इससे तो अच्छा यही है कि उनमें स्वाभिमान और जिम्मेदारी की भावना पैदा हो। आसाम के कबाइली प्रदेशों का मामला एक विशेष कमेटी के विचाराधीन है।

गवर्नर के अधिकारों के विषय में जो संशोधन पेश हुए, उन पर बोलते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"यह प्रश्न गंभीर है और श्री मुन्शी के संशोधन के दोनों पहलुओं पर काफी कहा जासकता है। इसमे यह खतरा भी है कि जनतन्त्र की भावना को ठेस पहुँचे और यह लाभ भी है कि शांति और सुरक्षा कायम रहे। बहस से पता चलता है कि अधिकांश सदस्य इसके पक्ष में है। इसलिये मैं श्री मुन्शी और श्री गुप्ते के संशोधन स्वीकार किये लेता हूँ।"

कई संशोधनों और परिवर्तनों के बाद प्रान्तीय विधान स्वीकृत हो गया।

२७ अगस्त १९४७ को सरदार पटेल ने अल्पसंख्यक, मौलिक अधिकार आदि विषयों की अल्पसंख्यकों के लिये तीन रिपोर्टें पेश की।

मौलिक अधिकार सम्बन्धी रिपोर्ट मे निम्नलिखित बातें मुख्य हैं—

१—पृथक निर्वाचन की समाप्ति तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं के लिये संयुक्त निर्वाचन प्रणाली का सूत्रपात।

२—पहिले दस वर्षों के लिये स्वीकृत अल्पसंख्यकों के लिये विभिन्न प्रान्तों की धारा सभाओं में जनसंख्या के आधार पर स्थानों का संरक्षण।

३—दस वर्षों तक एङ्गलो इण्डियन जाति के लिये विशेषाधिकार।

४—अन्य सिद्धान्त जिनका न्याय नहीं किया जासकता।

पहिली रिपोर्ट मे अल्पसंख्यकों के विशेषाधिकार सम्मिलित हैं।

दूसरी रिपोर्ट मे एङ्गलो इण्डियनों को कुछ नौकरी सम्बन्धी संरक्षण और शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ दीगई है।

तीसरी रिपोर्ट मे मौलिक अधिकार सम्बन्धी रिपोर्ट की विस्तृत व्याख्या है।

अल्पसंख्यक तीन भागों में विभाजित किये जासकते हैं—

१—ए गुट—मे एङ्गलो इण्डियन, पारसी तथा आसामी इलाके के मैदानी कबाइली।

२—बी गुट—में भारतीय ईसाई तथा सिख।

३—सी गुट—में मुस्लिम तथा परिगणित जाति के लोग।

देशी राज्यों के अलावा भारत में एङ्गलो इण्डियनों की जन-संख्या १ लाख से कुछ ऊपर है। अतः उनका विभिन्न धारासभाओं में इस प्रकार प्रतिनिधित्व रहेगा।

लोक सभा	—	३
पश्चिमी बंगाल	—	३
बम्बई धारासभा	—	२
मद्रास	—	२
मध्य प्रान्त और बरार	—	१
बिहार	—	१
युक्त प्रान्त	—	१

उपरोक्त रिपोर्टों को पेश करते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"पहिली रिपोर्ट का सम्बन्ध उससे है, जिसे यदि व्यापकता के अर्थ में कहा जाय तो यों कहेंगे कि वह अल्पसंख्यकों के राज-नीतिक संरक्षणों से सम्बन्ध रखती है। दूसरी रिपोर्ट का सम्बन्ध एङ्गलो इंडियनों की स्थिति से है। यह सम्बन्ध विशेषतया कुछ नौक-रियों से है। इस रिपोर्ट का सम्बन्ध उनकी शिक्षा सम्बन्धी कुछ सहूलियतों से भी है। तीसरी रिपोर्ट पूरक रिपोर्ट (Supplementary Report) है, जो मूलभूत अधिकारों से सम्बद्ध है।"

इसके बाद उन्होंने कहा—

"यह रिपोर्ट उस रिपोर्ट का पूरक भाग समझी जानी चाहिये जो २३ अप्रेल १९४७ को पेश की गई थी। और जिस पर अप्रेल के भारतीय विधान परिषद् के अधिवेशन में विचार किया जाचुका है। यह रिपोर्ट अल्पसंख्यकों के उचित मूलभूत अधिकारों के विषय में है। इस रिपोर्ट का क्षेत्र आमतौर पर समस्त नागरिकों तक है और खास तौर से अल्पसंख्यकों के लिये है। इसमे अल्पसंख्कों को बहुत

ही महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किये गये हैं। ये संरक्षण उनके सामाजिक जीवन के विषय में हैं। इस रिपोर्ट में निम्नलिखित बातें समाविष्ट हुई हैं—

१—धारा सभाओं में प्रतिनिधित्व—संयुक्त एवं पृथक—चुनाव-क्षेत्र—बहुमत।

२—मंत्रिमण्डलों में अल्पसंख्यकों को सीटों का सुरक्षित रखना।

३—अल्प संख्यकों के अधिकारों की रक्षा के लिये सरकारी व्यवस्था।

४—अल्पसंख्यकों की नौकरियों में जगह सुरक्षित रखना।

हमारी उपरोक्त सिफारिशें अल्पसंख्यकों के विषय में निर्मित "सब कमेटी" और सलाहकार समिति में बहुत गंभीर विचार करने के बाद ही अस्तित्व में आई है। अल्पसंख्यकों के सवाल ने जिस प्रकार का रुख अख्तयार किया है, उससे हमारे लिये यह बहुत ही कठिन है कि हमें हर मुद्दे पर सर्वसहमति प्राप्त हो जाय। फिर भी मुझे यह सूचित करते हुए हर्ष है कि हमारी सिफारिशें—चाहे वे सर्व-सहमति से नहीं भी हुई हैं—अल्पसंख्यकों के तमाम दलों और संगठनों द्वारा स्वीकार करली गई हैं।"

"हमने सब से प्रथम मुद्दा जो हाथ में लिया है वह है पृथक निर्वाचन का। हमने इस मुद्दे को सब से अहम समझा। क्योंकि यह जितना अल्पसंख्यकों के हित का है, उतना ही देश के राजनीतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण है। अत्यन्त गहरे बहुमत के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचे कि पृथक निर्वाचन प्रणाली नये विधान में बन्द करदी जावे। हमारी दृष्टि में, इस पद्धति ने साम्प्रदायिक मतभेदों को बहुत ही तीक्ष्ण कर दिया है और देश का जीवन खतरनाक परिस्थिति में डाल दिया है। इस पद्धति से स्वस्थ राष्ट्रीय जीवन भ्रष्ट होगया है। हमें इन्हीं कारणों से आवश्यक प्रतीत हुआ कि देश की वर्तमान परिस्थिति में इन खतरों को हमेशा के लिये दूर कर दिया

जावे और इसी दृष्टिकोण से हम उन तमाम तर्कों को न्यायपूर्ण समझते हैं जो पृथक निर्वाचन के विरोध में दिये गये हैं।"

"इसलिये हम सिफारिश करते हैं कि केन्द्रीय व प्रान्तीय धारासभाओं के जो चुनाव होंगे वे सब संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के आधार पर ही होने चाहियें। संयुक्त निर्वाचन के कारण अल्पसंख्यकों को अपने निर्वाचन का भय न रहे। अतः हमने विभिन्न माने हुए अल्पसंख्यकों के लिये धारासभाओं में कुछ सीट सुरक्षित रखने की भी सिफारिश की है। यह सीटें उनकी आबादी के आधार पर ही नियत की जावेंगी। यह सुरक्षा आरंभ में दस वर्षों के लिये है। इसके बाद इस पर फिर विचार किया जावेगा। साथ ही हम यह भी सिफारिश करते हैं कि उन अल्पसंख्यकों को, जिनकी सीटें सुरक्षित रहेंगी, आम चुनाव में भी भाग लेने का अवसर दिया जावेगा। आम उसूलों के रूप में हम किसी भी अल्पसंख्यक कौम को प्रभुत्व देने के विरोधी हैं।"

"पारसियों के प्रतिनिधि सर होमीमोदी ने पारसी स्थानों के संरक्षण का प्रश्न वापस ले लिया। भारतीय ईसाई अपनी जनसंख्या के आधार पर और अनुपात पर मद्रास तथा बम्बई की धारासभाओं और केन्द्रीय धारासभा में स्थान पाकर सन्तुष्ट हो जाने के लिये राजी हो गये। सीमा कमीशन के निर्णय में विलम्ब होने के कारण सिखों का मामला फिलहाल स्थगित रखा गया। मुस्लिम और परिगणित जातियों के लिये जनसंख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित कर दिये गये हैं और उनका चुनाव संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के अनुसार होगा।"

"जो बीत चुका है उसे भूल जाना चाहिये। हमें आज नये सिरे से कार्य आरंभ करना है। वाद विवाद ऐसे ढङ्ग से नहीं होना चाहिये जिससे ऐसे समय में शांति भङ्ग हो, जबकि गंभीर संघर्ष जारी है। एक प्रान्त में जो उपद्रव हो रहे हैं, उनसे हमारा हृदय

क्षुब्ध है।”

अल्पसंख्यकों की इस रिपोर्ट पर सरदार पटेल को विधान परिषद् में अल्पसंख्यकों के तमाम प्रतिनिधियों ने दिल खोलकर धन्यवाद दिया और उनकी देश भर में भूरि भूरि प्रशंसा और सराहना हुई। मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियों ने एक शब्द भी नहीं कहा।

इस रिपोर्ट पर चौधरी खलीकुज्जमा ने—जो भारतीय विधान परिषद् में मुस्लिम लीगी दल के नेता थे—कहा कि “हम मुसलमानों का यह विश्वास है कि पृथक निर्वाचन प्रणाली से हमें अधिक सुरक्षा प्राप्त होगी। पुरानी बातों को भूल कर उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अब से आगे मुस्लिम अल्पसंख्यक अपनी शिकायतों को दूर कराने के लिये किसी विदेशी राष्ट्र, गवर्नर जनरल या पाकिस्तान से प्रार्थना नहीं करेंगे बल्कि हम सरदार पटेल से, जो अल्पसंख्यकों के भाग्य निर्माता हैं, प्रार्थना करेंगे। भारत के मुसलमानों ने ईमानदारी से भारतीय नागरिकता को स्वीकार किया है तथा वे बहुसंख्यकों के निर्णय को भी स्वीकार करेंगे।”

इसका उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

“मुझे आश्चर्य है कि उपरोक्त विषय पर वादविवाद इतना गरम हो गया। मैंने तो समझा था कि लीगी सदस्य केवल शिष्टाचार के रूप में ही संशोधन पेश करेंगे परन्तु इस पर गंभीर वाद विवाद चला और लीगी सदस्यों ने उसमें गहरा भाग भी लिया। मेरा यह मत है कि जब पाकिस्तान की स्थापना मान ली गई है तब दो राष्ट्रों का सिद्धान्त भारत के लिये नहीं रहा। विश्व में एक भी ऐसा प्रजातन्त्र राष्ट्र नहीं है जहाँ निर्वाचन प्रथा का आधार धर्म हो। हम एक ज्वालामुखी पर बैठे हुए हैं, हमारे चारों ओर जो हो रहा है, और उसके कारण हम पर जो भार पड़ रहा है, क्या आप उसे जानते हैं? यदि आप चाहते हैं कि वह सब यहाँ भी होने लगे तो यह आपकी मर्जी की बात है। परन्तु हमें यहाँ कम से कम यह

दिखा देना चाहिये कि हम पिछली बातों को भूल गये हैं।"

परिगणित जातियों के प्रतिनिधि श्री नागप्पा ने एक संशोधन रखते हुए कहा कि— "किसी सुरक्षित स्थान के लिये परिगणित जाति के उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित करने से पूर्व उसे यह जरूरी होगा कि वह अपनी जाति के ३५ फीसदी मत प्राप्त करे।"

इसका जवाब देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"श्री नागप्पा को यह याद रखना चाहिये कि अब "परिगणित" शब्द ही नये विधान से हटा दिया जावेगा। यदि परिगणित जाति ऐसा निम्न दृष्टि कोण रखेगी तो अपनी सेवा वह नहीं कर सकेगी। उन्हें यह महसूस करना चाहिये कि वे हिन्दुओं के साथ हैं और अब वे परिगणित जाति के नहीं रहे।"

श्री नजीरुद्दीन एहमद—मुस्लिम लीगी—ने कहा—

"महान हिन्दू जाति ने दस साल के लिये आबादी के आधार पर प्रतिनिधित्व दिये जाने की स्वीकृति दी है। उपरोक्त संशोधन का सिर्फ यही मतलब है कि मुस्लिमों का वास्तविक प्रतिनिधित्व हो सके। धारा सभाओं में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व २५ फी० से भी कम है। श्री इब्राहीम—मुस्लिम लीगी—ने जो भी मांगा है वह एक छोटे भाई की बड़े भाई से संरक्षण विषयक मांग है। बड़े भाई को छोटे भाई की प्रार्थना अस्वीकृत करदेने से कौन रोकता है, यदि वह मांग बड़े भाई की नजर में अनुचित है।"

इस बात का उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"मैं अपनी धारा को वापस लेने के लिये तैयार हूँ पर श्री इब्राहीम का संशोधन तो मेरी मूल धारा का प्रतिरूप मात्र है। भारत का नवीन राष्ट्र इस प्रकार की विध्वंस कारी प्रवृत्तियों को, फिर वे चाहे किसी रूप में भी हो, बरदाश्त नहीं कर सकता। वह प्रणाली जिसे पहिले अपनाया गया था और जिसके परिणाम स्वरूप देश के खण्ड होगये, यदि वही फिर अपनाई गई, तो जो ऐसा चाहते हों, उनके लिये यहाँ

स्थान नहीं है, पाकिस्तान में भले ही हो।"

"हम एक राष्ट्र की नींव रख रहे हैं। वे, जो फिर इसके टुकड़े करना चाहते हों, और जो फिर संघर्ष के बीज बोना चाहते हों, उन्हें यहाँ जमीन का एक टुकड़ा तक भी नहीं मिलेगा।"

मुझे इस बात का अफसोस है कि संशोधनों ने हमारा इतना वक्त बरबाद किया। मेरा ख्याल था कि ये वापस ले लिये जायेंगे। परिगणित जाति के संशोधन पर मैं बोलना नहीं चाहता। मुझसे यहीं, परिगणित जाति के प्रतिनिधियों ने एक बहुत बड़े पैमाने पर बात-चीत की है औरउन्होंने कहा है कि वे श्री नागप्पा के संशोधन के विरुद्ध हैं। श्री नागप्पा भी यह सब जानते हैं। श्री नागप्पा ने यह संशोधन शायद इसलिये पेश किया कि वे किसी से किये गये वायदे की पूर्ति कर रहे हैं या शायद इसलिये कि वे अपनी जाति को यह दिखाना चाहते हैं कि बहुसंख्यकों ने उन्हें खरीद नहीं लिया है। वे अपना कर्तव्य पूरा कर चुके इसलिये हमें इसका कोई खेद नहीं।"

"जहाँ तक मुस्लिम लीगी प्रतिनिधियों के संशोधन का सवाल है, तो मैं कहूँगा कि वास्तव में जबरदस्त धोखे में था। यदि यह सब मुझे पहिले ही ज्ञात हो जाता तो मैं कभी भी अल्पसंख्यकों के लिये सुरक्षित सीट रखने के लिये राजी नहीं होता। जब मैं आबादी के आधार पर आश्रित सुरक्षितता के लिये राजी हुआ तो मैंने सोच लिया था कि हमारे मुस्लिम लीगी दोस्त हमारे परिवर्तन के औचित्य को समझेंगे और देश की परिवर्तित परिस्थितियों के योग्य अपने को बना लेंगे, जो देश के विभाजित होजाने के परिणाम स्वरूप पैदा होगई हैं। लेकिन बजाय इसके मैं वही स्थिति पाता हूँ जो देश में पृथक निर्वाचन के जारी करने के समय मौजूद थी। मैं स्वीकार करता हूँ कि वक्ताओं ने काफी मीठी भाषा का व्यवहार किया है। लेकिन उन्होंने जो तरीका इख्तयार किया है उसमें पूरी खुराक जहर भरा हुआ है। आखिरी वक्ता ने कहा है कि यदि हम उनके संशोधन को स्वीकार नहीं करेंगे

तो अपने छोटे भाई का प्यार खो बैठेंगे। मैं कहता हूँ कि मैं उस प्यार को खो बैठने को तैयार हूँ यदि उस प्यार से बड़े भाई की जान ही चली जाती हो।"

"उपरोक्त संशोधन में जिस फारमूले की तरफ इशारा किया गया है, उसका भी एक इतिहास है। वे जो उस समय काँग्रेस में थे, सभी उस फारमूले से परिचित हैं। इसका नाम "मुहम्मद अली फारमूला" रहा है। जब से मुसलमानों में पृथक निर्वाचन आरम्भ हुआ है, तभी से वहाँ दो पार्टियों की उत्पत्ति होगई। १—कांग्रेसी मुस्लिम और २—मुस्लिम लीगी। इस मामले में गहरे मतभेद भी हुए लेकिन हमेशा ही इस सवाल के विरुद्ध एक बहुत बड़ा बहुमत रहा है। जैसे-तैसे इलाहाबाद में एक समझौता हुआ। आखिर को राष्ट्रीय मुसलमानों ने इस फारमूले का हमेशा को ही त्याग कर दिया क्योंकि वे देश में जातियों का अलग होजाना किसी भी तरह पसन्द नहीं करते थे।"

"लेकिन अब तो देश का विभाजन भी हो चुका है। और देश दो टुकड़ों में बँट भी चुका है। मैं नहीं समझता कि फिर उस प्रणाली को जारी करने का मतलब क्या है? मेरा इरादा इस प्रस्ताव पर इतने बोलने का नहीं था लेकिन अच्छा ही हुआ कि सब समझ गये कि वह दूसरों के साथ कहाँ तक पारस्परिक सम्बन्ध रखेंगे। यदि देश को विभाजित करने वाली वही प्रणाली फिर अपनाई गई तो ऐसा करने वाले को पाकिस्तान में ही जाकर रहना चाहिये, यहाँ नहीं। हम यहाँ एक नवीन राष्ट्र को जन्म देने जारहे हैं। जो फिर इस देश को विभाजित कर देने का इरादा रखते हों और इसीलिये घृणा के बीज बोना चाहते हों, उन्हें यहाँ रहने के लिये थोड़ा-सा भी जमीन का टुकड़ा नहीं मिल सकेगा।"

"जो कुछ संशोधन में कहा गया है, उसका यदि यही मतलब हो कि साम्प्रदायिक अनुपात में सुरक्षितता आवश्यक है तो मैं सुरक्षितता के सवाल को ही हटा देता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि यहाँ

ऐसा कोई भी सदस्य नहीं है, जो सुरक्षितता के सवाल को वापस लेने पर ऐतराज करे। आपको खयाल रहे कि आपके दोनों हाथ लड्डू नहीं रहेंगे। आप लोगों को अब अपना रवैया बदल डालना चाहिये और अपने आपको परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बना लेना चाहिये। आप यह कहने का बहाना मत कीजिये कि "आपका हम पर अपार प्रेम है।" हमने आपका प्रेम तो बहुत ही अच्छी तरह से देख लिया है। उसके विषय में अब बात करना भी व्यर्थ है। वास्तविक बात यह है कि हमें वास्तविकता पर ही नज़र डालना चाहिये।"

"बात यह है कि क्या आप वास्तव में हमारे साथ सहयोग करना चाहते हैं; या आप विध्वंसकारी चालें ही चलते रहना चाहते हैं? मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप अपने दिलों को बदल डालें, केवल भाषा बदल देने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि उससे कोई मतलब सिद्ध नहीं होता। आप अपने रवैये पर पुनः गौर करें और अपना संशोधन वापस ले लें। यदि आप ऐसा मानते हैं कि इससे आपका मतलब सिद्ध हो जायेगा तो आप भूल करते हैं। आप नहीं जानते कि यहाँ इस समय मुझे मुसलमान अल्पसंख्यकों की रक्षा करने की क्या कीमत चुकानी पड़ रही है? मैं इसीलिये आपसे अपील करता हूँ कि आप बीती बातें भूल जायँ। आपने जो चाहा था, आपको मिल गया है। आपको याद रहे कि वे आप ही लोग हैं जो पाकिस्तान को अस्तित्व में लाये, वे नहीं, जो पाकिस्तान में रहते हैं। आपने ही बेचैनी फैलाई थी। अब आप चाहते क्या हैं? हम अब और देश को विभाजित करना नहीं चाहते। मैं आपको ईमानदारी के साथ कह देना चाहता हूँ कि आपके साथ किसी किस्म का भी अन्याय नहीं होगा। आपके साथ हमेशा ही उदारता का व्यवहार होगा परन्तु आपकी ओर से भी इसका उत्तर वैसा ही मिलना चाहिये। यदि आपकी ओर से वैसा नहीं हुआ तो आप साफ़-साफ़ सुन लीजिये

कि शब्दों के पीछे क्या है, उसे मीठे शब्द छिपा न सकेंगे। हमें बीती को भूल जाना चाहिये और एक राष्ट्र के रूप में परिणत हो जाना चाहिये।"

"परिगणित जातियों का पृथक निर्वाचन से कुछ भी भला नहीं होगा। आप लोगों ने इसके फल अभी-अभी बम्बई में चख ही लिये हैं। जब हरिजनोंका एक सबसे महान शुभचिन्तक (गांधीजी) बम्बई की भङ्गी बस्ती में रहने को गया तो वे तुम्हारे ही लोग थे जिन्होंने झोंपड़ी पर पत्थर मारे थे। अब आप लोगों को भूल जाना चाहिये आप परिगणित हैं। मैं नहीं समझता कि यदि मैं और खाण्डेकर विदेश जायँ तो कोई यह शिनाख्त कर सकेगा कि हम दोनों में कौन हरिजन है ? परिगणित जातियों के प्रतिनिधियों को यह जान लेना चाहिये कि विधान से "परिगणित" शब्द निकाल दिया जाने वाला है। जब तक आप अपने दिल से अपनी हीनावस्था का मान तथा यह कि आप अस्पृश्य है, मिटा न देंगे, तब तक आप देश की सेवा करने योग्य नहीं हो सकेंगे। अब आप परिगणित जाति नहीं हैं इसलिये आप अपने रवैये को बदल दें।

इसके बाद रिपोर्ट पूरी की पूरी स्वीकृत होगयी।

३० अगस्त १९४७ को भारतीय विधान परिषद की बैठक में सरदार पटेल ने मूलभूत अधिकारों सम्बन्धी रिपोर्ट का पूरक भाग पेश किया। मूल रिपोर्ट विधान परिषद में २९ अप्रेल १९४७ को पेश की थी।

इस पूरक रिपोर्ट में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, न्याय, काम करने का अधिकार, बेकारी में जनता द्वारा सहायता, शिक्षा, वृद्धावस्था, बीमारी, अंगहीनता, काम में मानवीय बर्ताव, काम करने वाली औरतों को प्रसूति में आर्थिक सहायता, रहन-सहन को सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से इस कदर उन्नति बनाना कि मनुष्य जीवन के आम सुख प्राप्त कर सकें, मानव समुदाय का सांस्कृतिक विकास,

१० वर्ष की आयु पर्यन्त अनिवार्य और निःशुल्क आरंभिक शिक्षा, साधारण और गरीब व्यक्तियों के बच्चों की शिक्षा तथा उनकी आर्थिक प्रगति, परिगणित तथा आदिम जातियों की उन्नति तथा उनका सामाजिक अन्यायों से संरक्षण आदि का समावेश किया गया है। साथ ही रिपोर्ट पेश करने वाली समिति इस बात की सिफारिश करती है कि नौकरी व कार्य में स्वतंत्र प्रतियोगिता ही सर्वोपरि मानी जायेगी। यह कभी भी सहन नहीं किया जावेगा कि कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा समस्त आर्थिक एवं सामाजिक शोषण जारी रहे। स्त्री और पुरुषों से समान ही काम लिया जावेगा और समान ही तनख्वाह दी जावेगी।

इस पूरक रिपोर्ट पर भी अल्प संख्यक समिति की रिपोर्ट की तरह काफी गरमा-गरम बहस हुई। उस वाद विवाद का उत्तर देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"मूल रिपोर्ट की अपेक्षा इस पूरक रिपोर्ट पर वाद विवाद ज्यादा होगया। आम बहस उन अधिकारों पर ही हुई जो न्याय की सीमा से बाहर हैं। उन तीनों प्रधान धाराओं पर बहस हुई ही नहीं जिन पर बहस होना अत्यन्त आवश्यक था। हाउस ने मूल प्रस्ताव जिसमें उद्देश्य बताये हैं, स्वीकार कर लिया है अतः अब इसे विषय पर किसी भी तरह का वाद विवाद हो तो भी वह शिष्टाचार की पूर्ति भर होगी। अतः मैं अब इस विषय पर कुछ भी नहीं कहना चाहता।"

इसके बाद केवल एक धारा समिति के सिपुर्द विचारार्थ भेज दी गई, शेष रिपोर्ट स्वीकृत होगई।

[४]

विभाजन के उपरान्त—

१५ आगस्त १९४७ का दिन भारत के १००० साल के इतिहास

में अभूत पूर्व दिन था। इसी दिन, महात्मा गांधी के अथक परिश्रमों से देश स्वतंत्र हो गया और स्वतंत्र भारत सरकार के मंत्रि मण्डल में सरदार वल्लभ भाई पटेल उप प्रधान मंत्री के पद पर सुशोभित हुए। इसके अलावा वे पूर्ववत् गृह, सूचना तथा ब्राडकास्टिंग विभागों के मंत्री नियुक्त हुए। इसके कुछ समय बाद ही अत्यन्त महत्व पूर्ण महक्मे—रियास्ती विभाग—के भी वे ही मंत्री नियुक्त हुए। जहाँ १५ अगस्त को देश का कोना कोना आल्हादित हो रहा था, वहीं उसी दिन एक ऐसी महान् दुर्घटना भी मजबूरी से घट गई जिसकी मिसाल दुनिया के इतिहास में भी ढ़ूढ़ने पर नहीं मिलेगी। इसी दिन लीग की जिद के कारण देश के दो टुकड़े—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—हो गये।

पाकिस्तान के प्रधान मंत्री लियाकत अली खाँ ने सरदार पटेल के अमृतसर वाले भाषण का प्रतिवाद करते हुए कई ऐसी बातें कहीं जो कतई गलत होने के साथ ही साथ जनता में भ्रम फैलाने वाली थीं। अतः सरदार पटेल को लियाकत आली के प्रतिवाद का फिर उत्तर देना आवश्यक हुआ। पटेल साहब ने अपने वक्तव्य ता० १३ अक्टूबर १६४७ में कहा—

"मेरा ध्यान पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री लियाकत अली खाँ के एक वक्तव्य की ओर आकर्षित किया गया है जिसमें उन्होंने अमृतसर में दिये गये मेरे भाषण के इन शब्दों पर आपत्ति प्रकट की है— "मुझे पूरा विश्वास है कि भारत का हित इसमें है कि उसके तमाम स्त्री पुरुष सीमा के इस पार लाये जाँय और तमाम मुसलमानों को पूर्वी पंजाब में भेज दिया जाय।" लम्बे चौड़े राजनीतिक विवाद में फँसना तथा समाचार पत्रों में वक्तव्य प्रकाशित करवा कर शाब्दिक युद्ध छेड़ना मेरी आदत नहीं है। लेकिन अमृतसर में मेरे भाषण के प्रति श्री लियाकत अलीखाँ ने जो रुख गृहण किया है वह बुनियादी रूप में ही इतना गलत है कि मुझे प्रत्युत्तर देने को मजबूर होना पड़ा

है। वे यह भूल गये हैं कि पूर्वी पंजाब में मुसलमानों को और पश्चिमी पंजाब से हिन्दुओं तथा सिखों को भेजने का प्रश्न किसी एक सरकार की नीति का प्रश्न नहीं, लेकिन भारत और पाकिस्तान दो डोमीनियनों के बीच एक निश्चित व्यवस्था का सवाल है। दोनों डोमीनियनों के सम्मेलन में यह निश्चित हुआ था और इस निश्चय को कार्यान्वित करने के उपाय तै किये जारहे हैं। चूंकि इस सम्मेलन में लियाकत अली खाँ ने भी भाग लिया था, इसलिये उन्हें इस सम्बन्ध में अच्छी जानकारी होनी चाहिये थी। जिस दिन लियाकत अली खाँ ने यह वक्तव्य जारी किया, उसी दिन उनके प्रधान सूचना आफीसर ने एक विज्ञप्ति जारी कर दोनों डोमीनियनों के मंत्रियों द्वारा किये गये निर्णयों पर प्रकाश डाला। उस सम्मेलन में किये गये फैसलों में ग्यारहवें नम्बर में "पूर्वी पंजाब की जिनमें गैर मुस्लिम रियासतें भी हैं, कुछ मुसलमान आबादी तथा पश्चिमी पंजाब और उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त की कुछ हिन्दू व सिख आबादी को हटाने की योजनाओं" की तैयारियाँ का उल्लेख किया है। राजनीतिज्ञों की स्मरण शक्ति अल्प कालिक बताई जाती है, लेकिन पाकिस्तान के प्राधान मंत्री की याददाश्त और भी कम जान पड़ती है। इसमें निहित समस्याओं को टालने के लिये उन्होंने जान बूझ कर तथ्यों से मुंह मोड़ लिया है। इससे यही नतीजा निकलता है कि जिन निर्णयों के करने में वे साझीदार रहे हैं, उनके परिणामों का सामना करने के लिये अब वे तैयार नहीं।"

"उन्होंने उन आश्वासनों को दुहराया है जो कि पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों को बार बार दिये जाते हैं। लेकिन भोजन का स्वाद खाने पर ही मालूम हो सकता है। इन आश्वासनों का मूल्य हजारों हत्याओं, अपहरणों, बलात विवाहों, भस्मी भूत घरों क्षत विक्षत बच्चों तथा निपट दुखी व निराश होकर पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू तथा सिख नर नारियों व बच्चों के रूप में स्पष्ट दिखाई दे

रहा है। पाकिस्तान छोड़ने वाले इन लोगों के साथ अभी तक भारी दुर्व्यवहार और उनका अपमान किया जा रहा है। भागते हुए शरणार्थियों के साथ पाकिस्तान के नाम पर जो व्यवहार किया जा रहा है, उसमें अल्पसंख्यकों के हितेच्छुओं की न तो शूरता और न मानवोचित सौजन्य की कोई भावना पथ प्रदर्शन करती है फटे चिथड़ों को पहन कर जो शरणार्थी भारत में आ रहे हैं, उनकी तमाम चीजें उनसे छीन ली जाती है यहाँ तक कि बच्चों से उनकी मीठी गोलियाँ भी छीन ली जाती हैं। स्त्रियों के केवल तन ढकने के कपड़े छोड़कर उनके आभूषण एक एक करके उतार लिये जाते हैं। हो सकता है कि पाकिस्तान से माल मता बाहर न जाने देने के लिये ही यह सब किया जाता हो। वास्तव में पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिखों के साथ न्याय पूर्ण व्यवहार के तथा कथित,आश्वासनों की इससे पोल खुल जाती है। अतएव पाकिस्तानी नेताओं को इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि ये कागजी आश्वासन हिन्दुओं तथा सिखों को पाकिस्तान छोड़ने से रोक देंगे। जो लोग बार बार चोट खा चुके हैं वे समाचार पत्रों या आकाश से प्रेषित (रेडियो) कोरे आश्वासनों पर विश्वास नहीं कर सकते।"

ता० २२ अक्टबर १६४७ को सिख नेताओं के सम्मेलन में भाषणदेते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"आज मैं आप लोगोको दोस्ताना सलाह देनेके लिये चन्दशब्द कहदेना चाहता हूं। मैं सिखो के साहस व उनकी देश भक्ति का सदैव ही प्रशंसक रहा हूँ। सिखों से मैं हार्दिक प्रेम रखता हूँ। अमृतसर में मैंने महाराजा पटियाला की सहायता से सिखों से अपील की थी कि वे मुस्लिम शरणार्थियों को अमृतसर से गुजरने दें। मुझे खुशी है कि उस अपील पर जिस तरह अमल किया गया, उससे साफ है कि आप लोग मेरी किस तरह कदर करते हैं।"

"मैं आप लोगों से निवेदन करूँगा कि आप जल्दी में कोई भी

निर्णय न करें। आप लोगों के दिलों में जो क्रोध पैदा हो गया है, उसे मैं बखूबी महसूस करता हूँ। किन्तु आप लोग वीर हैं। आपको वीरों के समान ही स्थिति का सामना करना चाहिये। निर्दोष लोगों का खून बहाकर अपनी तलवार, अपने देश और अपनी जाति पर कलंक का टीका लगाना वीरों के लिये उचित नहीं। अब समय है कि भविष्य में हमें क्या करना चाहिये इसे बखूबी सोच लें। आप लोगोको ऐसा करना होगा कि जिससे आपकी जाति व आपके देश की ख्याति बढ़े। अब अपनी किस्मत को रोने, अपने नुक्सान की शिकायत करने और प्रति शोध द्वारा क्षतिपूर्ति करने की सोचने का समय नहीं है।"

"कुछ स्वार्थी प्रचारक विदेशों में सिखों को बदनाम कर रहे हैं और उनके खिलाफ झूठा प्रचार कर रहे हैं। अतएव उन्हें अपनी उस ख्याति को फिर से स्थापित करना है, जिसे उन्होंने दो विश्व युद्धों में पैदा किया था। इसके लिये सिर्फ तलवार धारण करना ही पर्याप्त न होगा। लेकिन उसे प्रयुक्त करना सीखना होगा।"

"कुछ और भी प्रचारक हैं जो सिखोंको हिन्दुओं से प्रथक करने पर तुले हुए हैं। वे प्रचार कर रहे हैं कि अब हिन्दुओं और सिखों में लड़ाई हो के रहेगी। ये प्रचारक पहिले के प्रचारकों की अपेक्षा ज्यादा खतरनाक हैं। ये लोग यह साबित कर देना चाहते हैं कि पुराने साम्राज्य वादियों का यह कथन ठीक ही था कि भारत में विदेशी सरकार का रहना न्यायोचित ही है।"

"हमने विभाजन इसलिये स्वीकार कि एक गला सड़ा अंग काट दिया जाय और शेष शरीर स्वस्थ अवस्था में रह सके। अभी हम पूर्ण स्वस्थ हुए भी न थे कि हमें अनेक दुर्घटनाओं सामना करना पड़ा। लेकिन बुराई का इलाज बुराई से नहीं बल्कि भलाई के द्वाराही किया जा सकता है। हमलोग अहिंसा धर्मका पूर्ण पालन नहीं कर सकते। हमें कोई भी काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे हमारी

तलवार की शान कम हो। जब किसी महान् आदर्श के लिये तलवार इस्तेमाल करने का समय आवे, आप खुशी से उसका इस्तेमाल करें।"

"लेकिन आज तो आपको अपनी तलवार म्यान में रखनी होगी इसी से लोगों की नैतिकता का स्तर ऊंचा उठ सकेगा। आज तो यह स्तर इतना नीचा हो चुका है कि बदअमली, क़ानून की खिलाफ वर्जी, ट्रेन में सवार निर्दोष मुसफिरों पर हमले और असाहाय लोगों पर अत्याचार बांयें हाथ का खेल हो चुका है। हमें इस चीज को रोकना ही होगा। आप लोग इस मामले में नेत्रत्व कर सकते हैं। अब ऐसा अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिये जिसमें हम, अपने लोगों का स्तर रहन सहन ऊँचा कर सकें। हमें अपनी नैतिक भावना को फिर से जागृत करना चाहिये। जबतक हम अपने क्रोध को नही छोड़ेंगे, तबतक उन चाजों को न पा सकेंगे, जिनकी प्राप्ति के लिये हमने आजादी की लड़ाई लड़ी थी।"

"अन्त में मैं आप लोगों से अपील करूंगा कि आप लोग अपनी जिम्मेदारी को महसूस करते हुए ही कोई निर्णय कीजिये। आप अपनी सरकार की सहायता कीजिये। आज उसे अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। यह आप लोगों की अपनी सरकार है, इसे आप लोगों की सहायता मिलनी ही चाहिये। आप लोगों ने इस सम्मेलन में मुझे भाषण करने के लिये आंमन्त्रित किया, इसके लिये मैं आप लोगों का धन्यबाद मानता हूँ।"

१२ दिसम्बर १६४७ को उप प्रधान मंत्री सरदार पटेल ने भारतीय पार्लियामेन्ट में सम्पत्ति, दयित्व के प्रश्न पर भारत व पाकिस्तान के बीच हुए आर्थिक समझौते के विवरण की घोषणा की। उन्होंने कहा—

"विभाजन की तारीख १५ अगस्त १६४७ को दिन भारत सरकार की अविभाजित शेष रोकड़ का अनुमान ४०० करोड़ रुपये

से कुछ काम लगाया गया था, शेष में इन्वेस्टमेंट हिसाब की सैक्योरिटियाँ शामिल थीं। इसमें पाकिस्तान का हिस्सा ७५ करोड़ रुपये नियत किया गया है। इस राशि में से २० करोड़ रुपये जो १५ अगस्त १६४७ को पाकिस्तान सरकार को दिये गये थे और अबतक उसके हिसाब में खर्च हुए रुपये काट लिये जायेंगे।"

"भारत सरकार ने पुरानी सरकार के सारे ऋण का प्रारम्भिक भार अपने ऊपर लेलिया है। शर्त यह है कि पाकिस्तान उसका उचित भाग बांट लेगा। दोनों देशों द्वारा प्राप्त हुई सम्पत्ति का मूल्य निर्धारण हिसाब की किताबों में लिखे आधार पर किया जावेगा तथापि मोर्चे की रेलवे लाइनों का किताबी मूल्य लग भग ५० प्रतिशत कम कर दिया जारहा है।"

"पाकिस्तान द्वारा भारत के कर्जे की अदायगी के बारे में यह तै हो गया है कि पूरी रकम ५० वार्षिक किश्तों में चुकाई जायेगी। इन ५० किश्तोंमें व्याज भी शामिल होगी। विभाजन के पहिले ४ वर्षों में कोई किश्त नहीं दी जायेगी।"

"दोनों उपनिवेश अपने-अपने यहाँ की पेन्शनें दिया करें। भारत विदेशों के कर्मचारियों की पेन्शनें देता रहेगा।"

"यह निश्चत हुआ है कि विभाजन के दिन भारत और पाकिस्तान में जितनी फौजी सामग्री थीं, उसका एक तिहाई या दोनों देशों के संचय तथा कार्य की आवश्यकता के तिहाई हिस्से में से जो भी कम होगा, वह पाकिस्तान के हिस्से में आयेगा। यदि कुछ शेप रहा तो वह भारत में ही रहेगा।"

"शस्त्रास्त्र बनाने के कारखानों को हटाया नहीं जायेगा। भारत सरकार ने हिसाब की किताबों में लिखी हुई उनकी कीमत की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। भारत ने सहायता के रूप में पाकिस्तान को ६ करोड़ रुपये देना स्वीकार किया है ताकि वह अपने स्वतन्त्र शस्त्रास्त्र के कारखाने और सुरक्षा प्रेस जैसी कुछ संस्थाएँ

स्थापित कर सके। यह रुपया पाकिस्तान के कर्ज में शामिल कर लिया जायेगा।"

"दो स्वतंत्र देशों के बीच इतने कठिन प्रश्न इतनी उचित रीति से शायद ही कभी हल हुए हैं। भारत और पाकिस्तान इस सफलता पर गर्व कर सकते हैं। इन विवाद ग्रस्त विषयों को हल करने के लिये जो तन्त्र स्थापित किया गया था उसने बहुत ही शीघ्रता के साथ काम किया है। बर्मा के विभाजन के लिये ६ वर्ष तक कार्य किया गया था और उसमें बहुत भारी खर्च हुआ था। इस तन्त्र ने लगभग ६ मास में अपना काम पूरा कर दिया और हमारे खजाने पर कोई भारी भार नहीं पड़ा। इस कार्य में जितने अफसर और कार्यकर्त्ता लगाये गये थे उन्होंने शीघ्र और सन्तोषजनक परिणाम हासिल करने में कोई कोर कसर नहीं की।"

"मुझे विश्वास है कि जब हमारे परिश्रम और परेशानी का इतिहास लिखा जायेगा तब विभाजन, संगठित प्रयत्न और पूर्ण कौशल के चमत्कार के रूप में दृष्टि गत होगा। मैं इस सम्बन्ध में लार्ड माउन्ट बेटन की शक्ति, उदारता और निष्पक्षता की प्रशंसा करता हूँ और आशा है कि इस बात में वे मेरा सदा साथ देंगे।"

"मुझे आशा है कि पाकिस्तान की सरकार इस समझौते में हमारी मैत्री और सद्भावना का रुख देख सकेगी। इस समझौते का सफलता पूर्वक कार्यान्वित होना दोनों पक्षों के समझौते की भावना पर निर्भर करता है। किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर अमैत्री के भाव से हमारा किया किराया सब काम खतरे में पड़ सकता है। इसलिये न सिर्फ इन निर्णयों के सफलतापूर्वक कार्यान्वित होने के लिये, वरन् दोनों उपनिवेशों की शान्ति और उन्नति के लिये भी, हार्दिकता, सहन-शीलता, और मैत्री हम दोनों का मार्ग प्रदर्शित करेगी। और इस प्रकार हम दूसरे ज्यादा जरूरी प्रश्नों को हल करने में सफल होंगे।"

"जैसे ही विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार हुआ वैसे ही अन्तरिम सरकार ने विभाजन सम्बन्धी व्यवस्था के प्रश्नों पर विचार करने और सत्ता का विभाजन करने के लिये मंत्रिमण्डल की एक विशेष समिति नियोजित करदी थी। शुरू से ही इस कमेटी के सदस्य गवर्नर जनरल, श्री लियाकत अली खाँ, सरदार अब्दुर्रब निश्तर, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और मैं थे। १ जुलाई से इस विशेष समिति की जगह विभाजन कौंसिल ने लेली थी। इस कमेटी में बाद को कुछ परिवर्तन किये गये। शायद सब से महत्वपूर्ण समस्या अविभाजित भारत सरकार की नागरिक शासन व्यवस्था के विभाजन की थी। अतएव प्रत्येक कर्मचारी को यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता दी गई कि वह किस सरकार में नोकरी करना चाहता है। साथ ही यह सुविधा भी दी गई कि वह ६ महीने के भीतर अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर सकता है। लेकिन वास्तविक स्थानान्तर में समय तो लगता ही है। नई सरकार के कार्य संचालन के लिये उसे मेज कुर्सी तथा अन्य आवश्यक सामान दिया गया। जो कागजात केवल नई सरकार के उपयोग के थे वे उसे सौंपे गये और सामान्य हितों के कागजात की दूसरी प्रतियाँ तैयार की गईं।"

"केन्द्रीय सरकार के सम्प्रति विभाजन का कार्य बहुत ही कठिन था। लेकिन जब सम्पत्ति तथा देनदारी की विशेषज्ञ समिति की विभिन्न विभागीय उपसमितियों ने मामले पर विस्तार से विचार किया तो इस बारे में बहुत बड़ा मैतन्य पाया गया कि निश्चित सम्पत्ति का बटवारा प्रादेशिक आधार पर किया जाय।"

"इस तरह रेलों, तार की लाइनों, डाकखानों, टकसालों आदि का विभाजन हुआ। लेकिन जंगम सम्पत्ति का बंटवारा इस आधार पर नहीं हो सकता था। अतएव इस प्रकार को विभिन्न वस्तुओं के बंटवारे के लिये विभिन्न आधार निर्धारित हुए। १५ अगस्त १६४७ से पहिले हथियार बनाने वाले कारखानों के विभाजन के अतिरिक्त अन्य

सब स्थावर सम्पत्ति के बारे में समझौता हो गया था। जंगम सम्पत्ति में उधार पट्टा के चांदी के स्टोर तथा स्टाक के बारे में समझौता नहीं होसका था। पुरानी केन्द्रीय सरकार की रोकड़—नगद बकाया—पुरानी सरकार की स्टर्लिंग सम्पत्ति तथा भारत के रिजर्व बैंक की स्टर्लिंग सम्पत्ति के बारे में भी समझौता न हो पाया था। इसी प्रकार पुरानी सरकार की देनदारी में प्रत्येक डोमीनियन के हिस्से के बारे में भी समझौता न हो सका। हाँ, यह तै होगया था कि यदि दोनों सरकारों में कोई समझौता होगया तो उसके अनुसार पाकिस्तान अपना हिस्सा अदा करेगा नहीं तो पंच अदालत के निर्णय के अनुसार अपना हिस्सा देगा।''

"१४ अगस्त १६४७ के बाद दोनों प्रदेशों में होने वाली केन्द्रीय आय के सम्बन्ध में विभाजन परिषद् ने यह तै किया था कि प्रत्येक डोमीनियन अपने प्रदेश में एकत्र की गई आय को अपने पास रखेगा। लेकिन भारत इस बात के लिये राजी हो गया कि यदि पाकिस्तान चाहे तो ३१ मार्च १६४८ तक एकत्रित आय को एक कोष में जमा कर उसके बटवारे के बारे में प्रस्ताव पर बाद में विचार किया जासकता है। आय पर दुहरा कर न लग जाय, इसके लिये भी व्यवस्था की गई।''

"एक या दूसरे डोमीनियन में ठेकों को देने, उनके सम्बन्ध में देनदारी, उनको खत्म करने तथा पुरानी सरकार के ठेकों के सम्बन्ध में कतिपय सिद्धान्त निर्धारित किये गये।''

मुद्रा तथा सिक्का निर्माण समिति में जिन मुद्दों पर विचार हुआ था, उनके बारे में रिजर्व बैंक की सम्पत्ति को छोड़कर अन्य सब मामलों पर समझौता हो गया। पाकिस्तान की यह आकांक्षा स्वाभाविक थी कि यथा शीघ्र उसकी अपनी मुद्रा तथा सिक्के हों। भारत इस सम्बन्ध में सहायता देने को राजी हो गया। नासिक प्रेस तथा कलकत्ता व बम्बई के टकसालों को कार्यक्षमता के एक भाग

को पाकिस्तान के उपयोग के लिये देने को भारत सरकार राजी हो गयी। चूंकि नये सिक्कों तथा नोटों के तैयार होने में देर लगेगी, अतएव यह निश्चय हुआ कि ३१ मार्च १६४८ तक भारत की मुद्रा तथा सिक्के दोनों डोमीनियनों के लिये सामान्य रहें और भारत सरकार का रिजर्व बैंक दोनों डोमीनियनों के लिये केन्द्रीय बैंक बना रहे। लेकिन यह महसूस किया गया कि पाकिस्तानी नोटों को पर्याप्त संख्या में छापने और उन्हें पहिले से चालू भारतीय नोटों का स्थान देने में कुछ समय लगेगा, इसलिये यह समझौता हो गया कि १ अप्रेल १६४८ से ३० सितम्बर १६४८ तक का समय संक्रमण काल समझा जाय और इन छः महीनों में पाकिस्तान में भारत व पाकिस्तान के नोट स्वतन्त्रता पूर्वक चलेगे। भारतीय नोटों व सिक्कों को धीरे धीरे वापिस लिया जाना जारी रहेगा। इस संक्रमण काल में भारत का रिजर्व बैंक सामान्य मुद्रा अधिकारी का काम करेगा। १ अक्टूबर १६४८ को पाकिस्तान अपनी मुद्रा का प्रबन्ध अपने हाथों में ले लेगा और रिजर्व बैंक में जो सुरक्षित मुद्रा कोष होगा, उसका बटवारा पाकिस्तानी मुद्रा प्रणाली व रिजर्व बैंक आर्डर १६४७ के अनुसार दोनों उपनिवेषों में कर दिया जावेगा।"

"जब व्यापार व आर्थिक नियंत्रण सम्बन्धी प्रश्नों का निरीक्षण किया गया तो यह मालूम हुआ कि दोनों उपनिवेषों द्वारा अपनायी जाने वाली दीर्घ कालीन नीतियों पर तब ही विचार किया जासकता है जबकि दोनों नयी सरकारों को अपनी अपनी समस्याओं पर ध्यान देने के लिये समय मिल जाय। इस बीच में यह समझौता किया गया कि ३१ मार्च तक यथा संभव पूर्व स्थिति कायम रखी जाय और नियंत्रणों को बिना दोनों उपनिवेशों के आपसी परामर्श के नहीं हटाना चाहिये। यह निश्चय किया गया कि २६ फरवरी १६४८ को समाप्त होने वाले अन्तरिम काल में—

क—दोनों उपनिवेशों के बीच चुङ्गी की कोई बाधाएँ उपस्थित न

की जायँ।

ख—वर्तमान आयात व निर्यात नीतियाँ जारी रखी जायँ।

ग—वर्तमान चुङ्गी, तटकर, व आन्तरिक करों में कोई परिवर्तन न किया जाय।

घ—माल व रुपये पैसे के भेजने पर कोई किसी तरह का प्रतिबन्ध न लगाया जाय जिसमें पूंजी व पूंजीगत माल भी शामिल हो।

ङ—एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को गुजरने वाले माल पर कोई मार्ग कर न लगाया जाय और व्यापार के बर्तमान साधनों व मार्गों में कोई दखल न दिया जाय।,"

"लेकिन पाकिस्तान ने इन मामलों में अपने रुख पर पुनर्विचार करने का अधिकार सुरक्षित रख लिया है, क्योंकि उसका यह प्रस्ताव कि अन्तरिम काल मे चुङ्गी से आने वाले धन को एक जगह एकत्रित करके बाद में अपना अपना हिस्सा ले लिया जाय, स्वीकार नहीं किया गया है।"

"पार्लिमेंट को यह जानकार प्रसन्नता होगी कि दोनों उपनिवेष पारस्परिक व्यापार व आर्थिक सम्बन्ध के बिपय मे एक सामान्य नीति बनाने के प्रश्न पर विचार करने के लिये सहमत हो गये हैं।"

"जब कानून के पण्डितों ने राष्ट्रीयता व निवास स्थान के प्रश्न पर विचार किया तो वे इस परिणाम पर पहुँचे कि भारत व पाकिस्तान दोनों ब्रिटिश राष्ट्र समूह के सदस्य होंगे, इसलिये उनके नागरिक ब्रिटिश प्रजाजन समझे जाते रहेंगे। अतः विभाजन के परिणाम स्वरूप किसी तात्कालिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं अनुभव की गई। दोनों उपनिवेषों की सुविधा के अनुसार अपने अपने राष्ट्रीयता के कानून बनाने की स्वतन्त्रता है। विभाजन परिषद् ने यह भी निश्चय किया कि पासपोर्ट के नियमों में ऐसा संशोधन किया जाय कि लोगों के एक उपनिवेश से दूसरे उपनिवेश में जाने पर कोई

पाबन्दी न रहें। हाँ, बाद में दोनों ऐसे प्रतिबन्ध लगाने के लिये स्वतन्त्र हैं।"

"विदेशी मामलों के सम्बन्ध में जो व्यवस्था की गई वह भारतीय स्वतन्त्रता (अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था) आर्डर १९४७ में दी हुई है।"

"३० नवम्बर १९४७ के बाद संयुक्त सुरक्षा परिषद् का पुनर्निमाण किया गया है। और यह प्रसन्नता की बात है कि उसने शस्त्रास्त्र बनाने वाले कारखानों व सैनिक सामग्री के विभाजन के कार्यों को पंच के सामने रखे बिना ही सन्तोषजनक रूप से निबटा लिया है। अब इन मामलों में निष्पक्ष पंचों की सहायता लेने की जरूरत नहीं है।"

लखनऊ, कलकत्ता, राजकोट आदि स्थानों पर सरदार पटेल ने राजाओं और प्रतिक्रिया वादियों को अपने भाषणों में काफी जोरदार धमकियाँ दीं। इस पर मुसलमानों ने डर कर गांधीजी से निवेदन किया कि आप और नेहरू जी तो हमारे सब से बड़े शुभेच्छु हैं पर सरदार पटेल आपके कट्टर अनुयायी होते हुए भी मुस्लिम विरोधी मनोवृत्ति के हैं। यह बात देश के मुसलमानों में इस तरह फैल गयी कि गांधीजी को उसका स्पष्टीकरण करना आवश्यक हो गया। आखिर दिल्ली में १५ जनवरी १९४८ को प्रार्थना सभा में प्रवचन देते हुए गांधीजी ने इस विषय को छेड़ते हुए कहा—

"इसके लिये मेरा उत्तर साफ ही है। मैं इसके लिये बारबार स्पष्टीकरण पेश नहीं करना चाहता। मुझे जो कुछ कहा गया है वह मेरे दिमाग में नहीं उतरता। कई मुसलमानों ने सरदार पटेल के मुस्लिम विरोधी रुख की मुझसे शिकायत की है। मैंने उनकी इस बात को मन मारकर सुनलिया है और उन्हें इसका कोई भी उत्तर नहीं दिया। ....मैं अब अपने आलोचकों को इस बात का विश्वास दिला सकता हूँ कि वे मुझे और पंडित जवाहर लाल

नेहरू को सरदार पटेल से भिन्न समझने में गलती पर हैं। आलोचकों ने मुझे व पण्डित नेहरू को आस्मान पर चढ़ा दिया है पर यह उनकी भूल है। हमारे और सरदार पटेल के बीच में इस प्रकार दीवार खड़ी करके उन्होंने कोई बड़ा उपकार नहीं किया है। सरदार के भाषणों और बोलने में कठोरता है जिससे कभी कभी किसी को दुख भी पहुँच जाता है पर सरदार पटेल ऐसा कभी भी इरादतन नहीं करते। उनका हृदय बहुत ही विशाल है जिसमें तमाम बातें समा जाती हैं इस प्रकार मैं अपने आजीवन और ईमानदार साथी को मूर्खता से भरे हुए लांछनों से बचाने के लिये ही यह वक्तव्य दे रहा हूँ। .... जब सरदार पटेल मेरे कट्टर अनुयायी थे तब उन्हें इस नाम को सुनकर प्रसन्नता भी होती थी क्योंकि उस समय मैं उनसे जो कुछ भी करता था, वे उसे तुरन्त ही कार्यान्वित करने को उद्यत हो जाते थे। वह अपने स्वयं के क्षेत्र में महान हैं और वे एक योग्यतम शासक भी हैं।........ जब शक्ति उनके ऊपर आच्छादित हुई तब उन्होंने देखा कि वे अब अहिंसा से सफलता पूर्वक शासन कार्य नहीं संचालित कर सकते, जैसा कि वे पहिले अद्भुत सफलताओं को लिये हुए करते थे। एक शक्ति हीन शासक की कल्पना कीजिये जो जनता का प्रतिनिधित्व करना चाहता है। ऐसा शासक अपने मालिकों को—जनता को—नीचा ही दिखायेगा, जिन्होंने उस पर भरोसा करके उसे शक्ति प्रदान की है। मैं भली भांति जानता हूँ कि सरदार पटेल कभी भी अपने विश्वास को खोयेंगे नहीं।"

३० जनवरी १९४८ की सन्ध्या को महात्मा गांधी का नश्वर शरीर एक हिन्दू युवक नाथूराम विनायक गोडसे की ३ गोलियों से, जो सीधी उनके सीने में लगीं, छूट गया। सारा देश संनाटे में रह गया और ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे देश वासी पितृ हीन हो गये हैं। ५ बजे तक तो सरदार पटेल गांधीजी से परामर्श ही करते रहे। देर होती देख गांधीजी ने ही पटेल साहब को कहा कि प्रार्थना का समय हो

गया है। पटेल साहब वहाँ से रवाना हुए और इधर यह महापुरुष देश को पितृहीन करके संसार से चला गया।

उसी दिन रात को दिल्ली के रेडियो स्टेशन से सरदार पटेल ने निम्न भाषण दिया—

"अभी हाल में, मेरे प्यारे भाई पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने आपके सामने भाषण दिया है। मेरा हृदय वेदना पीड़ित हो रहा है। ऐसे समय में आपसे क्या कहूँ ? मेरी जिव्हा बन्द है। आज का दिन भारत के लिये शरम, दुख और मानसिक व्यथा का दिन है। आज मैं प्रायः ४ बजे शाम को गांधीजी के पास गया था और उनके पास मैं प्रायः १ घन्टे भर तक रहा। ५ बजे उन्होंने आपनी घड़ी उठाई और मुझे स्मरण दिलाया कि उनका प्रार्थना का समय हो गया है वे हमेशा के अनुसार ही ठीक समय पर प्रार्थना स्थान पर जाने के लिये उठे और अपने कमरे में से निकल कर उस ओर बढ़े। मैं मुश्कल से ही घर तक पहुँचा होऊगा कि किसी ने मुझे यह समाचार दिया कि प्रार्थना सभा में किसी हिन्दू युवक ने गांधीजी पर ३ बार गोली चलादी है मैं फौरन बिरला हाउस लौटा और गांधीजी के पास पहुँचा। उनकी आखें बन्द हो चुकी थीं लेकिन उनका चेहरा पहिले की ही तरह ही सौम्य और शान्त था। उनके चेहरे पर मैंने क्षमा प्रदान करने तथा दया के भाव प्रत्यक्ष देखे। कुछ ही क्षणों में गांधीजी नहीं रहे। इस प्रकार उनकी जीवन यात्रा समाप्त हो गई।"

"कुछ दिनों से गांधी जी निराश हो गये थे और आखिर को उन्होंने आमरण उपवास किया। अच्छा होता कि वे उपवास में ही समाप्त हो जाते। लेकिन शायद हमारे पल्ले तो यह शर्म और मानसिक व्यथा ही पड़ने वाली थी। गये हफ्ते एक हिन्दू युवक ने उनपर बम फेंकने की चेष्टा की थी पर वे उससे बचगये थे। आखिर को, ऐसा मालूम होता था कि उनका अन्त समय आही गया है और ईश्वर ने उन्हें अपने पास बुलालिया।"

"मुझे विश्वास है कि गांधीजी का महान् बलिदान हमारे देश वासियों की चेतना को जागृत करेगा और वे अपनी जिम्मेदारी को पहिचानेंगे। इस समय हम में से किसी को भी नाउम्मीद होने की जरूरत नहीं है। हम सबको राष्ट्र पर आये हुए संकटों का सामना करने के लिये एकत्रित होकर बहादुरी के साथ आगे आ जाना चाहिये और हम सबको सच्चे हृदय से पुनः प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम हमेशा गांधीजी के आदर्श और शिक्षा के अनुसार ही चलेंगे।"

मार्च १९४८ में तबीयत यकायक खराब हो जाने के कारण सरदार पटेल स्वास्थ लाभ करने के लिये शिमला गये और कुछ दिनों तक वे देहरादून में आराम करते रहे। परमात्मा देश के इस महान् पुत्र को स्वस्थ रखे जिससे वे नवजात स्वतंत्र भारत को नींव सुदृढ़ करने में सफल हों।

देश को सरदार पटेल पर महान गर्व है ?

शासकों का शासक

"सरदार पटेल ने भारत की भलाई के लिये वही किया है, जो ८० वर्ष पूर्व लार्ड डलहौजी ने उसकी बुराई के लिये किया था। यदि महात्मा गांधी हमारी स्वतन्त्रता के निर्माता हैं तो सरदार पटेल भारतीय संघ के विश्वकर्मा हैं।"

—श्री गाड़गिल—(भारत सरकार के निर्माण, खान, व बिजली मंत्री)

भारतवर्ष की जनता को किस प्रकार निर्विघ्न सत्ता हस्तान्तरित की जा सकती है, इस बात के निर्णय के लिये ब्रिटिश मंत्रि मण्डल मिशन २३ मार्च १९४६ को करांची में उतरा। इस मिशन में लार्ड पेथिक लारेन्स, सर स्ट्रेफर्ड क्रिप्स तथा एलेग्जेन्डर थे। यहाँ आकर उन्होंने प्रत्येक दल के नेता से भेंट की और समस्या को सुलझाने में चोटी के लीडरों से परामर्श किया। मिशन की नरेन्द्र मण्डल के चांसलर से भी कई मुलाकातें हुई। आखिर मंत्रि मण्डल मिशन और वायसराय लार्ड वावेल ने रियासतों की समस्या के विषय में २२ मई १९४६ को नरेन्द्र मण्डल के चांसलर को एक स्मरण पत्र दिया।

स्मरण पत्र—Memorandum.

"ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने लोक सभा में हाल ही में जो वक्तव्य दिया है, उसके पूर्व राजाओं को यह आश्वासन दिया गया था, कि सम्राट का ऐसा कोई इरादा नहीं है कि राजाओं के सम्राट के साथ के सम्बन्धों और सन्धियों एवं इकरारनामों द्वारा प्राप्त उनके अधिकारों में उनकी सहमति के बिना कोई परिवर्तन किया जाय। इस समय यह

भी कहा गया था कि सन्धि चर्चा के फलस्वरूप जो परिवर्तन आवश्यक होंगे उनसे राजा लोग अकारण असहमत न होंगे। नरेन्द्र मण्डल ने इसके बाद इसको पुष्ट किया कि देशी राज्य, भारत को उसका पूर्ण दर्जा मिले, इस आम इच्छा में शामिल हैं। ब्रिटिश सरकार ने अब घोषित किया है कि ब्रिटिश भारत की अब आगे आने वाली सरकार अथवा सरकारें पूर्ण स्वाधीनता चाहें तो उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली जायेगी। इन घोषणाओं का नतीजा यह है कि भारत के भविष्य के बारे में दिलचस्पी रखने वाले सभी पक्ष भारत को ब्रिटिश राष्ट्र समूह के अन्तर्गत अथवा उसके बाहर स्वतन्त्रता का पद प्राप्त हुआ देखना चाहते हैं। मन्त्रि मिशन इन कठिनाइयों को दूर करने में मदद देने आया है, जो भारत की इस इच्छा के पूरी होने के मार्ग में खड़ी है।"

"अन्त:कालीन समय में, जो नये विधान पर अमल होने के पहिले जिसके अधीन ब्रिटिश भारत स्वतन्त्र अथवा पूर्ण स्वशासित होगा, ब्रिटेन की सार्वभौम सत्ता जारी रहेगी। किन्तु ब्रिटिश सरकार किसी भी हालत में उस सार्वभौम सत्ता को भारतीय सरकार को न सौंपेगी और न सौंप ही सकती है।"

"इसी बीच में भारतीय रियासतें हिन्दुस्तान के लिये एक नवीन वैधानिक ढांचा निर्माण करने में एक महत्वपूर्ण भाग अदा कर सकती हैं और भारतीय रियासतों ने सम्राट की सरकार को सूचित भी किया है कि वे अपने एवं समस्त भारत के हितों को दृष्टि में रखते हुए इस ढांचे के निर्माण में और उसके पूर्ण हो जाने के बाद उसमें उचित स्थान प्राप्त करने में अपना पूरा भाग अदा करना चाहती हैं। इस कार्य को आसान बनाने के लिये वे अपनी शासन व्यवस्था बहुत ऊंचे दर्जे की बनाकर निस्सन्देह अपनी स्थिति को मजबूत करेंगी। जहाँ किसी वर्तमान रियासत के साधन इतने छोटे हैं कि उस दर्जे तक नहीं उसे नहीं पहुँचाया जा सकता, तो वे निस्सन्देह

शासन व्यवस्था की दृष्टि से आपस में या बड़ी रियासत में मिल जाने की ऐसी उचित व्यवस्था कर लेंगी कि जिससे प्रस्तावित ढांचे में समा सकें। रियासतों की स्थिति और भी मजबूत हो जायेगी, यदि उनकी सरकारें, अपने-अपने राज्यों में प्रतिनिधियों की संस्थाओं के द्वारा अपने से लोकमत की निकट सम्पर्कता स्थापित करलें।

"संक्रमण काल में रियासतों के लिये यह आवश्यक होगा कि ऐसे मामलों सम्बन्धी भावी तौर तरीकों के बारे में जिनका सभी से एक-सा सम्बन्ध हो, खासकर आर्थिक एवं राजस्व सम्बन्धी क्षेत्र में, ब्रिटिश भारत से समझौता करें। रियासतें भारत के नये वैधानिक ढांचे में शामिल होना चाहें या नहीं, इस तरह का समझौता आवश्यक होगा और इस विचार विनिमय में काफी समय लगेगा और चूंकि नया विधान लागू होने तक संभवतः ऐसी कुछ वार्ताएँ अपूर्ण रहेंगी। अतः शासक सम्बन्धी कठिनाइयों को बचाने के लिये रियासतों और उन लोगों के बीच कुछ समझौता हो जाना आवश्यक है, जिनके बाद को बनने वाली सरकार या सरकारों का नियंत्रण करने की संभावना है और जब तक नयी व्यवस्था पूरी न हो तब तक सम्बन्धित मामलों सम्बन्धी प्रस्तुत व्यवस्था कायम रहनी चाहिये। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार और सम्राट के प्रतिनिधि से जो मदद चाही जायेगी, वे करेंगे।"

"जब ब्रिटिश भारत की स्वाशित अथवा स्वतन्त्र सरकार या सरकारों की व्यवस्था होगी तो ब्रिटिश सरकार का इन सरकारों पर इतना प्रभाव नहीं होगा कि ये सार्वभौम सत्ता के कर्तव्यों को निभा सकें। इसके साथ ही वे यह भी नहीं कह सकते कि इस कार्य के लिये भारत में ब्रिटिश सेना रहेगी। अतः देशी रियासतों की इच्छा के अनुसार ब्रिटिश सरकार सर्वभौम सत्ता के अधिकारों को छोड़ देगी। इसका यह अर्थ होगा कि ब्रिटिश राज्य के सम्पर्क में आने से जो अधिकार रियासतों को मिले उनका अन्त हो जायेगा। और

जो अधिकार रियासतों ने ब्रिटिश सरकार को दिये थे, उनको वापिस मिल जायेंगे। ब्रिटिश राज्य व ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के बीच जो पारस्परिक राजनीतिक व्यवस्था रही है, वह समाप्त हो जायगी। इस अभाव की पूर्ति के लिये देशी रियासतों को ब्रिटिश भारत की भावी सरकार या सरकारों से समझौता करके संघ में प्रवेश करना होगा और यदि वह नहीं हो सकेगा तो उनके साथ राजनीतिक सम्पर्क पैदा करने होंगे।"

भारतीय विधान परिषद् के प्रथम अधिवेशन में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों से बातचीत चलाने के उद्देश्य से जो रियासती समझौता समिति (Negotiating Committee) का २१ दिसम्बर १९४६ को निर्माण हुआ था, उसके फलस्वरूप जनवरी के आखिरी हफ्ते में नरेन्द्र मण्डल तथा मन्त्रियों की संयुक्त बैठकें हुईं। उसमें नरेन्द्र मंडल की वैधानिक परामर्शदात्री समिति ने विधान परिषद् की समझौता-समिति से बातचीत सम्बन्धी मसविदा तैयार कर लिया। मसौदे में परामर्शदात्री समिति को निम्न अधिकार प्रदान किये गये—

१—रियासतों द्वारा नियुक्त की जाने वाली समझौता-समिति को ही रियासतों की ओर से बातचीत करने का अधिकार रहे।

२—विधान परिषद् में विभिन्न रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या नियुक्त करना रियासतों का ही हक है।

३—प्रत्येक रियासत के विधान तथा सीमा के सम्बन्ध में विधान परिषद् को कोई अधिकार नहीं रहेगा।

४—समझौता-समिति के अधिकार का क्षेत्र विधान परिषद् द्वारा निर्धारित क्षेत्र से अधिक है।

मसविदे में यह भी कहा गया था कि भारतीय नरेश देश को स्वाधीनता के आधार पर भारत के लिये भावी विधान बनाने में सहयोग देने के लिये तैयार हैं, किन्तु विधान परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधि अक्षरशः ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के वक्तव्य के आधार पर ही

सहयोग करेंगे। इसमें भारतीय रियासतें कोई परिवर्तन करना नहीं चाहतीं। भावी भारतीय संघ में रियासतों के सम्मिलित होने के संबंध में रियासतों से अलग।अलग समझौता करना होगा, जैसा कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल मिशन की योजना में है। रियासतें इसके लिये कभी भी तैयार नहीं होंगी कि संघ के अधिकार ब्रिटिश योजना में बताये गये अधिकार की अपेक्षा बढ़ाये जायँ।

नरेन्द्र मण्डल का प्रस्ताव

नरेन्द्र मण्डल ने भारत की वैधानिक समस्या के बारे में जो प्रस्ताव स्वीकार किया, वह उनकी अत्यन्त सावधानी का परिचायक था। इस प्रस्ताव से न तो इस बात का पता चलता था कि रियासतें लोकतन्त्री भारत के साथ अपना मेल बैठाने के लिये अपने शासन-तन्त्रों में क्या परिवर्तन करने को तैयार हैं और न भारत के भावी विधान के सम्बन्ध में विधान परिषद् के निश्चयों से अपने को बाँधने को तैयार है, हालाँकि मन्त्रिमिशन की योजना के अनुसार रियासती प्रतिनिधियों को उसमें भाग लेने का अधिकार था। नरेशों ने यह दावा किया था कि विधान परिषद् द्वारा नियुक्त समझौता समिति से रियासतों की ओर से चर्चा करने का एकमात्र अधिकार राजाओं द्वारा नियुक्त समझौता समिति को ही है। रियासती जनता के प्रतिनिधियों ने राजाओं के इस दावे से इन्कार कर दिया और यह स्पष्ट कह दिया कि उनके परामर्श किये बिना जो भी निर्णय किये जायँगे वे रियासती जनता के लिये अनिवार्य नहीं होंगे। यह अत्यन्त ही खेद का विषय था कि समझौता समिति की नियुक्ति करने में राजाओं ने रियासती जनता के प्रतिनिधियों का सहयोग लेना आवश्यक नहीं समझा। चारों ओर से जो परिवर्तन हो रहे थे उनको समझते-बूझते हुए भी रियासती जनता के प्रति राजाओं के दृष्टिकोण में अभी तक कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ और वे उसकी आकांक्षाओं के प्रति उपेक्षा भाव

प्रदर्शित कर रहे थे। अपनी उपेक्षा द्वारा राजा लोग रियासती जनता को यह कहने के लिये बाध्य कर रहे थे कि अकेले राजा रियासतों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। राजाओं को यह समझने की आवश्यकता है कि इस प्रजातन्त्री जमाने में राजा नामधारी चन्द मुट्ठी भर व्यक्तियों को रियासतों के नाम पर सब कुछ करने का अधिकार नहीं हो सकता और रियासतों की इस दस करोड़ जनता की आवाज की उपेक्षा नहीं की जा सकती जो कि रियासतों का अनिवार्य और आवश्यक अंग है। राजाओं ने भारतवर्ष का सर्वसम्मत विधान बनाने और प्रस्तावित भारतीय संघ की स्थापना में अधिक से अधिक सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया है। जो लोग इस समय विधान परिषद के काम में सहयोग दे रहे थे। उनकी कोशिश यही थी कि सभी दलों के सहयोग से भारत का भावी विधान बनाया जाय। किन्तु भारतीय विधान परिषद को तो किन्हीं उचित अथवा अनुचित कारणों से किसी दल विशेष का सहयोग न मिले तो भी मन्त्रि मिशन की योजना द्वारा निर्द्धारित कार्यपद्धति के अनुसार विधान बनाना होगा। राजाओं ने अपने प्रस्ताव में उन बातों की चर्चा की थी जिनको वे मन्त्रि मिशन की योजना के अनिवार्य अंग समझते थे। पर उस समय तो विधान परिषद की समझौता समिति और रियासती समझौता समिति को यह तय करना था कि रियासतों के लिये विधान परिषद में जो ६३ स्थान निर्दिष्ट किये गये थे उनका रियासतों के बीच आपस में बँटवारा किस प्रकार हो और वे रियासती प्रतिनिधि विधान परिषद में किस तरीके से भेजे जायँ। रियासती प्रतिनिधि जब विधान परिषद में शामिल हो जायँ उस समय इस बात पर भी विचार करना आवश्यक होगा कि कौन-कौन से अधिकार भारतीय संघ के हाथ में रहने चाहियें।

उस समय राजा लोग न केवल अपने मौजूदा अधिकारों को अक्षुण्ण रखने के लिये ही व्यग्र थे, बल्कि राजनीतिक परिवर्तनों का

लाभ उठा कर अपनी सत्ता के क्षेत्र को और भी विस्तृत कर लेने की चेष्टा कर रहे थे। उस समय तो वे ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता के आधीन थे किन्तु उसके हट जाने के बाद पूर्णतया स्वतन्त्र और स्वच्छन्द हो जाना चाहते थे। वे यह भी कल्पना कर रहे थे कि उनकी इच्छा हो तो वे भारतीय संघ में शामिल हों और उनकी इच्छा हो तो वे भारतीय संघ से बिलकुल अलग व स्वतन्त्र रहें। राजाओं का यह भी कहना था कि जब तक विधान का सारा चित्र उनके सामने नहीं आ जाय, तब तक वे भारतीय संघ में शामिल होने के बारे में कोई निर्णय नहीं करेंगे और हर बड़ी छोटी रियासत अलग-अलग रूप से भारतीय संघ में शामिल होने का निर्णय करेगी। राजाओं के इस निर्णय को विधान परिषद् किस प्रकार स्वीकार कर सकती थी? जो रियासतें मन्त्रि मिशन की योजना के आधार पर मूलभूत सिद्धान्तों का स्वीकार करके विधान परिषद् में अपना प्रतिनिधि भेजती हैं, साधारण विवेक तो यही कहता है कि उन रियासतों को भारतीय विधान परिषद् द्वारा बनाया हुआ विधान मान्य होना चाहिये। अवश्य ही वह विधान उस योजना के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार होगा और उसमें यदि कुछ हेर-फेर हुआ तो वह आपस की राय से ही होगा। यदि रियासतें विधान परिषद् के निर्णयों को मानने या न मानने के लिये स्वतन्त्र थीं तो उनके प्रतिनिधियों का विधान परिषद् में शरीक होना अर्थशून्य ही हो जाता था। राजा लोग यदि भारत की स्वतन्त्रता में सचमुच सहायक होना चाहते थे तो उन्हें अपने सहयोग को अनावश्यक प्रतिबन्धों से नहीं जकड़ लेना चाहिये था। रियासतों के भीतर आन्तरिक सुधार जारी करने के प्रश्न को भी राजाओं को अपना निजी मामला बनाकर रखने से काम नहीं चलेगा। आन्तरिक सुधारों का प्रश्न रियासती जनता की दृष्टि से तो जरूरी था ही, शेष भारत की दृष्टि से उससे भी ज्यादा जरूरी था। जब ये शेष भारत के साथ एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध होने जा रहे थे तो उन्हें इस

सम्बन्ध में उसकी भावनाओं और इच्छाओं का आदर और उसके साथ समझौता करने को बाध्य होना ही पड़ेगा।

ता० ८, ९ व १० फरवरी १९४७ को विधान परिषद तथा नरेशों की समझौता समितियों के प्रतिनिधियों की बैठकें हुईं। इन बैठकों में दोनों समितियों ने एक-दूसरे की स्थिति समझने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप १० फरवरी १९४७ को दोनों समितियों में रियासतों के विधान सभा में सम्मिलित होने के प्रश्न पर समझौता हो गया। नरेन्द्र मण्डल के चांसलर नवाब भोपाल व पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी करते हुए कहा—

"नरेन्द्रमण्डल द्वारा नियुक्त रियासतों की वार्ता समिति और विधान परिषद की वार्ता समिति के बीच शनिवार और रविवार को बैठकें हुईं। बहस के दौरान में मन्त्रि मिशन का १६ मई का वक्तव्य, विधान परिषद के प्रस्ताव और राजाओं की कान्फ्रेंस द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों पर चर्चा हुई। हम एक आम समझौते पर पहुँच गये, जिसके आधार पर विधान परिषद में रियासतों के प्रतिनिधित्व पर विचार हुआ। तदनुसार विधान परिषद और नरेन्द्रमण्डल के मन्त्रियों से रियासतों के लिये नियत ९३ सीटों के बँटवारे के विषय में तफसील तैयार करने और उन्हें दोनों समितियों की अगली बैठक में पेश करने को कहा गया। आगामी बैठक १ मार्च को होगी।"

इसके साथ ही विधान परिषद के मन्त्री ने भी इस आशय का एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि—

"विधान परिषद द्वारा नियुक्त रियासती वार्ता समिति आज बड़ौदा के दीवान सर ब्रजेन्द्रलाल मित्तर से मिली और यह तय हुआ कि सभा में तीन प्रतिनिधि होंगे। यह भी निश्चय हुआ कि ये तीनों प्रतिनिधि आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर राज्य धारा-सभा द्वारा ही चुने जायंगे और केवल निर्वाचित तथा गैर सरकारी

नामजद सदस्यही उसमें मत देंगे। सरकारी नामजद सदस्य राय नहीं देंगे।"

इसके बाद कौंसिल भवन में दोनों समितियों की संयुक्त बैठक हुई। नवाब भोपाल ने एक वक्तव्य पढ़ा, जिससे नाराज होकर विधान परिषद् की वार्ता समिति उस बैठक से हट जाने को तैयार हो गई. पर महाराजा पटियाला ने स्थिति को विषमतर होने से बचा लिया। उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू से जो प्रश्न किये और नेहरू जी ने जो उत्तर दिये वे महाराजाओं को सन्तोषप्रद लगे। नवाब भोपाल, सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर और सर रामास्वामी मुदालियर ही इन उत्तरों से सन्तुष्ट नहीं हुए। नवाब भोपाल व पोलिटीकल डिपार्टमेंट ने जो षड़यन्त्र रच रखा था वह पटियाला, बीकानेर, ग्वालियर, जयपुर, जोधपुर व उदयपुर के महाराजाओं के देशभक्तिपूर्ण रुख व सर मिर्जा इस्माइल के मार्ग-प्रदर्शन व नेक सलाह के कारण विफल हो गया। नवाब भोपाल ने रोड़ा अटकाया था कि जब तक २६ जनवरी का राजाओं का प्रस्ताव पण्डित नेहरू स्वीकार नहीं कर लेते तब तक कोई भी चर्चा नहीं हो सकती। पण्डित नेहरू के यह उत्तर देने पर कि विधान परिषद् की वार्ता समिति को देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के बँटवारे और चुनाव के अलावा और किसी बात पर चर्चा करने का अधिकार नहीं है तथा ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के साफ-साफ यह कह देने पर कि अगर राजा लोग विधान परिषद् में नहीं आयेंगे तो विधान परिषद्, संघीय और प्रान्तीय विधान बना लेगी और ब्रिटिश सत्ता के हट जाने के बाद राजाओं को अपनी सीमा के भीतर और बाहर तीव्र विरोध का सामना करते रहना पड़ेगा। नवाब भोपाल तथा असन्तुष्ट लोगों का रुख ढीला पड़ गया।

इसके बाद तमाम देश-हितैशी नरेश महाराज बीकानेर की कोठी पर एकत्रित हुए और सभी ने यह तय किया कि नवाब भोपाल यदि २६ फरवरी १६४७ के प्रस्ताव पर डटे रहेंगे तो सभी राजा इस्तीफा दे देंगे। नवाब भोपाल ने अपनी स्थिति बिगड़ती देख कर

अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। इसके बाद फिर नरेन्द्र मण्डल की बैठक हुई। पर उसमें किसी ने भी यह प्रश्न नहीं उठाया कि बड़ौदा ने विधान परिषद् के साथ अलग ही समझौता कैसे कर लिया?

१४ फरवरी को बड़ौदा के दीवान सर ब्रजेन्द्रलाल मित्तर ने प्रेस कान्फरेन्स में वक्तव्य देते हुए कहा कि—

"२६ जनवरी के नरेन्द्र मण्डल के प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर राजाओं के औचित्य के दावे के बारे में विवाद उठ खड़ा हुआ। कांग्रेस का रुख यह था कि समझौता समितियों का काम, रियासतों के प्रतिनिधित्व का तरीका तै करना और ९३ सीटों का बटवारा करना है। दिल्ली पहुँचने पर मैंने रियासतों का एक ऐसा मजबूत दल भी पाया जो रियासती समझौता समिति के अवरोधक रवैये इख्तयार करने की हालत में बड़ौदे के नेतृत्व का अनुकरण करने को तैयार था। मैंने इस दल का उत्साह बढ़ाया और देश के इस निर्णायक अवसर पर उनसे देश भक्ति का परिचय देने की अपील की। मैंने उन्हें स्पष्ट कर दिया कि यह समय देश की आजादी या गुलामी के विषय में निर्णय करने का है, राजाओं के अधिकारों, या विशेषाधिकारों का समय नहीं। इन रियासतों ने मेरी बात मानली और नतीजा आपके सामने ही है। बड़ौदा के आगे बढ़ने के साथ ही उन्होंने उस घेरे को तोड़ दिया जो प्रतिक्रियावादियों ने खड़ा कर रखा था। हमारी चर्चा पण्डित नेहरू से इस बात पर हुई कि अल्पसंख्यकों और पिछड़ी हुई जातियों को प्रतिनिधित्व मिले। पण्डित नेहरू और सरदार पटेल ने सुझाया कि बड़ौदा की धारासभा में नामजदगी इन वर्गों के हित में ही की गई है। अतः यदि धारा सभा के निर्वाचित और गैर सरकारी नामजद सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर प्रतिनिधियों का चुनाव करें तो वह उद्देश्य सिद्ध होजायगा और उन्होंने जोर दिया कि प्रतिनिधियों की पसन्दगी चुनाव के तरीके से ही की जाय। हमारा भी यही उद्देश्य था कि हमारी समस्त जनता को

प्रतिनिधित्व मिले। मैंने पण्डित नेहरू और सरदार पटेल को बताया कि महाराजा गायकवाड़ ने मुझे हिदायत दी है कि मैं स्वतंत्र भारत का विधान बनाने में विधान परिषद को सहायता प्रदान करूं।"

नरेशों में २९ जनवरी के प्रस्ताव पर जो मतभेद हुआ, उसके लिये नवाब भोपाल ने ता० १६ फरवरी को एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने बतलाया कि—

"रियासतों की ओर से शुरू से आखीर तक सभी निर्णय सर्वसम्मति से हुए हैं, और नरेशों में किसी भी ओर से अलग होने कि धमकी अथवा किसी मूल सिद्धान्त पर कोई मतभेद होने की कोई बात नहीं थी। रियासतों के रवैये की युक्ति-युक्तता और उनके निर्णयों को सर्वसम्मत होने के कारण ही, वे अपने मामले को इस रूप में आगे बढ़ा सके, जिन्हें वे अपने हित के लिये आवश्यक समझते थे। लेकिन रियासतें इस बात का दावा नहीं करतीं कि सारा श्रेय अथवा अधिकांश भाग उनका है। रियासतों की मान्यता के विषय में भारतीय विधान परिषद की वार्ता समिति के प्रमुख वक्ता ने जो सन्तोषजनक रवैया गृहण किया, यदि वह न हुआ होता तो समझौता तो हो ही नहीं सकता था, यहाँ तक कि बात-चीत ही भंग होगई होती।"

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि विधान परिषद की समझौता समिति में—

१—पण्डित जवाहरलाल नेहरू—विदेश मंत्री

२—सरदार वल्लभभाई पटेल—रियासती मंत्री

३—मौलाना अबुलकलाम आजाद—शिक्षा मंत्री

४—डा० पट्टाभि सीतारमैया—उपप्रधान अखिल भारतीय लोक-परिषद

५—श्री शंकरराव देव—महामंत्री अखिल भारतीय कांग्रेस

६—सर गोपाल स्वामी अय्यंगर—बिना विभाग के मन्त्री भारत-

सरकार के सदस्य थे।

इसके बाद त्रावणकोर के दीवान सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर ने १७ फरवरी के अपने वक्तव्य में बताया कि--

"नरेन्द्र मण्डल के चांसलर के नेतृत्व में रियासतों तथा लीग के बीच, कांग्रेस का विरोध करने के लिये गठबन्धन हो रहा है, मुझे ऐसे किसी भी गठबन्धन की खबर नहीं है। दोनों वार्ता समितियों की कार्यवाही की रिपोर्ट पण्डित नेहरू की कृपा से चांसलर को दी गई तथा यह बात उस बैठक मे बता दी गई थी जिसमें सर ब्रजेन्द्रलाल मित्तर उपस्थित थे। यदि उसे प्रकाशित किया जाय तो उससे यह स्पष्ट हो जायेगा, जैसा नवाब भोपाल ने कहा है कि रियासतों ने जो अपना मन्तव्य प्रकाशित किया है, उसके प्रति कांग्रेस के उचित रवैये ही के कारण उनकी वातचीत सफल हो सकी।"

२० फरवरी को महाराष्ट्र की रियासतों के समूहीकरण की योजना के सम्बन्ध में राजाओं के प्रतिनिधियों और कांग्रेसी नेताओं के बीच समझौता हो गया। योजना के मुख्य पहलू निम्न प्रकार हैं—

१—राजा गण घोषित करें कि सम्पूर्ण सत्ता जनता के हाथों में है।

२—विधान निर्मात्री सभा में प्रजा के प्रतिनिधियों की प्रमुखता हो। उनका लाख पीछे दो सदस्यों के हिसाब से किया जाय। सभा को सार्वभौम माना जाय।

३—भाषा के आधार पर दो समूह बनें, एक महाराष्ट्र का दूसरा कर्नाटक का।

४—भाषा के आधार पर प्रान्तों की पुनरचना होने पर ये राज्य अपनी-अपनी भाषा के प्रान्तों में मिल जायें और उस समय राजाओं के हितों का उचित संरक्षण किया जाय।

५—केवल राजाओं के बोर्ड का अध्यक्ष समूह का प्रतिनिधित्व करें और वही उस समूह का वैधानिक प्रमुख माना जाय।

६—यही अध्यक्ष समूह के हाईकोर्ट के प्रधान न्यायाधीष की नियुक्ति करे।

७—राज्यों की शासन सम्बन्धी और राजनीतिक सीमाएँ तोड़ दी जाँय।

प्रस्तावित समूह की जनसंख्या लगभग १२ लाख और वार्षिक आय सवा करोड़ रुपयों की होगी। राजाओं के विशेषाधिकारों का निर्णय करने के लिये अखिल भारयीय प्रजा परिषद के अध्यक्ष, कांग्रेस के प्रधान मंत्री तथा दो राज प्रतिनिधियों की एक मध्यस्थ समिति बना दी जायेगी। विधान परिषद् में हरिजनों और मुसलमानों के लिये दो दो स्थान सुरक्षित रखे जायेंगे।

इस योजना को पंडित नेहरू व सरदार पटेल और डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने स्वीकार कर लिया था।

२० फरवरी १९४७ को प्रधान मंत्री मि० एटली ने लोक सभा में घोषणा करते हुए रियासतों के भविष्य के सम्बन्ध में जाहिर किया कि—

"रियसतों के बारे में ब्रिटिश सरकार अपना अधिकार और सार्वभौमता के कर्तव्य, ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार को सौंपना नहीं चाहती। सार्वभौमता को सत्ता हस्तान्तरित करने से पूर्व समाप्त करने का इरादा नहीं है। इस बीच में रियासतों के सम्बन्ध अलग-अलग समझौते से स्थिर किये जायेंगे। सम्राट की सरकार जिन्हें सत्ता सौंपेगी, उनसे अलग समझौता करेगी।"

ब्रिटिश प्रधान मंत्री की घोषणा पर दृष्टिपात—

ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने अपनी घोषणा ता २० फरवरी १९४७ के द्वारा एक तारीख मुकर्रर करदी थी, जिसके भीतर ब्रिटिश भारत की शासन सत्ता अन्तरिम रूप से जिम्मेदार भारतीय हाथों में सौंप दी जायेगी। इस घोषणा में देशी राज्यों सम्बन्धी ब्रिटिश सरकार की नीति को एकबार फिर दुहराया गया है। ब्रिटिस मंत्री मिशन ने अपने

वक्तव्यों में यह साफ तौर पर कह दिया था कि ब्रिटिश सरकार को देशी राज्यों पर जो सार्वभौम सत्ता प्राप्त है उसका नये विधान के आधार पर भारत और इंग्लैण्ड के बीच सन्धि हो जाने के बाद अन्त हो जायेगा। श्री एटली ने उसी बात को दुहराते हुए कहा है कि ब्रिटिश सरकार सार्वभौम सत्ता के अधिकारों और जिम्मेदारियों को ब्रिटिश भारत की किसी भी सरकार को नहीं सौंपेगी। साथ ही एटली ने यह भी कहा था कि यद्यपि सत्ता अन्तिम रूप से हस्तान्तरिक कराने के पहिले सार्वभौम सत्ता का अन्त नहीं किया जायेगा, किन्तु बीच के अरसे के लिये अलग-अलग राज्यों और ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों में आपसी समझौतों द्वारा हेर फेर किया जा सकेगा। ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली ने अपनी घोषणा में देशी राज्यों के सम्बन्ध में एक नयी बात कही थी। यदि भारतीय स्वतन्त्रता वास्तव में होनी ही है तो ब्रिटिश सत्ता का केवल ब्रिटिश भारत से हटना ही आवश्यक नहीं है बल्कि देशी राज्यों पर से भी उसका अन्त होना चाहिये। ब्रिटिश सरकार ने यह तो स्वीकार कर ही लिया था कि देशी राज्यों पर से ब्रिटेन का प्रभुत्व समाप्त हो जायेगा, किन्तु प्रश्न यह था कि क्या ब्रिटेन ब्रिटिश भारत में शासन सत्ता भारतीयों के हाथ में सौंपने के बाद भी देशी राज्यों के साथ सार्वभौमता के आधार पर नहीं, तो अन्य किसी आधार पर भारत सरकार से पृथक् अपने स्वतन्त्र सम्बन्ध कायम रख सकेगी? हमारा खयाल था कि ब्रिटिश सरकार की ऐसी कोई इच्छा नहीं थी। स्वतंत्र भारत की कोई भी केन्द्रीय सरकार किसी भी देशी राज्य को, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, किसी विदेशी राष्ट्र के साथ, स्वतन्त्र सम्बन्ध रखने की अनुमति कैसे दे सकती थी? यदि कोई राज्य यह कहने का दुस्साहस करता कि वह अब पूर्ण स्वतन्त्र हो गया है, इसलिये वह किसी विदेशी राष्ट्र के साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध रखने का अधिकारी है तो उसका यह दावा कभी भी स्वीकार नहीं किया जा सकता था।

देशी राज्यों की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए केन्द्रीय सरकार किसी भी देशी राज्य को ऐसी स्वतन्त्रता देकर सारे देश की सुरक्षा को खतरे में डालने को कैसे तैयार होती ? ब्रिटेन का देशी राज्यों के साथ भविष्य में किसी प्रकार के स्वतन्त्र सम्बन्ध कायम रखना भारत की स्वाधीनता की भावना के विरुद्ध होता जिसका आदर करने के लिये ब्रिटेन वचन बद्ध हो चुका था।

यह मुख्यतः ब्रिटिश भारत की जनता के प्रयत्नों और संघर्षों का परिणाम था कि न केवल ब्रिटिश भारत से बल्कि देशी राज्यों से भी ब्रिटिश शासन का अभिशाप दूर होने जा रहा था। देशी राज्यों की जनता के अलावा राजाओं को भी विदेशी सत्ता के हाथों कम अपमानित होना नहीं पड़ा है। राजाओं को आये दिन के अपमानों से मुक्ति मिलने पर देश का आभारी होना चाहिये था। अवश्य ही तत्वतः छोटे बड़े सभी देशी राज्य सार्वभौम सत्ता के अन्त होने के साथ पूर्ण स्वतन्त्र हो जाते हैं, किन्तु यदि किसी देशी राज्य का शासक इससे यह समझ बैठे कि उसे स्वच्छन्द आचरण करने की छूट मिल गयी है, तो वह जबरदस्त गलती करता है। यह सच है कि ब्रिटिश सरकार सार्वभौम सत्ता भारत की केन्द्रीय सरकार को नहीं सौंप रही थी किन्तु इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि वह देश की प्रमुख राजनीतिक शक्ति होने जा रही थी और इस नाते उसे स्वभावतः घटनाओं को प्रभावित करने की सत्ता प्राप्त हो ही जाती थी। जैसी कि ब्रिटिश मंत्रीमण्डल ने कल्पना की थी कि यदि देशी राज्य स्वेच्छा पूर्वक भारतीय संघ में सम्मिलित न होंगे तो किसी अन्य आधार पर उन्हें अपने सम्बन्ध स्थिर करने होंगे। भारतीय संघ में देशी राज्य समानता के आधार पर ही शामिल हो सकते थे, किन्तु यदि वे ऐसा नहीं करते तो देश की प्रमुख राजनीतिक शक्ति के साथ अपेक्षा कृत छोटे राज्यों के कैसे सम्बन्ध हो सकते थे, इसकी कल्पना भली भांति की जा सकती है देशी राज्यों को तो एक दिन

केन्द्रीय सरकार को सार्वभौमता स्वीकार करनी ही होगी। यह हो सकता है कि केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश सरकार की भांति अपने सर्वोपरि अधिकारों का मनमाना प्रयोग न करे। देशी राज्यों के सामने सिर्फ दो ही स्थितियाँ थीं और उनमें से किसी एक को उन्हें अपनाना ही था। उनके लिये और शेष भारत के लिये बराबरी के आधार पर भारतीय संघ में शामिल होना ही लाभप्रद भविष्य के समान था। ब्रिटिश सत्ता के इस देश से विदा होने की तारीख भी मुकर्रर हो चुकी थी और देशी राज्यों को अपनी हिचकिचाहट और विलम्बकारी नीति को छोड़ कर विधान परिषद् के विधान निर्माण के काम में तत्परता पूर्वक सहयोग देने के लिये उद्यत हो जाने से बढ़कर उस समय कोई भी हितकर उपाय नहीं था।

सम्बन्ध निर्धारित करने में अन्तःकालीन सरकार का भी विशेष हाथ होना ही स्वाभाविक था। ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक विभाग देशी राज्यों में प्रतिक्रियावादी 'रवैया रखता रहा है और उसने सदैव ही देशी राज्यों की प्रगति में रोड़े अटकाये हैं। इस कारण देशी राज्यों की जनता को और अन्तःकालीन सरकार को भी राजनीतिक विभाग के प्रति व्यापक असन्तोष रहा है। यह आवश्यक था कि बीच के अरसे में राजनीतिक विभाग पर पर्याप्त अंकुश रखा जाये और अन्तःकालीन सरकार और देशी राज्यों को समान दिलचस्पी के मामले पारस्परिक सद्भावना और समझौते द्वारा निबटा लेने दिये जाते। देशी राज्यों को यदि स्वतंत्र भारत में अपना उपयुक्त स्थान ग्रहण करना था तो उन्हें अपने आन्तरिक शासन तंत्रों में अविलम्ब ही समयानुकूल लोकतंत्री परिवर्तन कर देना आवश्यक था।

ता० १ मार्च १९४७ से नरेशों और विधान परिषद् की वार्ता समितियों की बैठकें आरंभ होगईं। पहिले दिन नरेशों ने विधान परिषद् की वार्ता समिति से इस आधार पर विचार विनिमय किया

कि विधान परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधियों में से ५० प्रतिशत जनता द्वारा निर्वाचित हों। विधान परिषद् के प्रतिनिधियों ने यह प्रकट किया कि परिषद् के लिये, प्रत्येक रियासती प्रतिनिधि के लिये चाहे उन्हें जनता या नरेशों ने नामजद किया हो, यह आवश्यक था कि वे किसी न किसी प्रकार के चुनाव द्वारा ही लिये जांय। कुछ नरेश इस पक्ष में थे कि जनता द्वारा दो तिहाई प्रतिनिधि चुने जाय। इस पक्ष में त्रावणकोर, जयपुर व जोधपुर के नरेश थे। इसके अलावा विधान निर्माताओं का यह भी विचार था कि भावी भारतीय संघ में केवल २५-३० रियासतों की इकाइयाँ ही सम्बन्ध रख सकें इसके लिये छोटी रियास्तों की गुट बन्दी करने की योजना पर विचार किया गया। इन गुटों में सबसे बड़ा गुट गुजरात और काठियावाड़ की रियासतों का हो सकता था। उस समय यह भी अनुमान लगाया गया था कि इन गुटों से १४ प्रतिनिधि लिये जायेंगे।

ता०२ मार्च १९४७ को नरेन्द्र मण्डल और विधान परिषद् की वार्ता समितियों के बीच यह समझौता होगया कि विधान सभा में रियासतों के जो प्रतिनिधि लिये जांय उनमें से आधे वर्तमान धारा-सभाओं द्वारा चुने हुए या किसी अन्य विशेप निर्वाचिन पद्धति द्वारा चुनकर ही भेजे जायेंगे।

इसके अलावा विधान सभा द्वारा नियुक्त भिन्न भिन्न उपसमितियों ने रियासती प्रतिनिधियों के शामिल किये जाने के सम्बन्ध में भी चर्चा चली, पर यह प्रस्ताव नरेन्द्र मण्डल की आम बैठक के लिये स्थगित कर दिया गया।

विधान परिषद् और रियासतें—

विधान परिषद में मुस्लिम लीग के शामिल न होने से एक पक्ष इस बात के लिये प्रयत्नशील नजर आया कि विधान परिषद में अन्य वर्ग भी शामिल न हों, जिससे उसकी अप्रतिनिधिकता को सिद्ध किया

जा सके। भारतीय नरेशों की संस्था नरेन्द्र मण्डल की लगाम दुर्भाग्य-वश इस समय एक ऐसे ही गुट के हाथ में थी। यही कारण था कि विधान परिषद् में रियासती प्रतिनिधित्व के प्रश्न को इतना लम्बा खींचते हुए पारहे थे, तो भी इस बात के लिये प्रसन्नता अवश्य थी कि इस गिरे गंदले विचारों से सम्पन्न वातावरण में भी नरेन्द्र वर्ग में एक अंश और संभवतः वजनदार अंश ऐसा था, जो इस चाल से भली भांति परिचित था। यही कारण था कि रियासतों का रुख प्रारंभ में अवरोधक होने पर भी क्रमशः रास्ते पर आता जा रहा था। और थोड़े से समय में यह निश्चय सा ही प्रतीत होने लगा कि रियासती प्रतिनिधि विधान परिषद् में शामिल होंगे और भारतीय शासन विधान के निर्माण में योगदान देंगे। जिन राजाओं और दीवानों के कारण ऐसा हुआ था, उनकी सराहना तो आवश्यक ही थी। बड़ौदा के रुख ने इस दिशा में आरंभिक और महत्वपूर्ण कार्य किया। उसी वक्त से परिवर्तन नजर आने लगा और विध्न उत्पन्न करने वाले अंश के विघ्न उपस्थित करते रहने के बावजूद भी हम विधान परिषद् तथा नरेन्द्र मण्डल की वार्ता समितियों का यह संयुक्त वक्तव्य पाते हैं कि विभिन्न रियासतों में स्थानों की विभाजन सम्बन्धी सिफारिशों पर वेसहमत हो गई हैं, जिसका मतलब यह हुआ कि विधान परिषद् में रियासती प्रतिनिधियों का आना अब संदेह से परे हो गया है। रहा यह कि वे प्रतिनिधि किस तरह निश्चित होंगे, इस बारे में यह निश्चय आशा से कम तो अवश्य ही है कि ५० प्रतिशत प्रतिनिधि रियासती धारा सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने हुए होंगे, किन्तु जैसा स्थिति थीं, उसमें इस समस्या को तो हल करना ही था। एक अंश द्वारा विधान परिषद् से सहयोग को वो हल करना ही था। एक अंश द्वारा विधान परिषद् में सहयोग को अनुत्साहित करने के साथ ही साथ जब हम देखते हैं कि पहिले से ही मौजूद मुसलिम लीग के असहयोग में रियासतों का भी असहयोग मिल जाय तो प्रतिगामी शक्तियों का

पलड़ा सहज ही भारी हो जाय। ऐसी स्थिति में बुद्धिमानी यही थी कि इस सौदे में थोड़ा सा झुक जाना ही उस समय रचनात्मक दृष्टि से वाँछनीय प्रतीत हुआ। यह संतोषप्रद बात थी कि ऐसी स्थिति में भी यह आश्वासन हमें प्राप्त था कि रियासतें चुने हुए प्रतिनिधियों की संख्या यथासंभव ५० प्रतिशत से भी अधिक करने का प्रयत्न करेंगी। महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि नरेशों ने निर्वाचित प्रतिनिधियों का सिद्धांत स्वीकार कर लिया था और इस दिशा में वे निश्चित कदम से आगे बढ़ने के लिये भी प्रयत्नशील नज़र आते थे। सद्भावना का संकेत भी इसमें स्पष्ट ही था जिसको हमें कद्र करनी चाहिये और उसका लाभ भी दोनों पक्षों को समान रूप से मिलना ही चाहिये था।

विघ्नकारियों की कार्रवाहियाँ अभी भी जारी थीं। जो कुछ दोनों वार्ता समितियों ने तै किया था, उस पर राजाओं की आम बैठक में मोहर लगना ही बाकी रह गया था। और यह बैठक अगले महीने में होने जा रही थी। सद्भावना और संयुक्त रजामन्दी के वातावरण में यह अनुपयुक्त प्रतीत होता था और इससे यह साफ ही प्रतीत होता था कि प्रतिक्रियावादियों का दल इस बात को टाल कर समय व्यतीत करना चाहता था। पर इसमें रियासतों की ही हानि थी, क्योंकि इसका परिणाम तो यह होता कि उनके ही प्रतिनिधि विधान परिषद् में देर से शामिल होते। सरकार और विघ्न विरोधी राजा यह समझ चुके थे इसलिये १६ मार्च तक अपने प्रतिनिधियों को विधान परिषद् के लिये नामज़द करने का पक्का इरादा कर लिया था। जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है नरेन्द्र मण्डल का यदि यही रवैया रहा तो उसमें फूट पड़ जाने का निश्चय था। परिणाम स्वरूप बड़ौदा की तरह दूसरी रियासतें भी उससे सम्बन्धविच्छेद करने पर उतारू हो जातीं। अतः राजाओं को अपना रुख उस समय देशभक्ति पूर्ण और ईमानदारी से भरा हुआ रखना ही सब से

अधिक जरूरी था।

इसके बाद ११ मार्च १९४७ को जयपुर के श्रीकृष्णमाचारी ने धारासभा में घोषित किया कि विधान परिषद् के लिये जयपुर से ३ प्रतिनिधि चुने जायेंगे। ता० १० मार्च को ग्वालियर रियासत के उपाध्यक्ष श्री एम० ए० श्री निवासमन् ने घोषित किया कि ग्वालियर विधान परिषद् में सम्मिलित होगा। उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू की समझदारी और राजनीतिक दूरदर्शिता की बहुत ही सराहना की।

ता० १२ मार्च १९४७ को जोधपुर रियासत ने घोषित किया कि भावनगर भी विधान परिषद् में शामिल होगा। इसी दिन जयपुर रियासत ने अपने ३ प्रतिनिधियों और बड़ौदा रियासत ने भी अपने ३ प्रतिनिधियों के नाम भारतीय विधान परिषद् में जाने के लिये घोषित कर दिये।

१३ मार्च को पटियाला ने घोषित किया कि पटियाला भी विधान परिषद् में सम्मिलित होने का निर्णय कर चुका है। इसी दिन कोचीन रियासत के स्वास्थ्य और शिक्षा मंत्री श्री गोविन्द मेनन ने घोषित किया कि कोचीन भी भारतीय संघ के विधान निर्माण करने के उद्देश्य से विधान परिषद् में शामिल होगा।

नरेशों का एक सम्मेलन बम्बई में हुआ जो ४ अप्रेल १९४७ को खत्म हुआ। इस सम्मेलन को नरेन्द्र मण्डल के चांसलर नवाब भोपाल ने बुलाया था। इस सम्मेलन में वह समझौता विचारार्थ पेश किया गया जो विधान परिषद् में देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में राजाओं और विधान परिषद् की समझौता समितियों में हो चुका था। नवाब भोपाल द्वारा देशी राजाओं से पूछा गया कि इस सम्बन्ध में वे क्या कार्यवाही करना चाहते हैं? कुछ अरसे पहिले तक राजाओं ने अखिल भारतीय वैधानिक प्रश्नों के सम्बन्ध में संयुक्त मोर्चा क़ायम किया था, किन्तु विधान परिषद् और राजाओं को

समझौता समितियों की पिछली चर्चा के समय ही यह ज़ाहिर होगया था कि उस सयुक्त मोर्चे मे एक गहरी दरार पड़ गई है। नरेशों में स्पष्टतः दो दल हो गये थे। उनमें से एक देश की वैधानिक प्रगति के काम में सहयोग देने को उत्सुक था जबकि दूसरा किसी न किसी बहाने से समय टालने और अप्रत्यक्ष रूप से अडंगा लगाने की कोशिश कर रहा था। यदि इस पिछले दल का वश चला होता तो विधान परिषद् और राजाओं की समझौता समितियों में कोई समझौता ही नहीं हो पाता और भारत के हित शत्रुओं को यह कहने का अवसर मिल जाता कि भारतीय विधान परिषद् को देशी राज्यों का भी सहयोग प्राप्त नहीं है। किन्तु बड़ौदा ने सब से आगे अपना साहस पूर्ण कदम बढ़ाकर प्रतिगामियों के मन्सूबों पर तुषारापात कर दिया। बड़ौदा ने विधान परिषद् की समझौता समिति के साथ अलग से समझौता कर लिया। बड़ौदा के इस उदाहरण से स्फूर्ति पाकर पटियाला तथा बीकानेर आदि कुछ अन्य रियासतों ने भी देशहित का परिचय दिया। और विधान परिषद् की समझौता समिति के साथ समझौता कर लेने की तत्परता प्रदर्शित की। यह इन रियासतों के रवैये का ही परिणाम था कि राजाओं की समझौता समिति ने विधान परिषद् के लिये देशी राज्यों के प्रतिनिधियों के बंटवारे और उनके चुनाव के तरीके के बारे में समझौता करके राजाओं का संयुक्त मोर्चा भंग नहीं होने दिया। किन्तु इस समझौते के बाद भी राजाओं का प्रतिगामी दल अपनी चालें चलने से बाज नहीं आया। उसने तै किया कि राजाओं की आम सभा जब तक इस समझौते को स्वीकार न करले तब तक उस पर कोई अमली कार्रवाई न की जाय। इस निश्चय के बावजूद उत्तरी भारत की अनेक बड़ी रियासतें जिनमें पटियाला, बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, ग्वालियर और रीवां आदि शामिल थीं, विधान परिषद् में शामिल होने के निश्चय की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर चुकी थीं। कुछ रियासतों में तो प्रति-

निधियों का चुनाव भी हो चुका था और शेष में चुनाव की तैयारियां जारी थीं। इन रियासतों के इस देश भक्ति पूर्ण रवैये और निश्चय के बाद राजाओं के बम्बई सम्मेलन की वह चर्चा निष्फल हो जाती है कि देशी राजाओं को विधान परिषद् में शामिल होना चाहिये या नहीं, और यदि होना चाहिये तो कब और किन शर्तों पर? नरेन्द्र मण्डल के संगठन से पहिले ही कुछ प्रमुख रियासतें उससे अलग हैं और बहुत सी रियासतों के स्वतन्त्र निर्णय ने नरेन्द्र मण्डल की आधीनता में हो रहे इस सम्मेलन के प्रतिनिधि स्वरूप को काफी कमजोर कर दिया था।

नरेन्द्र मण्डल के चांसलर नवाब भोपाल ने फिर एक प्रश्न उठाते हुए स्पष्ट किया कि राजाओं के सम्मेलन ने पिछली नवरीज में जो प्रस्ताव स्वीकार किया था और जिसमें सार्वभौमसत्ता, स्वतंत्रता, राजवंश के अधिकारों और रियासतों की भौगोलिक सीमाओं को कायम रखने के सम्बन्ध में आश्वासन मांगा था, उस प्रस्ताव पर राजाओं को इस समय भी आग्रह करना चाहिये और जब तक भारतीय विधान परिषद् उस प्रस्ताव की मर्यादा को स्वीकार न करले, तब तक राजाओं को विधान परिषद् में शामिल न होना चाहिये। इसके बाद ही प्रतिक्रियावादियों को यह भी कहते हुए सुना गया कि देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को आखिरी वक्त में अर्थात भारतीय यूनियन के विधान निर्माण के वक्त ही विधान परिषद् में शामिल होना चाहिये। हम यह कहने को बाध्य हैं कि देश के इतिहास की इस नाजुक घड़ी में नवाब भोपाल राजाओं को गलत नेतृत्व दे रहे थे और उसी समय उदयपुर के प्रधानमंत्री सर विजय राघवाचार्य ने पूर्व कथित आश्वासन प्राप्त करने पर आग्रह किया तो उन पर भारतीय प्रगति के शत्रु होने का आरोप आरोपित किया गया जब राजा लोग मंत्रिमिशन की योजना को सोलहों आना स्वीकार करने की दुहाई देते थे तो उनके लिये विधान परिषद् से असहयोग करने का कोई

कारण ही नहीं रह जाता था। यदि वे इस वोट में टालमटोल की नीति अपनाने पर उद्यत होते तो अपने प्रतिगामी रूप का ही प्रकट करते, जैसा कि नवाब भोपाल तथा उनके गुट के कुछ राजाओं ने कुछ समय के लिये किया भी।

२ अप्रेल को नरेन्द्र मण्डल में फूट पड़ जाने के बाद बड़ौदा के दीवान सर ब्रजेन्द्र लाल मित्तर ने नरेन्द्र मण्डल के २ अप्रेल के प्रस्ताव पर वक्तव्य देते हुए कहा—

"मण्डल का निश्चय और अधिक विलम्ब का कारण होगा, जबकि इस समय सब से अधिक आवश्यकता शीघ्रता करने की है। अन्तिम स्टेज आने तक विधान परिषद् से अलग रहने का नरेन्द्र मण्डल का निश्चय उसकी कई बार दुहराई गई इस अभिलाषा के विरुद्ध है कि वह एक सर्वसम्मत शासन विधान की तैयारी में भरसक सहायता देगा। गत फरवरी मास में रियासती वार्ता समिति ने ब्रिटिश भारतीय वार्ता समिति से जो बातचीत की थी, उसके प्रति रियासती वार्ता समिति ने सन्तोष प्रकट किया था। अब जबकि बुनियादी अधिकारों और अल्पसंख्यकों कबीलों और पृथक इलाकों के महत्वपूर्ण मामलों पर विचार किया जा रहा है, क्या रियासतों को कुछ भी नहीं कहना है? यह बात सभी जानते हैं कि जब तक पूरी तय्यारी तैयार नहीं हो जायेगी तब तक कोई रियासत कोई विधान स्वीकार करने को बाध्य नहीं है। इसलिये इस समय विधान परिषद् में शामिल होने में क्या आपत्ति है? आखिर स्टेज में विधान परिषद् में जाने का यह अर्थ होगा कि जिन विषयों पर पूरी तरह से विचार हो चुका है, उन पर दुबारा विचार करना होगा। इसका एकमात्र परिणाम विलम्ब होगा, जबकि भारत की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के मामले में निश्चित समय का बहुत मूल्य है।"

इसके बाद स्थिति को ज्यादा नाजुक होती देखकर महाराजा बीकानेर ने एक अत्यन्त ही दूरदर्शिता एवं महत्वपूर्ण वक्तव्य ता० ३

अप्रेल को प्रकाशित करते हुए अन्य नरेशों से अपील की कि वे विधान परिषद् में सम्मिलित हो जायँ।

नरेन्द्र मण्डल ने "विधान परिषद् में रियासती प्रतिनिधि आगामी अधिवेशन मे ही भेजे जायँ या बाद मे?" इस प्रश्न को लेकर स्पष्ट दो दल हो गये। महाराजा ग्वालियर तथा उनकी कौंसिल के उपप्रधान श्री निवासन ने यथा शक्ति चेष्टा की दोनों दलों मे समझौता हो जाय। अतः उन्होंने एक फारमूले का निर्माण किया और इस प्रकार इस फारमूले द्वारा वह खाई बहुत चौड़ी होने से बचाली जो कतिपय प्रतिगामी नरेशों के रुख के कारण अस्तित्व में आचुकी थी।

३ अप्रेल को मि० जिन्ना के उस भाषण का, जिसमे उन्होंने पाकिस्तान के आधार पर युद्ध विराम संधि करने की अपील की थी, उत्तर देते हुए श्री वल्लभभाई पटेल ने अहमदाबाद की एक सार्वजनिक सभा मे कहा कि—

"त्रावणकोर के दीवान ने राज्य का दर्जा स्वतन्त्र घोषित कर दिया है। त्रावणकोर हिन्दुओं के पैरों की जगह पर है। यदि पैर कट जाय तो फिर शरीर का क्या होगा? मेरी नरेशों से विनीत सलाह है कि वे अलग नही रहें। राजा यदि ब्रिटिश भारत के हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों से अनुचित लाभ उठायेंगे तो अपनी आत्महत्या कर लेंगे। यदि कोई राजा सार्वभौमता कायम करेगा तो वह भूल करेगा। सार्वभौमता तो जनता की है।"

अन्त में ४ अप्रेल को नरेशों तथा उनके मन्त्रियों के संयुक्त सम्मेलन द्वारा जो फारमूला स्वीकार किया गया, उसके अनुसार प्रत्येक रियासत को यह स्वतन्त्रता दे दी गई कि वे सब संघ विधान मसविदे के तैयार होने की प्रतीक्षा न करके विधान परिषद में सम्मिलित हो सकते हैं। इस फारमूले के परिणामस्वरूप २८ अप्रेल को होने वाले विधान परिषद् के अधिवेशन मे रियासतों के २० प्रतिनिधि

सम्मिलित हुए। इन प्रतिनिधियों में बड़ौदा के दीवान श्री ब्रजेन्द्रलाल मित्तर, जयपुर के श्री कृष्णमाचारी, बीकानेर के सरदार के० एम० पान्निकर तथा जोधपुर के श्री हीरालाल शास्त्री व जयनारायण व्यास प्रमुख थे। विधान परिषद् में शामिल होने वाली रियासतों के २० प्रतिनिधियों में से ४ के अलावा सभी निर्वाचित थे। विधान परिषद् के तृतीय अधिवेशन में निम्नलिखित प्रमुख रियासतें सम्मिलित हुईं—

१—बड़ौदा, २—जयपुर, ३—रीवाँ, ४—कोचीन, ५—बीकानेर, ६—जोधपुर, ७—ग्वालियर और ८—पटियाला।

संघ अधिकार समिति में रियासतों के दो प्रतिनिधियों का प्रश्न भी विचार का विषय बन गया जिसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया गया। विधान के अनुसार यदि नरेन्द्र मण्डल के चांसलर जिन्हें नियुक्ति करने का अधिकार है, ऐसा करने से आनाकानी करते तो प्रतिनिधियों की नियुक्त का यह प्रश्न सम्बद्ध रियासतों तथा विधान परिषद् के अध्यक्ष द्वारा भी तय किया जा सकता था।

नरेन्द्र मण्डल के प्रगतिशील दल की विजय पर एक दृष्टि—

नवाब भोपाल द्वारा आमन्त्रित बम्बई के नरेन्द्र मण्डल के सम्मेलन में राजाओं और उनके मन्त्रियों की मन्त्रणा और चर्चा के विवरण से यह आशंका पैदा होगई थी कि भोपाल के नवाब साहब का प्रतिगामी नेतृत्व रियासतों को फिलहाल विधान परिषद् में शरीक न होने देगा और इस प्रकार न केवल ब्रिटिश भारत और रियासती लोकमत की उपेक्षा की जायगी बल्कि देश में प्रतिगामी शक्तियों के हाथ मजबूत किये जायँगे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि महाराज बीकानेर के दृढ़ रुख के कारण राजाओं के प्रतिगामी दल के मंसूबे पूरे न हो पाये और महाराजा ग्वालियर और ग्वालियर कौंसिल के उपसभापति श्री श्रीनिवासन के बीच-बचाव के फलस्वरूप उसे झुकने

और समझौता करने के लिये बाध्य होना पड़ा।

राजाओं के मुख्य मतभेद का विषय यह था कि रियासतों को विधान परिषद् में तुरन्त ही शामिल हो जाना चाहिये अथवा उस समय शामिल होना चाहिये जब विधान परिषद् प्रान्तों और समूहों का विधान बना चुकने के बाद अखिल भारतीय संघ के विधान-निर्माण का कार्य आरम्भ करे। यद्यपि रियासतों की ओर से अनेक बार यह दुहराया जा चुका था कि वे देश की स्वतन्त्रता की माँग का समर्थन करती हैं और देश का सर्वसम्मत विधान बनाने के काम में पूरा सहयोग देने को उत्सुक हैं, फिर भी नवाब भोपाल और उनके जैसे विचार के राजाओं ने विधान परिषद् के काम में सहयोग देने के बारे में रियासतों के अन्तिम निर्णय को अधिक से अधिक समय तक टालते रहने की नीति का ही अवलम्बन किया। ये लोग राजाओं के सम्मेलन में ऐसा प्रस्ताव मंजूर करवाना चाहते थे, जिसके परिणाम-स्वरूप इस बारेमें अनिश्चित अवस्था ही बनी रहती। किन्तु सौभाग्य-वश राजाओं के हलकों में ऐसे भी लोग थे जो समय की तात्कालिक आवश्यकता को अनुभव करते थे और इस नाजुक मौके पर देश के व्यापक हितों को दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहते थे। उनकी राय में अब वह समय आ गया था जब रियासतों को भारत का भावी विधान बनाने के महत्वपूर्ण कार्य में सहयोग देना अत्यन्त आवश्यक था और इस प्रकार ब्रिटिश हाथों से भारतीय हाथों में सत्ता परिवर्तन करना और संभव बनाना आवश्यक था। विधान परिषद् और राजाओं की समझौता समितियों में रियासती प्रतिनिधियों के बँटवारे और उनके चुनाव के तरीके के बारे में समझौता हो चुका था और देशी राज्यों के अधिकारों के बारे में राजाओं की ओर से जो प्रश्न उठाये गये थे उनके बारे में दोनों समझौता समितियों की चर्चा भी सन्तोषप्रद बताई जाती थी। ऐसी परिस्थिति में देशी राज्यों के लिये विधान परिषद् के साथ अपना सहयोग रोक रखना किसी भी तरह

उचित और नैतिक नहीं हो सकता था। यदि वे ऐसा कर रहे थे तो दूसरों को यह समझने का अवसर दे रहे थे कि वे भारतीय प्रगति के मामले में रोड़े अटका रहे हैं और उनकी देशभक्ति और देशप्रेम की बातें जुबानी जमा-खर्च से अधिक महत्वपूर्ण नहीं। किन्तु मामला राजाओं के प्रतिगामी दल की शक्ति से बाहर जा चुका था। अनेक देशी राज्यों ने निजी तौर पर विधान परिषद में शामिल होने के अपने निश्चय की घोषणा कर दी थी। वे अपनी सार्वजनिक घोषणा से विमुख नहीं हो सकते थे। यदि प्रतिगामी दल ने अपनी बात पर आग्रह किया होता तो राजाओं में इस प्रश्न पर दो दल हो जाते और राजाओं की यह फूट आगे चलकर स्वयं उनके स्वार्थों के लिये अहित-कर सिद्ध होती। अतः उसने समझदारी और दूरदर्शिता से काम लिया और राजाओं के सम्मेलन ने समझौते के तौर पर जो प्रस्ताव स्वीकार किया था उसमें उन राज्यों को जो विधान परिषद में सहयोग देना चाहते थे, यह स्वतन्त्रता दे दी थी कि वे उपयुक्त समय पर वैसा कर सकते हैं। इससे स्पष्ट था कि उपयुक्त समय का निर्णय राजा लोग स्वयं ही करने वाले थे। प्रस्ताव में यह शर्त भी रखी गई थी कि विधान परिषद द्वारा समझौता समितियों के समझौते को स्वीकार कर लेने के बाद ही इन राज्यों को विधान परिषद में सम्मिलित होना चाहिये था। उस समझौते को विधान परिषद की स्वीकृति निश्चित रूप से प्राप्त हो जाती। उसकी प्रतीक्षा में देशी राज्यों को, जो विधान परिषद में शामिल होने को तैयार थे, प्रतिनिधियों के चुनाव की आवश्यक कार्रवाई स्थगित नहीं रखनी चाहिये थी। इससे यही अच्छा था कि यदि राजाओं के सम्मेलन में देशी राज्यों को विधान परिषद में सहयोग देने के बारे में निश्चित नेतृत्व दिया होता। उन दिनों विधान परिषद की उपसमितियाँ मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों, कबाइली और निष्कासित प्रदेशों आदि के बारे में विचार कर रही थीं। देशी राज्यों के प्रतिनिधि इन प्रश्नों के निबटारे में उचित योग दे सकते थे।

जिन देशी राज्यों ने अविलम्ब विधान परिषद् में शामिल होने का निर्णय नहीं किया और न करना चाहते हैं, उन्होंने विधान के आवश्यक अंगों को निर्धारित करने का अवसर अपने हाथों से खो दिया और खो रहे हैं और उनका ऐसा करना रियासती जनता की घोषित इच्छा के कतई विरुद्ध था। जो रियासतें उस समय विधान परिषद् में शामिल हो रही थीं उनके उस निश्चय की हम सराहना करते हैं। राजाओं के सम्मेलन के बाद उनको काम करने की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई थी। यह बड़े ही हर्ष की बात थी कि बड़ौदा, जयपुर, पटियाला, बीकानेर तथा दक्षिण की रियासतों ने विधान परिषद् की आगामी बैठक में सम्मिलित होने की सूचना विधान परिषद् को दे दी थी। इससे साफ प्रकट हो गया था कि उन रियासतों के जन प्रतिनिधि विधान परिषद् में सम्मिलित होने को उत्सुक थे।

६ अप्रल को पटियाला-नरेश ने वक्तव्य देते हुए कहा—

"नरेशों की 'ठहरो और परिणाम को देखो' नीति जो उन्होंने विधान परिषद् के सम्बन्ध में इख्त्यार की है वह बहुत ही हानिप्रद है और साथ ही इस अनुपस्थिति से वे उन लाभों से भी वंचित रह जायेंगे जो आरम्भ से सम्मिलित होने पर उन्हें प्राप्त हो सकते हैं। मैं उन नरेशों में से हूँ जो भारतीय स्वतन्त्रता की ओर की जाने वाली प्रगति में सबसे अधिक विश्वास करता हूँ। मुझे इस बात का गर्व है कि हम भारत के भावी विधान निर्माताओं के साथ सहयोग करके भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को हल करने में साझीदार बनें। हमारा यह कर्तव्य है कि गद्दी-तकियों पर बैठने के बजाय अपने और उससे भी ज्यादा देश के भावी विधान-निर्माण में अपने देश प्रेमी व्यक्तियों को दिल खोलकर साथ दें।"

विधान परिषद् में रियासतों के कम से कम २ प्रतिनिधियों को विधान परिषद् की समितियों की सदस्यता के लिये निश्चित रूप से लेने के लिये तय कर लिया था। बड़ौदा के दीवान सर ब्रजेन्द्रलाल

मित्तर ने विधान परिषद् की संघ अधिकार समिति का सदस्य होना स्वीकार भी कर लिया था। जब अन्य दो सदस्यों को संघ अधिकार समिति एवं परामर्शदात्री समिति में लेने के बारे में विधान परिषद् के अध्यक्ष ने नवाब भोपाल—नरेन्द्र मण्डल के चांसलर—को लिखा तो उन्होंने इन नियुक्तियों के लिये इन्कार कर दिया। उन्होंने विधान परिषद् के अध्यक्ष को लिखा कि जब तक वे नरेन्द्रमण्डल की स्थायी समिति के प्रस्ताव की मुख्य बातों को स्वीकार नहीं कर लेते तब तक वे प्रतिनिधि भेजने को तैयार नहीं। नवाब भोपाल की मुख्य शर्तें ये थीं—

१—नरेन्द्र मण्डल की स्थायी समिति के प्रस्ताव की कुछ मुख्य बातों की गारण्टी।

१—रियासतों के उत्तराधिकारियों के अधिकार की रक्षा।

३—विधान परिषद् में भाग लेने का अर्थ रियासतों द्वारा विधान परिषद् के सभी निर्णयों को मान्य करना न होगा।

इस प्रश्न पर नेहरू व नरेन्द्र मण्डल के चांसलर ने पत्र-व्यवहार हुआ। नरेन्द्रमण्डल की रियासत समझौता समिति और विधान परिषद् की रियासत समझौता समिति की संयुक्त बैठक में, इसके पूर्व ही इस बात पर समझौता हो गया था कि विधान परिषद् में रियासतों के लिये ६३ स्थानों में विभिन्न रियासतों को कितने-कितने स्थान दिये जायँ तथा उनके प्रतिनिधि किस प्रकार चुने जायँ। विधान परिषद की समझौता समिति ने कहा था कि रियासतों सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय करते समय रियासतों के प्रतिनिधियों के विचारों पर ध्यान दिया जायगा। विधान परिषद् में सम्मिलित होने के पहिले इन प्रश्नों को अलग कर देना न्यायोचित नहीं होगा।

विधान परिषद् की समझौता समिति ने नरेन्द्र मण्डल की समझौता समिति से हुई बातचीत से सम्बन्ध में रिपोर्ट तैयार करके २८ अप्रेल के विधान परिषद् के अधिवेशन में पेश की। नेहरू जी ने

इस रिपोर्ट के बारे में कहा था कि इस रिपोर्ट पर बहस न की जाकर परिषद् की समझौता समिति को नरेन्द्र मण्डल की समझौता समिति से समझौता करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय।

१३ अप्रैल १९४७ को जलियाँवाला बाग-दिवस के उपलक्ष में नई दिल्ली में भाषण देते हुए पण्डित नेहरू ने कहा—

"ऐटली साहब के बयान से एक फायदा अवश्य हुआ। वह यह कि जो इन मामलों को महसूस नहीं करते थे, उनकी भी इस तवारीखी ऐलान से आँखें खुल गईं। इसका खास असर राजाओं पर पड़ा। उन्होने करवट ली और सोचा कि चर्चा तो इन चीजों की पहिले भी सुनी थी, मगर यह मालूम नहीं था कि अंग्रेज इतनी जल्दी यहाँ से चले जायेंगे। उन्होंने कमेटियाँ बनाईं और एक का दूसरे से और दूसरे का तीसरे से मशविरा होने लगा। अगर इन बुजुर्गों को मशविरा ही करना था तो अपनी प्रजा के नुमाइन्दों से करना था। ९ करोड़ आदमी उनकी रियासतों मे बसते हैं, मगर फिर भी उनके सामने वे मामले आयें जो कभी नहीं आये थे।"

१५ अप्रैल को भाषण करते हुए सरदार पटेल ने बड़ौदा में कहा—"अब वह समय आ गया है जब कि शासक व शासित अपनी-अपनी स्थिति को भली भांति समझलें। अभी भी कुछ राजा सर्वोच्च सत्ता के साथ अपने प्रत्यक्ष सम्बन्धों व सम्राट के साथ की गई पवित्र संधियों की बातचीत कर रहे हैं। अब तो ईश्वर की, जो राजाओं का भी राजा है, यही इच्छा है कि भारत की जनता जून १९४८ तक स्वतन्त्र हो जाय। राजाओं को कांग्रेस से भयभीत होने की जरूरत नहीं है। क्योंकि उसने कभी भी उनकी वंश परम्परा या शासन को खत्म करना नहीं चाहा है। इसके अलावा विभिन्न रियासतों के प्रजा मण्डल, यदि उन्हें सत्ता सौंप भी दी जाय तो भी अविलम्ब शासन प्रबन्ध अपने हाथ में नहीं ले सकते। स्वतन्त्र भारत में भारतीय नरेशों का भविष्य महान होगा। वे विदेशों में भारत के

राजदूत बनकर तथा सशस्त्र भारतीय सेना में भाग लेकर देश की भारी सेवा कर सकते हैं।"

इसके बाद ही टेहरी राज्य ने शिमला की अन्य ३० रियासतों के साथ विधान परिषद् में सम्मिलित होने की सूचना दी और अपने राज्यों में जनतन्त्रीय सरकार भी स्थापित कर लेने का इरादा जाहिर किया।

१७ अप्रेल १९४७ को सूरत में भाषण करते हुए सरदार पटेल ने राजाओं के सम्बन्ध में कहा—

"एक ओर राजा "ठहरो और देखो" की नीति से काम ले रहे हैं, वे यह जानना चाहते हैं कि सत्ता किसको दी जाती है। वे इधर यह कहते हैं कि रियासतों की जनता अभी शासनाधिकार संभालने के लायक नहीं है। वे अभी सम्राट से सीधे सम्बन्ध रखने की बातें करते हैं। लेकिन सम्राट की सरकार ने स्वयं ही घोषित कर दिया है कि सार्वभौमता तो समाप्त हो जायेगी। हम राजाओं को समाप्त नहीं करना चाहते लेकिन हम चाहते हैं कि वे अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन अवश्य दे दें। यदि वे ऐसा तुरन्त नहीं कर सकें तो निकट भविष्य में ही सही। जब अंग्रेज १५ मास में ही भारत की सत्ता सौंपने को तैयार हैं तो राजा यह नहीं कह सकते कि लोग उत्तरदायी शासन लेने के लिये तैयार नहीं हैं। अतः राजाओं को चाहिये कि वे विधान परिषद में तुरन्त अपने निर्वाचित सदस्य भेज दें।"

२८ अप्रेल को विधान परिषद् का तृतीय अधिवेशन आरंभ हुआ जिसमें रियासतों के निम्नलिखित प्रतिनिधियों ने भाग लिया—

१—सर ब्रजेन्द्रलाल मित्तर (बड़ौदा) २ दरबार गोपालदास देशाई (बड़ौदा) ३—श्री० पी० गोविन्द मेनन (कोचीन) ४—सर टी० विजय राघवा चार्य (उदयपुर) ५—सर वी० टी० कृष्णमाचारियर (जयपुर) ६—पण्डित हीरालाल शास्त्री (जयपुर) ७—श्री० सी० एस० वैंकटाचारियर (जोधपुर) ८—श्री जयनारायण

ब्यास (जोधपुर) ९—सरदार पान्निकर (बीकानेर) १०—राजा शिवबहादुरसिंह (रीवाँ) ११—लाला यादवेन्द्रसिंह (रीवाँ) १२—सरदार ज्ञानसिंह (पटियाला) १३—सरदार यादवसिंह (पटियाला)

विधान परिषद् में पहिली बार रियासतों के प्रतिनिधि की हैसियत से सर ब्रजेन्द्रलाल मित्तर (बड़ौदा) ने कहा—

"रियासतें अलग-अलग अस्तित्व रखने में विश्वास नहीं रखती इस लिये हम सबको देश के अलग अलग टुकड़ों की प्रतिभा और सामर्थ्य के अनुरूप ऐसा शासन विधान तैयार करना चाहिये जिसके द्वारा विकास स्वाभाविक एवं स्वस्थ्य कर हो।"

सरदार पान्निकर ने कहा—

"रियासतों के जो प्रतिनिधि विधान सभा में आये हैं, वे दो करोड़ जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं, और डेढ करोड़ रियासती जनता के प्रतिनिधित्व ने परिषद् में शामिल होने की तैयारियाँ करली हैं। इसके सिवाय रियासती जनता की जो संख्या बचती है, उसका उतना महत्व भी नहीं है। रियासतों के प्रतिनिधि विधान परिषद् में शरीक हुए, यही महत्वपूर्ण बात है। विधान परिषद् की वार्ता समिति ने सामूहिक चेष्टा संभव बनाई, इसके लिये उसकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही है।"

इसके बाद पण्डित नेहरू ने रियासती वार्ता समिति की रिपोर्ट के सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव में उक्त रिपोर्ट को भी दर्ज किया गया और देशी राज्यों के प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए यह आशा प्रकट की गई कि अन्य रियासतों के प्रतिनिधि भी शीघ्र ही विधान परिषद् में शामिल हो जायेंगे, नेहरूजी ने कहा—

"नवाब भोपाल ने विधान परिषद् में शामिल होने से पूर्व कुछ आश्वासन और गारन्टियाँ दिये जाने के बाबत कहा है। किन्तु हम प्रत्येक भारतवासी को यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हम उसके साथ अपने साथी जैसा ही बर्ताव करेंगे। परन्तु साथ ही हम उसे

यह भी जता देना चाहते हैं कि भविष्य में सोने और चांदी के ताज का उतना महत्व नहीं रहेगा जितना कि स्वतन्त्र भारत की नागरिकता का। हम लोग केवल इतना ही आश्वासन दे सकते हैं। जो लोग आ गये हैं, हम उनका स्वागत करते हैं, जो आयेंगे, हम उनका भी स्वागत करेंगे। हम उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहना चाहते, जो नहीं आयेंगे। जो लोग आ गये हैं, और जो लोग नहीं आयेंगे उनके बीच म जो खाई चौड़ी हो गई है, वह बढ़ती ही जायेगी। वे लोग दो मुख्तलिफ रास्तों पर चलेंगे और यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी। मेरा तो यही विश्वास है कि इन दोनों में जल्दी ही मेल हो जायेगा। कुछ भी हो, किसी को भी मजबूर नहीं किया जायेगा।".

प्रस्ताव पर डाक्टर कैलाशनाथ काटजू आदि का समर्थन होने के बाद वह स्वीकृत हो गया।

जुलाई १९४७ में भोपाल के नवाब वाले गुट में गहरी फूट पड़ गई और इन्दौर अपने वैधानिक सलाहकारों की सलाह पर १५ अगस्त के पूर्व ही भारतीय संघ में शामिल होने का इरादा जाहिर करने लगा। किन्तु अभी भी कुछ ऐसी रियासतें अवश्य थीं, और खास कर छोटी छोटी हिन्दू रियासतें ही ऐसी थीं जो भोपाल के साथ-साथ संघ में प्रवेश नहीं करना चाहती थीं। उनके नाम ये हैं—१-धार, २-देवास जूनियर, ३-इन्दौर, ४-मैहर, ५-नरसिंहगढ़, ६-राजगढ़, ७-मकराय राज, ८-देवास सीनियर—हिन्दू रियासतें।

मुस्लिम रियासतें—१-बावनी, २-जावरा, ३-पठारी, ४-कुरवई, ५-महम्मदगढ़, ६-भोपाल। इनमें भोपाल अफगान वंशीय हैं और शेष पठान हैं।

ये रियासतें भोपाल के गुट का साथ अवश्य दे रही थी किन्तु हृदय में डर रही थीं क्योंकि जो रियासतें भोपाल का साथ देकर भारतीय संघ में शामिल नहीं होने का इरादा रखती थीं उन्हें भारतीय संघ यथापूर्व समझौते से प्राप्त होने वाले लाभ प्रदान नहीं कर सकता

था। और छोटी-छोटी इन साधनहीन रियासतों के लिये यह समस्या बड़ी ही कठोर एवं उन्हें अस्तित्वहीन बना देने के लिये काफी थी।

रियासतों की समस्या को ज्यादा पेचीदा होती हुई देख कर तथा उनके उचित हल के लिये भारत सरकार ने लौह पुरुष गृहमंत्री सरदार पटेल के सिपुर्द भारतीय सरकार का रियासती विभाग १ जुलाई १९४७ को कर दिया।

सरदार वल्लभभाई पटेल ने रियासत विभाग के मन्त्री होने के बाद शीघ्र ही एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए देशी रियासतों के विषय में भारत सरकार की नीति का ता० ५ जुलाई १९४७ को स्पष्टीकरण किया और राजाओं से अपील की कि वे शीघ्र ही भारतीय संघ में शामिल हो जायें। अपने वक्तव्य में सरदार पटेल ने कहा—

"कुछ समयपूर्व यह घोषित किया गया था कि भारत सरकारने सामान्यहितके विषयोंमें रियासतोंके साथ अपना कामकाज जारी रखने के लिये एक विभाग स्थापित करने का निश्चय किया है। आज वह विभाग स्थापित हो गया है और रियासतों को इसकी सूचना भी देदी गई है। इस महत्व पूर्ण अवसर पर मैं, भारतीय रियासतों के शासकों से, जिनमें अनेकों मेरे निजी मित्र हैं, कुछ शब्द कहना चाहता हूँ।"

"इतिहास यह शिक्षा देता है कि हमारी खण्डित अवस्था और एक होकर मुकाबला करने की हमारी अयोग्यता का ही यह कारण था कि भारत को आक्रमण कारियों का निरंतर शिकार होना पड़ा। हमारे आपसी विवाद, परस्पर विनाश कारी झगड़े और ईर्ष्या, द्वेष ही अतीत में हमारे पतन और अनेक बार विदेशियों की गुलामी के शिकार होने का कारण हुए हैं। अब हम फिर उन गलतियों को दुहराना और जालों में फंसना बरदाश्त नही कर सकते। हम आजादी के द्वार पर खड़े हैं। यह सही है कि हम देश की एकता को अन्त में सर्वथा अखण्डित नहीं रख सके। हममें से अनेकों को अत्यन्त दुखित और निराश हो जाने के बावजूद देश के कुछ हिस्सों

ने भारत से अलग होने और अपनी सरकार अलग बनाने का निश्चय किया। लेकिन इस विभाजन केबावजूद संस्कृति और भावना की मौलिक समानता और पारस्परिक हित का सिद्धान्त बराबर काम करता ही रहेगा। यही बात उससे भी अधिक उन बहुसंख्यक रियासतों के विषय में होगी, जिन्हें अपनी भौगोलिक समीपता और आर्थिक, संस्कृतिक तथा राजनीतिक अभेद्य सम्बन्धों के कारण अवशिष्ट भारत के साथ परस्पर मैत्री और सहयोग का अपना सम्बन्ध कायम रखना चाहिये। इन रियासतों तथा साथ ही भारत की सुरक्षा और बचाव के लिये उसके विभिन्न भागों के बीच आपस में एकता और परस्पर सहयोग का होना आवश्यक है।"

"जब अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन स्थापित किया तो उसके साथ ही उन्होंने सार्व भौमिकता के सिद्धान्त को भी जन्म दिया, जिसका मतलब था ब्रिटिश हितों की वरिष्ठता। आज तक उस सिद्धान्त की व्याख्या नहीं हुई। लेकिन उसके उपयोग में निश्चित रूप से सहयोग की अपेक्षा अधीनता ही अधिक रही है। सार्व भौमिकता के क्षेत्र के बाहर भी एक व्यापक क्षेत्र रहा है जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासतों के बीच पारस्परिक हितों के आधार पर सम्बन्ध कायम रहे हैं। अब चूँकि ब्रिटिश शासन समाप्त हो रहा है, रियासतें अपनी स्वतन्त्रता को फिर से प्राप्त करने की मांग करने लगी हैं। जहाँ तक सार्व भौमिकता में रियासतों का विदेशियों के आदेश की अधीनता का प्रश्न निहित है, उनकी इस मांग के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। लेकिन मैं नहीं समझता कि उनकी यह इच्छा है कि अधीनता से इस मुक्ति का वे इस प्रकार उपयोग करें जो भारत के समान्य हित के अथवा सुरक्षा के लिये विघातक है अथवा जिससे लोकहित की अन्तिम सार्व भौमिकता का भंग होता हो अथवा जिसके परिणाम में पिछली सदी में ब्रिटिश भारत और रियासतों के बीच स्थापित पारस्परिक हित के उपयोगी सम्बन्ध का हित होता हो। यह इस बात से

प्रमाणित है कि बहुत सी रियासतें विधान परिषद् में शामिल हो चुकी हैं। जो अभी तक नहीं हुई है, उनसे मेरी अपील है कि वे अब शामिल हो जाँय। रियासतें यह आधार भूत सिद्धान्त पहिले ही स्वीकार कर चुकी हैं कि सुरक्षा, वैदेषिक विषय और यातायात के मामलों में वे भारतीय संघ में शामिल होंगी। इन तीन विषयों में, जिनमें भारत का सामन्य हित सन्निहित है, शामिल होने के सिवा हम उनसे और कुछ नहीं चाहते। अन्य विषयों में हम उनके स्वतन्त्र अस्तित्व को अच्छी तरह स्वीकार करेंगे।"

"यह देश अपनी परम्पराओं के साथ उन लोगों की गौरव पूर्ण विरासत है जो इसमें निवास करते हैं। यह एक संयोग की बात है कि इनमें से कुछ ब्रिटिश भारत में रहते हैं और कुछ रियासतों में। लेकिन इनकी संस्कृति और चरित्र निर्माण में सब समान रूप से साझी हैं। हम सब रक्त और भावनाओं और उसी प्रकार अपने हित के कारण एक दूसरे से बंधे हुए हैं। कोई भी हमें टुकड़ों में विभाजित नहीं कर सकता। हमारे बीच कोई अलंघ्य खाई पैदा नहीं कर सकता। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि यह अच्छा हो कि हम आपस में बैठ कर मित्रों की तरह नियम निर्धारित करलें बजाय इसके विदेशियों की तरह सन्धियाँ करते फिरें। मैं अपने मित्र रियासतों के शासकों और उनकी जनता को अपनी मातृभूमि के प्रति समान निष्ठा से प्रेरित होकर सबके समान हित के लिये मैत्री पूर्ण और सहयोग की भावना से विधान परिषद् में आने के लिये निमंत्रित करता हूँ।"

"रियासतों के प्रति कांग्रेस के रुख के बारे में बड़ी गलत फहमी प्रतीत होती है। यह मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ रियासतों के घरेलू मामलों में किसी तरह हस्तक्षेप करने की कांग्रेस की कोई इच्छा नहीं है। वह राजन्य वर्ग की शत्रु नहीं है, इससे विपरीत वह उनकी और उनकी जनता की इस छत्रछाया में सब प्रकार का

समृद्धि, सन्तुष्टि और सुख की कामना करती है। मेरी यह नीति होगी कि नये विभाग का इस प्रकार संचालन किया जाय जिससे रियासतों पर अधिपत्य स्थापित हो, अगर किसी का अधिपत्य होगा, तो वह लोग हमारे पारस्परिक हित और भलाई के लिये।"

"हमारा कोई दूषित इरादा या स्वार्थ पूर्ण हित नहीं है। दूसरे के दृष्टि कोण को समझाना हमारा सामान्य हित होगा। हम ऐसे निर्णय करेंगे जो सब को स्वीकार्य हों और जिस देश का सर्वोच्च हित साधन होता हो। इस उद्देश्य से मैं नये विभाग के शासन के साथ सहयोग के लिये रियासतों और ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की एक स्थायी समिति कायम करना चाहता हूँ।"

"हम भारत के इतिहास की एक नाजुक घड़ी में से गुजर रहे हैं। अपने मिलजुले प्रयत्नों से हम देश को एक नयी महानता पर पहुँचा सकते है। और एकता के अभाव में हम अपने को मुसीबतों का शिकार बना लेंगे। मैं आशा करता हूँ कि भारतीय रियासतें इस बात को ध्यान में रखेंगी कि समान हित में सहयोग का विकल्प है। अराजकता और अव्यवस्था छोटे बड़े सभी को समान रूप से विनाश के गड्ढे में ढकेल देगी। हम भावी सन्तति को यह अभिशाप देने का अवसर नहीं देना चाहिये कि हमें जो अवसर मिला उसे हम सामान्य हित में परिवर्तित करने में असफल हो गये। इसके बजाय हम अपने पीछे एक दूसरे के लिये लाभ प्रद सम्बन्धों की ऐसी विरासत छोड़ जाने का गौरव प्राप्त करें जिससे यह पवित्र भूमि विश्व के राष्ट्रों में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त करे और इसे शांति और समृद्धि के निवास स्थल में परिवर्तित करे।"

६ जुलाई १९४७ को महाराजा बीकानेर ने, सरदार पटेल के रियासती मंत्री नियुक्त किये जाने का स्वागत करते हुए जो वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार है—

"मैं सरदार पटेल के रियासत सम्बन्धी भाषण से पूर्णतया

सहमत हूँ। इससे अधिक उपयुक्त वक्तव्य दूसरा नहीं हो सकता जिसमें रियासतों के प्रति सच्ची मित्रता और सद्भावना भरी हुई है यदि हम सब इसी भावना से प्रेरित होकर काम करें तो हम अपने सामने उपस्थित विविध समस्याओं का सब पक्षों के लिये उचित हल निकाल सकते हैं।"

"मैं विश्वास करता हूँ कि सरदार पटेल के वक्तव्य के बाद और रियासतें भी जल्दी ही शामिल हो जायेंगी। नरेशों का कर्तव्य है कि वे भारतीय नेताओं के साथ नव भारत के निर्माण में सक्रिय सहयोग दें और भाई भाई की तरह मित्रता पूर्वक उस महान लक्ष्य की पूर्ति के लिये कार्य करें।"

"अब समय आगया है जब राजाओं को, जो सब भारतीय हैं, और उनके सरकारों को, रियासतों में प्रकट हो रही राजनीतिक जागृति को कुचलने और प्रगति की रफ्तार को पीछे धकेलने की कोई कार्यवाई नहीं करनी चाहिये आपको यह विश्वास करना होगा कि आप प्रजा के सच्चे शुभ चिन्तक हैं।"

"देशी राज्य लोक परिषद, प्रजा परिषदों और प्रजा मण्डलों से भी कहूँगा कि उन्हें कांग्रेस जैसी महान और सम्माननीय संस्था की नीति और आश्वासनों का सचाई के साथ अनुसरण करना चाहिये। उन्हें राजाओं और उनकी सरकारों के विरुद्ध आन्दोलन खड़े नहीं करने चाहिये। पुराना युग बदल रहा है और नया युग शुरू हो रहा है। इस मौके पर रियासतों की तथा शेष भारत की सरकारों की सत्ता को क्षीण नहीं किया जाना चाहिये।"

११ जुलाई को सरदार पटेल के उपरोक्त वक्तव्य का स्वागत करते हुए महाराजा अलवर ने उन्हें एक तार भेजते हुए कहा—

"रियासती विभाग के उद्घाटन के समय आपका रियासतों के विषय में जो भाषण हुआ, उसका मैं स्वागत करता हूँ। रियासत और भारत के भविष्य के सम्बन्ध में यह एक शुभ चिन्ह है। मुझे

विश्वास है कि सरकार आपके द्वारा घोषित नीति पर दृढ़ रहेगी और इसमें भी कुछ शंका नहीं कि रियासतें आपके द्वारा बढ़ाये गये दोस्ती के हाथ को ग्रहण करेंगी। हमें अपने लक्ष्य की ओर मिलकर साथ साथ बढ़ना चाहिये।"

२५ जुलाई को तत्कालीन वाइसराय एवं गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ने भारतीय रियासतों के राजाओं और उनके प्रतिनिधियों के समक्ष सामायिक चेतावनी देते हुए कहा—

"सरदार वल्लभ भाई पटेल ने रियासती विभाग को संभाल कर जो वक्तव्य दिया है वह सचमुच एक राजनीतिज्ञ के योग्य है और मैं उसके प्रति अपनी श्रद्धान्जलि अर्पित करता हूँ।"

"यदि रियासतें एक या दूसरे उपनिवेश में सम्मिलित नहीं हुई तो फिर वर्तमान हथियारों के प्राप्त करने में वे समस्त साधनों से वंचित करदी जायेंगी।"

"वैदेशिक मामलों का सम्बन्ध सुरक्षा से है। इस मामले में बड़ी से बड़ी रियासत भी अलग कार्य नहीं कर सकती। ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से बड़ी से बड़ी रियासतों का भी सम्बन्ध वैदेशिक मामलों से नहीं रहा है।"

"इस प्रवेश पत्र के द्वारा आप भारतीय संघ में केवल तीन विषयों के बारे में शामिल होते हैं। आप पर इस विषय में किसी प्रकार की आर्थिक जिम्मेदारी भी नहीं लादी जारही है। प्रवेश पत्र में यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार किसी और विषय में रियासतों की आन्तरिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करेगी।"

"आप लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि सत्ता हस्तान्तरित करने का दिन—१५ अगस्त १९४७—बहुत ही निकट आरहा है और यदि आप भारतीय संघ में आना चाहते है तो आपको १५ अगस्त से पहिले आजाना चाहिये। मुझे इसमे बिलकुल भी शंका नहीं कि यह बात रियासतों के हित मे है और हर एक चतुर राजा

और बुद्धिमान सरकार भारत उपनिवेश से ऐसे आधार पर सम्बन्ध स्थापित करना चाहेगी जिससे उनकी आन्तरिक स्वतंत्रता बनी रहे और वह विदेशी मामलों, रक्षा और यातायात की परेशानी से बचे रहें।"

वायसराय ने एजेण्डे पर विचार करने के लिये एक समिति का निर्माण किया था उसके एक भाग का कार्य था "प्रवेश पत्र" पर विचार करना और दूसरे के सिपुर्द "यथापूर्व समझौते" तथा अन्य मामलों पर विचार करना।

उपरोक्त समिति ने २६ जुलाई को यह निर्णय दिया कि १५ अगस्त से पूर्व भारतीय रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित हो जाना चाहिये। साथ ही समिति ने प्रवेश पत्र के मसविदे को भी अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया।

३१ जुलाई १६४७ को भारत सरकार और-और रियासतों के प्रतिनिधियों का अन्तिम बार एक सम्मेलन हुआ, जिसमें संशोधित प्रवेश पत्र और यथा पूर्व समझौते पर विचार विनिमय किया गया और सर्व सम्मति से वह प्रवेश पत्र स्वीकृत हुआ। इस प्रवेश पत्र में अब किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जायेगा। नरेशों को इसे वर्तमान रूप में ही स्वीकार करना होगा। जो रियासतें प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर कर देंगी, उन्हीं के साथ भारत सरकार यथा पूर्व समझौता करेगी। जो रियासतें भारत के साथ नहीं मिलेंगीं, उनके साथ यातायात, सुरक्षा, और विदेशों में उनके नागरिकों की रक्षा तथा आर्थिक मामलों अर्थात् कंट्रोल व माल मुहैया करने आदि के सम्बन्ध में किये गये तमाम समझौते खत्म कर दिये जायेंगे।

सशोधित प्रवेश पत्र—

"चूंकि भारतीय स्वाधीनता कानून १६४७ में यह बताया गया है कि १५ अगस्त १६४७ से स्वतंत्र भारतीय उपनिवेश स्थापित हो

जायगा और १९३५ का भारतीय विधान गवर्नर जनरल की स्वीकृति के साथ परिवर्तित एवं संशोधित रूप में भारतीय उपनिवेश पर लागू हो सकेगा और चूंकि गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत १९३५ के भारतीय विधान में यह विधान है कि कोई भी भारतीय रियासत प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करने के साथ भारत में शामिल होसकती है, अतएव मैं........ ....अमुक ....रियासत का नरेश अपनी रियासत में प्राप्त सर्वोच्च सत्ता के अनुसार अपने प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करता हूँ, और साथ ही यह भी घोषित करता हूँ—

(१) मैं भारतीय उपनिवेश के साथ इस इरादे से शामिल होता हूँ कि भारत के गवर्नर जनरल, औपनिवेशिक धारा सभा, फीडरल कोर्ट, तथा दूसरे अधिकारियों को इस प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करने के कारण, मगर कुछ विशेष शर्तों के साथ औपनिवेषिक विषयों के सम्बन्ध में अमुक रियासत ... .में उस १९३५ के भारतीय विधान के अनुसार अपने अधिकारों का प्रयोग करने की छूट होगी जो १५ अगस्त १९४७ को भारतीय उपनिवेष में लागू होगा।

(२) मैं यह आश्वासन देता हूँ कि मेरी रियासत में इस विधान को दफाओं को कार्यान्वित किया जायेगा और वह भी उसी हद तक जहाँ तक कि प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद वह लागू हो सकेगा।

(३) शिडयूल (सूची) में प्रतिपादित विषयों को छोड़कर अन्य सब विषयों के सम्बन्ध में औपनिवेषिक धारा सभा को रियासत के लिये कानून बनाने का अधिकार होगा।

(४) मैं यह भी घोषित करता हूँ कि मैं इस आश्वासन पर भारतीय उपनिवेश के साथ शामिल होता हूँ कि यदि गवर्नर जनरल तथा इस रियासत के नरेश के बीच यह समझौता हो जाता है कि औपनिवेषिक धारा सभा द्वारा स्वीकृत किसी कानून को

कार्यान्वित करने का काम रियासत के नरेश का होगा तो ऐसा कोई भी समझौता इस प्रवेश पत्र का अंश होगा और उस पर वैसे ही आचरण किया जायेगा।

(५) मेरे इस प्रवेश पत्र की शर्तें १५ अगस्त के बाद प्रचलित विधान अथवा भारतीय स्वतंत्रता विधान १९४७ में संशोधन करने के बाद तब तक परिवर्तित न की जासकेंगी जब तक कि मैं ऐसे संशोधन को एक पूरक प्रवेश पत्र द्वारा स्वीकृत न करलूं।

(६) औपनिवेषिक धारा सभा को इस रियासत के सम्बन्ध में ऐसा कोई भी कानून बनाने का इख्तयार नहीं होगा कि जिसमें औपनिवेषिक सरकार को जबरदस्ती रियासत की जमीन हस्तगत करने की छूट हो। लेकिन यदि औपनिवेषिक सरकार को इस रियासत में लागू होने वाले औपनिवेषिक कानून को कार्यान्वित करने के लिये जमीन की जरूरत होगी तो उसकी प्रार्थना पर मैं उसे दे दूंगा। उसकी शर्तों के बारे में समझौता कर लिया जावेगा। और यदि समझौता न हो सका तो भारत सरकार के चीफ जस्टिस द्वारा नियुक्त पंच जो फैसला देंगे वह मुझे मान्य होगा।

(७) इस प्रवेश पत्र द्वारा मैंने यह स्वीकार नहीं किया है कि मैं भारत के किसी भी भावी विधान को स्वीकार कर लूंगा और ऐसे किसी भी भावी विधान के अनुसार मुझे भारत सरकार के साथ समझौता करना होगा।

(८) इस प्रवेश पत्र से मेरी रियासत में मेरी सर्वोच्च सत्ता पर कोई असर न पड़ेगा। मुझे इस रियासत का नरेश होने से जो अधिकार प्राप्त हैं और इस समय रियासत में जो कानून प्रचलित हैं, उन पर भी किसी किस्म का असर न होगा।

(९) मैं यह घोषित करता हूँ कि मैं इस रियासत की ओर से

इस प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करता हूँ। इस प्रवेश पत्र में मेरा जब कभी हवाला दिया जायेगा, तब उसमें मेरे वारिस भी शामिल समझे जायेंगे।

मैं हस्ताक्षर कर्ता...............अगस्त १६४७ की अमुक तारीख व दिन को इस प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर करता हूँ।

आज...........अगस्त १६४७.......तारीख व...........वार को

——————हस्ताक्षर

शिडयूल (सूची)

प्रवेश पत्र के साथ जो शिडयूल नत्थी है, उसमें इन विषयों का जिक्र है, जिनके सम्बन्ध में औपनिवेषिक धारा सभा को रियासतों के लिये कानून बनाने का अधिकार होगा। ये विषय निम्न हैं—

१—राष्ट्र रक्षा

२—विदेशी मामले

३—यातायात

४—विभिन्न

११ अगस्त १६४७ को शहीद दिवस पर भाषण करते हुए सरदार पटेल ने नरेशों व देशी रियासतों का जिक्र करते हुए कहा—

"आज हमारा सबसे पहिला काम ८० फीसदी हिन्दुस्तान को एक बनाना है। इसमें बहुत से राजा-महाराजा भी पड़े हैं। मैं उन सब को संघ में लाने की कोशिश कर रहा हूँ। यह भी कहा जारहा है कि हम राजाओं की खुशामद करते हैं, रैयत को पूछते ही नहीं। ऐसा कहने वालों को मैं बताना चाहता हूँ कि आज हमारा मुख्य कार्य सबको एक जगह एकत्रित करना है। वह समय आने वाला है जब राजागण खुद जनता के पास जायँगे। वे इस बात को समझ लेंगे कि जिस राजा के साथ उसकी रैयत नहीं होगी, वह गद्दी पर रह नहीं सकेगा। १५ तारीख तक सब राजा संघ में शरीक हो जायँ, यह मेरी कोशिश है। बहुत से अब तक आ चुके हैं, कुछ बाकी हैं। मैं १५

तारीख तक उनकी प्रतीक्षा करूं, इसके बाद उनके साथ दूसरा ही वर्ताव होगा।"

"हम राजाओं से कहते हैं कि अगर उन्हें अपने राज्य बचाने हैं तो संघ में शामिल हो जायँ। जो अकेला रहेगा वह मर जायगा। अकेला रहना अब संभव नहीं है। जब जोर की आँधी चलती है तब बीच में अकेला खड़ा हुआ छोटा-मोटा वृक्ष अपने आप गिर जाता है। अतः चाहे कैसा भी बड़े से बड़ा राज्य हो, उसको संघ के भीतर आना ही होगा। बाहर कोई रह कर अपने अस्तित्व को कायम नहीं रख सकता।"

१२ अगस्त तक भारतवर्ष की कुल रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गईं। भोपाल और इन्दौर के शासकों को जो ११ अगस्त को वायसराय से मिले थे, यह मित्रतापूर्ण सलाह प्रदान की गई है कि यदि वे भारतीय उपनिवेश में शामिल नहीं होंगे तो वे अपने सर पर बहुत बड़ा जोखम मोल लेंगे और १५ अगस्त के बाद वायसराय उनको सहायता नहीं कर सकेंगे। इन दो रियसतों के सिवाय दो रियासतें और थीं जिनका झगड़ा जोरों पर जारी था—१ काश्मीर २ हैदराबाद।

हैदराबाद स्वयं संघ मे शामिल नहीं हुआ। उसने इसी बीच एक और समस्या खड़ी कर दी और वह यह कि हैदराबाद ने १५ अगस्त को अंग्रेजों का शासन हटते ही बरार पर अपना हक बताकर उसे भारतीय सरकार से हड़प लेने की चाल चली। अभी तक बरार अंग्रेजों के हाथ में था और शासन की व्यवस्था के लिये ब्रिटिश सरकार ने उसे सी० पी० के साथ जोड़ दिया था। हैदराबाद के इस दावे के कारण बरार की जनता में सनसनी फैल गई और सारा बरार हैदराबाद से विमुख हो गया। बरार के नेताओं ने भारत सरकार से प्रार्थनाएँ भी की, डेपूटेशन भी गये। आखिर इस विकट परिस्थिति से भारत को बचाने के लिये वायसराय ने स्वतन्त्रता कानून १९४७ को

धारा ६ उपधारा सी के अनुसार १६३५ के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट में संशोधन करते हुए निम्नलिखित आज्ञा ता० २६ अगस्त को प्रदान की—

"भारतीय डोमीनियन की स्थापना के ठीक पहिले बरार पर जिस प्रकार शासन होता था, वैसा ही अब भी होगा और मध्यप्रान्त तथा बरार के नाम से गवर्नर के शासनाधीन एक प्रान्त के रूप में बरार मध्यप्रान्त के साथ पूर्ववत शामिल होता रहेगा। साथ ही १६३५ के कानून में भारतीय डोमीनियन का जो भी उल्लेख होगा, उसमें बरार का उल्लेख भी सम्मिलित समझा जायेगा।

इस प्रकार बरार हमेशा को हैदराबाद से हटा कर मध्यप्रान्त में शामिल करदिया गया।

हमने ऊपर बताया है कि १५ अगस्त के बाद भारतीय संघ की ४ रियासतें ही ऐसी रहीं जो उसमें सम्मिलित नहीं हुई। १—काश-मीर २—हैदराबाद। भोपाल और इन्दौर ने बहुत कशमकश के बाद १४ अगस्त को प्रवेश पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और भारत के बीच मौजूदा सम्बन्ध को अस्थायी तौर पर ज्यों कात्यों कायम रखना स्वीकार कर लिया। भोपाल के प्रधान मंत्री ने एक विज्ञप्ति के द्वारा इसको साधिकार घोषणा भी करदी थी। यह घोपणा कुछ अज्ञात कारणों वश २७ अगस्त को प्रकाशित की गई वैसे पत्रों के सम्वाद दाताओं और बाद में भोपाल की सरकारी विज्ञप्ति द्वारा भी इसकी पुष्टि हो चुकी थी कि नवाब भोपाल किन्हीं कारणों वश २५ अगस्त के बाद ही घोपणा करना चाहते थे। भारत सरकार का रियासती विभाग समय समय पर उपनिवेश में सम्मिलित होने वाली रियासतों को सूची प्रकाशित करता रहता था पर उसने भी २७ अगस्त के पूर्व भोपाल का नाम सूची में शामिल नहीं किया। हो सकता है कि इसमें भारत सरकार ने भोपाल की कुछ सुविदाओं का खयाल रखा हो।

राजनीतिक दृष्टि से इन्दौर की अपेक्षा नवाब भोपाल का भारतीय संघ में शामिल होजाना विशेष महत्वपूर्ण था। इस के पीछे एक लम्बी और दुखद कहानी छिपी हुई थी। नवाब भोपाल नरेन्द्र मण्डल के चांसलर थे। भारतीय विधान परिषद् में रियासतों के शामिल होने के बारे में नरेन्द्र मण्डल और विधान परिषद् को समझौता समितियों में एक समझौता हुआ उसके बावजूद नवाब भोपाल की यह कोशिश रही कि रियासतें विधान परिषद् में शरीक न हों। किन्तु कुछ देश प्रेमी नरेशों के आगे नवाब साहब की यह चाल न चल सकी और अधिकांश रियासतों ने समझौते के अनुसार स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिये विधान परिषद् में शरीक होना तै कर लिया। फिर भी नवाब भोपाल ने अपना कुचक्र बन्द नहीं किया। उन्होंने कुछ रियासतों को अपनी तरफ फोड़ लिया। सर महम्मद जफरुल्ला को अपना वकील बनाकर इगलैण्ड भेजा गया और अनुदार दलों नेताओं की सहायता प्राप्त करने की चेष्टा की गई। रियासतों का एक अलग डोमोनियन कायम करने के भी खयाली पुलाव पकाये गये। नवाब साहब ने भावण कोर के दीवान से भी सम्बन्ध स्थापित कर लिया जो अपनी रियासत को स्वतंत्र कर देने की घोषणा करदेने पर तुले हुए थे। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह रही कि नवाब भोपाल को बाहर से इच्छित सहायता प्राप्त न हो सकी और उनके परम भक्त साथी भी हवा का रुख पहिचान कर धीरे धीरे खिसकने लगे। अन्त में नवाब साहब ने देखा कि जिस उलटे रास्ते पर उन्होंने कदम रखना आरंभ किया था, उस पर वह अकेले ही रहगये हैं। भोपाल के प्राधान मंत्री ने अपने वक्तव्य में कहा है कि—

"भारत के आर्थिक और राजनीतिक इतिहास को तथा अनिवार्य भौगोलिक कारणों को ध्यान में रखते हुए कोई भी रियासत चाहे वह बड़ी हो या छोटी—शेष मुल्क से बिलकुल अलग नहीं रह सकती।"

यह सचाई तो सूर्य की भांति बिलकुल स्पष्ट थी ही। फिर भी अबतक भोपाल के नवाब न जाने क्यों उसकी अपेक्षा करते चले जा रहे थे, किन्तु अन्त में उन्हें इसे स्वीकार करना ही पड़ा। कितना अच्छा होता कि हैदराबाद रियासत भी भोपाल ही की तरह इस सचाई को समझ लेती और इसके अनुसार भारतीय संघ में सम्मिलित हो जाती। आखिर उसे सम्मिलित तो आज नहीं, कल होना पड़ेगा पर देर से किये काम में कोई सुन्दरता नहीं रह जाती।

भोपाल के प्रधान मंत्री ने इस समय जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, वह काफी लम्बी चौड़ी थी। उसमें रियासत ने अपनी टांग ऊंची रखने की चेष्टा की है। उसमें कहागया है कि—

"१५ अगस्त को ब्रिटेन की सार्व भौम सत्ता खत्म होने के बाद भोपाल ने सार्वभौम रियासत के रूप में अपनी स्वतंत्रता ग्रहण करली है। किंतु भोपालके नवाब १४ अगस्तको रक्षा, वैदेपिक तथा यातायातके विषयों को भारतीय यूनियन को सौंपने के समझौते पर हस्ताक्षर कर चुके थे।"

तब फिर भोपाल रियासत को सार्वभौम रियासत कहने का प्रयास व्यर्थ ही किया गया है। यह तो शब्दों के साथ खिलवाड़ करना हुआ जिससे कोई भी प्रभावित नहीं हो सकता। विज्ञप्ति में यह भी कहा गया है कि प्रस्तुत समझौते के द्वारा किसी भी रूप में रियासत के लिये सार्वभौम सत्ता प्राप्त न होती और न ही रियासत के लोगों की शासक के प्रति अथवा रियासत के प्रति जो वफादारी की भावना है, उस पर कोई असर पड़ता है। रियासत के लोग शासक की प्रजा बने रहेंगे और उसके प्रति पूरे वफादार रहेंगे। यह तो कई बार स्पष्ट किया जा चुका है कि भारत की डोमीनियन सरकार रियासतों के सम्बन्ध मे वरिष्ठ सत्ता का पद गृहण करना नहीं चाहती बल्कि रियासतों का बराबरी के नाते सहयोग चाहती है। भोपाल के लोग वहाँ के शासक के प्रति वफादार रहेंगे किन्तु भोपाल जब भारतीय उपनिवेश का अंग बनगया तो भोपाल के लोग भारतीय यूनियन के

भी नागरिक हो जाते हैं और उसके प्रति वफादार रहना भी उनका कर्तव्य होगा। भोपाल के प्रधान मंत्री की विज्ञप्ति में जो यह कहा गया है कि "रियासत भावी विधान को मंजूर या नामंजूर कर सकेगी रियासत पर भारतीय डोमीनियन में शामिल होने के कारण कोई आर्थिक दायित्व नहीं आता है और यूनियन सरकार रियासत के भीतरी मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी।" यह सब प्रवेश पत्र की शर्तों के अनुसार ही था। भारतीय संघ में शामिल होने वाली सभी रियासतों के साथ यह शर्त समान हैं और चूंकि भोपाल ने उनपर विशेष जोर दिया है इसलिये किसी को भी इस गलत फहमी में नहीं रहना चाहिये कि इस बारे में भोपल के साथ कोई विशेष रियायत की गई है।

नवाब भोपाल ने इस विशेष अवसर पर एक सन्देश भी दिया था। उसमें उन्होंने रियासत में शान्ति और साम्प्रदायिक एकता रखने की जो अपील की, उसका सभी ने स्वागत किया। उन्होंने अपनी प्रजा के लिये अपना जीवन तक उत्सर्ग कर देने की बात फिर से दुहराई थी। यदि नवाब भोपाल सचमुच अपनी प्रजा के सेवक बनना चाहते हैं तो सचमुच उन्हें अपनी प्रजा की इच्छा के अनुसार चलना चाहिये। प्रजा की राज की सच्ची मालिक होती है। भोपाल की प्रजा चाहती है कि राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी जाय। भोपाल के नवाब अपनी प्रजा की सबसे बड़ी सेवा यही कर सकते हैं कि तुरन्त ही उत्तर दायी शासन स्थापित करदें और खुद वैधानिक शासक बन जायें। तभी रियासत की हिन्दू और मुस्लिम प्रजा उनके प्रति सच्ची वफादारी रख सकेगी।

रियासतों के सम्बन्ध में विधान परिषद् को सोचने योग्य यह प्रश्न नहीं था कि जो रियासतें अभी भी भारतीय संघ से बाहर रह गयी थीं वे भी संघ में शामिल हो जायँ, वरन असली समस्या तो यह थी कि जो रियासतें संघ में शामिल हो गई थीं उनके सम्मुख सब

से बड़ा सवाल यही था कि वे अपनी आन्तरिक शासन व्यवस्था को सुधारें और उसे दूसरे प्रान्तों के स्तर पर ले आयें। यह रियासती मंत्रियों के लिये सब से प्रथम ध्यान देने योग्य बात थी। प्रवेश पत्र के अर्थों का अनर्थ करके, दूसरे प्रतिक्रियावादी नरेशों के बहकावे में आकर पुरानी रफ्तार से ही शासन व्यवस्था कायम रखना जनता के साथ दगाबाजी करने के समान था। यदि मैसोर की तरह मजबूत हाथों में जनता का नेतृत्व रहता तो फिर मंत्रिमण्डल की ओर आशा की दृष्टि से देखना भी बेकार था। कई रियासतें इतनी छोटी और जमाने के लिहाज से इतनी पिछड़ी हुई हैं कि उनमें नेतृत्व कभी भी पनप नहीं सकता। यदि ऐसी रियासतों में हलचल होती भी तो नेतृत्व परिणाम में कमजोर और अदूरदर्शी पाया जाता। यदि ऐसे नेतृत्व के भरोसे पर सर्व शक्ति सम्पन्न एवं निरंकुश नरेशों से उन मांगों के मनवाने के लिये संघर्ष छेड़ा भी जाता तो जनता का घोर दमन ही होता। नरेशों के परामर्श दाता तो शब्दों का जाल बिछाकर इन संघर्षों को सहज ही टाल देते हैं। रियासती लोकतन्त्र का सीधा सम्बन्ध केन्द्र के विदेशी विभाग तथा सुरक्षा से होता है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि देश की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति एवं स्तर को इन पांच सौ सत्तर के करीब रियासतों के स्वेच्छाचारी शासन से जितना नुकसान पहुँचा है उतना किसी अन्य बात से नहीं। देश की इस एक तिहाई आबादी को आरंभिक लोकतंत्रीय अधिकार प्रदान कर देने से इन्कार कर देना ही संघ की सुरक्षा को खतरा पैदा कर देना है। संघ के मौलिक अधिकारों की दफाएँ यदि इन दस करोड़ मनुष्यों पर लागू नहीं हुई तो यह संघ को लांछन लगाने जैसी ही बात हुई। अतः संघीय सरकार का यह कर्तव्य है कि वह यदि रियासतों के आन्तरिक मामलों में दखल नहीं देना चाहती है तो इसका यह मतलब कदापि नहीं कि वह रियासतों में लोकतन्त्री शासन की आरंभिक धाराओं की हत्या होती देखती रहेगी। मैसोर और हैदराबाद में जन आन्दो-

लनों को जिस प्रकार कुचला जारहा था उसी से स्पष्ट हो जाता था कि संघ रियासतों से राजनीतिक व्यवहार करने में पीछे हट रहा है। माना कि दोनों रियासतों की समस्याएँ भिन्न भिन्न थीं। मैसोर में नरेश जनता की पूर्ण लोकतन्त्रीय शासन की मांग को ठुकरा रहा था पर हैदराबाद में जनता की उपरोक्त मांग ही नहीं ठुकराई जारही थी, वरन् बहुसंख्यक जनता अपने भाग्य को भारतीय संघ से जोड़ना चाहती थी, इस इच्छा को भी कुचला जारहा था। भारतीय संघ की असमर्थता इसी से प्रकट हो जाती है कि वह १० करोड़ जनता की सदिच्छा की पूर्ति में कुछ भी सहायता नहीं दे सका। साथ ही संघ की यह नीति कि वह रियासतों के भीतरी मामलों में दखल नहीं देगा, स्पष्ट ही समझ में आजाती है। नरेशों से यह उम्मीद रखना कि वे आन्तरिक शासन को सुचारु रूप से संचालित होने देंगे कठिन ही है, दूसरे जनप्रिय मंत्रियों में अभी शासन व्यवस्था को ठीक तरह से चलाने की चतुराई भी नहीं है। इसके परिणाम यंत्र तंत्र संघों आदि में देखे जासकते हैं। कहीं भी अभी व्यवस्थित शासन नहीं जम सका है। इसका परिणाम यह नजर आरहा है कि जनता में असन्तोष विशेष बढ़ता जारहा है।

हैदराबाद के सम्बन्ध में भारतीय संघ की नीति राजनीतिक दृष्टि से उचित ही रही। जो शर्तें दूसरी रियासतों ने स्वीकार कीं, उन्हीं शर्तों के साथ यदि हैदराबाद संघ में शरीक होना चाहता तो हो सकता था। निजाम के अपनी जिद पर अड़े रहने का परिणाम ही यह होगा कि उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। कठिनाइयों के बाद ही वे समझेंगे कि भारतीय संघ के साथ रह कर ही वे तथा उनकी प्रजा सुख और शान्ति से रह सकती है। इसी आर्थिक रुकावट की भयंकरता से भय खाकर ही भोपाल भारतीय संघ में शामिल होगया।

२१ अगस्त १९४७ को भरतपुर रियासत ने प्रवेश पत्र पर

दस्तखत कर दिये। इसके पूर्व १४ अगस्त को भोपाल तथा १५ अगस्त को इन्दौर ने प्रवेशपत्र पर दस्तखत किये।

२६ अगस्त को दक्षिण की सात रियासतों—सांगली, फाल्टन, मिरज, रामदुर्ग, भोर, कुरुन्दवाड़ और औंध—ने निश्चय कर लिया था कि वे एक संघ के रूप में अपनी सम्मिलित शासन व्यवस्था कायम करेंगी। इसके अनुसार वे अपनी पारस्परिक सीमाओं का अन्त कर देंगी। उनकी व्यवस्थापिका तथा न्याय विभाग एक ही हो जायेंगे। उपरोक्त सातों नरेश अपनी प्रजा को पूर्ण स्वतंत्रता देने को उत्सुक हैं, अतः उन्होंने यह व्यवस्था की है। उनका यह दृढ़ इरादा है कि इस प्रकार उनकी शासन व्यवस्था प्रान्तों के समान ही हो जायेगी। वे शीघ्र ही अपने यहाँ एक सम्मिलित विधान निर्मात्री सभा, जो व्यवस्था का कार्य भी करेगी, स्थापित कर रहे हैं। उनके विधान का आधार भारतीय विधान ही रहेगा। इन रियासतों का सम्मिलित नाम "संयुक्त दक्षिणी रियासतें" रहेगा। इनको शासन व्यवस्था लोकतंत्री होगी। इस समय जो शक्तियां राजा के पास हैं, वे फिर राजप्रमुख के अधिकार में होंगी। वही शासन का प्रधान होगा। शासन व्यवस्था का कार्य राजप्रमुख करेंगे और विधान निर्माण का कार्य लोकसभा करेगी। मंत्रिमण्डल के नेता अन्तरिम सरकार में कार्य करेंगे। संयुक्त रियासतों की एक ही हाईकोर्ट रहेगी जिसमें आवश्यकतानुसार जज नियत किये जायेंगे। विधान निर्मात्री के सदस्यों का चुनाव सातों रियासतों की कुल आबादी में १ लाख पीछे एक आदमी के अनुसार होगा। इसके अलावा ३ सीटें—१ हरिजन, १ मुस्लिम और १ महिला के लिये सुरक्षित रहेंगी।

अगस्त १९४७ के अन्त तक दो बड़ी रियासतों हैदराबाद और कश्मीर ने किस संघ में सम्मिलित हों, इस सम्बन्ध में फैसला नहीं किया था। वैसे काश्मीर ने पाकिस्तान और भारत दोनों से अपने सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। अगस्त के अन्त तक भी

और सी ग्रूप की ३६ रियासतों में से १६ रियासतें भारतीय संघ में शामिल हो गईं।

कुछ समय बाद तलचर रियासत भी भारतीय संघ में शामिल हो गई। २२ सितम्बर को जाम साहब नवानगर ने एव वक्तव्य देते हुए कहा—

"जूनागढ़ ने बाबरियाबाढ़ में घुस कर भारत की सार्वभौमता पर हमला किया है। बाबरियाबाढ़ भारतीय संघ में शामिल हो चुका है। इसके पास ही एक और रियासत मंगरोल है। यह रियासत भी भारतीय संघ में शामिल हो चुकी है। यदि जूनागढ़ ने इस पर भी हमला किया तो भारतीय संघ को सार्वभौमता पर जबरदस्त आघात होगा। भारत सरकार को चाहिये कि वह इन दोनों रियासतोंको जूनागढ़ के हमले से बचाये भारत सरकार ने सेना की एक टुकड़ी राजकोट में भेज दी है लेकिन जूनागढ़ के पोस्ट आफिस, तारघर आदि सभी भारतीय संघ के हैं। मैं जूनागढ़ के नवाब साहब से निवेदन करूंगा कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और भविष्य में एक जबरदस्त खतरा जो निश्चित रूप से सामने आने वाला है, उसे टालने की कोशिश करें।"

जूनागढ़ भौगोलिक आधार तथा अन्य अवांछनीय कारणों से भारतीय संघ से ही सम्बन्ध स्थापित कर सकता था पर बजाय इसके वह चुपचाप पाकिस्तान के साथ शामिल हो गया। इसके बाद झगड़े पैदा करके उसके पास की बाबरियागढ़ तथा मांगरोल रियासतों को भी पाकिस्तान में शामिल करने के लिये अन्दरूनी रूप से वाध्य करने लगा। इस स्थिति तथा नवानगर के जामसाहब के वक्तव्य के बाद भारत सरकार को वाध्य होकर इस ओर ध्यान देना पड़ा। भारत सरकार ने स्थिति को स्पष्ट करते हुए निम्न वक्तव्य गृह विभाग की ओर से प्रकाशित किया—

"भारत सरकार इस समय और हमेशा ही इस उलझे हुए

मसले को तै करने के लिये, पाकिस्तान तथा जूनागढ़ की सरकारों से बातचीत करने को उद्यत है। भारत सरकार जूनागढ़ के अन्दर और बाहर की पड़ौसी रियासतों के हितों के संरक्षण के लिये बाध्य है। वह अपनी इस जिम्मेदारी को हमेशा ही ईमानदारी से पूरा करेगी।"

"जूनागढ़ के पाकिस्तान में शामिल हो जाने से काठियावाड़ की स्थिति में जनता को जो दिलचस्पी पैदा हो गई है, उसके लिये भारत सरकार को जूनागढ़ के पाकिस्तान मे शामिल हो जाने से उत्पन्न स्थिति तथा अपनी तद्विषयक नीति को समझाना आवश्यक हो गया है। जूनागढ़ ऐसी रियासतों के बीच में स्थित है जो सभी भारतीय संघ में शामिल हो चुकी हैं और उसकी सीमाएँ भी जूनागढ़ से मिली हुई हैं। जूनागढ़ की सीमा में ही ऐसी रियासतों की सीमाएँ फंसी हुई है जो भारतीय संघ में मिल चुकी है उदाहरण के लिये जूनागढ़ की सीमाओं के भीतर भावनगर, नवानगर, गोंडल और बड़ौदा की रियासतें हैं। रेलवे, पोस्ट और टेलीग्राफ सरविसें जो जूनागढ़ में हैं, वे भारतीय संघ की ही वस्तुएँ है। रेलवे, पोलिस और टेलीग्राफ और टेलीफोन सभी पर भारतीयसंघ द्वारा ही संचलित होते हैं। रियासत की आबादी प्राय: ६७१००० है जिसमें प्राय: ५४३००० या ८१ फीसदी गैर मुस्लिम रहते हैं।'

"सैद्धान्तिक रूप से ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता के अन्त ने भारतीय रियासतो को इस बात के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया है कि वे किसी भी राष्ट्र—पाकिस्तान या भारत में शामिल हो सकती हैं लेकिन हमेशा यह बात मानी गई है कि रियासतों की इस स्वतन्त्रता का व्यवहारिक प्रयोग भौगोलिक आधार पर ही किया जायेगा। इसका स्पष्टी करण २५ जुलाई को रियासतों के प्रतिनिधियों की कान्फरेन्स में गवर्नर जनरल लार्ड माउंटबेटन ने किया था। उन्होंने जो स्पष्टीकरण किया था, भारत सरकार की रियासतों सम्बन्धी नीति का वह सार था। इस कान्फरेन्स में जूनागढ़ का एक प्रतिनिधि भी शामिल

था। अपने सार्वजनिक वक्तव्य में जूनागढ़ के नवाब ने भी कठियावाढ़ की सुरक्षा की नीति का समर्थन किया। जूनागढ़ ने भारत सरकार से कभी भी सम्मिलित होने की शर्तों पर विचार करने की चेष्टा नहीं की। बजाय इसके, बिना किसी सूचना के ही यह घोषित कर दिया गया कि जूनागढ़ पाकिस्तान में शामिल हो गया है और पाकिस्तान ने इसे स्वीकार भी कर लिया है।"

"जूनागढ़ की उपरोक्त घोषणा के पूर्व यह आसार नजर आ रहे थे कि वह पाकिस्तान में शामिल होने वाला है इस पर भारत सरकार ने शीघ्र ही पाकिस्तान की सरकार को लिखा कि इस बात का फैसला जूनागढ़ की जनता को ही करने दिया जाय इस पत्रव्यवहार का पाकिस्तान की सरकार ने कोई भी जवाब नहीं दिया। अतः भारत सरकार ने रियासती विभाग के सैक्रेटरी मि० मेनन को खानगी संदेश के साथ नवाब साहब जूनागढ़ के पास भेजा। दीवान साहब ने मि० मेनन को कहा कि नवाब साहब मेनन साहब से मिलने में असमर्थ हैं। दीवान साहब ने मेनन साहब से यह भी कहा कि इस झगड़े पर, पाकिस्तान के प्रतिनिधियों, भारत सरकार के प्रतिनिधियों तथा जूनागढ़ के प्रतिनिधियों की एक कान्फरेन्स में ही बातचीत की जा सकती है। किन्तु इस कान्फरेन्स के सुझाव को न तो जूनागढ़ और न पाकिस्तान ने ही कार्यान्वित किया।"

"इसी बीच भारत सरकार से कई सम्मिलित रियासतों के तथा काठियावाड़ क्षेत्र के प्रतिनिधि मिले और उन्होंने कहा कि इससे हमारी सुरक्षा को भय है और उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि बहुत तादाद में हिन्दू जूनागढ़ से भाग रहे हैं किसी भी तरह से देखा जाय तो भी यह स्पष्ट है कि भौगोलिक आधार पर तथा पड़ौस की रियासतों की पारस्परिक सीमाओं के उलझने के कारण, जो कि भारतीय संघ में शामिल हो चुकी हैं, जूनागढ़ का पाकिस्तान में शामिल होना हमेशा पड़ौसी रियासतों और जूनागढ़ के बीच संघर्ष की जड़ बना

रहेगा। साथ ही इसके परिणाम में भारत और पाकिस्तान में भी हमेशा संघर्ष होता रहेगा।"

"अतः भारत सरकार ने इस बात का निश्चय कर लिया है कि वह इस समस्या को अवश्य ही हल करेगी। भारत सरकार का प्रमुख उद्देश्य यही है कि काठियावाड़ में शान्ति रहे। समस्त काठियावाड़ में शान्ति तभी कायम रह सकती है जब कि काठियावाड़ की समस्त रियासतों मे आपसी मेलजोल हो और जूनागढ़ किस राष्ट्र में शामिल हो इसका फैसला जूनागढ़ की रियासत की जनता ही करे। जनता की इसी इच्छा की पूर्ति के लिये भारत सरकार ने जनमत लेने का निश्चय किया है। भारत सरकार अपनी बात पर दृढ़ है। भारत सरकार इस नाजुक और पेचीदा समस्या को पाकिस्तान और जूनागढ़ से मैत्री पूर्ण बातचीत के द्वारा निबटा लेने के लिये हमेशा ही तैयार है। भारत सरकार जूनागढ़ के आस-पास की रियासतों के स्वार्थों की रक्षा के लिये हमेशा ही वचन बद्ध है, जो भारत सरकार में शामिल हो चुकी है। और वह उन प्रतिज्ञाओं को ईमानदारी के साथ पूर्णरूप से निभायेगी।"

जामसाहब नवानगर के वक्तव्य का पाकिस्तान के प्रधान मंत्री ने उत्तर देते हुए कहा कि यह वक्तव्य सरासर गलतियों और झूठों से भरा हुआ है और साम्प्रदायिकता को उकसाने के लिये ही निकाला गया है।

इसके साथ ही जूनागढ़ के लिये एक अस्थायी सरकार भी इसी बीच कायम होगई। यह बम्बई मे स्थापित की गई। इस सरकार में ६ मत्री थे। इन मंत्रियों को वे सभी अधिकार थे जो १५ सितम्बर से पूर्व जूनागढ़ की रियासत को थे। इन अधिकारों की घोषणा अस्थायी सरकार ने बम्बई की एक सार्वजनिक सभा में की थी। इस अस्थायी सरकार के प्रधान मंत्री श्री सामल दास गांधी थे। श्री सामलदास ने खुली लड़ाई की घोषणा करदी और जूनागढ़ की जनता

को भारतीय संघ में शामिल कराने के लिये जिन अधिकारों की आवश्यकता थी वे सब उन्होंने ग्रहण किये।

अस्थायी सरकार के मंत्रियों में निम्न व्यक्ति शामिल थे—१ श्री सामलदास गांधी २ श्री दुर्लभ जी केशव जी खेतानी ३ श्री भवानी शंकर ओझा ४ सुरागभाई वारू ५ मनीलाल दोषी ६ श्री नगेन्द्र नागवानी।

अस्थायी मन्त्रिमण्डल स्थापित होने के बाद ही जूनागढ़ की प्रजा के सन्मुख शपथ ग्रहण की गई। काठियावाड़ की कई रियासतों ने इस अस्थायी सरकार को स्वीकार किया और उसे हर प्रकार की मदद देने का वचन दिया। सभा के सभापती श्री निहाल चन्द शेठ ने कहा—

"भारतीय संघ के बजाय पाकिस्तान में शामिल होना ८२ फीसदी जनता की इच्छाओं को ठोकर मारना है। अब नवाब उन पर जबरदस्ती करने पर तुला है। जनता की मरजी के विरुद्ध पाकिस्तान में शामिल होकर ही नवाब ने जनता पर के अपने अधिकार को गवां दिया है। पाकिस्तान ने जूनागढ़ को अपने में शामिल करके न सिर्फ आत्मनिर्णय के सिद्धान्त ही को ठुकराया है, वल्कि उन वचनों का भी अनादर किया है जिसके आधार पर पाकिस्तान का निर्माण हुआ है। इसी कारण यह यथा पूर्व समझौता बेकार है और यह रियासत की जनता पर किसी भी तरह लागू नहीं किया जासकता।"

सामलदास गांधी ने कहा—

"जूनागढ़ के नबाब ने पाकिस्तान में शामिल होकर अपने आपको अपनी प्रजा का शत्रु बनालिया है। यदि शीघ्र ही नबाव ने अपनी गलती स्वीकार नहीं की तो वह अपने वंश के साथ ही उखड़ जायगा। हम आज से ही किसी भी नबाव या राजा को मानने से इन्कार करते हैं। आज से जूनागढ़ का राज्य अस्थायी सरकार के हथों में है। फौज, खजाना, और रियासत की तमाम जायदाद अब

अस्थायी सरकार की सम्पति है। जूनागढ़ की जमीन का एक-एक इंच भाग तक अस्थायी सरकार के आधीन है। हम पाकिस्तान में सम्मिलित नहीं हैं। हम भारतीय संघ से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। जो हमारी अस्थायी सरकार के विरुद्ध हैं वे रियासत के दुश्मन माने जायेंगे। जो भी व्यक्ति, किसी भी रूप में नवाब को मदद पहुँचाता पाया जायेगा, उसे दण्ड दिया जायेगा।"

"जन्मभूमि" के सम्पादक श्री अमृतलाल सेठ ने कहा—

" यह ऐसा समय है जबकि हर एक युवक को जूनागढ़ के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये तैयार हो जाना चाहिये। और अपना सर्वस्व रियासत के हित के लिये बलिदान कर देना चाहिये।"

श्री दरबार श्री गोपालदास देसाई जो राय सांकली के शासक हैं, ने कहा कि "मेरी जागीर इस अस्थायी सरकार को स्वीकार करती है मैं पाकिस्तान को चेतावनी देदेना चाहता हूँ कि उसे अपनी सीमाएँ बढ़ाने की अभिलाषा का परित्याग कर देना चाहिये वरना इससे भंकर खतरे पैदा हो जायेंगे।"

उसी सभा में ६००००) रु० युद्ध के लिये एकत्रित किये गये।

२८ सितम्बर १६४७ को जूनागढ़ की अस्थायी सरकार ने अपना मोर्चा बम्बई से बदल कर राजकोट में स्थापित कर लिया। काठियावाढ़ के कई छोटे मोटे राजाओं ने अस्थायी सरकार को स्वीकार कर लिया। कई ताल्लुके दारों ने भी इसे सरकार के रूप में स्वीकार किया। अखिल भारतीय लोक परिषद् के नेताओं ने भी इसको हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। बलवन्त राय मेहता ने जो उस समय स्टेट पीपल्स कान्फरेन्स के वाइस प्रेसीडेन्ट तथा काठियावाढ़ राजनीतिक कानफरेन्स के जनरल सैक्रेटरी थे, कहा था कि—

"हमने यह विद्रोह जूनागढ़ के शासक के विरुद्ध नहीं किया है,

क्योंकि वह तो मुसलमान है और इसलिये उसका पाकिस्तान में शामिल होना स्वाभाविक ही था। हमने यह विरोध इसलिये किया है कि वह अपनी प्रजा की इच्छा के विरुद्ध एक विदेशी राष्ट्र के मातहत हो गया है जिससे समस्त काठियावाड़ की शान्ति और सुरक्षा को हमेशा के लिये खतरा हो गया है। जूनागढ़ के मुसलमानों को चाहिये कि वे अस्थायी सरकार को दिल खोलकर मदद दें और जूनागढ़ के नवाब को अपना निश्चय बदलने के लिये मजबूर करें।"

राजकोट प्रजा मण्डल और बड़ौदा के नेताओं तथा जागीरदारों ने भी हर तरह की सहायता देते रहने का वचन दिया।

पोरबन्दर के महाराज ने २६ सितम्बर के अपने वक्तव्य में कहा कि "काठियावाड़ की आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति और खासकर जूनागढ़ की आर्थिक स्थिति को देखते हुए जनता के सर्वोपरि हित के लिये यही उचित है कि जूनागढ़ भारतीय संघ में शामिल हो जाय।"

३० सितम्बर को जूनागढ़ की अस्थायी सरकार ने अपने वालिंटियरों तथा अस्थायी सरकार के आदमियों की मदद से राजकोट स्थित "जूनागढ़ गवर्नमैन्ट हाउस' को अपने कब्जे में लेलिया। और उस पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया गया। और सामलदास गांधी की अस्थायी सरकार ने उस हाउस में अपना हैडक्वार्टर बनाया। राजकोट में जूनागढ़ की कोई सीमा नहीं है पर वस्तु स्थिति को देखते हुए दूर ही हैडक्वार्टर कायम किया गया। चूँकि अस्थायी सरकार शुद्ध जनता की इच्छा का ही साकार प्रतीक था अतः भारतीय संघ की इसके साथ सहानुभूति होना स्वाभाविक ही था। जनता की सरकार होने से यह विश्वास हो गया था कि इससे जूनागढ़ तथा आसपास की रियासतों में काफी जनजागृति हो जायगी और समय पाकर यही सरकार भारतीय संघ के साथ समझौता करने में समर्थ हो सकेगी।

फिर भी भारत सरकार ने जूनागढ़ की बहुसंख्यक हिन्दू जनता को आतंक से प्रभावित न होने देनेके लिये तथा उन रियासतों की रक्षा केलिये जो जूनागढ़ में सम्मिलित हो चुकी थीं, अपनी फौजें जूनागढ़ के आसपास भेजदी थी। फौजें भेजने का मतलब जूनागढ़ से दुश्मनी करने का नहीं था। उनमें से एक फौज मरहटों की ही थी जिसके कमान्डर गुरुदयालसिंह थे। जूनागढ़ के पास ६०० आदमियों की एक बटालियन और १५०० सिपाहियों की एक टुकड़ी थी। तनातनी की सूरत पैदा हो जाने पर जूनागढ़ ने ६०० निकाले हुए फौजी और कइ सजायाफ्ता डाकू सशस्त्र भरती कर लिये थे।

जूनागढ़ के तार और डाक विभागों का विच्छेद कर दिया गया, सिर्फ बेतार के तार से करांची समाचार जा सकते थे पर भारत सरकार जब चाहे इन समाचारों को रोक व सुन सकती थी। भारत सरकार ने आर्थिक प्रतिबन्ध भी आरम्भ कर दिया था। रियासत में बिजली के प्रबन्ध के लिये जूनागढ़ ने वीरावल में बिजली घर स्थापित किया था क्योंकि वहाँ कोयला आसानी से आसकता था। जूनागढ़ ने भारतीय संघ से समझौता नहीं किया अतः भारत सरकार ने कोयला, पेट्रोल तथा घासलेट देना बन्द कर दिया। जूनागढ़ में पाकिस्तान से कोयला भेजा जाय तबतक उसने अपना काम जलाने की लकड़ी से ही शुरू किया।

जूनागढ़ ने रियासत में मुसलामानों की संख्या बढ़ाने के लिये सिन्धी मुसलमान शरणार्थियो को आबाद करना आरम्भ कर दिया। क्योंकि जूनागढ़ को जनमत का भय हो गया था। जनता में सनसनी फैल जाने से प्रायः ४००० व्यापारी जूनागढ़ छोड़कर भाग गये। उनके चले जाने का जूनागढ़ की सरकार को कोई भी दुख नहीं हुआ क्योकि जूनागढ़ की सरकार को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये चले जाना ही श्रेष्ट था। जूनागढ़ ने काठीनामक किसानों के वर्ग को अपने उद्देश्य की लिये प्राप्ति के लिये सर्व श्रेष्ट समझा।

सरदार अबदुर्रब निश्तर डाक तार आदि के प्रबन्ध के लिये चुपचाप जूनागढ़ गये थे किन्तु वे भी कोई खास प्रबन्ध न कर सके।

सम्मिलित होने सम्बन्धी आरम्भिक बातचीत में जूनागढ़ रियासत के प्रतिनिधि मि० नबीबक्स ने भारत सरकार से कहा था कि हमारा इरादा भारतीय संघ में ही शामिल होने का है। उन्होंने यह भी कहा था कि आपकी सम्मिलित करने की शर्तों से हम सन्तुष्ट है और ये ठीक वैसी ही हैं जैसी बड़ौदा और दूसरी बड़ी रियासतों के साथ की गई हैं। जब जूनागढ़ पाकिस्तान मे शामिल हो गया उसके बाद जूनागढ़ के वैधानिक सलाहकार सर शाहनबाज भूटो का ध्यान उपरोक्त नबीबक्स के वक्तव्य की तरफ दिलाया गया। शाहनबाज भूटो ने इसके उत्तर में कहा कि नबीबक्स को जूनागढ़ से बरखास्त कर दिया गया है इसलिये उनके उपरोक्त वक्तव्य के हम-जिम्मेदार नहीं है।

इसके पहिले ही, जूनागढ़ का पाकिस्तान में शामिल होने का कोई भी इरादा नहीं है, यह जूनागढ़ के गजट में सरकारी तौर पर अप्रैल में घोषित किया जा चुका था।

सर शाहनबाज भूटो न अपनी अभी की बातचीत में भारत सरकार के रियासती विभाग के मन्त्री से यह स्वीकार कर लिया था कि जूनागढ़ की यह भूल थी कि उसने भारत सरकार से भारतीय संघ में शामिल होने की बातचीत को बीच में ही भङ्ग कर दिया क्योंकि जूनागढ़ का सम्पूर्ण आर्थिक जीवन काठियावाड़ के साथ बंधा हुआ है। भूटो ने भारत सरकार के रियासती विभाग के सेक्रेटरी को यह भी सुझाया कि वे बराबरो के उपनिवेशों की स्थिति में समस्त मामले पर बातचीत करने को तैयार हैं और जूनागढ़ के सभी हितों की दृष्टि से उसका भारतीय संघ में शामिल होना ही श्रेष्ठ है। व्यक्तिगत रूप से उन्होने इसके लिये जनमत को ही ज्यादा पसन्द किया किन्तु उन्होंने यह भी कह दिया कि इसके लिये वे शासक को मजबूर नहीं कर सकेंगे।

जब भारतीय सरकार ने जूनागढ़ के पाकिस्तान में शामिल हो जाने पर पाकिस्तान सरकार को कई पत्र लिखे तब भी पाकिस्तान सरकार मौन ही रही। उसका यह मौन जबरदस्त उत्तेजनात्मक था। सबसे प्रथम भारत सरकार के रियासती विभाग ने अगस्त महीने में दिल्ली स्थित पाकिस्तान के हाई कमिश्नर के जरिये से लिखा कि जूनागढ़ ने पाकिस्तान में शरीक होकर एक बहुत ही बेहूदा स्थिति पैदा करदी है और इस स्थिति के उत्पन्न करने में भौगोलिक तथा अन्य कई महत्वपूर्ण स्थितियों और मसलों का कतई विचार नहीं किया गया है। साथ ही रियासत के बहुसंख्यक हिन्दुओं की इच्छाओं की भी कतई परवाह नहीं की गई है। रियासती विभाग—भारत सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के अन्त कर देने के लिये ही देश का विभाजन किया गया है। यदि पाकिस्तान अपनी शरारत पूर्ण कार्रवाइयों को भारतीय मंच में भी फैलाना चाहता है तो इसका यह मतलब हुआ कि विभाजन का निर्णय भी अनिश्चित ही हुआ।

इसका भी भारत सरकार को कोई उत्तर नहीं मिला। किन्तु रियासती विभाग फिर भी बराबर पाकिस्तान सरकार को याददिहानी कराता ही रहा। भारत सरकार इस समस्या को सुलझाने के लिये किसी भी प्रजातन्त्रात्मक तरीके मसलन जनमत आदि के लिये तैयार थी। जनमत से जनता की इच्छा स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जूनागढ़ का पाकिस्तान में शरीक होना उन्हें किसी भी प्रकार से सह्य नहीं है।

भारत सरकार के किसी भी पत्र का उत्तर देने के बजाय पाकिस्तान सरकार ने भारत सरकार को एक तार भेजकर प्रार्थना की कि भारत सरकार ने जूनागढ़ को कोयला, पैट्रोल और घासलेट देना बन्द कर दिया है, वह पुनः दिया जाना चाहिये। जूनागढ़ के पाकिस्तान में सम्मिलित होने के कारण ही भारत सरकार ने उपरोक्त चीजें देना

बन्द किया है। भारत सरकार ने इसके जवाब में लिख दिया कि जूनागढ़ के पाकिस्तान में शरीक हो जाने के विषय में जो पत्रव्यवहार जारी है, उसका उत्तर भेजना आवश्यक है।

पाकिस्तान सरकार ने इसके बाद फिर मौन धारण कर लिया। कुछ दिनों बाद पाकिस्तान सरकार ने भारत सरकार को एक तार भेजते हुए लिखा कि ऐसा प्रतीत होता है कि जूनागढ़ की सीमाओं पर भारत सरकार ने फौजें एकत्रित कर रखी हैं अतः यदि जूनागढ़ पर किसी प्रकार का भी हमला हुआ तो वह दुश्मनी का कार्य माना जायेगा।

मंगरोल के शेख ने पहिले भारतीय संघ के साथ-यथापूर्व सामझौता किया। इसके बाद शीघ्र ही उसे जूनागढ़ की पुलिस ने नजरबन्द कर दिया। समाचार बताते हैं कि उसे पीटा गया और इस बात के लिये डराया गया कि उसका हरम छीन लिया जायेगा। सारांश यह कि उससे दूसरा यथापूर्व समझौता करवाया गया और उसे पाकिस्तान में सम्मिलित कर लिया गया। उसे मजबूर किया गया कि वह तार द्वारा यह समाचार भारतीय सरकार को भेज दे कि उसने भारतीय सघ से समझौता भङ्ग कर दिया है। भारतीय रियासती विभाग ने इस तार के अनुसार कार्यवाही करने से इन्कार करते हुए लिख दिया कि एक बार प्रवेश पत्र भर देने के बाद वह रद्द नहीं किया जा सकता। पकिस्तान ने भारत सरकार के इस उत्तर पर एतराज किया।

इसके बाद शीघ्र ही उन मलगिरासियों को, जो बाबरियाबाड़ के थे और जो पहिले भारतीय संघ में शामिल हो चुके थे, पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिये मजबूर किया गया।

१६ अक्टूबर १६४७ को जूनागढ़ की अस्थायी सरकार के प्रमुख श्रीसामलदास गांधीने प्रेस वक्तव्य देते हुए एक प्रेस कांफरेंस में कहा—

"भारत के नरेशों को अस्थायी सरकार के विषय में जो भ्रम हो गया है, उसे मिटा देना चाहिये। मुसलमानों को यह विश्वास करना चाहिये कि यह सरकार उन्हीं के हित के लिये है। अस्थायी सरकार साम्प्रदायिक नहीं है। अतः मुसलमानों के साथ जो अनुचित बर्ताव होगा, उसे वह दूर करेगी और यह सरकार सभी के साथ समानता का व्यवहार रखेगी।";

इस प्रेस कान्फरेंस में काठियावाड़ के रीजनल कमिश्नर मि० एन० एम० बुच, काठियावाड़ी फौज के ब्रिगेडियर गुरुदयालसिंह और पोलिटीकल लायन आफीसर कर्नल हिम्मतसिंह भी हाजिर थे। उन्होंने भी अस्थायी सरकार के विषय में विशेष प्रकाश डाला।

२५ अक्टूबर १६४७ तक अस्थायी सरकार की फौज की चार टुकड़ियों ने अमरपुर गाँव पर कब्जा कर लिया। अमरपुर के थाने में ६२ सशस्त्र पुलिस वाले सो रहे थे। अस्थायी सरकार के आदमियों ने उनसे हथियार छीन लिये और सम्पूर्ण गाँव पर कब्जा कर लिया। गाँव पर कब्जा हो जाने के बाद फौरन ही एक सभा हुई और गाँव की जनता ने भारतीय संघ में शामिल होने की घोषणा करते हुए भारत-सरकार से हर प्रकार की सहायता देने की प्रार्थना की।

इसके बाद अस्थायी सरकार ने जूनागढ़ के उत्तर-पूर्व के ११ गाँवों पर और कब्जा करके सभा की और जनता ने भारत-सरकार से प्रार्थना की कि उन्हें भारतीय संघ में शामिल कर लिया जाय।

२६ अक्टूबर को अमरपुर के आस-पास के २३ गाँवों पर अस्थायी सरकार का कब्जा हो गया और इसी दिन अपनी बेगमों तथा उत्तराधिकारी को लेकर नवाब जूनागढ़ हवाई जहाज से चुपचाप करांची भाग गया।

१३ नवम्बर को सरदार पटेल ने राजकोट में एक सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए राजकोट और विशेषतया काठियावाड़ की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा—

"जब ब्रिटेन ने सत्ता त्याग दी तो भारत से अपनी विदाई के समय उसने स्वभावतः राजाओं, जनता, हिन्दू, मुसलमान या सिख में से किसी को भी अप्रसन्न करना न चाहा। इसलिये ब्रिटिश सरकार से हमें कठिन उत्तराधिकार में जो कुछ मिला है उसमें अब केवल ये रियासती समस्याएँ हमारे लिये हल करना बाकी हैं।"

"काठियावाड़ की यात्रा का मेरा वास्तविक उद्देश्य उन कई पेचीदा समस्याओं को हल करना है जो जूनागढ़ में राजसत्ता के एकदम भंग होने से उत्पन्न हो गई हैं। ये समस्याएँ सारे काठियावाड़ के लिये पैदा हो गई हैं।"

"जूनागढ़ के नवाब एक गोली चले बिना राज्य से चले गये। नवाब पर जो मुसीबत आई वह उनके कुटिल सलाहकारों तथा पाकिस्तान के प्रपंचों से आई। जूनागढ़ में दस्तन्दाजी करने का पाकिस्तान को कोई अधिकार न था। जब हमने विभाजन को मंजूर किया तो हमें आशा थी कि भाई-भाई के झगड़े का अन्तिम निबटारा हो जायेगा। चूंकि सम्मिलित परिवार का एक भाई अपनी मांगों की पूर्ति के लिये जिद पर अड़ा हुआ था, इसलिये हमने सोचा कि उसकी मांग पूरी करने से हम दोनों को शांति तथा समृद्धि उपलब्ध होगी। लेकिन विभाजन पूरा भी न हो पाया था कि पंजाब में दंगे प्रारंभ होगये। लेकिन तिस पर भी हमने उन रियासतों के साथ पाकिस्तान के सम्बन्धों के मार्ग में कोई कठिनाई पैदा न करने की पूरी सावधानी रखी, जिनके साथ इस प्रकार के सम्बन्ध स्वाभाविक थे। पाकिस्तान की किन्हीं रियासतों को हमने अपने साथ मिलने के लिये लालच नहीं दिया। लेकिन पाकिस्तान ने हमारे लिये अधिकाधिक कठिनाइयाँ पैदा करने की पूरी कोशिश की।"

"रामपुर ने, जिसने कि सबसे पहिले भारतीय डोमीनियन में अपना प्रवेश घोषित किया, पाकिस्तान की कुचालों का प्रथम परिणाम देखा हमने इस चुनौती का दृढ़ता के साथ विरोध किया और प्रतिरोध

समाप्त हो गया। फिर पाकिस्तान ने जूनागढ़ में अपना पाँव रखने की कोशिश की। हमने पाकिस्तान सरकार को चेतावनी दी, अनुनय-विनय की तथा समझाया-बुझाया, लेकिन वह अपने हठ पर अड़ी रही। हमारे मामलों में उनकी दस्तन्दाजी से क्या परिणाम निकलेंगे, इसके बारे में हम बेखबर रहना नहीं चाहते। भारतीय संघ में सम्मिलित राज्यों के अधिकारों की रक्षा तथा काठियावाड़ की शान्ति के लिये हमें एहतियातन कार्रवाई करनी पड़ी और मानवदार, माँगरोल तथा बाबरियावाड़ को फौजें भेजी गईं।"

"तब भी जूनागढ़ प्रदेश में अपनी फौजों को भेजने का हमारा कोई इरादा न था लेकिन श्री सांवलदास गांधी के नेतृत्व में अस्थायी सरकार ने कदम उठाया। एक के बाद दूसरे गाँव अपने अधिकार में करते हुए अस्थायी सरकार के आदमी कुत्याना तक पहुँच गये। तब नवाब के सलाहकारों ने जो पहिले ही भाग चुके थे, यह महसूस किया कि खेल खत्म हो चुका।"

"भारतीय डोमीनियन को शासन व्यवस्था सौंपने का निर्णय दीवान ने कोई जल्दबाजी में नहीं किया। जब पाकिस्तान-सरकार ने मेजर हार्वे जोन्स को सहायता देने से इन्कार कर दिया और कौंसिल तथा लोगों से सलाह ली गई तभी दीवान ने यह निर्णय किया। यह तो अवश्यम्भावी परिणाम को अंगीकार करना था। दीवान ने पाकिस्तान को अपनी कार्रवाई से सूचित किया। हमने पाकिस्तान की प्रतिक्रिया का चौबीस घण्टे तक इन्तजार किया, लेकिन कोई भी उत्तर नहीं मिला। तब हमने कूच का निर्णय किया। केवल जूनागढ़ में ही शान्ति-रक्षा के लिये नहीं बल्कि समस्त काठियावाड़ पर बुरी प्रतिक्रिया के विरुद्ध सावधानी रखने के लिये भी।"

पाकिस्तान का यह तर्क बिलकुल युक्तिहीन है कि दीवान को ऐसा कदम उठाने का कोई अधिकार नहीं था। उनको जूनागढ़ के नवाब ने अपनी सहमति प्रदान की और जनता ने भी उनके कार्य

का समर्थन किया। तब दीवान को अपनी कार्रवाई के लिये और किस अधिकार की आवश्यकता थी ? लेकिन पाकिस्तान की आदत है कि वह भारत सरकार के प्रत्येक कार्य को अयुक्तिपूर्ण बताने के लिये तरह-तरह के उपाय सोचता है। कभी पाकिस्तान वाले चीखते-चिल्लाते है और कभी धमकी देते हैं। कभी गरम बन जाते हैं और कभी शीतल। करांची में अनुकूल वातावरण में पहुँचने पर दीवान ने सोचा कि कहीं उन्होंने शासन प्रबन्ध पूर्णतया भारतीय डोमीनियन को तो नहीं सौंप दिया है ? लेकिन उनका पत्र बिलकुल स्पष्ट है। उनके तथा दूसरे अफसरों के बुरे कार्यों तथा नवाब के राज्य से भाग जाने के बाद दीवान हमसे यह आशा नहीं कर सकते कि हम एक थाली में परोसे हुए भोजन की तरह उन्हें राज्य वापस दे दें।"

"हमने कई कई बार यह साफ-साफ कह दिया है कि इस समस्या की अन्तिम निर्णायक जनता है और उसके फैसले पर ही हम चलेंगे। हम प्रत्येक को यह विश्वास दिलाते हैं कि जनता का निर्णय वास्तविक निर्णय होगा और सच्चे लोकतन्त्रात्मक ढग से किया जायगा। काश्मीर पर अपना निर्णय लादने में पाकिस्तान ने जिन तरीकों का अवलम्बन लिया, उनकी हम नकल नहीं कर सकते।"

"काश्मीर में भी पाकिस्तान ने हस्तक्षेप किया हैं। उसका यह हस्तक्षेप बहुत ही भद्दे और बुरे ढङ्ग से हुआ है। लेकिन हैदराबाद की भाँति काश्मीर का भविष्य भी वहाँ की जनता पर निर्भर है। हैदराबाद तथा जूनागढ़ में पाकिस्तान ने तथ्यों से मुँह मोड़ने का प्रयत्न किया है। लेकिन जनता की दृढ़ भावना की ही विजय होगी। यदि हैदराबाद उन तथ्यों को देखना नहीं चाहता जो कि उसके सामने मौजूद हैं, तो जूनागढ़ जिस तरह चला गया, उसी तरह हैदराबाद भी चला जायगा।"

राजाओं के वास्तविक अधिकारों की रक्षा के लिये मैंने सबसे अधिक प्रयत्न किया है। अतएव उस हैसियत से मैं कह सकता हूँ कि

राजा जनता के संरक्षकों के रूप में ही रह सकते हैं। स्वार्थी व्यक्ति उन्हें और कोई सलाह दे तो उन्हें उसे नहीं सुनना चाहिये। उन्हें जनता के सहयोग से आगे चलना चाहिये। राजा और प्रजा एक ही परिवार के सदस्य हैं। उन्हें शत्रु की भाँति न रह कर उसी प्रकार रहना चाहिये। साथ ही जनता का भी कर्तव्य है कि वह प्रजातन्त्रात्मक शासन में अपनी बड़ी जिम्मेदारी को वहन करने की योग्यता प्रदान करे।"

"काठियावाड़ के हिन्दुओं तथा मुसलमानों को भी मुझे एक सलाह देनी है। जो लोग अब भी दो राष्ट्रों के सिद्धान्तों को मानते और बाह्य शक्ति की ओर सहायता के लिये देखते हैं, उनके लिये काठियावाड़ में कोई स्थान नहीं। द्वैध राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को खत्म करने के लिये ही हमने पाकिस्तान मंजूर किया ताकि जो लोग उस सिद्धान्त में विश्वास करते हों वे पाकिस्तान में ही रहें, भारत में ऐसे लोगों के लिये कोई जगह नहीं है। यहाँ तो वे केवल वफादार भारतीय नागरिकों की हैसियत से ही रह सकते हैं। नहीं तो उनके साथ विदेशियों का सा ही व्यवहार होगा। मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ भाइयों की ही तरह रहना चाहिये।"

"मैं हिन्दुओं से अपील करता हूं कि वे महात्मा गान्धी के अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करें। हाल में जो दंगे हुए हैं उन्होंने दुनिया की नजरों में हिन्दुस्तान को बदनाम कर दिया है। अतएव हमें अच्छे आचरण तथा उचित व्यवहार से अपना सम्मान फिर प्राप्त करना चाहिये। लेकिन हमें आतंकित नहीं होना चाहिये। यदि हमें मरना ही है तो बहादुरों की तरह मरें।"

"अन्त में मैं आप लोगों के सामने यह स्पष्ट करना जरूरी समझता हूँ कि भारत धमकियों से नहीं डरेगा। शायद पाकिस्तान यह समझता है कि भारत मुसीबत में है अतएव रियासतों में गड़बड़ करवा कर और ज्यादा तबाही पैदा की जा सकती है। मैं आपको विश्वास

दिलाता हूँ कि हम चुपचाप नाजुक हालत नहीं हो जाने देंगे। यदि सभी मुसीबतें एक साथ हम पर आजायँ तब भी एक साथ उनका सामना करने के लिये हमारे पास पर्याप्त साधन हैं। यदि वे हमें चुनौती देने के लिये व्यग्र हैं तो हम उनकी चुनौती स्वीकार करने को तैयार हैं। किसी राज्य को हमारे विरुद्ध बुरे इरादे नहीं रखने चाहियें। उसे अपने प्रभुत्व के विस्तार का स्वप्न नहीं देखना चाहिये। जाटिस्तान, राजस्थान या सिक्खिस्तान की आशा करना व्यर्थ है। यदि वे अब भी यही स्वप्न देखते रहे तो जल्दी ही उनकी निस्सारता मालूम हो जायगी।"

"मैं पाकिस्तान का अनिष्ट नहीं चाहता। मैं उसकी समृद्धि की कामना करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हम जिस तरह अपनी भलाई के लिये आगे बढ़ना चाहें, बढ़ने दिया जाय। हमारे मामलों में कोई दस्तन्दाजी न की जाय।"

"त्रिपुरा जैसे सुदूर प्रदेशों में भी हमारे मामलों में दस्तन्दाजी करने की जरुरत नहीं। हम अपनी-अपनी भलाई के कामों में खुद जुट पड़ेंगे। हो सकता है कि समृद्ध होने पर वे लोग हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान की फिर एकता चाहें, क्योंकि यह दोनों के हितों में होगी। लेकिन हम जबर्दस्ती उन्हें अपने में मिलाना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि हमारे मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जाय ताकि हम दोनों शान्ति व खुशहाली में रहें।"

जूनागढ़ का नवाब मय उत्तराधिकारी के जूनागढ़ से भाग ही चुका था। अस्थायी सरकार गाँव पर गाँव जीतती चली जारही थी। जनता में बेहद असन्तोष बढ़ चुका था। इन परिस्थितियों को देखकर भूटो ने जूनागढ़ को भारतीय संघ में सम्मिलित कर दिया और वह चुपचाप करांची भाग गया। भारत-सरकार ने वहाँ एक एडमिनिस्ट्रेटर कायम कर दिया।

अन्त में भारत-सरकार ने निष्पक्ष वातावरण में माँगरौल,

मानवदार, भाटवा, सरदारगढ़ और बावरियावाढ़ में जनमत फरवरी १९४८ के दूसरे हफ्ते मे करवाया। इसके बाद रियासती विभाग से १८ फरवरी १९४८ को एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई—

"पश्चिमी भारत और गुजरात रियासत के जुडीशियल कमिश्नर मि० सी० बी० बागरकर ने जो आजकल जनमत के कमिश्नर हैं, माँगरौल, मानवदार, भाटवा, सरदारगढ़ और बावरियावाढ़ के जनमत का यह परिणाम घोषित किया है—

सम्मिलित होने के लिये	भारत में	पाकिस्तान में
१—माँगरौल	११८३३	८
२—मानवदार	८४३६	११
३—भाटवा (बड़ा)	१०९१	१०
४—भाटवा (छोटा)	१४०२	०
५—सरदारगढ़	३२४१	२
६—बावरियावाढ़	५३९२	८

अर्थात् भारत में सम्मिलित होने के लिये ३१३९५ मत आये और पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिये कुल ३९ वोट आये। इस प्रकार अत्यन्त बहुमत अर्थात् सर्वसम्मति से उपरोक्त ६ रियासतें भारत में सम्मिलित हो गईं।

२० फरवरी १९४८ को जूनागढ़ का मतसंग्रह हुआ।

सम्मिलित होने के लिये	भारत में	पाकिस्तान में
जूनागढ़ रियासत	१९०७७९	९१

इस प्रकार सर्वसम्मति से जूनागढ़ रियासत ने भी भारत में शामिल होने के पक्ष में ही मत दिये।

१५ अगस्त १९४७ के बाद से ही निजाम हैदराबाद तथा भारत सरकार के रियासती विभाग के बीच सम्मिलित होने की बातचीत चलने लगी थी। हैदराबाद की जनता भारतीय संघ में सम्मिलित होने को उत्सुक थी किन्तु इत्तिहादुल मुसलमीन नामक संस्था जिसका हैद-

राबाद रियासत में अत्याधिक प्रभाव है, इसके खिलाफ थी। वह निजाम को सार्वभौम ही रखने पर तुली थी। इसको लेकर हैदराबाद में कांग्रेस की ओर से आन्दोलन हुआ। प्रमुख नेता जेलों में भर दिये गये और गैर मुस्लिमों पर बेशुमार दमन हुए। इसी बीच निजाम के प्रतिनिधि कई बार दिल्ली आये और बातचीत होती रही। पर हर बार बातचीत महज रजाकारों के प्रभुत्व के कारण ही साधारण सी बातों पर टूटती चली गई। अन्त में २६ नवम्बर १६४७ को सरदार पटेल ने रियासती विभाग के मन्त्री की हैसियत से स्वतन्त्र भारत की पार्लियामेंट में घोषित किया कि हैदराबाद भी दूसरी रियासतों की तरह ही भारतीय उपनिवेश में सम्मिलित हो गया है। सरदार पटेल का वक्तव्य इस प्रकार है—

"धारासभा को याद होगा कि मैंने कहा था कि भारत और हैदराबाद के बीच बातचीत का यह अन्तिम पहलू है। मुझे हर्ष है कि समझौता हो गया (करतल ध्वनि) और मैं धारासभा के समक्ष समझौते की एक प्रति रख रहा हूँ जिसपर कि आज सुबह हस्ताक्षर हुए हैं। निजाम तथा गवर्नर जनरल के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ है उसकी भी प्रति मैं यहां उपस्थित कर रहा हूँ।"

"धारासभा को ज्ञात होगा कि गत जुलाई में हमने रियासतों के भारतीय संघ में प्रवेश करने के सम्बन्ध में उनसे बातचीत प्रारंभ की थी। रियासतों के सहयोग के परिणाम स्वरूप १५ अगस्त से पूर्व हैदराबाद, काश्मीर तथा जूनागढ़ को छोड़कर और सब रियासतें भारतीय संघ में सम्मिलित होगई। निजाम साहब के प्रतिनिधियों से भी हमारी बातचीत हुई, लेकिन १५ अगस्त तक समझौता न होसका। साथ ही निज़ाम बातचीत भंग करना नहीं चाहते थे, अतएव उनकी प्रार्थना पर हमने उन्हें दो महीने की और मोहलत दी। मंत्रिमण्डल की इच्छा से गवर्नर जनरल ने हमारी तरफ से बातचीत शुरू की। निजाम के प्रतिनिधियों से कई मुलाकातें हुई और एक मास पूर्व पूरा

समझौता भी होगया था, लेकिन जैसा कि धारासभा को ज्ञात है कि प्रतिनिधि मण्डल ने इस्तीफा दे दिया और उसके स्थान में निजाम ने नया प्रतिनिधि मण्डल भेजा। नये प्रतिनिधि मण्डल के साथ बातचीत में भी हमने अपना रुख पूर्ववत् ही रखा और अंत मे अब मौजूदा प्रतिनिधि मण्डल जिस समझौते के लिये राजी होगया वह बिलकुल वही है जैसाकि हमने पहले प्रतिनिधि मण्डल से तै किया था।"

"इस समझौते के अनुसार दोनो पक्षो के सामान्य मामलों के बारे में वे सब समझौते और शासन व्यवस्थाएँ एक वर्ष तक कायम रहेंगी जो कि पहिले ताज के प्रतिनिधि और हैदराबाद राज्य के बीच थीं (करतल ध्वनि) केवल सार्वभौम सत्ता सम्बन्धी कार्य न रहेंगे। इन सब समझौतों तथा व्यवस्थाओं मे बहुत से मामले आजाते हैं जिनमे ये तीन विषय भी हैं जिनके आधार पर रियासतों का भारतीय संघ मे प्रवेश स्वीकार किया गया है—रक्षा, वैदेशिक मामले तथा रेल, तार, डाक आदि।"

"माननीय सदस्यों को अधिक प्रसन्नता होती यदि हैदराबाद स्थायी रूप से भारतीय संघ मे शामिल हो जाता। यह हमारी चिर पोषित इच्छा के अनुरूप ही नहीं होता बल्कि भारतीय संघ और हैदराबाद राज्य दोना के हितों मे होता। लेकिन हम राज्य की अन्द-रूनी कठिनाइयो को महसूस करते है। हमारी यह नीति रही है कि जोर जबरदस्ती से काम न लेकर यथासंभव दोनों पक्षों की सद्भावना के साथ तथा भारत की सम्पूर्ण स्थिति को ध्यान में रखते हुए सम-झौता किया जाय। इसी नीति के अनुसार हमने यह अनुभव किया कि यदि इस प्रकार का समझौता परिमित समय के लिये भी होगया तो कोई समझौता न होने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा होगा।"

"एक वर्ष के काल में हम दोनों के बीच निकट सम्बन्ध स्थापित होजायेंगे और आशा है कि इसके परिणाम स्वरूप हैदराबाद स्थायी रूप से भारतीय संघ में शामिल हो जायेगा।"

"समझौते से स्पष्ट है कि हैदराबाद पाकिस्तान में शामिल नहीं होना चाहता। यह बिलकुल ठीक है क्योंकि हैदराबाद की जो स्थिति है उसके अनुसार उसका भाग्य अटूट रूप से भारत के साथ बंधा हुआ है।"

"मैं यह भली भांति महसूस करता हूँ कि सदस्यगण तथा जनता, हैदराबाद की अन्दरूनी घटनाओं के बारे में चिन्तित है। चूंकि अब समझौता होगया है अतएव मुझे पूरा विश्वास है कि इसका मौजूदा स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा और रियासत में तथा रियासत के बाहर भी दोनों जातियों के सम्बन्धों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।"

"आशा है कि अब एक नया वातावरण उत्पन्न होगा और जो लोग रियासत छोड़ कर चले गये हैं वे अपने घरों को लौट जायेंगे।"

"मुझे यह भी विश्वास है कि इस समझौते पर मित्रता तथा सद्भावना के साथ अमल होगा। इस दिशा में हम अपनी ओर से पूरी कोशिश करेंगे।"

"मैं यह भी बतादूं कि निज़ाम साहब वैधानिक सुधारों के प्रस्तावों पर विचार कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इस बारे में तथा रियासत के अन्तिम रूप से भारतीय संघ में शामिल होने के बारे में निज़ाम साहब जनता की इच्छा के अनुसार ही चलेंगे (हर्ष ध्वनि) अन्य कई राज्यों में भी इस सिद्धान्त की विजय के चिन्ह निश्चित दिखाई देरहे हैं। मुझे विश्वास है कि एक प्रमुख रियासत के शासक के रूप में निज़ाम साहब दूसरों के लिये अनुकरणीय उदाहरण पेश करेंगे।"

"अन्त में मुझे यह कहना है कि हैदराबाद के साथ लम्बी बात चीत का जो यह सुखद परिणाम निकला है, उसके लिये गवर्नर जनरल के कार्य की धारासभा के सदस्य प्रशंसा करेंगे। (बहुत देर तक हर्ष ध्वनि)"

१ दिसम्बर १९४८ को हैदराबाद के प्रमुख उद्योगपति श्री लायकअली प्रधानमंत्री हुए और उन्होंने रियासत के तमाम राजबन्दियों की रिहाई की घोषणा की। १५ अगस्त से रियासत के कांग्रेस अध्यक्ष स्वामी रामानन्द तीर्थ गिरफ्तार थे, वे रिहा कर दिये गये तथा उनके बाद और बहुत से प्रमुख कांग्रेसी भी रिहा कर दिये गये।

मीर लायक अली ने यह भी घोषणा की कि शीघ्र ही अन्तरिम सरकार की स्थापना की जायेगी जिसमें राज्य की प्रमुख राजनीतिक संस्थाओं का भी ध्यान रखा जायेगा।

सरदार पटेल के महान् प्रयत्नों से दिसम्बर के महीने में उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की छोटी छोटी रियासतें जिनकी आबादी २० लाख और क्षेत्रफल ५६००० वर्ग मील है क्रमशः उड़ीसा और मध्यप्रान्त में मिलादी गईं। इस व्यवस्था से उड़ीसा का आकार दुगना होगया है और यही हाल मध्यप्रान्त का भी हुआ है। इस महान् कार्य की तारीफ यह है कि इसमें जबरदस्ती बिलकुल नहीं की गई है। स्वेच्छा से ही तमाम रियासतों ने अपनी शासन व्यवस्था भारत सरकार को सौंप दी है।

रियासतें जो उड़ीसा प्रान्त में मिलाई गईं—

रियासतें—१ अथगढ़ २ अथमलिंग ३ बामरा ४ बारंभा ५ बाऊध ६ बोनाई ७ दास पल्ला ८ धनेकलाल ९ खाण्डपारा १० खरस्वान ११ नरसिंहपुर १२ नयागढ़ १३ नीलगिरि १४ पुल्लाहारा १५ पटना १६ रायरखोल १७ रानपुर १८ सराईकेला १९ सोनपुर २० तलेचर २१ तिगीरिया २२ गंगपुर २३ टिंडोल २४ कालाहण्डी २५ क्योंझर।

क्षत्रफल—१८००० वर्गमील

जनसंख्या—३०२५०००

वार्षिक आय—८०१३००० रुपये

रियासतें जो मध्यप्रान्त में मिलाई गईं—

रियासतें—१ बस्तर २ चंगभाकर ३ छुईखदान ४ जशपुर ५ कांकर ६ कावर्धा ७ खैरगढ़ ८ कोरिया ९ नदगाँव १० रामगढ़ ११ सकती १२ सारनगढ़ १३ सुरगूजा १४ उदयपुर

क्षेत्रफल—३८००० वर्गमील

जनसंख्या—४०५०००

वार्षिक आय—११३१२००० रुपये

इन रियासतों के सम्मिलित हो जाने के बाद मध्यप्रान्त में निम्नलिखित रियासत और शामिल हुई—

१—मकड़ाई

क्षेत्रफल—१५१ वर्गमील

आबादी—१४०००

वार्षिक आय—२५००० रुपये

यह रियासत १ फरवरी १९४८ को मध्यप्रान्त में मिलादी गई। १६ दिसम्बर १९४७ को सरदार पटेल ने इन रियासतों के विलीयकरण के सम्बन्ध में वक्तव्य देते हुए कहा—

"जनता को अखबारों और रेडियो से उस समझौते का पूरा हाल ज्ञात होगया होगा जो मैंने उड़ीसा और मध्यप्रान्त के दौरे के समय में अभी उड़ीसा और छत्तीसगढ़ के राज्यों के राजाओं से उनकी रियासतों के पड़ौसी प्रान्तों में मिलाने के सम्बन्ध में किया है।"

"जनतन्त्रीयता और जनतन्त्री संस्थाएँ अच्छी तरह तभी चल सकती हैं जब उनको लागू करने वाला प्रदेश अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रख सके। यदि कोई प्रान्त या राज्य बहुत छोटा हो, अलग स्थित हो, पड़ौस के राज्य से दैनिक जीवन के मामलों में अलग न रह सकता हो, जिसके साधन उसके विकास के लिये अपर्याप्त हों, जिसके निवासी पिछड़े हुए हों, और स्वतन्त्र शासन का भार न उठा सकते हों, उसमें आधुनिक ढङ्ग का शासन नहीं चलाया जासकता। उसमें

जनतन्त्रीकरण और दूसरे प्रदेश के साथ एकीकरण असंदिग्ध रूप से आवश्यक है। आज की दुनिया में अन्तर तेजी से समाप्त हो रहा है, और जनसाधारण आधुनिकतम शासन सुविधाओं के सम्पर्क में आरहे हैं। अब यह असम्भव है कि ऐसे कार्य न किये जायँ जिनसे लोगों को ऐसा भान हो कि वे पड़ोसी प्रदेशों की दिशा में ही प्रगति कर रहे है। देर से असन्तोष पैदा होता है और अराजकता बढ़ती है। शक्ति प्रयोग से सुधारों की मांग कुछ रुक सकती है, नष्ट नहीं हो सकती।"

"वस्तुतः जिन राज्यों से गत दो दिनों में मैंने बातचीत की, उनमें बड़े पैमाने पर अशांति थी। कुछ राज्यों में तो अशांति के बादल गड़गड़ा रहे थे। इस स्थिति में मैंने निश्चय किया कि इन छोटे राज्यों को मिलाने और उनके जनतन्त्रीकरण करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं बचा है।"

"साथ ही राजाओं को लोगों के ऊपर कुछ पैत्रिक और ऐतिहासिक अधिकार हैं, जिनको लोगों को निभाना चाहिये। उनका गौरव, उनके अधिकार, और उचित निर्वाह साधन सुनिश्चित रहने चाहियें। मैं सदा से मानता आया हूँ कि राजाओं का भविष्य प्रजा और देश की सेवा पर निर्भर है। तदनुकुल मैंने अनुभव किया कि इस कठिन दायित्व से मुक्त होने पर उन्हें सेवा का अवसर मिल जायेगा। और वे कटु प्रहारों और दुर्भावनाओं से बच जायेंगे। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की रियासतों से अभी जो समझौता किया गया है, वह उन रियासतों के राजाओं, उनके लोगों और समस्त देश के लिये अधिकतम हितकर है। मैं राजाओं के प्रति मुख्यतः कृतज्ञ हूँ जिन्होंने वास्तविक स्थिति को समझा और जनता की भलाई का ख्याल किया। उन्होंने यह निर्णय करके भारी त्याग किया है। मुझे विश्वास है कि उनकी प्रजा उनकी इस सद्भावना का उदारतापूर्वक उत्तर देगी।"

"यह समझौता घटनाओं के अतिरिक्त अन्य किसी दबाव से नहीं हुआ है। मैंने उनको कहा कि यह प्रस्ताव मित्रतापूर्ण भाव से ही किया गया है और इसमे राजाओं और उनके लोगों के हित निहित हैं। अगर अब भी इन राज्यों के लोगों को कोई शिकायत होगी तो वे उनके प्रतिनिधियों और नेताओं के विरुद्ध होंगी जिन्हें उनके हित और सुख समृद्धि का दायित्व सौंपा जायेगा। इन राज्यों में प्रान्तीय सरकारें जल्दी ही भारत सरकार की ओर से शासन चलायेंगी।"

"इस समझौते से लगभग ५६००० वर्गमील प्रदेश, जिसमें ८० लाख लोग रहते हैं और जिसकी आय २ करोड़ रुपये है, एवं जिसमें भावी उन्नति की बहुत संभावनाएँ हैं, प्रभावित होती है। इस प्रदेश के लोगो को निर्विवाद अधिकार है कि वे आधुनिक शासन की सुविधाओं का उपभोग करें, साथ ही प्रान्तीय सरकारों से पूरा सहयोग करना उनका कर्तव्य होगा।"

७ जनवरी को समस्त देश की और खासकर रियासतों की गतिविधि के सम्बन्ध में सरदार वल्लभभाई पटेल का लखनऊ में बहुत ही ओजस्वी भाषण हुआ। इस ऐतिहासिक भाषण में सरदार पटेल ने कहा—

"इसी लखनऊ शहर से यह बात निकली है कि हम हिन्दू मुसलमान एक नहीं हैं। हमें अलग हिस्सा चाहिये। लीग वाले इसके लिये कोशिश करने लगे। नवजवान सोचने लगे कि हमारा राज्य कायम होजायेगा तो स्वर्ग मे पहुँच जायेंगे। हमने समझाने की बहुत कोशिश की पर नतीजा कुछ नहीं निकला। कलकत्ते में मुसलमानों ने तै किया कि हिन्दुस्तान के टुकड़े किये बिना नहीं मानेंगे। कलकत्ते में जो कुछ हुआ, हमने सोचा कि ऐसा ही कहीं तमाम मुल्क में न हो। इसलिये हमने बात मानली। हमने कहा—आप अपना घर संभालें, हम अपना संभाल लेंगे। हमें तो विदेशी हुकूमत हटानी थी।"

"अलग होने के बाद जो कुछ हुआ, उसमें हमारा दोष नहीं है। ऐसा मैं नहीं कहता। परन्तु उनसे बहुत ही कम। हमारे यहाँ तीन तीन चार करोड़ मुसलमान पड़े हुए हैं। उनके लिये हिन्दुस्तान छोड़ दूसरा स्थान नहीं हैं। हम उनके साथ दगाबाजी नहीं करना चाहते।"

"पहिले सब कहते थे और जिन्ना भी कहते थे कि महात्मा गांधी मुसलमानों का नम्बर एक का दुश्मन है। अब वे मुसलमानों के सबसे बड़े रक्षक हैं और उनकी जगह मेरा नाम लिया जाने लगा है। क्यों? बस इसलिये कि मैं साफ २ कहता हूँ।"

"हम अपना फर्ज पूरा न करें तो ईश्वर के सामने गुनहगार होंगे। मैं मुस्लिम कल्चर के केन्द्र लखनऊ के मुसलमानों से पूछता हूँ कि आप क्या कहते हैं? मारपीट तो ठीक है। इससे दुनिया में बदनामी ही हुई। आजाद होने पर दुनिया में हमारी जो इज्जत बढ़गई थी, वह थोड़ी गिर गई। आपने जूनागढ़ के दरवाजे पर बैठ कर क्यों कहा था कि वहाँ पाकिस्तान चाहिये। आप अपना घर संभालें, जूनागढ़ में किधर से पाकिस्तान आगया? आपने नवाब को सलाह दी कि पाकिस्तान में आजाओ तो स्वर्ग मिल जायेगा। उसे स्वर्ग तो मिल गया, बेचारा करांची में बैठा है, कैदी बनकर। (करतल ध्वनि)"

"जूनागढ़ के बाद ही काश्मीर में आ भिड़े। वहाँ पाकिस्तान की तरफ से हथियार, मोटर आदि सब कुछ दिया जाने लगा। हमने पूछा कि आप यह क्या कर रहे हैं? आपने जवाब दिया कि हम कुछ नहीं करते। इण्डियन गवर्नमैन्ट की तरफ दुनिया की बड़ी बड़ी सल्तनतें हैं। हमने जानना चाहा कि पाकिस्तान का इस लड़ाई में कितना हिस्सा? तो जफरुल्ला साहब कहते हैं कि मैला कपड़ा बाहर धोने से क्या फायदा? लेकिन खुद चार महीने मैला कपड़ा पंजाब में धोते रहे, उसका क्या? (करतल ध्वनि) वे चाहते हैं कि राष्ट्रसंघ में जो

अर्जी दी गई है, वापस ले लें। लेकिन सरासर झूठ बोलना कहाँ तक ठीक है? मैं तो बार बार कहता हूँ कि पाकिस्तान गिरेगा तो अपने पाप से। (विशेष करतल ध्वनि) कहते है कि हमला करने वाले अपने आप आगये, हमारी नहीं मानते। हम कहते हैं. वे तो तुम्हारे घर से गये, तुमने क्यों नहीं रोका? पाकिस्तान का यह कहना सरासर झुठ है।"

"मुझे आश्चर्य है कि लखनऊ में राष्ट्रवादी मुसलमानों के सम्मेलन में सत्तर हजार मुसलमान इकट्ठे हुए, लेकिन पाकिस्तान काशमीर में क्या कर रहा है, इसके बारे में एक शब्द भी नहीं कहा गया। यदि मुसलमानों पर शंका की जाय तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। वे दो दो घोड़ों की सवारी नहीं कर सकते। जो बफादार नहीं हैं वे भारत में नही रह सकते, क्योंकि उनके लिये वातावरण बहुत ही दूषित होजायेगा मैं ये बातें मुसलमानों के दोस्त के रूप मे कह रहा हूँ। यह हमारे लिये महान दुख तथा शर्म की बात होगी यदि महा मुसल नों में से एक को जो कि हमारे सा हो रहा है, भारत छोड़ना पड़ेग।"

ज. तक पाकिस्तान के इन कारनामों के खिलाफ हिन्द के मुसलमान आवाज नहीं उठाते, तब तक उनकी ़फादारी का क्या सुबूत? हमसे कहा जाता है कि हमारी वफादारी पर श क क्यों करते हो? हमारा जवाब है कि आप अपने दिल से पूछो, हमसे क्या पूछते हो? (करतल ध्वनि) मैं तो मुसलमानों का दोस्त हूँ। इसलिये साफ कह देना चाहता हूँ कि मुसलमान उसी नाव में बैठे हैं जिसमें हम। और जब साथ बैठे हैंतो आपको नाव चलानेमें भी साथ देनाही पड़ेगा इस लड़ाई में हम आपको साथ देने को कहते हैं, पर इसका भरोसा क्या? मैं तो अभी और आजकी बात कहता हूँ। दो घोड़ों पर सवारी किसने सुनी? दो में से कोई एक चुनलो। एक ही घोड़े पर सवारी करो (करतल ध्वनि) क्या शेष हिन्दुस्तान के भी टुकड़े करने का

इरादा है ? यदि हाँ, तो मेहरबानी करके पाकिस्तान चले जाइये। (करतल ध्वनि)"

"हिन्द में कई करोड़ मुसलमान अभी भी हैं। हम उनके ट्रस्टी हैं। आप बहुसंख्यक लोग अकल से काम लें। लड़ना ही है, तो मैदान में लड़लें। हिन्द में जो चार करोड़ मुसलमान पड़े हैं, उनसे हमारे भाई न उलझे। उनकी छेड छाड़ न करें उनका बोझ हम पर है। आपकी छेड़खानी से खर्च और परेशानी दोनों बढ़ती हैं। हमें ज्यादा पुलिस रखनी पड़ती है। जिनकी साफ नियत नहीं है वे शौक से चले जांय, नहीं तो इतनी गरमी बढ़ जायेगी कि वे अपने आप चले जायगे (करतल ध्वनि) लेकिन उन्हें हमारे कारण जाना पड़े यह तो ठीक नहीं है।"

"पाकिस्तान अल्प संख्यकों के प्रबन्ध का वायदा करता है, परन्तु कैसा इन्तजाम ? हमने अपनी तरफ से उनका इन्तजाम किया, तो आश्वासन मिला कि सब ठीक हो जायेगा। सिन्धी मुसलमान चाहते भी यही हैं। पर उन बेचारों की चलती कहाँ है ? वहाँ तो यू० पी० के मुसलमानों और खासकर लखनऊ के मुसलनानों की चलती है। यही रफ्तार रही तो पाकिस्तान में सभी जल्दी ही अपने मन के नवाब बन जायेंगे (करतल ध्वनि)" "जो यह कहते हैं कि हिन्द में बचे हुए इतने मुसलमानों को निकाल दो, उनको मैं साफ साफ कहदूं कि पाकिस्तान का हिसाब करना है तो उधर से करना चाहिये। यहाँ अपने बीच पड़े हुए लोगों से नहीं।"

"पाकिस्तान के निबटने की ख्वाहिश हो तो हम ३० करोड़ हैं। हमारे पास साधन हैं। पाकिस्तान कल पैदा हुआ है—बच्चा ही है। वह क्या कर लेगा ? (करतल ध्वनि) अपने भाइयों से भी मैं कहदूं कि लड़ाई लड़ना हो तो तरीके से लड़नी चाहिये। पर जो हरकतें होरही हैंवे तो एक तरह की बेवकूफी है, ऐसी बेवकूफियों से ही देश विदेशियों के हाथ में चला गया था। यह बुद्धिमता नहीं है कि हम

भी मुसलमानों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा कि पाकिस्तान वाले हिन्दुओं के साथ कर रहे हैं ?"

"पाकिस्तान से भी बुरी चीज राजस्थान है। हम, जितनी रियासतें हैं उन्हें एक कर देंगे। लोग राजा लोगों की बुराई करते थे लेकिन मुझे खुशी हुई यह जानकार कि उनमें से कुछ बहुत ही समझदार हैं। मैंने जब बातें की तो पर्दा हट गया। हमने कहा देखो उधर पाकिस्तान बैठा है, अलग रहकर जी सकोगे क्या ? सोच लो। लड़ने में हिन्दुस्तान चला गया था। अब मौका आया है, आओ, एक होजायें। मेरी बात राजाओं ने पसन्द की। मुझे यकीन था कि राजाओं में देश प्रेम क्यों न जागृत होगा ? एक सप्ताह पहिले में उड़ीसा गया था, मध्यप्रान्त भी गया था। वहाँ की ४० रियासतों को मिला कर आया। अभी कई राजा परेशानी में पड़े हैं, हम उनकी रियासतों को खत्म नहीं करना चाहते। जो राजा और प्रजा दोनों को मिलाकर ठीक जचें, वही मानने को हम तैयार हैं। आज जो राजा रैयत के साथ नहीं, उसकी हस्ती जोखम में है। राजा लोग भी यह समझ गये हैं।"

"हमने १५ अगस्त को सत्ता ली थी, उस बात को ४ महीने हुए हैं। चार महीने में टूटी फूटी सरकार क्या कर सकती है ? नवजवान हमारे कार्यों में पुराना ढंग अभी भी पाते हैं, लेकिन वे हमारी दिक्कतों को नहीं समझते। हमारे सत्ता हाथ में आते ही देश के दो टुकड़े हो गये। फिर सीमा निर्णय हुआ और बाद में सम्पत्ति का बटवारा। भला बुरा कुछ भी हुआ, पहले ४० प्रतिशत काम करने वाले अंग्रेज थे। वे बहुत कुछ तो अपने घर चले गये, कुछ पाकिस्तान चले गये और कुछ हमारे धनिक उद्योगपतियों के साथ खप गये। अब हमारे पास चौथाई हिस्सा बचा है।"

"राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को चाकू और दण्डे छोड़ देना चाहिये। उन्हें सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये। पदाधिकारी

कांग्रेसियों को राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से दूसरी तरह व्यवहार करना चाहिये। उन्हें अपने अधिकार तथा आर्डिनेंन्सों पर निर्भर रहना चाहिये। वे अपने स्वार्थ के लिये कार्य न करें। उनमें कुछ कमियाँ और गलतियाँ हैं और यह काँग्रेसियों का कर्तव्य है कि उन्हें अपनी ओर मिलायें और उनका दमन न करें। राष्ट्रीय स्वयं सेवकों को चार करोड़ मुसलमानों को भारत में रहने देना चाहिये और सरकार का ध्यान नहीं बटांने देना चाहिये।

"हमारे दिल में सब के लिये मुहब्बत है, पर सिर पर बैठाने वाली मुहब्बत नहीं। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के भाई गलत रास्ते पर चल कर खुद ठोकर खायेंगे हम समझा बुझाकर काम लेना चाहते हैं। हमारा एकदम से आर्डिनेन्स लगाने का कोई इरादा नहीं यदि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले मर्यादा छोड़ देंगे तो फिर कोई बात नहीं।"

"हिन्दू महा सभा को अपना संगठन समाप्त कर देना चाहिये और कांग्रेस में मिल जाना चाहिये। हिन्दू महासभा को यह नहीं समझना चाहिये कि वे ही हिन्दू धर्म और संस्कृति के प्रवक्ता हैं। इस समय आवश्यकता है एक मजबूत केन्द्रीय सरकार और एक मजबूत सेना की। पाकिस्तान काश्मीर में किये अपराध से बच नहीं सकता। सरकार ने देश के युवकों की सैनिक शिक्षा देने की एक योजना बनाई है। पाकिस्तान अपने रवैये से चार करोड़ मुसलमानों की रक्षा करने के कार्य में बाधा उपस्थित कर रहा है क्योंकि पाकिस्तान में जो कुछ होता है उसकी प्रतिक्रिया भारत में होती है।"

"सच्चा काँग्रेस की जरूर है। पर हमने कांग्रेसियों को ही सरकार में शामिल नहीं किया है इसमें हिन्दू महासभा के डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी हैं। लोग कहते हैं कि वे कांग्रेस के खिलाफ बोलते हैं। मैं कहता हूँ— बोलने दो। बोलने से होता क्या है? हमारा तो हिन्दू महासभा से भी कहना है कि कांग्रेस में आजाओ।

बाहर रह कर तो तुम हिन्दू धर्म को छोटा किये डाल रहे हो। हिन्दू धर्म तो बहुत ही बड़ा है। हमने डाक्टर जान मथाई को भी लिया। वे टाटा में थे। सरदार बलदेवसिंह को भी लिया जो अकाली दल के प्रतिनिधि हैं। पारसी भाभा को भी लिया जो कांग्रेस में कभी नहीं थे। पूंजीपति चेट्टी को भो लिया। वे तो कल तक काँग्रेस को गाली दिया करते थे। कांग्रेस कुछ काम करना चाहती है, इससे वह सब को साथ लेकर चलना चाहती है।"

"जितने भाई गलत रास्ते पर चल रहे हैं, उनसे मेरा कहना है कि हम पर भरोसा करो। राज आपको करना है, हमको नहीं। आप सब कांग्रेस में आजाइये। हमारी सलाह पर चलिये। हम जो कुछ करेंगे, आपके भले के लिये ही करेंगे, बुरे के लिये नहीं। (करतल ध्वनि)"

"अंग्रेज लोग सोचते थे कि हमरा काम ठप्प हो जायेगा। लेकिन देखलो, हमारा काम तो चल रहा है। इसके बाद ही आबादी का बटवारा आया। आदमी इधर से उधर भेजे गये, उधर से इधर लाये गये। ४० लाख गये और ५० लाख आये। उनकी मुसीबत का ठिकाना नहीं। पैदल चलकर आये। उन्हें कालेरा आदि बीमारियों का भी सामना करना पड़ा। खाने पीने की भी साधारण तकलीफ नहीं थी। अमृतसर के मुसलमानों के निकालने में हमारे लोग—जिनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले भी थे—मुसलमानों के निकलने में वाधक हो रहे थे। मैंने वहाँ जाकर समझाया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक वालों को भी कहा कि हमारे तो १० लाख भाई यहाँ वहाँ पड़े हैं। सब ने मेरी बात मानली और मुसलमान अमृतसर से गये।"

"इसके साथ ही विधान बनाने का कार्य भो किया। रियासतों का सवाल भी हल किया। हमने काश्मीर आदि में जो कुछ किया, वह भी सामने हो है। अब हमें हिन्दुस्तान को उठाना है, इसके लिये जल, थल और हवाई फौज चाहिये।"

"हम इसके लिये सिर्फ तीन साल का ट्रस Truce चाहते हैं। फौजों के लिये जो सामान चाहिये, वह मजदूर ही तो तैयार करते हैं। उन्हें हड़ताल नहीं करना चाहिये। हड़ताल से पूंजीपति और मजदूर दोनों की हानि है। अभी दिल्ली में तै हुआ था कि ऐसे झगड़े पंचायत से निबटाये जायेंगे। लेकिन बम्बई में हड़ताल हो गई। कलकत्ते में भी हड़ताल होती पर वहाँ मेरे समझाने से रुक गई। दूसरे देशों में भी हड़तालें होती हैं पर वहाँ की हालत दूसरी है। हमारे यहाँ तो अभी खण्डहर पर इमारत तैयार करना है।"

"बहुत से ऐसे लोग हैं जो हमारी आलोचना करते हैं और कहते हैं कि "यह नहीं हुआ," "वह नहीं हुआ"। मैं उनसे अनेक बार कह चुका हूँ कि वे हमें समय दें, हम सब ठीक कर देंगे। भारत के मुसलमानों को चाहिये कि वे काश्मीर पर हमलावरों की कार्यवाई के विरुद्ध आवाज उठावें और उसकी स्पष्ट शब्दों में निन्दा करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो वे भारत के प्रति अपनी देश भक्ति का सुबूत देंगे। यह सर्वविदित है कि काश्मीर पर हमला करने वालों को पाकिस्तान से सब तरह की सहायता मिल रही है।"

"अब तो हमारी अपनी हुकूमत है। बहुत सालों के बाद गुलामी गयी है। अब मौका आया है। उसका ठीक उपयोग कर सकें तो अच्छा है। दुनियाँ हमारी ओर देखेगी। एशिया की लीडर शिप लेना है तो ठीक रास्ते से चलना होगा क्योंकि ऐसा मौका फिर नहीं आयेगा।"

२० फरवरी १९४८ को काठियावाड़ की कुछ रियासतों ने मिल कर "सौराष्ट्र संघ" कायम कर लिया। इस संघ में बड़ौदा और जंजीरा राज्य के जफराबाद जिले को छोड़कर काठियावाड़ की तमाम रियासतें शामिल होगईं। सौराष्ट्र संघ में १३ सलामी वाली रियासतें और कई बिना सलामी वाली रियासतें भी शामिल की गईं। सलामी वाली रियासतों के पथ प्रदर्शन को गैर सलामी वाली रियासतों ने दिल

से स्वीकार कर लिया। सौराष्ट्र संघ में एक धारासभा, शासन परिषद् और न्यायालय कायम किये गये। नरेशों की एक परिषद् होगी और ५ सदस्यों की एक शासन परिषद्–प्रेसीडियम–होगी। प्रेसीडियम में दो सदस्य स्थायी रहेंगे। ये स्थायी सदस्य नवानगर और भावनगर के नरेश होंगे। शेष सदस्यों में दो सदस्यों को सलामी वाले राज्य और एक को गैर सलामी वाले राज्य चुनेंगे।

प्रेसीडियम का एक सदस्य राज्य प्रमुख कहलायेगा और उसकी स्थिति प्रान्तीय गवर्नर के समान होगी। राज प्रमुख वैधानिक प्रमुख होगा। जाम साहब नवानगर राज्य प्रमुख चुने गये।

सौराष्ट्र संघ का विधान बनाने के लिये एक विधान परिषद् की स्थापना की व्यवस्था की गई है। विधान लोकतन्त्रात्मक होगा। शासन परिषद् व्यवस्थापिका सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। भारतीय विधान परिषद् की तरह यह परिषद् भी नये चुनाव होने तक व्यवस्थापिका सभा का भी कार्य करेगी। सौराष्ट्र संघ के नरेशों को घरेलू खर्च नियत कर दिया गया है और समझौते पत्र में इसकी गारन्टी करदी गई है। पैतृक शासन और खिताबों के बारे में भी गारन्टी कर दी गई है।

सौराष्ट्र संघ का अहदनामा—

धारा नं० १— इस अहदनामे को स्वीकार करने वाली वे रियासतें होंगी जो परिशिष्ठ नं० १ में दी गई हैं और जिनके नरेशों ने या उनके द्वारा अधिकृत प्रतिनिधियों ने अहदनामे पर हस्ताक्षर किये हैं।

आगे चलकर इस धारा में सलामी और बिना सलामी की रियासतों का जिक्र करते हुए अहद नामे में उन रियासतों की ओर से यदि कोई सम्मिलित होने में असमर्थ हो अर्थात् जहाँ का राजा बालिग नहीं हो आदि तो वहाँ से किसी

व्यक्ति को कुछ समय के लिये सम्मिलित करने के अधिकार का जिक्र किया गया है।

धारा नं० २—

१— हम अपनी रियासतों को एक संघ में मिलाते हैं जिसका नाम सौराष्ट्र संघ होगा और जिसका शासन विधान तथा न्याय का कारोबार एक होगा।

२— इस प्रकार बनने वाले संघ में कोई दूसरी रियासत, ताल्लुका या ठिकाने का राजा अपनी रियासत को भारत सरकार की स्वीकृति से मिलाना चाहता है तो सौराष्ट्र संघ में उसे मिलाने के लिये हम तैयार हैं

३— इस धारा की कालम नं० २ के अनुसार सम्मिलित होने वाली रियासतों पर इस अहदनामे की तमाम शर्तें लागू होंगी और वह इस अहदनामे को स्वीकार करने वाली रियासतों में से एक समझी जायेगी।

धारा नं० ३—

१— अहदनामे को स्वीकार करने वाली सलामी रियासतों के राजाओं की एक परिषद होगी।

२— पांच सदस्यों का एक प्रेसिडियम होगा। ये सदस्य शामिल होने वाली रियासतों के राजा होने चाहिये तथा जिनकी उम्र २१ वर्ष से कम न हो।

३— इस धारा की कालम नं० २ के अनुसार नवानगर और भावनगर के राजा प्रेसिडियम के स्थायी सदस्य होंगे शामिल होने वाली असलामी रियासतों के राजा अपने में से प्रेसिडियम के लिये एक सदस्य चुनेंगे। बाकी बचे हुए सदस्यों को नवानगर और भावनगर को छोड़कर राजाओं की परिषद के शेष सदस्य अपने में से चुनेंगे।

४—राजाओं की परिषद् प्रेसिडियम के सदस्यों में से सभापति और उपसभापति का निर्वाचन करेगी। यह चुना हुआ सभापति सौराष्ट्र संघ का राजप्रमुख होगा।

५—इस धारा की कालम नं० ३ और ४ के अनुसार प्रेसिडियम के सदस्य और सभापति तथा उप सभापति, उक्त पदों पर सदस्य सभापति और उपसभापति की हैसियत से ५ साल तक रहने के अधिकारी होंगे। यह समय पद स्वीकार करने की तारीख से गिना जायेगा।

६—इस धारा की कालम नं० ५ के अनुसार—

अ—ता० १७ जनवरी सन् १६४८ को नवानगर और भावनगर के वर्तमान राजा प्रेसिडियम के सभापति और उपासभपति चुने गये। ये प्रेसीडियम के प्रथम सभापति और उपसभापति होंगे।

आ—ध्रांगध्रा, पालीटाना और कोटड़ा संभानी के वर्तमान राजा ता०१७ और२१ जनवरी को प्रेसीडियमके सदस्य निर्वाचित किये गये। प्रेसिडियम के प्रथम निर्वाचित सदस्य होंगे।

इ—प्रेसिडियम के सभापति, उपसभापति और सदस्य कालम नं० ५ के लिये १ फरवरी १६४८ से पद गृहण करेंगे, ऐसा माना जायेगा।

धारा नं ४—

१—राजप्रमुख को अपने पद पर सुविधा से और सम्मान से कार्य सम्पादन करने के लिये बम्बई प्रान्त के गवर्नर के अनुरूप तनख्वाह, अलाउन्स और अधिकार प्राप्त होंगे।

२—किसी कारणवश कार्य नहीं संभालने पर राजप्रमुख की अनुपस्थिति में उसका सारा कार्य प्रेसिडियम के उपसभापति संभालेंगे। उस समय के लिये उपसभापति की तनख्वाह,

अलाउन्स, और अधिकारों की तमाम सुविधाएँ राजप्रमुख के समान ही प्राप्त होंगी।

धारा नं ५—१—राजप्रमुख की मदद के लिये तथा उसे सलाह देने के लिये एक मन्त्री मण्डल होगा जो धारा नं० ७ की कालम नं० २ के अलावा बाकी कार्य में सहयोगी होगा।

२—राजप्रमुख द्वारा मन्त्रिमण्डल को चुना जायेगा और उसकी मर्जी तक कायम रहेगा।

३—प्रथम मंत्रीमण्डल को चुनने के लिये राजप्रमुख २० फरवरी १६४८ तक निर्वाचन मण्डल की (भारतीय विधान परिषद में प्रतिनिधि भेजने के लिये बनाया हुआ) बैठक बुलायेगा। कच्छ, ईडर, राधनपुर के सदस्य इसमें शामिल नहीं होंगे।

धारा नं ६—१—शामिल होने वाली रियासतों के राजा, जितना शीघ्र संभव हो सके, हर हालत में १५ अप्रेल १६४८ तक राजप्रमुख को अपनी रियासत का शासन सौंप देंगे तब—

अ—तमाम अधिकार, शासन और शक्ति जो कि उस रियासत के राजा को प्राप्त थे, या उसकी सरकार को अपनी रियासत के मुताल्लिक प्राप्त थे, सौराष्ट्र संघ को प्राप्त हो जायेंगे। और उन्हे काम मे लाने का अधिकार इस अहदनामे या बाद मे बनने वाले विधान के अनुसार संघ को प्राप्त होगा।

आ—शामिल होने वाली रियासत के राजा या उसकी सरकार के अपनी रियासत के प्रति जो कर्तव्य या दायित्व होंगे, वे सब सौराष्ट्र संघ द्वारा पूरे किये जायेंगे।

इ—शामिल होने वाली रियासत की जो पूंजी या कर्ज होगा, वह सब सौराष्ट्र संघ की पूंजी या कर्ज माना जायेगा।

ई—धारा न० २ की कालम नं० २ के अनुसार यदि कोई रियासत, टिकाना या ताल्लुका अपने शासन को राज-

प्रमुख को सौंपते हुए अपनी रियासत को शामिल करता है, तब इस धारा की कालम नं० १ के उपनियम अ, आ, और इ भी उन रियासतों ताल्लुकों और ठिकानों पर लागू होंगे जैसे कि प्रारंभ से सम्मिलित रियासतों के लिये लागू हैं। ठिकानों और ताल्लुकों के सम्बन्ध में राजा की जगह ताल्लुकेदार कहा जायेगा।

धारा नं० ७—१—शामिल होने वाली रियासतों की फौजें शासन हस्तान्तर करने के बाद सौराष्ट्र संघ की फौज मानी जायेंगी।

२—भारत सरकार द्वारा समय-समय पर दी जाने वाली सूचनाओं और आज्ञाओं को ध्यान में रखते हुए फौज को संगठित करने, कायम रखने और नियन्त्रित करने का सम्पूर्ण अधिकार राजप्रमुख को होगा।

उपयुक्त विषयों मे से किसी भी विषय के लिये राजप्रमुख प्रेसिडियम या मंत्रिमण्डल से सलाह ले सकेगा।

धारा नं० ८—इस अहदनामे और इसके अनुसार बनने वाले विधान को मान्यता देते हुए राजप्रमुख प्रत्यक्ष या अपने मातहत काम करने वाले अफसरों द्वारा सौराष्ट्र संघ की शासन व्यवस्था करेगा।

धारा नं० ९—१—परिशिष्ट नं० २ के अनुसार जितना शीघ्र संभव हो सके एक सौराष्ट्र संघ की विधान परिषद् का निर्माण किया जायेगा।

२—इस विधान परिषद का यह कर्तव्य होगा कि वह सौराष्ट्र संघ के लिये। संघीय या सम्मिलित—Federal ro Unitary विधान) इस अहदनामे और भारतीय विधान की सीमाओं के भीतर धारा सभा के प्रतिउत्तरदायी रहने वाले शासन का विधान बनावें।

३—जब तक इस प्रकार बनने वाला विधान राजप्रमुख की सहमति के बाद अमल में नहीं आता, सौराष्ट्र संघ का कानूनी अधिकार राजप्रमुख को होगा। राजप्रमुख सौराष्ट्र संघ या उसके कुछ हिस्से में शान्ति और सुव्यवस्था कायम करने के लिये आज्ञा जारी कर सकेगा। इस प्रकार जारी की हुई आज्ञा का उतना ही कानूनी महत्व रहेगा जितना कि किसी राज्य की धारा सभा द्वारा पास किये गये बिल का होता है।

धारा नं १०–१–सम्मिलित होने वाली प्रत्येक रियासत के राजा को सौराष्ट्र संघ की आमदनी में से सालाना अपने शाही खर्च (जोकि परिशिष्ट नं १ में निश्चित किया गया है) को लेने का अधिकार होगा।

२—निश्चित की हुई शाही रकम में से ही राजाओं का खुद का, उनके परिवार का, जिसमें उनके व्यक्तिगत नौकरों पर, महलों पर और शादी आदि समारोहों पर होने वाला खर्च भी शामिल है, किया जा सकेगा। किसी भी कारण से यह रकम न तो बढ़ाई जा सकेगी और न घटाई जा सकेगी।

३—राजप्रमुख द्वारा यह रकम चार बराबरी के भागों में प्रत्येक तीन माह के प्रारंभ में राजाओं को दी जाया करेगी।

४—शाही खर्च की इस रकम पर सौराष्ट्र संघ की सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा कोई कर नहीं लगाया जायेगा।

धारा नं ११–१–शामिल होने वाली प्रत्येक रियासत के राजा अपनी रियासत का शासन राजप्रमुख को जिस दिन सौंपेंगे, उस दिन से उनकी निजी सम्पत्ति पर (सौराष्ट्र संघ की

सम्पत्ति से भिन्न) उनका पूरा अधिकार रहेगा और वे उसका उपयोग अपनी कर सकेंगे।

२—उपर्युक्ति तारीख के एक माह के भीतर राजा लोग अपनी जमीन, जायदाद दस्तावेज और नगद धन जो कि उनकी निजी सम्पत्ति है, की सूची राजप्रमुख के पास भेज देंगे।

३-यदि इस विषय में कि कौनसी सम्पत्ति राजा की निजी है या रियासत की है, कोई झगड़ा खड़ा होगा तो वह भारत सरकार द्वारा नियुक्त व्यक्ति के समक्ष पेश किया जावेगा और उसके द्वारा दिया गया फैसला अन्तिम होगा तथा वह सम्बन्धित तमाम पक्षों को मान्य होगा।

धारा नं-१२—शामिल होने वाली रियासत के राजा और उनके परिवार के सदस्यों को अपनी रियासत की सीमा में या बाहर वे तमाम व्यक्तिगत सुविधाएँ, सम्मान और पदवियाँ प्राप्त होंगी जो उन्हें १५ अगस्त १९४७ के पूर्व प्राप्त थीं।

धारा नं १३—१— शामिल होने वाली रियासत की गद्दी का हकदार कानून और रिवाज के अनुसार ही होगा और उसे राजा की हैसियत से मिलने वाले व्यक्तिगत अधिकार और सुविधाएँ, सम्मान तथा पदवियां भी प्राप्त हो सकेंगी। इसकी गारन्टी इस कालम द्वारा दी जाती है।

२—शामिल होने वाली सलामी रियासतों में यदि गद्दी सौंपने के सम्बन्ध में झगड़ा पैदा होगा तो वह राजाओं की परिषद् द्वारा काठियावाड़ को हाईकोर्ट से पूछने पर उसकी निर्दिष्ट राय के अनुसार तय किया जायेगा।

धारा नं० १४—शामिल होने वाली रियासत के शासन काल में उस रियासत के शासन द्वारा या उसके अधिकार से अन्य किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत हैसियत से या और किसी हैसियत से किये गये या करने के लिये छोड़े जाने वाले कार्यों के लिये शासन के खिलाफ सौराष्ट्र संघ या उसके अधिकारियों द्वारा कोई जांच नहीं की जायेगी और न सौराष्ट्र संघ की किसी अदालत में मामला ही चलाया जायेगा।

धारा नं० १५—सौराष्ट्र संघ की सरकार भारत सरकार और बम्बई प्रान्त की सरकार की सम्मति से एक सम्मिलित सलाह समिति के निर्माण के लिये प्रत्येक आवश्यक कदम उठायेगी। यह समिति सौराष्ट्र संघ के मन्त्रिमण्डल और बम्बई प्रान्त के मंत्रिमण्डल की बनेगी जो दोनों प्रदेशों के सामान्य हित वाले विषयों पर खोज और बहस करेगी और उसके सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें पेश करेगी। विशेषतया दोनों प्रदेशों में किसी विषय की सम्मिलित कार्यवाही और नीति के सम्बन्ध में अपनी सिफारिश पेश करेगा।

धारा नं० १६—सौराष्ट्र संघ इस बात की गारन्टी देता है कि शामिल होने वाली प्रत्येक रियासत का शासन राजप्रमुख को सौंपने के पूर्व वहाँ के स्थायी कर्मचारियों को जो लाभ और सुविधाएँ प्राप्त थीं, उनसे किसी हालत में कम नहीं, ऐसी शर्तों पर या तो उनकी नौकरी कायम रखी जायेगी या उन्हें उचित मुआवजा दिया जायेगा।

२—शामिल होने वाली रियासत के शासन सौंपने से पूर्व उस रियासत के स्थायी सरकारी कर्मचारियों की उचित सूत्र से पेन्शन या पेन्शन से पूर्व की तनख्वाह

सहित छुट्टी चालू रखने की गारन्टी भी सौराष्ट्र संघ देता है।

३—इस धारा की उपर्युक्त कालम नं० १ और २ सौराष्ट्र संघ में काठियावाड़ की अन्य शामिल होने वाली रियासतों के सरकारी कर्मचारियों के लिये भी लागू होगी। और इस धारा की कालम नं० १ पश्चिमी भारत और गुजरात रियासत के रीजनल कमिश्नर जिसका कि कारोबार सौराष्ट्र संघ को सौंप दिया जायेगा, के दफ्तर के कर्मचारियों के लिये भी लागू होगा।

धारा नं० १७—शामिल होने वाली रियासत का शासन राजप्रमुख को सौंपने से पूर्व वहाँ के किसी भी सरकारी कर्मचारी पर उसके कर्तव्य को पूरा करने में होने वाले कार्यों के खिलाफ कोई कार्यवाही चाहे वह दीवानी हो या फौजदारी, राजप्रमुख की पूर्वानुमति के बिना नहीं की जा सकेगी।

धारा नं० १८—इस अहदनामे की कोई भी कालम सौराष्ट्र संघ की सरकार को अन्य गुजराती भाषा भाषी प्रदेशों के साथ काठियावाड़ का सम्बन्ध उन शर्तों पर जो सौराष्ट्र संघ के राजाओं की परिषद् और मंत्रिमण्डल द्वारा स्वीकृत की जावेगी, जोड़ने से नहीं रोक सकेगी।

परिशिष्ट नं० १—इस परिशिष्ट के दो भाग हैं। पहिले भाग में १३ सलामी रियासतों के नाम हैं—

१—नवानगर २—भावनगर ३—पोरबन्दर ४—वांकानेर ५—धांगध्रा ६—मोरवी ७—गोंडल ८—

जाफराबाद ६—पालिताना १०—कोटड़ा संभानी ११—राजकोट १२—ध्रोल १३—वढ़वान।

इस परिशिष्ट में इन राजाओं का निश्चित किया हुआ शाही खर्च भी दिया गया है।

दूसरे भाग में १७ बिना सलामी की रियासतों के नाम दिये गये हैं—

१—बढ़वान २—लख्तर ३—सामला ४—चूड़ा ५—वाला —६ जसदन ७—अमर नगर ८—थाना देवली वाड़िया ६—लाथी १०—मूली ११—बाजना १२—वीरपुर १३—मलिआ १४—जेतपुर १५—बिलखा १६—पाटड़ी १७—खिरासरा।

इस के साथ ही इन राजाओं के निश्चित शाही खर्च भी दिये गये हैं।

परिशिष्ठ नं० २—१—सौराष्ट्र संघ की जनता द्वारा लगभग १ लाख जनसंख्या के लिये एक चुने हुए प्रतिनिधियों की, जिसकी संख्या ४५ से अधिक नहीं होगी, विधान समिति का निर्माण किया जायेगा। शामिल होने वाली प्रत्येक रियासत की जनता को जन संख्या के मान से रहित कम से कम एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा।

२—सौराष्ट्र संघ के प्रादेशिक हिस्से किये जावेंगे और चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की कुल संख्या के अनुसार एक या दो, जितनी संख्या भी संभव हो, प्रत्येक हिस्से के लिये निश्चित करदी जावेगी।

जहाँ तक संभव हो सकेगा, ये प्रादेशिक हिस्से इस प्रकार किये जायेंगे कि शामिल होने वाली रियासत के किसी एकत्रित भाग की सीमा के टुकड़े

नहीं करना पड़ें।

३—विधान परिषद में चुने जाने वाले सदस्यों की योग्यता और मतदाताओं की योग्यता कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ बम्बई प्रान्त की लेजिस्लेटिव एसेम्बली के लिये तय किये गये नियमों के अनुसार मान्य की जायेगी।

कोई भी व्यक्ति चुने जाने के लिये या मत देने के लिये केवल इसलिये अयोग्य साबित नहीं किया जासकेगा कि वह किसी शामिल होने वाली रियासत का राजा या शामिल होने वाले किसी ठिकाने या ताल्लुके का ताल्लुकेदार है।

४—राजप्रमुख द्वारा उपर्युक्त कालमों के अनुसार संभवतः समय के भीतर ही आज्ञाएँ प्रचारित की जायेंगीं।

सौराष्ट्रसंघ में शामिल होने वाली रियासतें—

१—नवानगर २ भावनगर ३ पोरबन्दर ४ बांकानेर ५ ध्रांगध्रा ६ मोरवी ७— गोंड़ल ८ जाफराबाद ९ पालिताना १० धरोल ११ लिम्बडी १२ राजकोट १३ बढ़वान १४ लख्तर १५ सायला १६ चूड़ा १७ बाला १८ जसदन १९ अमर नगर २० वाड़िआ २१ लाथी २२ मूली २३ बाजना २४ बीरपुर २५ मंलिआ २६ कोटड़ा मंगनी २७ जेतपुर २८ बिलखा २९ पाटड़ी ३० खिरासरा।

इनके अलावा ४१९ जागीरें भी सौराष्ट्र संघ में सम्मिलित होगई ं।

रियासतों की संख्या मय जागीरें ३०+४४९=४७६

क्षेत्रफल—३३९४३ वर्गमील

आबादी—३२०९०००

वार्षिक आय—८०००००० रुपये

इस संघ के निर्माण के बाद निम्नलिखित रियासतों का

शासन प्रबन्ध भी भारत सरकार ने २६ फरवरी १६४८ को संभाला—

१—सुकेत २ सॉंगली ३ लोहारू ४ दुजाना ५ पाटौदी इसके पूर्व २० फरवरी १६४८ को दक्षिण भारत की १५ रियासतों ने बम्बई प्रान्त में शामिल होजाने के समझौते पत्र पर दस्तखत कर दिये। इन रियासतों ने अपने समस्त अधिकार बम्बई प्रान्त को सौंप दिये। इस समझौते के अनुसार रियासतों के राजाओं को अपने निजी खर्चके लिये उनकी रियासतों की आमदनी का अधिकतम १५) प्रतिशत तक दिया जावेगा। नरेशों को ४ किश्तों में निजी खर्च की रकम मिलती रहेगी। राजाओं को अपनी निजी सम्पत्ति पर पूरा अधिकार रहेगा। वे उसका उपयोग अपनी इच्छानुसार कर सकेंगे। इसके सम्बन्ध मे झगड़ों का फैसला अदालत करेगी। भारत सरकार ने यह भी गारन्टी दी है कि १५ अगस्त १६४७ के पहिले राजाओं के जितने व्यक्तिगत अधिकार थे, उनकी वह रक्षा करेगी बम्बई प्रान्त में मिलने वाली दक्षिणी रियासतें—

१—अकलकोट २ औंध ३ भोर ४ जामखण्डी ५ जाथ ६ कुरुन्दवाड़ (जूनियर) ७ कुरुन्दवाड़ (सीनियर) ८ मिरज (जूनियर) ६ मिरज (सीनियर) १० मधोल ११ फल्टन १२ रामदुर्ग १३ सांगली १४ सावनूर १५ सवन्त वाड़ी

जागीर—१—बादी जागीर
क्षेत्रफल—७८१५ वर्गमील
आबादी—१६६३०००
वार्षिक आय—१४२१५००० रुपये

भारत के सीमान्त पर होने तथा हर वक्त पाकिस्तान की ओर से हमले होते रहने के कारण भारत सरकार ने जैसलमेर रियासत का शासन प्रबन्ध अपने हाथ में लेलिया और यहाँ भारत सरकार की ओर से एक एडमिनिस्ट्रेटर (शासक) नियुक्त कर दिया गया।

फरवरी के अन्त में १ वागनी पल्ली और २ पुदु कोट्टी रियासतें मद्रास प्रान्त में शामिल करदी गईं।

१ मार्च को बनारस में भाषण देते हुए भारत सरकार के निर्माण, खान और बिजली मंत्री श्री काका साहब गाड़गिल ने सरदार पटेल की रियासती नीति पर प्रकाश डालते हुए कहा—

"कहा जाता है कि भारत सरकार रियासतों के रूप में सैकड़ों अलस्टरों और नासूरों की लापरवाही कर रही है। आलोचना करने वालों ने खुद गोआ में या इधर उधर व्याख्यान देने के अलावा कुछ भी नहीं किया। सरदार पटेल की सबसे ज्यादा आलोचना की जाती है। उन्होंने आज भारत की भलाई के लिये वही किया है जो ८० वर्ष पूर्व लार्ड डलहौजी ने उसकी बुराई के लिये किया था। यदि महात्मा गांधी हमारी स्वतन्त्रता के निर्माता हैं तो वल्लभभाई पटेल भारतीय संघ के विश्वकर्मा हैं। चार मास से भी कम में एक भी कड़ा शब्द कहे बिना, केवल देश भक्ति की भावना जागृत करके उन्होंने प्रायः सब रियासतों को संघ में सम्मिलित करा लिया है और बहुत सी रियासतों को उसमें विलीन करा दिया है।

गांधीजी की हत्या के सिलसिले में निष्पक्ष जांच करने के लिये भारत सरकार ने अलवर का शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। इस अवसर पर सरदार पटेल ने अलवर में २५ फरवरी को एक अत्यन्त ही ओजस्वी भाषण देते हुए कहा—

"भारत सरकार को अलवर का शासन प्रबन्ध किन परिस्थितियों में अपने हाथ में लेना पड़ा है। कुछ ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनसे अलवर की बदनामी हुई है। महाराजा का दोष हो या न हो किन्तु यह सत्य है कि उनका नाम इस झगड़े में आगया है और यह लांछन मिटना चाहिये। यह सफाई होते ही महाराजा साहब के अलवर वापस आने पर कोई आपत्ति न होगी। महाराजा का भाग्य

उन्हें जिस दशा में ले गया है उससे जनता व नरेश दोनों ही को याद रखना चाहिये कि शासन के पुराने रंग ढंग अब और नहीं चल सकते। जमाना बदल रहा है और नये आदर्श व नये सिद्धान्तों को लोग अपनाते जा रहे हैं। अभी भी कुछ लोग तलवार की ताकत का स्वप्न देखते हैं और नया राज्य स्थापित करने की बात सोचते हैं। इसलिये जनता द्वारा उन सिद्धान्तों के विश्वास में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। जब भारत गुलाम था तब वह तलवार और वह इच्छा कहाँ थी ?"

"राजाओं को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि वे जनता के संरक्षक और रियासत के सेवक हैं। जनता के साथ उनका सम्बन्ध पिता और पुत्र का है। उन्हें उत्साहपूर्वक जनता के हितों की रक्षा करनी चाहिये और उसकी भलाई ही उनका मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। आज की परिस्थिति देख कर उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि उनकी हालत अब वैधानिक नरेशों से ज्यादा कुछ नहीं रह सकती। उन्हें यह चाहिये कि वे शासन प्रबन्ध में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें और अपनी जनता के परामर्श से ही अपनी शक्ति का प्रयोग करें। इसी प्रकार जनता को भी चाहिये कि वे नरेशों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को अनुभव करें। उन्हें राजाओं को अपना ही अंग समझना चाहिये और उनकी भलाई की कामना करनी चाहिये। जनताको अपने कल्याणके लिये सतर्क रहना चाहिये। इसके लिये उन्हें चापलूसी और खुशामद के बजाय अपने वास्तविक हितों पर निर्भर रहना चाहिये तथा ईमानदारी और सचाई केन साथ अपने पक्ष का समर्थन करना चाहिये।"

"वह जमाना लद गया जब सिर्फ राजपूत ही देश की रक्षा का अभिमान कर सकते थे। अब राजपूतों को सोचना चाहिये कि राजस्थान की पुत्र पुत्रियों द्वारा वीरता व बलिदान के आदर्श कायम करने के बावजूद भी भारत गुलाम क्यों रहा ? इसका उत्तर सरल है।

कारण यह है कि राजपूतों व देश के अन्य लोगों ने एकता का सबक नहीं सीखा। अब हर हिन्दुस्तानी को यह भूल जाना चाहिये कि वह राजपूत, जाट, सिख, ब्राह्मण, क्षत्रिय, या हरिजन है। अब तो सिर्फ यही याद रखना चाहिये कि हम भारतीय हैं। भारत के लिये हम सभी के समान अधिकार और जिम्मेदारियाँ हैं।"

१७ मार्च को संयुक्त मत्स्य संघ की स्थापना हुई। धौलपुर नरेश इस संघ के अस्थायी राजप्रमुख नियुक्त हुए। इस संघ की धारा सभा में २० सदस्य होंगे वैसे भरतपुर और अलवर रियासतें प्राह: दो महीने सीधी भारत सरकार के शासन प्रबन्ध में रहीं क्योंकि उनके खिलाफ कुछ भयंकर आरोप थे। भारत सरकार ने इन रियासतों के सामने दो सवाल रखे थे। एक तो यह कि ये रियासतें एक करके भारत सरकार के सिपुर्द करदी जाँय। दूसरा यह कि ये सब मिलकर एक संघ बनालें। राजाओं ने संघ बनाना हीं उपयुक्त समझा।
मत्स्यसंघ में शामिल होने वाली रियासतें—

१— अलवर २ भरतपुर ३ धौलपुर ४ करौली

क्षेत्रफल— ७५८९ वर्गमील

आबादी— १८३८०००

वार्षिक आय— १८३००००० रुपये

२५ मार्च १९४८ को तीसरा बड़ा संघ "सँयुक्त राजस्थान संघ" का निर्माण हुआ। इसके उद्घाटन के लिये बिजली तथा खान मंत्री श्रीयुक्त काका साहब गाड़गिल कोटा गये थे। इस संघ की सबसे बड़ी रियासत कोटा है और कोटा नरेश ही इस संघ के राजप्रमुख हुए थे।

इस संघ में सम्मिलित होने वाली रियासतें—

१ कोटा २ बासवाड़ा ३ बूंदी ४ डूँगरपुर ५ झालावाड़ ६ किशनगढ़ ७ परतापगढ़ ८ शाहपुरा ९ टोंक

क्षेत्रफल— १६८०७ वर्गमील

आबादी— २३३४०००

वार्षिक आय— १६३३६००० रुपये

२ अप्रेल १६४८ को संयुक्त विन्ध्य प्रदेश संघ की स्थापना हुई। इस संघ का उद्घाटन करते हुए खान और बिजली मंत्री श्री गाडगिल ने कहा—

"१५ अगस्त १६४७ की सुबह इस देश की स्थिति प्यासे "भिखारी के हाथों में दिये हुए एक पात्र" के सदृश थी किन्तु दुर्भाग्य वश वह पात्र तले में से फूटा हुआ था। लेकिन रियासती जनता की देशभक्ति भरी भावना, समझौते की प्रवृत्ति से एक महान राजनीतिक विश्वकर्मा के द्वारा देश में राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव होगया।

"वह राजनीतिक विश्वकर्मा सरदार पटेल हैं।"

इस संघ के राजप्रमुख महाराजा रीवां और उप राजप्रमुख महाराजा पन्ना घोषित किये गये।

इस अवसर पर सन्देश भेजते हुए सरदार पटेल ने कहा था—

"यदि जनता के साधारण जीवन में कोई भी सुधार न हो तो एकता और लोकतन्त्र दोनों ही बेकार हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सम्यक, सुदृढ़ और एकतायुक्त शासन की परमावश्यकता है।"

संयुक्त विन्ध्य प्रदेश में सम्मिलित होने वाली रियासतें—

१ रीवाँ २ पन्ना ३ अजयगढ़ ४ बावनी ५ बरूथा ६ बिजावर ७ छतरपुर ८ चरखारी ६ दतिया १० मैहर ११ नागौद १२ ओरछा १३ समथर १४ अलीपुर १५ बांका पहाड़ी १६ बेरी १७ भाईसौद १८ बिहार १६ बीजंना २० धुरवाई २१ गरौली २२ गोरिहार २३ जासो २४ जीगनी २५ कामता २६ राजुला २७ खनिया धाना २८ कोठी २६ लुगासी ३० बईगवान ३१ रेवाई ३२ पहरा ३३ पलदेव (नयागाम) ३४ सरीला ३५ सोहवाल ३६ ताराओ ३७ टोरी ३८ फतेहपुर।

क्षेत्रफल—२४५६८ वर्गमील

आबादी——३५६६०००

वार्षिक आय—२४३३०००० रुपये

इसके उपरान्त ५ अप्रेल को शासन व्यवस्था की दृष्टि से निम्नलिखित रियासतें बम्बई प्रान्त में मिला दी गईं—

१ बालसिनोर २ बांसदा ३ बरिआ ४ काम्बे ५ छोटा उदयपुर ६ धरमपुर ७ जौहर ८ लूनावाड़ा ६ राजपीपला १० साचिन ११ सन्त १२ ईडर १३ राधनपुर १४ विजयनगर १५ दांता १६ पालनपुर १७ जम्बू घोड़ा १८ सिरोही

इसके अलावा अन्य छोटी रियासतें, जागीरें तथा ताल्लुके—२७१ कुल रियासतों आदि का क्षेत्रफल—२७०७६ वर्गमील

आबादी—२६२४०००

वार्षिक आय—१३५००००० रुपये

इसी प्रकार १५ अप्रेल को निम्न लिखित पहाड़ी रियसतों का एक संघ बना कर भारतसरकार ने इसको सीधे अपने हाथों में ले लिया। इस सम्पूर्ण 'हिमाचल प्रदेश' की शासन व्यवस्था भारत सरकार ने संभाल ली।

हिमाचल प्रदेश में शामिल होने वाली रियासतों के नाम—

१—बाघल २ बाघट ३ बलसन ४ बशाहर ५ भज्जी ६ बीजा ७बिलासपुर ८ डार्कोटी ६ धामी १० जुब्बल ११ कलसिया १२ क्योंथल १३ कुमार सेन १४ कुनीहर १५ कुथार १६ महलोग १७ मंगल १८ नलगढ़ १६ सांगरी २० सिरमूर २१ थारोच २२ चाम्बा २३ मण्डी २४ सुकेत।

क्षेत्रफल—११२५४ वर्गमील

आबादी—१०४३०००

वार्षिक आय—६१०४००० रुपये

भारत सरकार की रियासती नीति पर प्रकाश डालते हुए भारत सरकार के रियासती विभाग के सुविज्ञ सैक्रेटरी श्री० वी० पी० मेनन ने १७ अप्रेल १६४८ को रोटेरी क्लब नई दिल्ली में लिखित भाषण दिया। श्री० वी० पी० मेनन ने कहा—

"रियासती मामलों में कदम रखने की हमारी नीति के विषय में काफी आलोचनाएं हुई हैं। भारत के इतिहास का कोई भी निष्पक्ष विद्यार्थी इस बात को स्पष्ट कर सकता है कि भारत सरकार का रियासतों के मामलों में जितना हाथ है, उसमें उन पर कोई भी दबाव नहीं डाला गया। यदि दबाव डालने जैसी कोई स्थिति नजर भी आई है तो वह घटनाओं के दबाव के कारण हुई है। यह कहना नितान्त गलत है कि घटनाओं से नरेश झुक गये।"

"एक तरफ भारत सरकार की उपरोक्त आलोचना हुई तो दूसरी ओर यह भी शिकायत हुई कि भारत सरकार की नरेशों के प्रति नीति बहुत ही मुलायम है और भारत सरकार भारत में सामन्तशाही अड्डे कायम रखना चाहती है। ये आलोचक यह भूल जाते हैं कि नरेशों की सार्वजनिक भावना और जनता की देश भक्ति पूर्ण उत्साह, भारत को एक संयुक्त लोकतन्त्री देश बनाने की इच्छा तथा शान्तिपूर्ण तरीकों से रियासती जनता को शक्ति और सत्ता हस्तान्तरित करने की प्रबल भावनाओं ने ही यह कार्य संभव किया है। इनके शुभ इरादों और देशभक्ति ने ही रियासती भारत का ढांचा बदला है। उनके इस कार्य की हम सराहना करते हैं।"

"स्वतन्त्रता के जन्म के साथ ही रियासतों की जनता में एक उत्कट अभिलाषा जागृत हुई कि पड़ौसी प्रान्तों में जिस कदर स्वतंत्रता का जनता उपभोग कर रही है उतनी ही स्वतंत्रता हमें भी अवश्य ही मिलनी चाहिये। इस उत्कट अभिलाषा का परिणाम यह हुआ कि रियासती जनता ने नरेशों के विरुद्ध सत्ता हस्तान्तर कर देने के लिये आन्दोलन चलाये। वे शासक जो जनता की अभिरुचि के जानकार थे, समय से पीछे नहीं रहे। उन्होंने अपनी प्रजा को जिम्मेदाराना हुकूमत फौरन ही सौंप दी। बड़ी रियासतों में यह समस्या सिर्फ इतनी ही बात से सुलझ सकती है कि वहां की शासन व्यवस्था में लोकतन्त्रात्मकता का प्रवेश कर दिया जाय। किन्तु छोटी रिया-

सतों में जो हमेशा से ही पराये आधारों पर जीवित रही हैं और जो स्वतंत्र इकाई के रूप में कभी अपना अस्तित्व कायम रख ही नहीं सकतीं। ऐसी रियासतों में जिम्मेदाराना हुकूमत कायम कर देना एक मजाक है। सबसे पहिले यह बात पूर्वीय रियासतों के मामलों में सिद्ध हुई जहां शासन और व्यवस्था इस हद तक पहुँच चुकी थी कि उससे पड़ोसी प्रान्तों को खतरा नजर आने लगा था। इन रियासतों के नाम उड़ीसा और छत्तीसगढ़ की रियासतें हैं। इनके पास ऐसा कोई भी साधन नहीं है जिससे वे आधुनिक ढंग की शासन व्यवस्था कायम कर सकें। इसके लिये सरदार वल्लभभाई पटेल और सम्बन्धित नरेशों की कटक और नागपुर में बातचीत हुई। वहां यह निश्चय हुआ कि इन रियासतों की सर्वोत्तम भलाई के लिये इन्हें पड़ौसी प्रान्तों में मिला देना ही श्रेयस्कर है। नरेशों के इस शुभ निर्णय के परिणाम स्वरूप जनता को सत्ता हस्तान्तरित करना बहुत ही आसान हो गया और इस प्रकार उपरोक्त छोटी छोटी रियासतें प्रान्तों में मिला दी गईं। इससे उनको प्रान्तों के समान ही साधन और सुविधाएँ प्राप्त हो गईं।"

"इस निर्णय में जिस आधारभूत सिद्धान्त का सहारा लिया गया है और जिस सिद्धान्त को दूसरे मामलों में अभी तक व्यवहृत किया गया है, वह यह है कि कोई भी लोकतन्त्र या लोकतन्त्री संस्था तभी क्रिया शील हो सकती है जब कि उसे जिस इकाई में व्यवहृत की जाय वह किसी भी लोकतन्त्री अस्तित्व में जिन्दा रह सके। कोई भी रियासत क्षेत्रफल की बेहद कमी, साधनों की न्यूनता और स्थिति की अपूर्णता के कारण आजकल की शासन व्यवस्था अपने यहाँ कायम नहीं कर सकती, इसीलिये लोकतन्त्री करण और समूहीकरण ही सर्वोत्तम उपाय माने गये। पूर्वीय रियासतों के विलीय करण के कारण दूसरी रियासतों के लोगों को भी अपनी साधन हीनता आदि कमियों को दूर करने का उपाय दिखाई देने लगा। परिणाम यह

हुआ कि रियासतोंका विलीय करण इस हद तक पहुँच गया कि अभी तक ३३५ रियासतें, जिनका कुल क्षेत्रफल ६३७८१ वर्ग मील, आबादी १२६६३२७३ और वार्शिक आय ५७२२०२८६ रुपये हैं, प्रान्तों में शामिल हो चुकी है और जो रह गई हैं वे शीघ्र ही प्रान्तों में सम्मिलित होने वाली हैं।

"यह नया कदम उठाया गया है उसमें अभी भी काफी बड़ी बड़ी रियासतें शेष हैं जो प्रान्तों में शामिल तथा संघों मे सम्मिलित नहीं की गई हैं। वे इतनी बड़ी रियासतें है कि उनको अलग इकाई के रूप मे ही स्वीकार कर लिया गया है और उन्हें तब तक अलग इकाई के रूप में रहने का हक है जब तक नरेश या जनता सम्मिलित रूप मे इस बात की ख्वाहिश न करें कि उन्हे पड़ौसी प्रान्त में या उसके साथ दूसरी रियासतों के सम्मिलित संघ में शामिल कर लिया जाय।"

रियासतों को इस प्रकार सम्मिलित करने या विलीय करण करने की महत्वपूर्ण प्रणाली ने किसी प्रकार देशी रियासतों की समस्याओं को हल कर दिया है यह इस बात से ही स्पष्ट हो जायेगा कि १५ अगस्त १९४७ को इस देश में प्रायः ६०० स्वतन्त्र इकाइयाँ थीं जिन्हें रियासतें कहते थे। प्रायः एक महीने में ही विलीयकरण या संघी करण प्रणाली द्वारा ये कुल संख्या के बीसवें भाग से भी कम रह गईं। सब से बड़ी बात तो यह हुई कि रियासतों के इस बाह्य स्वरूपों के परिवर्तन से स्वभावतः उनके आन्तरिक स्वरूपों में भी महत्व पूर्ण परिवर्तन हो गये हमने रियासतों के विषय में जिन प्रणालियों को भी अपनाया है उनमें से सभी में हमने रियासतों की भावी शासन व्यवस्था का पूरा खयाल रखा है यानी हमने नरेशों से पूर्ण सत्ता लेकर जनता को सौंप दी है। उन रियासतों में, जो केन्द्र के आधीन हुई हैं या प्रान्तों में विलीन कर दी गई हैं, सत्ता हस्तान्तरित स्वयमेव ही हो गयी है। क्योंकि वे ऐसी लोकप्रिय प्रान्तीय सरकारों या केन्द्र की अंग बन गई हैं जो अपनी शासन व्यवस्थाओं और

सुविधाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। सौराष्ट्र संघ या इसी प्रकार के अन्य संघों के बिषय में यही कहना उचित है कि इनके प्रतिज्ञा पत्रों के अनुसार ही उनका विधान बनेगा और यह निश्चय है कि उससे जनता के हाथों में पूर्ण सत्ता आ जायेगी।"

"बड़ी रियासतें जो न तो संघ में शामिल हुई हैं और न प्रान्तों में मिली हैं, उनमें पूर्ण सत्ता जनता को हस्तान्तरित करने के आन्दोलन स्वभावतः ही विकसित हो गये हैं। हैदराबाद को छोड़ कर सभी बड़ी रियासतों ने या तो सत्ता जनता को सौंप दी है या सौपने की घोषणा करदी है। इस बात पर विश्वास करने का हमारे पास कोई कारण नहीं है कि नरेश सार्वजनिक सेवा की भावना से परे हैं या सत्ता हस्तान्तरित करने से हिचकिचाते है जैसा कि उनकी ही श्रेणी के दूसरे नरेशों ने दूसरी रियासतों में किया है।"

१८ अप्रैल १६४८ को उदयपुर रियासत भी राजस्थान संघ में शामिल हो गई इसके पूर्व राजस्थान संघ का निर्माण २५ मार्च १६४८ को हो चुका था। इस नये राजस्थान संघ के उद्घाटन के लिये भारत सरकार के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू उदयपुर गये थे। उदयपुर के महाराणा इस नये राजस्थान संघ के राजप्रमुख और कोटा के महाराजा राजप्रमुख के बजाय उपराज प्रमुख बनाये गये। उदयपुर के शामिल हो जाने से संघ की आबादी, वार्षिक आय और क्षेत्रफल में निम्न प्रकार से बढ़ती हुई—

उदयपुर रियासत

क्षेत्रफल—१३१७० वर्गमील

आबादी—४२६००००

वार्षिक आय | ३१७००००० रुपये

६ मई १६४८ को पूर्वीय पंजाबी रियासतों के संघ का निर्माण हुआ। इस संघ के शर्तनामे पर दस्तखत करने वाली निम्नलिखित रियासतें थीं—

१—पटियाला २ कपूरथला ३ झींद ४ नाभा ५ फरीदकोट ६ मलेरकोटा ७ नलगढ़ इससंघ के राजप्रमुख पटियाला नरेश और उपराजप्रमुख कपूरथला के महाराजा हुए।

इस महत्व पूर्ण अवसर पर सरदार पटेल ने अपने संदेश में कहा—"मैं इस महत्वपूर्ण अवसर पर उपरोक्त नरेशों की देशभक्ति, की भावना की भूरिभूरि प्रशंसा करता हूँ। इस भावना ने मात्रभूमिकी शक्ति बढ़ाने में काफी मदद की है। इस संघ के निर्माण में सब से ज्यादा मेहनत महाराजा पटियाला ने ही की है पटियाला रियासत का भारतीय विधान परिषद में स्वतंत्र प्रतिनिधित्व है और हर तरह से वह रियासत स्वतंत्र रह सकती है। लेकिन अपनी सार्वजनिक प्रवृत्ति के कारण महाराजा साहब ने अपनी रियासत को संघ में सम्मिलित कर देने की इजाजत दे दी। इस एकार उन्होंने अपने अपूर्व देश प्रेम का परिचय दिया है।"

"मुझे विश्वास है कि इस संघ का भविष्य उज्वल है और साथ ही मुझे यह भी भरोसा है कि यह नया संघ देश के संरक्षण में सब से बड़ा सहायक सिद्ध होगा।

इसका उत्तर देते हुए महाराजा पटियाला ने कहा—

"हम पंजाब के सैनिक हैं और हमेशा सैनिक ही रहेंगे। सरदार पटेल वास्तव में एक महान नेता हैं और हम हमेशा ही हर समस्या को यथार्थवादी एवं व्यवहारिक ढँग से सुलझाने में उनको हर तरह सहायता करेंगे। मैं और मेरे साथी नरेशों की कामना है कि वे शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो जायँ।"

८ मई १६४८ को भारतीय संघ की रियासतों के राजप्रमुखों और मंत्रियों की भारत सरकार के रियासती सैक्रेटरी श्री वी० पी० मेनन के सभापतित्व में एक बैठक हुई। इस बैठक में निम्नलिखित उपस्थिति थी—

१—जामसाहब नवानगर—सौराष्ट्रसंघ के राजप्रमुख

श्री० यू० एन० धेबर—प्रधान मन्त्री सौराष्ट्र संघ
श्री बलवन्त राय मेहता—उपप्रधान मन्त्री संघ

२—महाराजा रीवाँ—राजप्रमुख विन्ध्यप्रदेश
श्री० आर० एम० देशमुख—प्रधान मन्त्री विन्ध्य प्रदेश

३—महाराजा धौलपुर—राजप्रमुख मत्स्य संघ
श्री शोभाराम—प्रधान मन्त्री ,, ,,

४—श्री माणकलाल वर्मा—प्रधान मंत्री राजस्थान संघ
श्री गोकुललाल असावा—राजस्व मंत्री ,, ,,

श्री एस० वी० राममूर्ति—राजप्रमुख राजस्थान संघ के सलाहकार इस बैठक में भारत सरकार और रियासतों के बीच नये प्रतिज्ञा पत्र (Instrument of Accession) के मसविदे पर वाद विवाद हुआ। इस नये प्रतिज्ञापत्र के अनुसार भारत सरकार के हाथ में विदेशी मामलों, यातायात तथा सुरक्षा के अलावा दूसरे विषयों के भी व्यवस्था तथा शासन सम्बन्धी अधिकार भी आ जाते हैं। इस संशोधित प्रतिज्ञापत्र से भारत सरकार के हाथ में उन तमाम विषयों का प्रभुत्व आ जाता है जो गवर्नमेंन्ट ऑफ इंडिया एक्ट १६३५ को ७ वीं सूची की १ ली और ३ री लिस्ट में दर्ज हैं। इसका यह आशय हुआ कि इस संशोधित प्रतिज्ञापत्र के द्वारा केन्द्रीय सरकार के हाथों में संघीय तथा अन्य तत्सम्बन्धी फेहरिस्तों के सभी विषयों के पूर्ण शासन तथा व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार आ जायेंगे। उपरोक्त पूर्ण अधिकारों की प्राप्ति के अलावा इस प्रतिज्ञापत्र के द्वारा अधिकृत रियासतों के वे सम्बन्ध भी समाप्त हो जायेंगे जिनके द्वारा वे स्वतंत्र और अलग इकाई के रूप में मानी जाती है। ये नया प्रतिज्ञापत्र रियासतों और भारत सरकार के सम्बन्धों को हमेशा के लिये दृढ़ करने का अन्तिम उपाय होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि बैठक में उपस्थित होने वाले नरेशों ने इसकी प्रायः सभी शर्तों को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है। बैठक में उपस्थित प्रतिनिधियों ने अलबत्ता उन विषयों

के बारे में गहरा विरोध प्रकट किया जिनका सीधा असर रियासती संघों की आय एवं लगान आदि की आमदनी पर पड़ता है। इसके विषय में रियासती विभाग ने राजप्रमुखों और उनके मंत्रियों को यह विश्वास दिलाया है कि उनका उद्देश्य नव निर्मित संघों की आय पर हाथ डालने का नहीं है, वरन वे यह चाहते हैं कि कुछ ऐसे सिद्धान्त इख्तयार किये जायँ जिससे रियासतों और प्रान्तों की शासन व्यवस्था जहाँ तक हो सके, एक सी हो जाय। नये प्रतिज्ञा पत्र का एक मात्र उद्देश्य यही है कि जहाँ तक हो सके इकाइयों और केन्द्र की शासन व्यवस्था में समानता आ जाये।

अभी इस नवीन प्रतिज्ञापत्र पर विचार हो रहा है और इस पर अमल करने में अभी काफी समय की आवश्यकता है।

२८ मई १९४८ को पांचवें और सब से विस्तृत संघ का निर्माण हुआ इस संघ का नाम "मध्यभारत संघ" रखा गया। इस संघ का क्षेत्रफल ४७००० वर्गमील, वार्षिक आय ८००००००० करोड़ रुपये और आबादी ७२ लाख है। इसमें निम्नलिखित रियासतें सम्मिलित हुई हैं—

१—ग्वालियर २ इन्दौर ३ अलीराजपुर ४ बड़वानी ५ देवास सीनियर ६ देवास जूनियर ७ धार ८ जावरा ९ झाबुआ १० खिचली पुर ११ नरसिंहगढ़ १२ राजगढ़ १३ रतलाम १४ सैलाना १५ सीतामऊ १६ जोबट १७ काठीवाड़ा १८ कुरवाई १९ माथवार २० पिपलोदा।

रतलाम रियासत की बाजना तहसील

सैलाना रियासत की रावटी तहसील

अलीराजपुर रियासत की भाबरा, चांदपुर, धकतला नानपुर और राथ तहसीलें।

बड़वानी रियासत के पनेसमल परगना, राजपुर परगना, सिलावाढ़ परगने झाबुआ रियासत की झाबुआ, रंभापुर, रानपुर, थादंला, उमराव तथा मिनोर तहसीलें।

इन्दौर रियासत के, निसारपुर, पेटलाबद, सेगांव, सेंधवाड़

परगने धार रियासत के मारडू, कुक्षी तथा नीमानपुर जिले ग्वालियर रियासत का सरदारपुर जिला।

इस संघ का उद्घाटन २८ मई को ग्वालियर में पण्डित नेहरू के कर कमलों द्वारा हुआ। राजप्रमुख महाराजा ग्वालियर और उप-राज प्रमुख महाराजा इन्दौर हुए।

इस अवसर पर भाषण देते हुए पण्डित नेहरू ने कहा—

"इस संघ के निर्माण ने भारतीय इतिहास में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है। आज से ३० वर्ष पहिले हमने स्वतंत्र भारत का नक्शा बनाया था। इसमें एक भाग तो रियासती भारत का था। मुझे आज यह कहते सन्तोष होता है कि उस नक्शे की पूर्ति तो हम कर चुके और वह भी बड़ी शीघ्रतापूर्वक हुई। इस कार्य के लिये मैं सरदार पटेल, श्री मेनन, नरेशों तथा इस संघ की जनता को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। उपरोक्त महानुभावों ने इस संघ के निर्माण में बड़े सहयोग से काम किया है। इस सहयोग का नतीजा यह हुआ है कि भारतवर्ष का सारा नक्शा ही बदल गया है और अब श्री मेनन भारत का दूसरा ही नक्शा बनाने में व्यस्त हैं।"

"पहिले की खण्डित रियासतों की अपेक्षा आज का संयुक्त संघ ज्यादा शक्तिशाली हो गया है। मेरा विश्वास है कि जिन महानुभावों ने इस संघ के निर्माण में जितना सहयोग एवं तत्परता दिखाई, है, वे भारत की अन्य समस्याओं के हल करने में भी हमारा उतना ही साथ देंगे।"

. "वास्तविक शत्रु कहीं बाहर से आने वाला नहीं है। हमें इसी बात का ध्यान रखना चाहिये कि शत्रु हमें भीतर से ही चोट न पहुँचाये। मुझे बाहरी दुश्मन का कोई भय नहीं है। यदि हमें स्वतन्त्र रहना और महान व्यक्ति बनना है तो आपस में प्रेम, सद्भावना एवं एकता रखना होगी और जरा-जरा सी बातों के पचड़ों में पड़ने जैसी

स्थिति पैदा नहीं करना चाहिये। क्योंकि आगे चलकर हमारे सम्मुख जो परेशानियाँ आयेंगी वे इन परेशानियों से बढ़कर नहीं होंगी, जिनका हम सामना सफलतापूर्वक कर चुके हैं। यदि हम सब अपने दिलों से एकत्रित हो जायँ तो हम हर कठिनाई का बहादुरी के साथ सामना कर सकते हैं। आज हमारी इस बात की जाँच हो रही है कि हम स्वतन्त्र राष्ट्र की जिम्मेदारियों को सँभाल भी सकते हैं या नहीं।''

देश के लोग साधारण जनता की भलाई के विषय में काफी बातें करते हैं लेकिन व्यावहारिक रूप से कुछ करके दिखाने के लिये कोई भी तैयार नहीं है। कोरे नारे लगाते रहने से कुछ होने वाला नहीं है। अपनी स्वतन्त्रता भी हम इन ढङ्गों से कायम नहीं रख सकेंगे। हमें अभी एक महान् राष्ट्र बनाना है। हम चाहते हैं कि दुनिया हमारा प्रभाव स्वीकार करे। ऐसा हम तभी कर सकते हैं जब कि हम सही रास्ता इख्तयार करें। बुराइयाँ हमेशा मनुष्य को खतरे में डाल देती हैं। हो सकता है कि किसी राष्ट्र को कुछ समय के लिये गलत रास्ते पर चलने से कुछ प्राप्त हो जाय पर अन्त में जाकर वह उन बुराइयों के कारण स्वतः मुसीबतों में फँस जाता है। सरकार ने यह पहिले ही घोषित कर दिया है कि वह किसी भी संघ के निर्माण में जबर्दस्ती नहीं करना चाहती। फिर भी समय की जबरदस्त माँग ने खुद ही ऐसा करने पर नरेशों को मजबूर कर दिया है। भारत सरकार के सामने सामाजिक एवं आर्थिक समस्यायें अभी हल करने को पड़ी हैं। इन समस्याओं को अंग्रेजों ने १५० साल तक ज्यों की त्यों पड़े रहने दी हैं। अंग्रेजों के समय में हमारा जीवन बद्ध हो गया था किन्तु हम अब वैसी स्थिति नहीं रहने देना चाहते। हम या तो इन समस्याओं को निबटा कर ही रहेंगे या फिर नष्ट ही हो जायँगे।''

''मैं आपको भारत सरकार की ओर से हमेशा संभाव्य सहायता तथा सहयोग प्रदान करते रहने का विश्वास दिलाता हूँ। हम

हमेशा ही आपको कठिनाइयों को हल करने में आपको उचित मार्ग-प्रदर्शन करते रहेंगे।"

"मैं महाराजा ग्वालियर और महाराजा इन्दौर को विशेष रूप से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने अपनी रियासतों के बहुत बड़ी होने पर भी संघ मे शामिल होने का निश्चय किया। वे चाहते तो स्वतन्त्र भी रह सकते थे। उन्होंने ऐसा इसलिये किया कि वे जानते थे कि सम्मिलित होकर हम अकेले रहने की अपेक्षा विशेष तरक्की कर सकते हैं।"

इसके बाद राजप्रमुख महाराजा ग्वालियर ने अपने भाषण में कहा—

"चाहे खतरा उत्तर या दक्षिण से पैदा हो, इस संघ का प्रत्येक व्यक्ति अपने देश की सेवा के लिये अपने प्राण तक देने को उद्यत है। साधारण समय में हमारी नीति भारतीय संघ को हर प्रकार की सहायता देने की ही रहेगी। हम हमेशा जनता की भलाई और प्रगति की ओर ही ध्यान देते रहेंगे।"

"महात्मा गान्धी की दूरदर्शिता के परिणामस्वरूप ही हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई है। मैं ऐसे समय जिसे 'भारतीय इतिहास में एक नया युग' कहा जा रहा है, देश के महान् नेताओं का, भारतीय जनता का आशीर्वाद चाहता हूँ।"

"मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा सरदार पटेलकी बुद्धिमत्ता-पूर्ण राजनीति की विशेष रूप से प्रशंसा करता हूँ जो आज देश की पतवार सँभाले हुए हैं। यदि चाहते तो ग्वालियर और इन्दौर स्वतंत्र इकाई के रूप में बाहर भी रह सकते थे। लेकिन राष्ट्र के उज्वल भविष्य, देश के महान् हितों तथा महान् नेताओं की आज्ञा पालनार्थ ही मैंने अपनी रियासत को संघ में सम्मिलित करना स्वीकार कर लिया और मुझे पूरा यकीन है कि मेरे भाई महाराजा साहब इन्दौर भी इसी पथ पर चलेंगे। इसके अलावा मैं अन्य राजाओं की भी सराहना किये बिना नहीं रह सकता।"

"इस भूमि ने कई राजा महाराजाओं तथा राज्यों के उत्थान और पतन को देखा है। इसी भूमि पर महान् राजाओं मसलन विक्रमादित्य, यशोधर्मन, भोज आदि ने राज्य भी किया है। हम अपने प्रति दिन के कार्यों में उन्हीं आदर्शों पर चलना चाहते हैं जिन पर चल कर उन महान नरेशों ने प्रसिद्धि पाई।"

"इस संघ के निर्माण से हमारी समस्याओं का अन्त नहीं हो गया है बल्कि समस्याएँ तो अब आरम्भ हुई हैं और इनका हल तभी निकल सकेगा जबकि संघ का प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को महसूस करने लगें। जनता स्वयं सोच-समझकर अपना नेता चुन ले और यह भली भाँति याद रखे कि उनका सर्वोपरि हित देश के कल्याण में है। मन्त्रियों को चाहिये कि वे देश की सर्वोपरि प्रगति का पूरा ध्यान रखें और किसी सम्प्रदाय, दल या विचारधारा के प्रभाव से प्रभावित न हों। मैं विश्वास करता हूँ कि मन्त्रिमण्डल अपनी जिम्मेदारियों और कर्तव्यों को भली भाँति पहिचानेगा और जनता की सेवा के योग्य अपने आप को साबित करेगा।"

इसके बाद २२ जून १६४८ को मालवा संघ में निम्नलिखित ३ रियासतों का और समावेश हो गया—

१—कुरवई, २—मुहम्मदगढ़ और ३—पथारी।

पूर्वीय पंजाबी रियासतों का संघ ता० ६ मई १६४८ को पहिले ही निर्माण हो चुका था। किन्तु वहाँ के दलों में मन्त्रियों के विषय में मतभेद हो गया और इसलिये इस संघ का निर्माण होकर ही रह गया। अन्त में डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद के बीच में पड़ कर आपसी समझौता करा देने के बाद फिर बकायदा १५ जुलाई १६४८ को पटियाला में सरदार पटेल के करकमलों द्वारा "पटियाला तथा पूर्वीय पंजाबी रियासतों का संघ" का उद्‌घाटन समारोह मनाया गया। अपनी ३ माह की बीमारी के बाद पहिली बार सरदार पटेल का सार्वजनिक भाषण पटियाला में १५ जुलाई को हुआ।

इस अवसर पर भाषण देते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"पटियाला और पूर्वीय पंजाबी रियासतों के संघ को नवीन स्वतन्त्र भारत में बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण भाग लेना है। इस संघ की जनता का भी कर्तव्य है कि वह भी अपनी सेवाएँ इस संघ को प्रदान करके स्वतन्त्र भारत के निर्माण में सहयोग प्रदान करे। यद्यपि भारत की पुरानी सीमाएँ नष्ट हो चुकी हैं और नई सीमा का निर्माण हो चुका है। फिर भी भारत की हार्दिक अभिलाषा है कि वह अपनी पड़ौसी रियासतों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध ही स्थापित रखेगा।"

"वर्तमान समय का एक-एक दिन एक-एक शताब्दी के समान है। आप देख रहे हैं कि राष्ट्र के राष्ट्र एक-एक रात में नष्ट हो रहे हैं और बड़े-बड़े साम्राज्यों का देखते-देखते पतन हो चुका है। यदि हमारे देश को मुसीबतों और खतरों से बचना है तो उसे अत्यन्त ही शीघ्र संघीकरण द्वारा देश में लोकतन्त्रीकरण कर डालना चाहिये।"

महाराजा पटियाला ने देश के संघठन तथा एकीकरण के कार्य में वास्तव में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। उन्होंने हमारा साथ उस समय दिया है जब कि मुश्किल से दो-चार राजा ही हमारा साथ देने का इरादा रखते थे और जब यहाँ के राजा-महाराजा इतने भागों के अलावा देश के और भी कई टुकड़े करने का इरादा कर रहे थे। यह पटियाला महाराजा का ही देशभक्तिपूर्ण कार्य था कि उन्होंने यथा-पूर्व समझौते पर दस्तखत कराने के लिये कई नरेशों को अपने पक्ष में कर लिया। मैं आज इस अन्तिम संघ के निर्माण-कार्य में भाग लेकर बहुत ही सुखी हूँ। यह उस महराब की चाबी है जो भारत सरकार ने देश के एकीकरण के लिये अनेकों संघों के रूप में निर्माण की है। अब यह जनता का कार्य है कि वह इस संघ की रक्षा करे।"

इस भाषण का उत्तर देते हुए महाराजा पटियाला ने कहा—

"मैं भारत सरकार के उपप्रधान सरदार पटेल को यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि इस नवीन संघ की जनता अपनी परम्परागत

बहादुरी और वीरता का ही अनुकरण करेगी और आवश्यकता पड़ने पर देश की रक्षा के लिये हर तरह की कुर्बानी देने को तैयार रहेगा। पहिले राजाओं के हाथ अंग्रेजों ने इस तरह बाँध रखे थे कि वे चाहते तो भी देश की सेवा नहीं कर सकते थे। अब हम आजाद हैं। अतः मेरा विश्वास है कि देश के नरेश देश को महान बनाने में यथाशक्ति अपना सहयोग प्रदान करेंगे।"

इस संघ का क्षेत्रफल—१०११६ वर्गमील

आबादी—३४२४०००

वार्षिक आय—५ करोड़ रुपये

ता० १८ व १६ जुलाई को भारत सरकार के रियासती विभाग के सदस्यों तथा राजप्रमुखों और प्रधान मंत्रियों की बैठकें हुई। उन बैठकों में यह तै हुआ कि सभी रियासतें और संघ इस तरह के तरीके इख्तयार करें जिससे प्रान्तों के समान ही शीघ्र रियसातों में भी शासन व्यवस्था कायम हो जाय। दूसरे इस कान्फरेन्स में वह भी तय हुआ कि भारतीय विधान परिषद् में प्रत्येक संघ का किस प्रकार प्रतिनिधित्व किया जाय। काफी गम्भीर वाद विवाद के उपरांत यह तै हुआ कि —

मध्यभारत संघ के भारती विधान परिषद में ७ प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे

विन्ध्य प्रदेश संघ के	,,	,,	४	,,	,,
पटियाला और पूर्वी पंजाब रियासतों के संघ से			३	,,	,,
सौराष्ट्र संघ के	,,	,,	४	,,	,,
राजस्थान संघ के	,,	,,	४	,,	,,
मत्स्य संघ के	,,	,,	२	,,	,,

उड़ीसा की रियासतों के ४ और बम्बई की प्रान्तमें सम्मिलित होने वाली रियासतों के भी ४ प्रतिनिधि रहेंगे। मध्यप्रान्त में जो रियासतें सम्मिलित हुई हैं उनके ३ प्रतिनिधि रहेंगे। हिमाचल प्रदेश

का १ जूनागढ़ का १ जम्मू और काश्मीर के ४ प्रतिनिधि केन्द्रीय धारा सभा में रहेंगे। जेसलमेर, बिलासपुर और टेहरी गढ़वाल का सम्मिलित रूप में १ प्रतिनिधि और त्रिपुरा ,मनीपुर और खाशिया पहाड़ियों का भी सम्मिलित रूप में १ प्रतिनिधि रहेगा।

काश्मीर—जम्मू और काश्मीर रियासतें १५ अगस्त १६४७ के पूर्व अंग्रेजी सरकार के साथ सन्धिपत्रों द्वारा सम्बद्ध थी। भारतीय अन्य रियासतों की तरह उसकी भी कोई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं है। १५ अगस्त १६४७ को देश स्वतन्त्र हुआ और भारत और पाकिस्तान नामक दो राष्ट्रों का निर्माण हुआ। भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट १६४७ के अनुसार देश की तमाम रियासतें अपनी इच्छानुसार दोनों में से किसी एक राष्ट्र में सम्मिलित होने के लिये स्वन्तत्र हो गईं। सत्ता हस्तान्तर करने के समय रियासतों की क्या स्थिति रहेगी इसका स्पष्टीकरण अंग्रेज सरकार ने अपनी ३ जून १६४७ की और उसके पूर्व ब्रिटिश कैबिनेट मिशन ने अपने १६ मई १६४६ के वक्तव्य में कर ही दिया था। इसके अनुसार अधिकांश रियासतें भारत सरकार में सम्मिलित हो गईं और उन्होंने नये यथापूर्व समझौते और अहदनामों पर दस्तखत कर दिये। काश्मीर रियासत ने अपनी भौगोलिक स्थिति के आधार पर भारत और पाकिस्तान दोनों में सम्मिलित होने का इरादा प्रकट किया किन्तु वास्तव में वह पाकिस्तान के साथ सम्मिलित हो गई। भारत के साथ तो वह तब शामिल हुई जब कि कबाइलियों द्वारा काश्मीर के खत्म होने में कुछ ही घन्टे बाकी रह गये थे। काश्मीर भारत में २६ अक्टूबर १६४७ को शामिल हुई।

यथापूर्व समझौते में दोनों राष्ट्रों ने कोई भी परिवर्तन नहीं किया था। जो स्थिति और शर्तें अंग्रेज सरकार के साथ थीं, वे ज्योंकी त्यों कायम रखी गई थीं। पाकिस्तान को जब यह पता लगा कि काश्मीर भारत में भी सम्मिलित होना चाहता है तो उन्होंने काश्मीर का इरादा

बदलने के लिये अन्न, पैट्रोल तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का काश्मीर भेजा जाना बन्द कर दिया। इस आर्थिक रुकावट के साथ ही साथ उन्होंने पाकिस्तान और काश्मीर के बीच आवागमन के साधन भी बन्द कर दिये। इन रुकावटों से रियासत वैसे ही परेशान हो रही थी कि काश्मीर की सीमा पर कबाइलियों के हमले भी जारी होगये।

इधर तो रियासत में ये परेशानियाँ पैदा कर दी गई थी और इधर उन्ही दिनों देश के विभाजन के परिणाम स्वरूप दोनों पंजाबों में जोरों पर हिन्दू मुस्लिम दंगे हो रहे थे। दंगों के परिणाम स्वरूप पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों राष्ट्रों के शरणार्थी इधर से उधर और उधर से इधर आने और जाने लगे। काश्मीर रियासत का दक्षिणी भाग इस आवागमन का जबरदस्त मध्यवर्ती अड्डा बनगया। काश्मीर पर कबाइलियों के हमले १५ अगस्त १६४७ यानो देश के विभाजन के कुछ दिनों बाद आरम्भ हुए। उन्हीं दिनों महाराज काश्मीर ने अन्तिम निर्णय भारत में सम्मिलित होने के विषय में किया। २६ अगस्त १६४७ को किसी राजा याकूब खाँ का हजारा जिले की जनता की ओर से महाराजा काश्मीर को एक तार मिला जिसमें लिखा था कि पूंछ जिले में मुसलमानों पर भयंकर हमले हो रहे हैं अतः हजारा जिले के लोग आंतकित हो कर भाग रहे हैं। यदि आप प्रबन्ध नहीं करेंगे तो हम सशस्त्र हमला आपकी रियासत पर करेंगे। हम आपसे चाहते हैं कि आप अपनी फौजों को और हमलाइयों को रोकिये वरना परिणाम भोगने के लिये तैयार हो जाइये। सारे सितम्बर मास भर इसी प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त होती रहीं कि सीमावर्ती प्रदेश से काश्मीर में हमलाई घुस रहे हैं। काश्मीर रियासत ने पाकिस्तान से इस बात की काफी शिकायत की किन्तु पाकिस्तान के अधिकारियों ने सिवाय कागजी आश्वासनों के कुछ भी नहीं किया। ३१ अगस्त १६४७ को काश्मीर रियासत के सेनापति

मेजर जनरल स्कॉट ने रियासत की परिस्थिति के विषय में एक रिपोर्ट भेजी। पूंछ के विषय में उन्होंने लिखा था कि यातायात के सब साधन नष्ट हो चुके हैं। बेतार के तार और तार सुधर रहे हैं; २० से ५० तक व्यक्ति मारे जा चुके हैं। उन लोगों को पकडा जा रहा है जिन्होंने लूट, खून तथा बरबादियाँ की हैं। हजारा और रावलपिन्डी जिलों की स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक है। बाग तहसील के हमलों में पाकिस्तान का स्पष्ट हाथ है। इधर पाकिस्तान में भी प्रचार हो रहा था कि रियासत की सशस्त्र फौज मुसलमानों का सत्यानाश कर रही है। ४ सितम्बर १९४७ को मेजर जनरल स्कॉट ने रिपोर्ट की कि ५०० कबाइली हरी और खाकी वर्दी पहिने हुए उत्पात और बर्बादी कर रहे हैं। इस बात की रिपोर्ट पाकिस्तान और ७ वीं घुड़ सवार सेना के सेनापति जनरल ओ० डो० टी० लोबट को कीगई कि २०६ से ३०० तक के दल काइटा और मुरी तहसील से जो पाकिस्तान में हैं, काश्मीर के गावों में लूट और कत्ल कर रहे हैं और वे झेलम पार करके पंजार क्षेत्र तथा सात मील उत्तर में ओवन फेरी तक धावा कर रहे हैं। मेहरबानी करके उनके हमले रोकिये और उन्हें लौटा लीजिये। १२ सितम्बर को मेजर जनरल स्कांट ने तीसरी बार रिपोर्ट की कि पूंछ जागीर में शान्ति स्थापित करदी गई है किन्तु अक्टूबर के पहिले हफ्ते में फिर पूंछ पर हमले हुए। ४ अक्टूबर को टॉमीगनों के साथ चिराला क्षेत्र में हमलाइयों ने हमले किये। बाग से रिपोर्ट मिली कि रियासती फौजों और कबाइलियों में घमासान युद्ध हुए। मीरपुर में भी हलचल जारी थी ओवन का किला दुश्मनों ने घेर लिया जिसे बड़ी कठिनाई से रियासतों की फौजों ने १५ अक्टूबर तक खाली करवाया। १८ अक्टूबर को कोटली-पूछ की सड़क बरबाद करदी गई और घमासान युद्ध भी हुआ। इसी अरसे में भीमभार में लारियों तथा आधुनिक ढंग के हथियार आदि दिखाई दिये। २० अक्टूबर को मीरपुर के वजीर ने रिपोर्ट की कि दुश्मन चेचियम और मॉगला

के आसपास एकत्रित हो रहे हैं २२ अक्टूबर की रिपोर्ट में वजीर ने बताया कि ओवन पर कायदे के अनुसार ही हमला हुआ है। २३ अक्टूबर को कोटली मे घमासान युद्ध होने की रिपोर्ट प्राप्त हुई और कोटली के तमाम यातायात के मार्ग व साधन बरबाद कर दिये गये।

२४ अक्टूबर १९४७ को भारत सरकार के पास काश्मीर रियासत से पहिली बार सहायता की मांग की गई। इसके पहिले भारत सरकार के साथ रियासत का न तो कोई राजनीतिक और न कोई फौजी सम्बन्ध ही था। २४ अक्टूबर को भारत के सेनापति को ज्ञात हुआ कि मुजफ्फराबाद छिन गया है। इस समय तक भारत सरकार खामोश बैठी थी। २५ अक्टूबर को भारत सरकार ने सड़क और हवा से काश्मीर को फौजें भेजने की तैयारियाँ कीं। २६ अक्टूबर को काश्मीर ने भारत सरकार के यथापूर्व सममौते तथा अन्य अहदनामे पर दस्तखत कर दिये। २७ अक्टूबर को भारत सरकार की फौजें काश्मीर रवाना होगईं।

यह प्रार्थना महाराजा काश्मीर ने, जम्मू और काश्मीर नेशनल कान्फरेन्स के अध्यक्ष तथा रियासत के जबरदस्त नेता शेख अब्दुल्ला की सलाह से की थी। यह प्रार्थना कायदे के अनुसार ही की गई थी। शर्तनामे में भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया था कि रियासत में शान्ति स्थापित होते ही जनमत संग्रह किया जाय—

महाराजा काश्मीर ने जो पत्र भारत के गर्वनर जनरल लार्ड माउन्ट बेटन को लिखा था, वह इस प्रकार था—

२६ अक्टूबर ४७

प्रिय लार्ड माउन्ट बेटन,

आज मुझे आपको यह सूचित करना है कि मेरे राज्य में एक बहुत ही संकट पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई और मैं आपकी सरकार से अविलम्ब सहायता की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि आपको विदित है जम्मू और काश्मीर राज्य अभी भारत या पाकिस्तान दोनों डोमीनियनों में से किसी में भी शामिल नहीं हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से मेरा राज्य दोनों डोमीनियनों के साथ जुड़ा हुआ है। दोनों के साथ उसके महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध हैं। इनके अतिरिक्त मेरे राज्य की सीमाएँ चीन तथा रूस से मिली हैं। भारत तथा पाकिस्तान अपने वैदेषिक सम्बन्धों की दृष्टि से इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते।

मैंने इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये समय चाहा कि काश्मीर को किस डोमीनियन में शामिल होना चाहिये और क्या दोनों डोमीनियनों और मेरे राज्य के हित में यह उचित न होगा कि काश्मीर स्वतंत्र रहे। हाँ, यह तो निश्चित ही है कि दोनों डोमीनियनों के साथ काश्मीर के सम्बन्ध मित्रता पूर्ण ही रहेंगे।

अतएव भारतीय डोमीनियन तथा पाकिस्तान दोनों से काश्मीर ने यथापूर्व समझौता करने के लिये कहा। पाकिस्तान सरकार ने यह व्यवस्था स्वीकार करली। भारतीय डोमीनियन ने मेरी सरकार के प्रतिनिधियों के साथ और बातचीत करना चाहा, लेकिन निम्नलिखित घटनाओं के कारण मैं इस बातचीत की व्यवस्था न सका। वास्तव में यथापूर्व समझौते के अनुसार पाकिस्तान सरकार काश्मीर में डाक और तार की व्यवस्था कर रही है।

यद्यपि पाकिस्तान सरकार के साथ हमारा यथापूर्व समझौता है किन्तु उस सरकार ने हमारे राज्य में खाद्य पदार्थ, नमक तथा पैट्रोल की आमद बन्द करदी।

अफ्रीदियों, सादे कपड़े पहिने हुए सैनिकों तथा आधुनिक अस्त्रों से लैस हमलावरों को राज्य में घूमने दिया गया। सबसे पहिले पूंछ इलाके में ये हमलावर बड़ी तादाद में एकत्रित हुए। इसका नतीजा यह निकला है कि राज्य की सीमित सेनाओं को इधर-उधर भेजना पड़ा है और उन्हें एक साथ कई स्थानों पर मुकाबला करना पड़ा।

अतएव जान माल की हानि तथा फूट का रोकना बहुत कठिन होगया।

महोरा पावर हाउस जोकि सारे श्रीनगर को बिजली देता है, जला दिया गया है। स्त्रियाँ जिस बड़ी संख्या में अपहृत की गई हैं और उनके साथ बलात्कार हुआ है, उससे मेरा दिल बहुत ही दुखी है। सारे राज्य को अपने अधिकार में करने के लिये ये हमलावर पहिले श्रीनगर पर कब्जा करना चाहते हैं और इसी उद्देश्य से कूच करते आरहे हैं।

उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के सुदूर इलाकों से अफरीदी बड़ी संख्या में आधुनिक शस्त्रों से लैस होकर बकायदा मोटर ट्रकों में मनशेरा मुजफ्फराबाद सड़क से राज्य में घुस रहे हैं। यह कार्य सीमा प्रान्त की सरकार तथा पाकिस्तान की सरकार की सहमति के बिना नहीं होसकता। मेरी सरकार कई बार अपील कर चुकी है किन्तु इन हमलावरों को नहीं रोका गया। वास्तव में पाकिस्तान रेडियो तथा समाचार पत्रों ने इन घटनाओं का उल्लेख किया है। पाकिस्तान रेडियो ने यह कहानी भी गढ़ी कि काश्मीर में एक अस्थायी सरकार भी बनादी गयी है। मेरे राज्य की हिन्दू, सिख तथा मुसलमान प्रजा ने आम तौर पर इन उपद्रवों में कोई भाग नहीं लिया है।

राज्य की मौजूदा स्थिति तथा संकट को देखते हुए, मेरे सामने इसके सिवा कोई चारा नहीं है कि मै भारतीय डोमीनियन से सहायता मांगू। यह स्वाभाविक है कि जबतक काश्मीर भारतीय डोमीनियन में शामिल नहीं होजाता तबतक भारतीय सरकार मेरी सहायता नहीं कर सकती। अतएव मैंने शामिल होने का निर्णय कर लिया है और मैं प्रवेश पत्र को आपकी सरकार की स्वीकृति के लिये भेज रहा हूँ।

दूसरा विकल्प यह है कि मैं अपने राज्य तथा अपनी प्रजा को लुटेरों व हमलावरों के हवाले करदूं। इस आधार पर कोई भी सरकार कायम नहीं रह सकती। जबतक मैं राज्य का शासक हूं और अपने देश की रक्षा करने के लिये मुझ में प्राण है तबतक इस विकल्प को मैं

स्वीकार नहीं कर सकता। आपकी सरकार को मैं यह भी सूचित कर देना चाहता हूँ कि मेरा इरादा जल्दी ही एक अन्तरिम सरकार कायम कर देने का है और मैं शेख अब्दुल्ला से कहूँगा कि वे इस संकट काल में मेरे प्रधान मंत्री के साथ शासन की जिम्मेदारी संभालें।

यदि मेरे राज्य को बचाना है तो श्रीनगर में तुरन्त फौजी सहायता पहुँच जाना चाहिये। श्री मेनन स्थिति की गंभीरता से पूर्ण परिचित हैं और यदि आपको और कुछ बातें जाननी हैं तो वे आपको बतायेंगे।

जल्दी में यह पत्र लिख रहा हूँ—

आपका,

हरीसिंह

(महाराजा काश्मीर)

इस पत्र का उत्तर देते हुए लार्ड माउन्टबैटन ने लिखा—

२७ अक्टूबर १९४७

प्रिय महाराजा साहब,

२६ अक्टूबर का आपका पत्र श्री० वी० पी० मेनन ने मुझे दिया है। आपने जिन विशेष परिस्थितियों का उल्लेख किया है, उन्हें दृष्टि में रखते हुए मेरी सरकार ने काश्मीर राज्य का भारतीय डोमीनियन में प्रवेश स्वीकार कर लिया है। भारत सरकार अपनी इसी नीति पर दृढ़ है कि किसी भी राज्य में यदि यह प्रश्न विवादास्पद हो कि उसे किस डोमीनियन में प्रवेश करना चाहिये तो उस प्रश्न का निर्णय राज्य की जनता की इच्छा से किया जाय। मेरी सरकार की इच्छा है कि काश्मीर में शांति व व्यवस्था कायम होने तथा आक्रमण कारियों के भगाये जाने के बाद ही यह प्रश्न जनमत से हल किया जाय कि काश्मीर को किस डोमीनियन में शामिल होना चाहिये।

फिलहाल फौजी सहायता की आपकी अपील के अनुसार आज भारतीय फौजों को काश्मीर भेजने के लिये कार्रवाई की गई है

ताकि आपके राज्य को तथा जनता के जानोमाल तथा सम्मान की रक्षा के लिये वे आपकी सहायता कर सकें। मुझे तथा मेरी सरकार को यह जानकर सन्तोष हुआ कि आपने शेख अब्दुल्ला को अन्तरिम सरकार बनाकर आपके प्रधान मंत्री के साथ कार्य करने के लिये आमंत्रित किया है।

आपका
माउन्टबेटन
(भारतीय संघ के गवर्नर जनरल)

दिन और रात एक करके भारतीय सेना हवाई जहाजों से २८ अक्टूबर से काश्मीर को रवाना हुई। उस समय हमलावर श्रीनगर से सिर्फ १७ मील दूर पाटन में पहुँच चुके थे। उसमें का कुछ भाग तो श्रीनगर की सीमा तक आचुका था। श्रीनगर में पहुँचते ही भारतीय फौजों ने श्रीनगर के आसपास से हमलावरों को खदेड़ दिया। ८ नवम्बर को भारतीय हवाई सेना ने बारामूला पर अधिकार कर लिया पर वह बिलकुल बरबाद होचुका था। इसके बाद उरी पर भी कब्जा कर लिया गया। इस प्रकार श्रीनगर की घाटी का खतरा नष्ट होगया।

इसके बाद भारतीय फौजों ने जम्मू के उन भागों पर से हमलावरों को खदेड़ना आरम्भ किया जिन पर उनका कब्जा हो गया था। नौशेरा, झंगर तथा कोटली शहर दुश्मनों से खाली कराये गये और वे वहाँ से भगा दिये गये। इसके बाद काश्मीर में भयानक शीत का आरम्भ हो गया। पाकिस्तान सीमावर्ती प्रदेशों तथा गिलगिट क्षेत्र को दुश्मनों से छीन लेना शेष था, क्योंकि वे वहाँ काफी तबाही कर रहे थे। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार दिसम्बर १९४७ में ८०००० पठानों ने काश्मीर पर हमला किया था। भारतीय फौजों ने केवल हवाई जहाजों के बल पर ही इतनी बड़ी संख्या सम्पन्न हमलाइयों से डट कर मुकाबला किया और उन्हें खदेड़ दिया। यहाँ स्त्रियों के अपहरण, बलात्कार तथा बच्चों का कत्ल आदि के विषय में इतना ही

कहा जा सकता है कि उन दिनों काश्मीर में चंगेजखाँ और नादिरशाह का जमाना आ गया था। मुस्लिम, हिन्दू और सिख आदि सब एक घाट उतार दिये गये। यहाँ तक कि गिरजाघर और मस्जिदें भी अपवित्र की गईं। काश्मीर में चारों ओर प्रलय के नजारे दिखाई देते थे।

इन हमलों में पाकिस्तानका हाथ कई प्रकारसे स्पष्ट ही दिखाई दे रहा था। अब तो इन बातों के प्रमाणों की भी आवश्यकता नहीं रही है। इस बात के भारत सरकार के पास प्रमाण विद्यमान हैं कि हमलावरों में से कई लोग सीमान्त प्रदेश के फौजी रंगरूट थे। सीमांत प्रदेश के प्रधानमन्त्री; मन्की के पीर तथा अन्य अधिकार सम्पन्न व्यक्तियों ने सार्वजनिक रूप से काश्मीर के हमले को जेहाद कहा। काश्मीरी जनता तथा कबाइलियों में डोगरा लोगों की मुसलमानों पर ज्यादतियों का गहरा प्रचार किया गया। अधिकारियों ने हमलावरों को लूट का खुला लालच दिखाया। इसके बाद पाकिस्तानी अधिकारियों ने उन्हें मोटरों में सवार करा कर और हर प्रकार की सुविधा देकर काश्मीर में लड़ने को भेजा। पाकिस्तानी रेडियो खुलकर आजाद काश्मीर सरकार का प्रचार करता था। कहने का सारांश यह कि समस्त पश्चिमी पाकिस्तान कबाइलियों को हर प्रकार की सहायता दे रहा था। पाकिस्तान के अखबार भारत सरकार की काश्मीर विषयक जानकारी को "दुश्मन के द्वारा" कह कर और छाप कर मजाक उड़ाते थे। यहाँ कुछ ऐसे प्रमाण पेश किये जाते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जायगा कि दुश्मनों को पाकिस्तान पूरी सहायता दे रहा था—

१—हमलावरों की यथेष्ट संख्या सीमान्त प्रदेश तथा कबाइली क्षेत्रों से गुजर कर आती थी। वे सैकड़ों मील का सफर खुले आम पाकिस्तानी सीमा में से ही करते थे। काश्मीर में भेजने के पहिले उन्हें भिन्न-भिन्न पाकिस्तानी शहरों में सहायता प्रदान करने के लिये रोका जाता था।

२—ऐसे सरकारी कागजाती सुबूत प्राप्त हो चुके हैं, जिनसे स्पष्ट है कि हमलों की पूरी योजनायें पाकिस्तान में ही बनाई जाती थीं। रावलपिण्डी इनका प्रधान केन्द्र था और यहीं से अस्थायी काश्मीर सरकार अपना काम कर रही थी। सरगोधा, अबोटाबाद, वजीराबाद तथा झेलम इन हमलाइयों के रसद के केन्द्र थे और इन्हीं स्थानों पर रंगरूटों को फौजी तालीम दी जाती थी। हमलाइयों में जो जख्मी हो जाते उनका इलाज भी इन्हीं केन्द्रों में होता था।

३—पाकिस्तान में से गुजरते हुए हमलावरों को आवागमन सम्बन्धी सामान और पैट्रोल दिया जाता था।

४—हमलावरों के पास जो आधुनिक ढङ्ग के शस्त्र मसलन् छोटी मशीनगनें, टैंक, बेतार के तारों के सैट आदि थे, वे कबाइली लोगों द्वारा तैयार की हुई चीजें नहीं हो सकती। वे निश्चित रूप से पाकिस्तान सरकार के फौजी गोदामों में से दी जाती थीं। इन आधुनिक शस्त्रास्त्रों को चलाने के लिये शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता थी। इस प्रकार के दक्ष लोग भी पाकिस्तान की फौजों में से ही दिये जाते थे।

५—भारतीय फौजों ने उन लोगों को गिरफ्तार हो जाने के बाद पहिचाने है जो पहिले भारतीय फौजों में ही नौकर थे और बँटवारे के बाद पाकिस्तान की सेना में तब्दील हो चुके थे और अब हमलाइयों के साथ काश्मीर के विरुद्ध लड़ रहे थे।

यूनाइटेड नेशन्स के अधिकार पत्र की धारा ३६ के अनुसार उसका कोई भी सदस्य उसे झगड़े या परिस्थिति को यूनाइटेड नेशन्स के सामने लासकता है जिसमें कि शान्ति और सुरक्षा को खतरा हो या खतरा होने का अन्देशा हो। भारत भी संयुक्त राष्ट्र संघ (U. N. O.) का एक सदस्य है। अतः भारत ने सैक्यूरिटी कौंसिल के

समक्ष काश्मीर का मामला १ जनवरी १६४८ को रखा। इस दावे में अत्यन्त ही गम्भीर शब्दों में भारत ने बताया था कि काश्मीर के हमले में पाकिस्तान का पूरा हाथ है। काश्मीर के एक हिस्से पर १६००० हमलावर हमला कर रहे हैं, १५००० हमलाई दूसरे भागों में हमले कर रहे हैं और प्रायः १ लाख शिक्षित अफरीदी पाकिस्तानी सरकार की फौजी मदद प्राप्त करके काश्मीर पर चढ़ाई कर रहे हैं। पाकिस्तान ही उन्हें शिक्षा दे रहा है और आधुनिक ढङ्ग के न केवल हथियार ही उन्हें दे रहा है बल्कि उन्हें रसद भी गुप्त या प्रत्यक्ष रूप से पहुँचा रहा है। इस विकट परिस्थिति का सामना करने के लिये ही भारत काश्मीर की सहायता कर रहा है और अपनी सेनाओं को अफरीदियों को खदेड़ने के लिये पाकिस्तानी सीमा में भेजने पर मजबूर हुआ है। यही एक तरीका है जिससे हमलावरों को उनके अड्डों और पाकिस्तानी सहायता प्राप्त करने से दूर किया जा सकता है। अतः भारत ने सैक्यूरिटी काउंसिल से अपील की कि जितना जल्दी हो सके ठोस कदम उठाया जाय। इसके लिये सैक्युरिटी कौंसिल को चाहिये कि वह अपनी फौजी तथा अन्य प्रकार की सहायता कबाइलियों को देना एकदम बन्द कर दे, साथ ही हमलों में पाकिस्तानी फौजी आदमियों को शामिल होने से रोके और कबाइलियों को अपनी सीमा में से गुजरने पर सख्त प्रतिबन्ध लगा दे।

सैक्यूरिटी काउन्सिल (सुरक्षा परिषद) ने इस शिकायत को जाब्ते से ६ जनवरी १६४८ को ग्रहण किया। इसके बाद दोनों पार्टियों को बाकायदा आमंत्रित किया गया। इस मामले के लिये भारत की ओर से भारत के अमरीका स्थित राजदूत डा० पी० पी० पिल्ले व पाकिस्तान की ओर से पाकिस्तान के अमरीकी राजदूत श्री एम० ए० एच० इस्फानी नियुक्त किये गये। पहिली ही बैठक में श्री इस्फानी ने प्रार्थना की कि हमें तैयारी के लिये थोड़ा समय दिया जाना चाहिये। भारत की सलाह से सुरक्षा परिषद ने कुछ दिनों बाद पाकिस्तानी

राजदूत को समय देने का वचन दिया। साथ ही उस समय के सुरक्षा परिषद् के अध्यक्ष वान लेगेन होव (बेलजियम) ने भारत और पाकिस्तान को तार भेजे कि दोनों राष्ट्र इस समय ऐसा कोई कदम न उठावें जिससे परिस्थिति उलझ जाय और मामले का निर्णय करने में दिक्कतें पेश आयें।

सुरक्षा परिषद की दूसरी बैठक ता० १५ जनवरी को हुई। भारत की ओर से मामला श्री गोपालस्वामी आयंगर ने पेश किया। १ जनवरी १६४८ को पेश की गई शिकायत के प्रमाण में सुबूत पेश करते हुए श्री आयंगर ने कहा कि अधिकांश कबाइली पाकिस्तानी सहायता के द्वारा ही काश्मीर में प्रविष्ट हुए हैं और पाकिस्तान के फौजी व सिविल अधिकारी उनकी पूरी-पूरी सहायता कर रहे हैं। इन हमलाइयों को काश्मीर से हटाना और इस लड़ाई के बन्द करवा देना ही सुरक्षा परिषद् का प्रथम कर्तव्य है। उन्होंने अन्त में कहा कि हम पाकिस्तान से भी अपील करना चाहते हैं कि वह महात्मा गान्धी के नाम पर ही जो इस समय आमरण अनशन कर रहे हैं, इस झगड़े को मित्रतापूर्ण ढङ्ग से निबटा ले।

पाकिस्तान के विदेशमन्त्री श्री जफरुल्ला खाँ ने भारत की शिकायतों के १६ और १७ जनवरी के अपने लम्बे भाषणों में उत्तर दिये। जफरुल्ला खाँ ने इस बात से इन्कार किया कि पाकिस्तान हमलावरों की सहायता कर रहा है अथवा भारत को परेशान करने में मदद पहुँचा रहा है। शिकायतों से स्पष्ट इन्कार करने के बाद जफरुल्ला ने भारत पर कई गम्भीर आरोप भी किये। उन्होंने कहा कि भारत ने अपने कई वायदे पूरे नहीं किये हैं, भारत में सामूहिक रूप से मुसलमानों को कत्ल करवाया है। भारत ने जबरदस्ती जूनागढ़ को अपने अधिकार में ले लिया है और उन रियासतों पर भी अपना कब्जा कर लिया है जो पाकिस्तान में प्रविष्ट हो चुकी थीं। अपनी शिकायतों के प्रमाण में उन्होंने कुछ कागजी सुबूत भी पेश किये।

इसके बाद अध्यक्ष वान लैंगन होव ने अपने उन तारों के आधार पर जो उन्होंने बहुत पहिले भारत और पाकिस्तान को परिस्थिति न बिगड़ने देने के लिये दिये थे, एक निर्णय (Resolation) सुरक्षा परिषद में पेश किया। इस निर्णय को पेश करते हुए दोनों राष्ट्रों से यह अपील की गई कि दोनों राष्ट्र अपने यहाँ की परिस्थितियों की सूचना देते रहें। इस निर्णय को रूस के अलावा सभी देशों का समर्थन प्राप्त हुआ।

नोएल बेकर—ब्रिटिश प्रतिनिधि की सूचना पर अध्यक्ष से प्रार्थना की गई कि लड़ने वाले दलों में समझौता कराने के लिये कुछ ऐसी बातें खोज निकालनी चाहियें जो दोनों देशों के लिये सामान्य हों इस सूचना पर खानगी तौर से २० जनवरी तक वाद विवाद जारी रहा। इसके बाद सर्व स्वीकृत से एक निर्णय कौंसिल के सामने पेश किया गया। इस निर्णय के अनुसार यह बताया गया कि कौंसिल को इस मामले में शीघ्र ही जांच करने की जबरदस्त आवश्यकता है और इसके लिये एक ऐसे कमीशन की स्थापना करनी चाहिये जिसमें एक भारत द्वारा और दूसरा पाकिस्तान द्वारा तथा तीसरा सदस्य भारत और पाकिस्तान द्वारा चुने हुए दोनों सदस्यों की इच्छा से चुना जाय इस प्रकार कमीशन मे तीन सदस्य रहें। कमीशन के इस सिलसिले में दो कार्य होंगे। पहिला तो यह कि वह काश्मीर की परिस्थिति पर ध्यान रखेगा और दूसरे यह कि जब कौंसिल चाहे तो पाकिस्तान ने जो दूसरे मामले उठाये हैं, उन पर भी विचार करना। इसके लिये झगड़े के स्थान पर जाना आवश्यक है। रूस के अलावा यह प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से स्वीकृत हो गया।

२३ जनवरी को श्री० एम० सी० सीतलवाड़ ने पाकिस्तान के इलजामों का बहुत ही जोरदार शब्दों में खण्डन किया और उम्मीद प्रकट की कि पाकिस्तान यथार्थ मामले के विषय में ही विवाद करेगा किन्तु उसके पास कोई भी ऐसी तथ्य पूर्ण बात नहीं है जिसपर वह

जोर दे सके। इसके जवाब में पाकिस्तान के प्रतिनिधि दूसरे दिन बोले। उन्होंने कहा कि जब तक हमें खास तौर से विश्वास नहीं दिला दिया जाता और गारन्टी नहीं दिलाई जाती तबतक लड़ाई बन्द हो ही नहीं सकती। उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा कि मुझे यह विश्वास दिलाया जाय कि अब मुसलमानों को सताया नहीं जावेगा और तमाम भारतीय सेनाएँ यहाँ से हटा ली जायेंगी और शेख अब्दुल्ला के शासन को हटा कर ऐसा शासन स्थापित किया जायेगा जिसमें दोनों दलों के हाथ में सत्ता न रहे।

इसके बाद, नोएल बेकर के सुझाव के अनुसार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों में आपसी बातचीत जारी रही। इन चर्चाओं में वान लेंगनहोव अध्यक्ष थे। उन्होंने कौंसिल को दोनों प्रतिनिधियों की बातचीत की सूचना दी और यह भी कहा कि उनमें किस हद तक समझौता हो सकता है। २६ जनवरी को लेंगन होव ने दो मसौदे कौंसिल में पेश किये। पहिले मसौदे का आशय यह था कि जनमत लेने का प्रबन्ध किया जाय और अवश्य ही हो किन्तु प्रबन्ध और जनमत दोनों ही सुरक्षा परिषद की निगरानी में हों। दूसरा मसौदा यह था कि कमीशन काश्मीर में होने वाली लड़ाई और जुल्मों को रोके। कनाडा, चीन, फ्रांस, सीरिया, ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने इस सुझाव का अनुमोदन किया लेकिन श्री आयंगर ने इसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि काशमीर में आग लगी हुई है और कौंसिल में नाच रंग का प्रबन्ध हो रहा हैं। सबसे पहिले लड़ाई बन्द होनी चाहिये, उसके बाद जनमत का प्रश्न उठाया जाय। अपने विचारों के अनुसार ही उन्होंने मसौदे में कुछ संशोधन पेश किये। पाकिस्तान ने दोनों मसौदों को मूल रूप में ही स्वीकार करलिया। इस प्रकार दोनों दलों के बीच समझौते का कोई भी रास्ता नहीं निकल सका।

६ फरवरी को कौंसिल के अध्यक्ष ने दूसरा मसौदा पेश किया

जिसके अनुसार भारत-पाकिस्तान बातचीत के न्याय पूर्ण समझौते के लिये ७ शर्तें रखी गई और यह उम्मीद की गई कि यदि दोनों राष्ट्र आपस में सद्भावना से कार्य करें और दोनों यदि कौंसिल को सहायता प्रदान करें तो ऐसे ठोस सुझाव भी सामने आ सकते हैं जिससे झगड़े का अन्त संभव होजाय।

उपरोक्त तीनों मसौदों के अलावा कोलम्बिया ने एक चौथा मसौदा ११ फरवरी को रखा जिसमें ६ सुझाव थे। इसमें पिछले मसौदों से कुछ भिन्नता थी इसमें, कमीशन में ३ सदस्यों के बजाय ५ सदस्यों के चुनाव का उल्लेख था जिसमें से ३ कौंसिल द्वारा ही निर्णित होना चाहिये। इस मसौदे में कुछ ऐसे भी सुझाव थे जिनसे तत्कालीन अध्यक्ष का मत भेद था। भारत के प्रतिनिधि मण्डल के नेता श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने कुछ दिनों के लिये कार्यवाई स्थगित रखने के विषय में निवेदन किया कि इन नयी उपस्थित परि-स्थितियों के लिये वे तैयार नहीं हैं अतः वे इस विषय में भारत सर-कार से परामर्श करना चाहते हैं। उनकी यह प्रार्थना १२ फरवरी को स्वीकृत हुई।

सुरक्षा परिषद की कई बैठकों में शेख अब्दुल्ला, भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में विद्यमान थे। ५ फरवरी को परिषद में उनका भाषण हुआ और उन्होंने जनमत संग्रह के विषय में अपना मत प्रकट किया। वे काश्मीर के मौजूदा शासन में किसी प्रकार के परिव-र्तन के विरुद्ध थे। जनमत संग्रह के खत्म होने तक काश्मीर में भारतीय सेनाओं का रहना उनकी नजर में परमावश्यक था। उनके भाषण का बहुत ही अच्छा असर पड़ा।

इधर काश्मीर में मार्च के महीने में बहुत सी घटनाएँ हो गईं। ५ मार्च को महाराजा काश्मीर ने एक शाही घोषणा के द्वारा अपनी प्रजा को शासन की पूरी जिम्मेदारी सौंपते हुए शेख अब्दुल्ला को उसका प्रथम लोकप्रिय प्रधान मंत्री नियुक्त किया। उन्होंने यह भी

घोषित किया कि बालिग मताधिकार के आधार पर राष्ट्रीय धारा सभा की स्थापना शीघ्र ही की जायेगी और महाराजा साहब स्वयं उसके वैधानिक प्रमुख रहेंगे। महाराजा साहब की इस क्रान्तिकारी घोषणा से शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार की स्थिति दुनिया के सामने बहुत ही मजबूत हो गयी।

सुरक्षा परिषद् में १० मार्च को काश्मीर के सम्बन्ध में फिर चर्चा आरंभ हुई। श्रीगोपाल स्वामी आयंगर ने मसौदों से उत्पन्न परिस्थितियों के विषय में भारत सरकार के दृष्टि कोण से परिषद् को अवगत कराया। उन्होंने काश्मीर में लड़ाई खत्म करने के विषय में बहुत जोर दिया। पाकिस्तान की ऊंट पटांग कल्पना को शान्त करने के लिये काश्मीर के वर्तमान शासन में परिवर्तन करने का उन्होंने घोर विरोध किया और उन्होंने काश्मीर में पूर्ण रूप से जिम्मेदाराना हुकूमत स्थापित करने के विषय में जोर दिया। उन्होंने बताया कि ऐसे संकट काल में काश्मीर से भारतीय सेनाएँ नहीं हटाई जा सकतीं। हाँ, ऐसी व्यवस्था की जा सकती है जिससे भारतीय फौजों का जनमत संग्रह पर कोई भी असर न पड़े।

इसके बाद चीन के प्रतिनिधि डाक्टर गे० चियांग ने एक मसौदा और पेश किया। इन दिनों डा० टी० चियांग ही सुरक्षा परिषद के अध्यक्ष थे। पाकिस्तान ने इस मसौदे का निम्नलिखित दो मुद्दों पर विरोध किया—

१—काश्मीर में भारतीय फौजों की उपस्थिति।

२—शेख अब्दुल्ला का शासन।

कहने का तात्पर्य यह है कि ५ मसौदों के पेश होने के बाद भी दोनों दल एक दूसरे से सहमत न हो सके।

अप्रेल में परिषद् के अध्यक्ष डाक्टर लोपेज मुकर्रर हुए। ये कोलम्बिया के प्रतिनिधि थे। उन्होंने वही रास्ता पसन्द किया जिस

पर पिछले तीन अध्यक्ष वानलेगन होव (बेलजियम) जनरल मैकनाटन (कनाडा) और डाक्टर टी० चियांग (चीन) कायम थे। इन अध्यक्षों ने परिषद् की चर्चा के अलावा खानगी तौर पर पाकिस्तान और भारत के बीच समझौता करने की तथा अपनी ओर से अध्यक्षीय सुझाव पेश किये थे। इसी परिपाटी का अनुसरण डाक्टर लोपेज ने किया। इस परिपाटी से विरोध के कई मुद्दे हल हो गये किन्तु समझौते का सामन्य हल जो दोनों को स्वीकृत हो जाय नहीं मिल सका।

जब इस प्रकार भी मामले का हल नहीं निकला तो चारों अध्यक्ष जिन्होंने काश्मीर मामले को सुना था, एकत्रित हुए और उन्होंने सम्मिलित रूप में ब्रिटिश और अमेरिका के प्रतिनिधियों केसाथ एक दूसरा ही निर्णय किया और चर्चाके लिये वह परिषद् केसामने लाया गया यद्यपि यह निर्णय पुराने ससौदों के आधार पर ही तैयार किया गया था फिर भी उसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों का समावेश हुआ था। अपने तर्क और विद्वता से भरे हुए भाषण में श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने इस मसौदे का बहुत ही सुन्दर विश्लेषण किया और भारत की तद्विषयक आपत्तियों का निर्देष किया। उन्होंने साबित कर दिया कि पिछले मसौदों की बनिस्वत भारतीय दृष्टि कोण से यह मसौदा बेकार है। इस मसौदे की एक मात्र विशेषता सिर्फ यह थी कि इसमें ३ के बजाय ५ प्रतिनिधियों का जिक्र था और यह कि वह कमीशन शीघ्रही ही भारत को रवाना हो जायेगा।

पाकिस्तान के प्रतिनिधि जफरुल्ला खाँ को भी इस मसौदों में कई अपनी आपत्तियाँ थीं। इन आपत्तियों पर प्रकाश डालने के बाद उन्होंने स्वतः २० अप्रेल को अपना निर्मित मसौदा पेश किया। इस मसौदे में १८ कलमें थीं और उनके दृष्टिकोण से उनका विश्वास था किइस मसौदेके द्वारा आपसी झगड़ा मिट जायेगा। यह स्वाभाविक ही था कि यह मसौदा पाकिस्तान के हित में था और भारत के विरुद्ध।

कारण यह था कि यह पाकिस्तान दृष्टि कोण को लेकर पाकिस्तान के प्रतिनिधि ने ही बनाया था।

२१ अप्रैल को पाकिस्तान और भारत दोनों राष्ट्रों के एतराजों को लेकर सुरक्षा परिषद ने सर्व सम्मति से छः राष्ट्रों के निर्णय को कार्यान्वित करने का इरादा किया। इस निर्णय के अनुसार जब मत संग्रह के लिये शीघ्र ही एक डेप्युटेशन जिसमें ५ सदस्य होना जरूरी था, काश्मीर रवाना किया जायेगा और वहाँ वह अपनी निगरानी में ही जनमत संग्रह करायेगा। इस निर्णय के अनुसार पाकिस्तान को काश्मीर में से कबाइलियों को हटाना पड़ेगा साथ ही भारत को अपनी फौजी ताकत भी हटानी पड़ेगी जिससे जनमत संग्रह निश्पक्षता से हो सके। १८ कलमों का यह मसौदा भारत के हक में बहुत ही विरुद्ध था। इसके अनुसार भारत का दावा ही बेकार कर दिया गया। इस मसौदे के अनुसार शीघ्र ही कमीशन के भारत रवाना होने के विषय में प्रबन्ध किया गया। इस कमीशन में अर्जेन्टाइन, बेलजियम, कोलम्बिया, चेकोस्लोवेकिया, और संयुक्त राष्ट्र के प्रतिनिधि लिये गये। इनके साथ इनका पूरा कार्यलय भी भारतवर्ष रवाना हुआ। इस कमीशन का उद्देश्य स्थल पर पहुँच कर अपनी आंखों से स्थिति का अध्ययन करना था।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भारत ने उपरोक्त मसौदे को बिलकुल ही स्वीकार नहीं किया था। बहस के दौरान में भारत ने उस मसौदे की कई महत्वपूर्ण कालमों का जोरदार खण्डन भी किया था। इतना होने पर भी भारत ने अपने मामले के बुनियादी मुद्दों पर जोर देते हुए तथा उनपर दृढ़ रहते हुए कमीशन से इस विषय में पत्रव्यवहार किया। साथ ही भारत सरकार ने कमीशन से यह भी दरयाफ्त किया कि उन्हें भारत में किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता है? भारत सरकार ने कमीशन को यह स्पष्ट कर दिया कि जूनागढ़ आदि का मामला यहाँ नहीं उठाया जा सकता

यहाँ सिर्फ काश्मीर के जनमत संग्रह के विषय में ही चर्चा या जांच हो सकेगी।

१० जुलाई को काश्मीर कमीशन भारत में उतरा। कमीशन के अध्यक्ष श्री ग्रेफी ने अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि—

"हमने अपना रचनात्मक कार्य जेनेवा में ही कर लिया है और अब हम यहाँ भी अपना वास्तविक कार्य आरंभ करने को तैयार हैं किन्तु इसके पूर्व हम भारत सरकार को धन्यवाद दे देना चाहते हैं। हम कुछ ही समय में नई दिल्ली में अपना कार्य आरंभ कर देंगे। इसके बाद हम करांची जायेंगे और वहाँ से कार्य समाप्त करके जम्मू और काश्मीर का दौरा करेंगे।"

इसके बाद काश्मीर कमीशन के समक्ष मि० वेलोडी ने भारत का मामला रखा। ७ दिन की कार्यवाही के बाद काश्मीर कमीशन करांची पहुँचा। वहाँ ४ अगस्त को जफरुल्ला खाँ ने कमीशन के सामने अपना मामला फिर पेश किया। यहां कमीशन को गुप्त रूप से यह भी जाहिर कर दिया गया कि सुरक्षा के नाम पर पाकिस्तान की फौजें काश्मीर में लड़ रही हैं।

६ अगस्त १९४८ को रामलीला के मैदान में भाषण देते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने काश्मीर में पाकिस्तानी फौजों के लड़ने का जिक्र करते हुए कहा—

"मैंने अपने मद्रास के भाषण में कहा था कि काश्मीर के विषय में पाकिस्तान की नीति धोखे, मक्कारी और सरासर झूठ से भरी हुई है, इसका पाकिस्तानी पत्रों ने जोर दार शब्दों में विरोध प्रकट किया है। मैंने जानबूझ कर ही कठोरतम भाषा का व्यवहार किया है और यह निश्चय है कि ऐसा मुझे मन मार कर करना पड़ा है। मेरे खिलाफ पाकिस्तानी पत्रों में बहुत से लेख भी लिखे गये हैं। पाकिस्तान सरकार ने भी मेरी मद्रास स्पीच का घोर विरोध किया है। पाकिस्तानी पत्रों ने कहा है कि मेरा भाषण गलत था। मेरे विरोध

करने के दो दिन बाद ही उनके पाकिस्तानी पत्रों ने प्रकाशित किया कि पाकिस्तान को मंजूर है कि उसकी फौजें काश्मीर में युद्ध कर रही हैं (देखिये पाकिस्तान सरकार की विज्ञप्ति ता० ६ अगस्त १९४७) पाकिस्तान सरकार का यह कहना एक दम गलत है कि पाकिस्तान की फौजें काश्मीर मे सब से पहिले मई में पहुँचीं। हाँ, यह ठीक है कि मई में उन्होंने कबाइलियों का चोला छोड़ कर अपना वास्तविक रूप प्रकट कर दिया।"

"पाकिस्तान सरकार का यह फर्ज था कि फौजें काश्मीर भेजने के पहिले वह भारत सरकार को इसकी सूचना देती। लेकिन हमें सूचित करने के बजाय उन्होंने सुरक्षा परिषद को इस विषय की सूचना दी और वह भी युद्ध में शामिल होने के कई महीने बाद। पाकिस्तान ने अपना अपराध अब इसलिये स्वीकार कर लिया है कि अब वह इसे गुप्त रखने में कतई असमर्थ था।"

करांची में काश्मीर कमीशन ने "लड़ाई रोको" प्रस्ताव पर विचार किया है। फिर दिल्ली आकर इस प्रस्ताव के विषय में भारत सरकार के रुख पर विचार किया और इसके बाद मौके का अध्ययन करने काश्मीर रवाना होगा।

हैदराबाद—

समझौते के पहिले भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउण्ट बेटन तथा निजामके बीच २९ नवम्बर १९४७ को जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसकी प्रमुख बातें यहाँ दी जाती हैं। निजाम ने गवर्नर जनरल को लिखा था—

"स्थायी समझौता वार्ता न होने का मुझे दुख है। इस वर्ष समझौते की अवधि में दोनों ही सरकारों को शासन सुधार के कार्य में लग जाना चाहिये। यदि इस अवधि में हम में सद्भावना बनी रही तो निश्चय ही आगामी समझौता सन्तोषजनक होगा। "यथा-

स्थित" समझौता कार्यान्वित करने से हम अपने को सार्वभौम सत्ता न कह सकेंगे। मेरे कुछ महत्व पूर्ण अधिकारों का अन्त होजायगा। मैं यथास्थित समझौते पर हस्ताक्षर करने को प्रस्तुत हूँ। राज्य की वर्तमान पुलिस तथा सेना से सुचारु रूप से कार्य नहीं चल रहा है। अतः कुछ परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक हैं। मैं समझता हूँ कि भारत सरकार इसकी पूर्ति में समर्थ होगी। मैं उसी अवस्था में बाहर से सैनिक सामान लाऊंगा, जब भारत सरकार नियत समय में हमें सामान न देगी। ऐसा करने के पूर्व मैं भारत सरकार को सूचित कर दूंगा।"

"मेरे प्रतिनिधि मण्डल तथा भारत सरकार के बीच विदेश में राजनीतिक तथा व्यपारिक प्रतिनिध नियुक्त करने के प्रश्न पर काफी बातचीत होचुकी है। विदेश स्थित हैदराबाद के एजेन्ट भारतीय प्रतिनिध से पूर्ण सहयोग रखेंगे और नियुक्ति के पूर्व मैं भारत सरकार को यथा समय सूचित करता रहूँगा। इसके अतिरिक्त अन्य प्रश्नों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

१— हैदराबाद का रेजीडेन्सी भवन तुरन्त वापस किया जाय शस्त्रास्त्र तथा गोली बारूद प्रचुर मात्रा में भेजा जाय जिससे राज्य की सेना सुशिक्षित की जासके।

२— खज़ाने के सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जाय।

३— सैनिक दृष्टि से आवश्यक फौजी मोटरें दी जांय

४— हैदराबाद के रेलवे क्षेत्र में पुलिस का अधिकार स्वीकृत हो,

५— सिक्के तथा डाक सम्बन्धी मेरे अधिकार अक्षुण्ण माने जांय

६— पासपोर्ट के सम्बन्ध में अधिकार मिलें।

७— दोनों ही राज्य परस्पर विरोधी प्रचार बन्द करदें

८— नया फरमान निकाल कर मैं प्रजा की जान माल की रक्षा का पूर्ण आश्वासन दूंगा।

इस पत्र के उत्तर में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड माउन्टबेटन ने लिखा—

"भारत देशी राज्यों से सहयोग के लिये प्रस्तुत है। "यथा-स्थित" समझौता कार्यान्वित करने से अवश्य ही सद्भावना उत्पन्न होगी और हैदराबाद के लिये भारत संघ में शामिल होना सुगम होगा। भारत सरकार आपसे डाक, टेलीफोन आदि की व्यवस्था के लिये प्रस्तुत है तथा सैनिक सामान भी देगी। विदेश में आपके व्यपारिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति पर भारत सरकार को आपत्ति नहीं, पर भारतीय दूत से उन्हे सहयोग रखना पड़ेगा। रेजीडेन्सी भवन यथा संभव आपको देदिया जायेगा। पासपोर्ट, रेलवे क्षेत्र में पुलिस अधिकार आदि प्रश्नो पर भारत सरकार बातचीत के लिये प्रस्तुत हैं।"

२६ नवम्बर १६४७ को हैदराबाद और भारत क बीच जिस "यथास्थित समझौते" पर भारत की ओर से गर्वनर जनरल माउन्ट बेटन और निजाम हैदराबाद के दस्तखत हुए हैं, उसकी मुख्य शर्तें नीचे दी जाती है।

"निजाम किसी भी विदेशी राष्ट्र से शस्त्रास्त्र खरीद सकगे। शस्त्रास्त्र सम्बन्ध उनकी आवश्यकता की पूर्ति भारतीय यूनियन करेगा किन्तु प्रत्येक अनुरोध पर भारत सरकार पाहले यह इत्मीनान करलेगी कि निजाम को सचमुच शस्त्रास्त्र की आवश्यकता है। शस्त्रास्त्र की मात्रा का निर्णय भी भारत सरकार ही करेगी। युद्ध की अवस्था में भारत सरकार हैदराबाद में अपनी फौज रख सकेगी और युद्ध समाप्ति के ६ महीने बाद उसे फौज हटा लेनी होगी। सिकन्दराबाद के पास इस समय फौज पड़ी है, उसे हटाने के सम्बन्ध में फरवरी के अन्त तक भारत सरकार कोई निर्णय करेगी! साधारणतः निजाम के निमंत्रण पर ही हैदराबाद में भारतीय फौजें भेजी जासकेंगी। सन्धि में यह भी स्पष्ट किया गया है कि निजाम अनुचित रूप से भारतीय फौजों के हैदराबाद में प्रवेश पर कोई बाधा न डालेंगे। मुख्य शर्तें इस प्रकार हैं—

१— १५ अगस्त १६४७ के पूर्व तक हैदराबाद में पारस्परिक

सम्बन्ध की जो व्यवस्था थी, वह बनी रहेगी। पर राष्ट्र, रक्षा और यातायात की कोई नयी व्यवस्था न की जायेगी।

२— सन्धि की शर्तों का सम्यक पालन हो रहा है या नहीं, इसकी देखरेख के लिये दिल्ली में हैदराबाद के और हैदराबाद में दिल्ली के एक-एक प्रतिनिधि रखे जायेंगे।

३— इस समझौते से प्रभु सत्ता के प्रश्न पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। इस समझौते से किसी राज्य को कोई नया या अतिरिक्त अधिकार प्राप्त हुआ न माना जायेगा।

४— सन्धि विषयक मतभेद की स्थिति में हैदराबाद और भारत एक-एक निर्णायक नियुक्त करेंगे और दोनों मिलकर एक पंच नियुक्त करेंगे।

५—यह समझौता तुरन्त लागू होगा और इसकी अवधि एक वर्ष है। इसके बाद २६ नवम्बर १६४७ को भारतीय पार्लिमेंट के समक्ष रियासती विभाग के मंत्री सरदार पटेल ने घोषणा की कि हैदराबाद से एक वर्ष के लिये समझौता हो गया है। १५ मार्च १६४८ को धारा सभा मे सरदार पटेल के अस्वस्थ होने के कारण श्री गाण गिल ने धारासभा में भाषण देते हुए व्यक्त किया कि हैदराबाद समझौते की शर्तों का पालन नहीं कर रहा है। आगे चलकर उन्होंने स्पष्ट करते हुए बताया कि "समझौता होने में तीन बातें बाधा डाल रही हैं। प्रथम तो सीमावर्ती घटनाएँ हैं जिससे पूरा दक्षिण और मध्यपश्चिमी भारत संकटापन्न बना हुआ है। हमने सोचा था कि "यथास्थित" समझौते के बाद ये कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी पर हम देख रहे हैं कि सीमाओं पर दुर्घटनाऐं दिन प्रति दिन जोर पकड़ती ही जा रही हैं। हम इन घटनाओं को बड़ी सतर्कता से देख रहे हैं। इन घटनाओं से बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो सकती हैं। दूसरी बात हैदराबाद की आन्तरिक स्थिति है जिसके कारण कठिनाइयां उत्पन्न हो रही हैं। इत्तिहादुल मुसलमीन तथा ऐसी अन्य संस्थाएँ वहाँ खुले

आम घृणा का प्रचार कर रही हैं। वहाँ पर गरीब हिन्दू जनता के साथ भयंकर ज्यादतियाँ हो रही हैं निजाम सरकार को इन बातों पर ध्यान देना चाहिये और ये कठिनाइयाँ दूर करना चाहिये। तीसरी बात यह कि जब तक भारत के साथ स्थायी समझौता न हो जाय तब तक ये कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। वहाँ उत्तरदाथी शासन की स्थापिना की भी अत्याधिक आवश्यकता है। इन बातों के होने पर ही वहाँ स्थायी शन्तिस्थापित हो सकती है। हमें आशा है कि तानाशाही मनोवृत्ति और साम्प्रदायक भावना का वहाँ शीघ्र अन्त होगा और शान्ति स्थापित होगी। यह सब निजाम पर निर्भर करता है हमें विश्वास है कि वे बुद्धिमानी का कदम उठायेंगे। हमने अपने विचारों में अभी तनिक भी परिवर्तन नहीं किया है और समझौता या बात-चीत के अवसर पर हमने हमेशा ही यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत से सम्बद्ध होने में ही हैदराबाद का कल्याण है। भारत के इस दृष्टि-कोण में तनिक भी अन्तर नहीं हुआ है। अन्य राज्यों के सम्बम्ब में भी हमारा यही विचार है।

१७ जून १९४८ को नयी दिल्ली में निजामी प्रतिनिधियों को भारत सरकार की ओर से समझौते की अन्तिम शर्तें दी गई थीं। जिन्हें पंडित नेहरू ने उसी दिन पार्लियामैंट के समक्ष पेश किया।

भारत सरकार के प्रधान मन्त्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने १७ जून १९४८ को पार्लियामेन्ट के समक्ष भारत हैदराबाद समझौते का अन्तिम मसौदा पेश किया, जो इस प्रकार था—

१—निजाम की सरकार करती है कि भारत सरकार के अनुरोध पर वह भी धारासभा में ऐसा कानून बनायेगी जैसा कि भारत सरकार की धारासभा बनायेगी। ये कानून उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में होंगे जो नीचे के परिशिष्ट में दर्ज हैं।

२—यदि निजाम सरकार वैसा कानून पास नहीं करा सके तो

निजाम स्वतः अपने अधिकार के अन्तर्गत वैसा आर्डिनेन्स जारी करेगी जिससे उस कानून का उद्देश्य पूरा हो जाय।

३—भारत सरकार हैदराबाद की सैन्य संख्या निश्चित कर देना आवश्यक समझती है, यह संख्या कुल २०००० से अधिक नहीं होना चाहिये। १६३६ की भारतीय रियासती सेना योजना के अनुसार इस सेना को अस्त्र शस्त्र भारत सरकार देगी। वेतन आदि भी इसी योजना के अनुसार दिया जायेगा। भारत सरकार को इस बात का अधिकार रहेगा कि वह समय समय पर उसका निरीक्षण करे और निजाम की सरकार ऐसे निरीक्षण के लिए भारत सरकार को सभी आवश्यक सुविधाऐं देगी। निजाम की सरकार समय-समय पर भारत सरकार को आवश्यक सुविधाएँ भी देती रहेगी।

४—निजाम की सरकार यह स्वीकार करती है कि समारोह के लिये तथा महल के पहिरेदारों के सिवाय अनियमित सेना संख्या ८००० से अधिक नहीं होगी। हैदराबाद की सरकार यह स्वीकार करती है कि सैनिक ढंग के और सब संगठन भंग कर दिये जायेंगे। तीन मास के अन्दर रजाकार संगठन भंग कर दिया जायेगा। रजाकारों का प्रदर्शन, पैरेड,जुलूस तथा भाषण बन्द कर दिये जायेंगे।

५—यह भी स्वीकार किया जाता है कि भारत सरकार हैदराबाद रियासत के अन्दर अपनी सशस्त्र सेना नहीं रखेगी किन्तु आवश्यकता पड़ने पर भारत सरकार रियासत के अन्दर संकट काल में सेना रखना चाहे तो उसे हैदराबाद की सरकार स्वीकार करेगी। भारत सरकार निर्णय करेगी कि स्थिति संकट पूर्ण है या नहीं। यह भी स्वीकार किया जाता

है कि संकट काल की स्थिति में भारत सरकार हैदराबाद की रियासत के मकान तथा अन्य बातों के लिये मामूलीमुआविजा देगी।

६—संकट काल के अवसर पर यदि भारतीय सेना हैदराबाद की रियासत के अन्दर रहेगी तो वह सेना भारतीय सेना कानून के अन्तर्गत् रहेगी।

७—यह स्वीकार किया जाता है कि विदेशों से हैदराबाद का सम्बन्ध भारत सरकार के जरिये ही रहेगा। हाँ, हैदराबाद व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्ध के लिये विदेशों में व्यापार समितियाँ रख सकता है। लेकिन ये समितियाँ भारत सरकार के साथ सहयोग रखते हुए कार्य करेंगी। हैदराबाद किसी देश से व्यापारिक सम्बन्ध नहीं रखेगा।

८—सामान्य हितों के मामलों में वर्तमान समझौता, तथा शासन व्यवस्था ज्यों की त्यों जारी रहेगी और दोनों पक्ष उसके अनुसार चलेंगे। वर्तवान समझौता तथा व्यवस्था २६ नवम्बर १६४८ को समाप्त नहीं होगी जैसा कि २६ नवम्बर १६४७ के समझौते में बताया गया है।

परिशिष्ट

रक्षा-(१)—हैदराबाद रियासत या रियासत के बाहर हैदराबाद द्वारा बनाई गई या पहिले की रखी गई सेना।

२—समुद्र सेना, पैदल सेना या हवाई सेना।

३—अस्त्र शस्त्र

४—विस्फोटक

वैदेशिक मामले—

१—वैदेशिक मामले, संधि तथा अन्य देशों में समझौते को कार्यान्वित करने का प्रश्न।

२—हैदराबाद में प्रवेश, वहां से निकलने तथा निकाले जाने का प्रश्न।

३—बसने का प्रश्न।

याता यात—

१—डाक तथा तार जिनमें टेलीफोन भी शामिल है, वायरलैस, ब्राडकास्टिंग और याता यात के सम्बन्ध मे अन्य सुधार।

२—रियासत में भारत सरकार की रेलें, निजाम की रियासत की रेलवे में सुरक्षा, दर, स्टेशन आदि तै करने का प्रश्न।

३—विमान—हवाई यात्रा तथा हवाई अड्डे के कानून। विमानों की सुरक्षा की व्यवस्था, विमानों मे यात्रियों तथा सामान ले जाने का प्रश्न।

इस अन्तिम मसौदे पर निजाम के दस्तखत होते ही निजाम को यह फरमान हैदराबाद रियासत मे घोषित करना था—

१—मेरी सरकार और भारत सरकार के बीच लम्बी बार्ता के बाद, मैं अपनी नीति के आधार की घोषणा करने की स्थिति में हूँ। हैदराबाद और भारत के बीच अनिश्चित सम्बन्ध की स्थिति को शीघ्र समाप्त करने के लिये उत्सुक हूँ। मुझे भारत सरकार के विचार मालूम हो गये हैं और मेरे विचार भारत सरकार को ज्ञात हैं। मैंने निर्णय कर लिया है कि क्या हैदराबाद भारत में सम्मिलित होगा, इस प्रश्न पर मै जनता की इच्छा जानूं। अतः मैं हैदराबाद में वयस्क मताधिकार के आधार पर जनमत संग्रह करूंगा। जनमत संग्रह ईमानदारी के साथ हो इसके लिये मैं कुछ तटस्थ तथा स्वतंत्र संस्था की देख रेख में इसकी व्यवस्था करूंगा। मुझे जनमत संग्रह का निर्णय मान्य है, चाहे वह कुछ भी हो।

२—किन्त मैं महसूस करता हूँ कि लोगों में विश्वास पैदा करने

तथा शांति के लिये जनमत संग्रह के सिवाय अन्य बातों की भी आवश्यकता है। अतः मैंने निर्णय कर लिया है कि मैं अपनी सरकार के निम्न लिखित सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने का आदेश दूं। ऐसा करने में वे महसून करेंगे कि मेरी नीति का उद्देष्य भारत और हैदराबाद के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित करना है।

भारत और हैदराबाद के बीच समझौते से भी यह बड़ी चीज है। वे सिद्धान्त ये हैं—

१—मेरी इच्छा है कि हैदराबाद में उत्तरदायी सरकार स्थापित करूं और इसी उद्देश्य से १९४९ के आरंभ में विधान परिषद बुलाऊं।

२—इसी बीच में मैं मेरी सरकार की रूपरेखा बदलना चाहता हूँ। जिसके परिणाम स्वरूप मुख्य राजनीतिक दल के नेताओं से बात कर नई अस्थायी सरकार बनाई जायेगी।

३—मेरी सरकार भारत सरकार से इस प्रश्न पर समझौता करने में सफल हुई है कि जनमत संग्रह होने तक के लिये अस्थायी सम्बन्ध किस तरह से रहें। यह समझौता अलग दस्तावेज पर है। जिस पर मेरे प्रधान मंत्री ने दस्तखत किये हैं।

इस मसौदे को भी निजाम ने स्वीकार नहीं किया। निजाम की सरकार ने इस मसौदे के अस्वीकृत किये जाने के तीन प्रधान कारण बताये हैं—

१—मत गणना के पूर्व ही भारत में हैदराबाद को मिलाने पर जोर।

२—राज्य के अन्दरूनी मामलों में तात्कालिक परिवर्तन के लिये जोर देना।

३—हैदराबाद को आर्थिक स्वतन्त्रता न देना तथा वैदेशिक व्यापार की स्वतन्त्रता छीनना।

वार्ता के सिलसिले में भारत सरकार दबाव और ज्यादती से काम लेना चाहती थी। हम शान्तिमय मार्ग से पीछे नहीं हटे है और भारत सरकार से समझौते के लिये प्रस्तुत हैं।

भारत सरकार और निजाम के प्रतिनिधियों की वार्ता भंग होने पर १७ जूनको नई दिल्लीमें पत्रकारों की कांफरेन्समे हैदराबाद के सम्बन्ध में पं०जवाहर लाल नेहरू ने जो भाषण दिया था, वह इस प्रकार है—

हैदराबादके लिये समझौतेका दरवाजा सदा खुला रहेगा,हमने जो प्रस्ताव समझौते के लिये भेजे हैं, वे अभीतक कायम हैं। और निजाम जब चाहें उन्हें स्वीकार कर सकते हैं। लेकिन साथ ही भारत सरकार किसी के लिये रुकेगी नहीं। हम लोग किसी का इन्तजार न करेंगे। इस सम्बन्ध में हमें जो कुछ करना है, वह हम कर रहे हैं और इस दिशा में हम आगे बढ़ रहे हैं। आवश्यकतानुसार सुरक्षा की कार्रवाई करते हुए सरकार हैदराबाद के ऊपर आर्थिक घेरे को और भी कठोर कर देगी। संभावित समझौते के मसौदे में जो शर्तें दी गई हैं, उनमें अब किसी प्रकार का भी हेरफेर न होगा। भारत सारकार अन्तिम सीमा तक सुविधा देने की वात कर चुकी है, अब इसके आगे कुछ नहीं किया जा सकता। समझोता कार्यान्विन्त कराने के लिये कुछ हद तक आर्थिक अवरोध कर दिया गया है, लेकिन सीमाओं पर और भी कड़ाई की जावेगी तथा सेनाओं को आदेश दिया गया है कि आवश्यकता पड़ने पर उपद्रवियों को दण्ड देने के लिये सेना हैदराबाद की सीमाओंमें भी घुस जाय। अन्य किन उपायों का हम प्रयोग करेंगे, यह स्थिति पर निर्भर करता है। लेकिन जहाँ तक संभव होगा भारत सरकार सामूहिक संघर्ष बचानेका प्रयत्न करेगी।"

"मुझे निजाम सरकार का एक तार मिला है कि समझौते की बातें जारी रखी जांय लेकिन अब समझौते की वार्ता जारी रखने का कोई प्रश्न ही नहीं और यह बात उन्हें स्पष्टतः सूचित भी कर दी गई है। दुर्भाग्यवश यदि स्थिति खराब

हुई और हैदराबाद राज्य भारत में सम्मिलित न हुआ और संघर्ष बढ़ा तो उसका परिणाम स्पष्ट ही है। इसका परिणाम एक ही होगा जो निजाम सरकार के मन का न होगा और वह परिणाम प्रस्तावित समझौतों आदि के बन्धनों से बंधा हुआ न होगा। मुझे हैदराबाद द्वारा प्रस्ताव अस्वीकार किये जाने से परेशानी नही है और न मैं उससे क्षुब्ध ही हुआ हूँ। मैं यह भी मानने के लिये तयार नहीं हूँ। कि हमारे प्रयत्नों का कुछ भी फल न होगा। लेकिन अब हम हैदराबाद के प्रतिनिधियों से कोई भी बात न करेंगे। यदि वे समझौते पर हस्ताक्षर करना चाहे तो उनका स्वागत है।"

"निजाम ने अपने उत्तर में लिखा है कि प्रस्तावित समझौते में, अंतिम क्षणों में कुछ बढ़ाया गया है और उसे उनके प्रतिनिधि समझ सकने में असमर्थ रहे हैं। यह बिलकुल ही झूठ था। निजाम को सर वाल्टर मांकटन ने यह बात समझादी है। निजाम ने अपने इस प्रकार के दोषारोपण के लिये क्षमा याचना भी की है। हैदराबाद में इस समय पूर्ण घपले की स्थिति कायम है। वे एक बात स्वीकार करते हैं। और दूसरे ही क्षण उसे अस्वीकार कर देते हैं। प्रस्तावित समझौते में जो मुख्य बातें हैं, वे लगभग सभी प्रतिनिधियों को स्वीकार थीं। वास्तविक बात तो यह है कि हमें लोग समझ रहे थे कि अब हम लोग उस पर हस्ताक्षर कर देंगे। लेकिन अन्तिम समय में हमसे कहा गया कि हम प्रस्तावित समझौते को हैदराबाद ले जाना चाहते हैं और निजाम से विचार विनिमय करना चाहते हैं। हमारी सब से बड़ी कठिनाई यह रही है कि हमें ऐसे व्यक्तियों से बातचीत करनी थी जिन्हें कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। न तो वे हाँ कह सकते थे। और न नहीं कह सकते थे। वे बराबर हैदराबाद दौड़ने के फेर में रहते थे। फोन का सम्बन्ध रहने पर भी यह स्थिति रही है। परिणाम स्वरूप हर बातों में बड़ी देर हुई। फलतः वर्तमान स्थिति यह है। कि निजाम या उनकी सरकार को हमारे प्रस्ताव स्वीकार नही हैं उनका

यह कहना है कि अभी समझौते की वार्ता समाप्त नहीं हुई हैं, लेकिन इस प्रस्ताव की जो शर्तें हैं, उन्हें वे स्वीकार करने में असमर्थ हैं।"

"हैदराबाद के लिये शस्त्रास्त्र भेजने पर भारत सरकार ने रोक क्यों लगाई। इसके स्पष्ट कारण हैं। सबसे बड़ा कारण यह है कि भारत सरकार को हर प्रकार से पता लगा है कि हैदराबाद की सरकार कानूनी और गैर कानूनी ढङ्ग से अपनी सेना बढ़ाने में संलग्न हैं और विश्व के जिस क्षेत्र से भी सम्भव हो, युद्धसामग्री एकत्रित करने के फेर में रही है। अपने प्रयत्नों के बावजूद भी हैदराबाद की सरकार को इन कामों में सफलता नहीं मिल सकी। इसका प्रधान कारण उसके प्रयत्नों की कमी नहीं बल्कि कुछ और बात है। हैदराबाद जब अपनी शक्ति बढ़ाने का इस प्रकार यत्न कर रहा था और आपत्तिजनक भाषण दिये जारहे थे तो भारत सरकार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार उसके विरुद्ध कार्रवाई कर सकती थी। लेकिन हमने ऐसा क्यों नहीं किया? इसका कारण स्पष्ट है। हम यह जानते हैं कि जनता और हैदराबाद की सीमा से लगी प्रान्तीय सरकारों को रजाकारों के कारण बड़ी कठिनाइयां हुईं, फिर भी हमने अपना हाथ इसलिये रोक रखा कि हम इस प्रश्न को शान्तिपूर्ण ढङ्ग से सुलझाना चाहते थे और हमें अपने द्वारा की गई कार्यवाई के परिणाम का भी ध्यान रखना था। हम इसलिये जल्दबाजी नहीं करना चाहते कि वहाँ का कोई व्यक्ति हमारे साथ दुर्व्यवहार कर रहा है। वहाँ का कोई भी व्यक्ति जो चाहे सो कहे, हम तो यही कहेंगे कि हैदराबाद भारत का ही अङ्ग है। हम हैदराबाद के हिन्दू मुसलमानों को और कुछ न समझकर केवल भारतीय समझते हैं। हम कुछ भी ऐसा नहीं करना चाहते जिससे वहाँ की जनता और बाहर के लोगों को कष्ट हो। ऐसी घटनाओं की भारत पर भी प्रतिक्रिया अनिवार्य ही है। कोई भी जिम्मेदार सरकार ऐसा कार्य तब तक नहीं करना चाहेगी जब तक कि अन्य मार्ग उसके सामने हों। इसलिये हमने अपने पर

जबरदस्त नियन्त्रण रखा है लेकिन हमने अपने को हर स्थिति के लिये तैयार बना लिया है। फिर भी हम समझौते की आशा अब भी रखते हैं।"

"भारत सरकार की हैदराबाद के समझौते में बड़ी कठोर आलोचनाएँ की गईं कुछ हद तक यह भी कहा गया कि भारत-सरकार बहुत ही कमजोर है इसलिये हैदराबाद का मसला हल नहीं करा रही। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि हम बड़ी ज्यादती कर रहे हैं। लेकिन हमारी उदारता के कारण प्रथम आलोचना ही अधिक प्रचलित है। इधर हाल की वार्ता के सम्बन्ध में निजाम का प्रतिनिधि-मण्डल दो बार भारत आया और हमें आशा थी कि निजाम के प्रतिनिधियों को ये प्रस्ताव स्वीकार हैं और हमने उन लोगों से यह स्पष्ट भी कर दिया था कि समझौते के लिये वे पूर्ण अधिकार लेकर ही आवें और इसी आधार पर बातचीत चल रही थी।"

"भारत और भारत के देशी राज्यों को हैदराबाद की सर्व-तन्त्र स्वतन्त्रता स्वीकार नहीं है। भारत के देशी राज्य स्वतन्त्र भारत के समान हिस्सेदारों के रूप में हैं और पूर्ण स्वतन्त्रता का आनन्द ले रहे हैं। हैदराबाद के लिये भी भारत में सम्मिलित होना ही केवल एक मार्ग है लेकिन फिर भी हम इस कार्य में जबरदस्ती न करेंगे। हैदरा-बाद की सेना बढ़ाई जा रही है। प्रश्न उठता है कि इतनी सेना बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? कारण स्पष्ट है कि भारत सरकार से लड़ने के लिये ही सेना का विस्तार किया जारहा था। साथ ही रजाकारों का भी उदय हुआ। उन्होंने उपद्रव के कार्य राज्य में ही आरम्भ नहीं किये, बल्कि राज्य के बाहर भी उन्होंने अपने उपद्रव आरम्भ किये। भारत के लिये यह बिलकुल असम्भव है कि वह हैदराबाद के लिये शस्त्रास्त्र जाने दे और वहाँ की सेना को इसलिये बढ़ने दे कि वह भारतीय जनता को त्रस्त करे। इसलिये हमने यातायात के साधनों पर भी रोक लगाई है। हैदराबाद से भारतीय सेना हटा लेना ही यह

स्पष्ट कर देता है कि भारत सरकार हैदराबाद के साथ हुए "यथापूर्व समझौते" का आदर करती थी और उसे आशा थी कि अन्त में शान्तिपूर्वक समझौता हो जायगा। इत्तहादुल मुसलमीन के नेताओं की कार्यवाइयों और भाषणों की हम परवाह नहीं करते, लेकिन सरकार से सम्बद्ध संघटनों के नेताओं का प्रलाप आपत्तिजनक है। रिजवी ने दिल्ली पर पहुँचकर लाल किले पर कब्जा करने की बात कही है और यह भी कहा है कि यदि हमारी सेना वहाँ गई तो वे हिन्दुओं का कत्लेआम कर डालेंगे। ऐसे भाषणों का हैदराबाद की जनता पर ही नहीं भारत पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है। वास्तविक बात यह है कि हैदराबाद का प्रतिनिधिमण्डल शर्तों पर राजी हो गया था, लेकिन वहाँ के कुछ लोग इसके विरुद्ध थे। फरमान मे निम्नलिखित चार बातों का जिक्र था—१—जनमत गणना, २—उत्तरदायी सर, कार, ३—विधान सम्मेलन और ४—मध्यवर्ती सरकार। यह बहुत ही आवश्यक है कि लोकप्रिय सरकार की स्थापना का सिद्धांत तत्काल कार्यान्वित किया जाय।"

समझौता वार्ता विफल होने पर निजाम सरकार की ओर से विफलता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि—

"भारत सरकार के साथ समझौता न हो सकने का प्रधान कारण यह है कि भारत सरकार अपने बाहुबल से काम लेना चाहती है और आदेशात्मक शर्तें लागू करना चाहती है। हैदराबाद की सरकार निष्पक्ष व्यक्तियों के संरक्षण में मतगणना के लिये भी तैयार थी लेकिन भारत सरकार ने उसे नहीं माना और राज्य में लोकप्रिय शासन की स्थापना की बात कहती है। इस प्रकार के शासन की स्थापना से सम्प्रति बहुत कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाने का भय है। आज हैदराबाद पर पूर्ण आर्थिक अवरोध जारी कर दिया गया है और शान्तिपूर्ण ढङ्ग से समझौते की बात मानने से भारत सरकार ने इन्कार कर:

दिया है। आज हमें दैनिक आवश्यकताओं की चीजों से वंचित रखा जा रहा है। हैदराबाद शान्तिमय ढङ्ग से गौरवपूर्ण मैत्री के लिये सदा ही तैयार रहा है।"

२८ जून १९४८ को हैदराबाद के प्रधानमन्त्री लायकअली खाँ ने समझौता वार्ता विफल होने पर जो भाषण दिया वह इस प्रकार है—

"हैदराबाद के प्रश्न पर भारत सरकारसे सन्तोषपूर्ण समझौता करने में हम असमर्थ हो गये। हमने अपनी ओर से शान्तिपूर्ण निर्णय के लिये कोई कोर-कसर नहीं बाकी रखी, साथ ही हैदराबाद की प्रतिष्ठा, शान्ति, सुख एवं स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखते हुए ही हमने समझौता करने की कोशिश की। मुझे भारत से किसी प्रकार का बैर या द्वेष नहीं है। मैं मानता हूँ कि भारत एक महाशक्ति है और हैद-राबाद से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। अपनी सीमित शक्ति और अल्प साधनों के द्वारा हैदराबाद के लिये भारत का मुकाबला करना टेढ़ी खीर होगी. यह भी इन्कार नहीं किया जा सकना। फिर भी हैदराबाद को अपने विशेष और प्रचुर नैतिक बल का सहारा और भरोसा है। खुदा ने चाहा तो हैदराबाद अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा। भारत सरकार द्वारा हैदराबाद के सम्बन्ध में ३ शर्तें रखी गईं। १—भारत में सम्मिलित होना, २—राज्य में तत्काल उत्तरदायी शासन और ३—जनमत गणना। जब हैदराबाद तीसरी शर्त स्वीकार करने के लिये राजी हुआ तो भारत के कान खड़े हो गये। उसे शांति-पूर्ण समझौता करना था नहीं, अतः माँग की गई कि हैदराबाद अविलम्ब भारत में सम्मिलित हो और उत्तरदायी सरकार की स्थापना भी तुरन्त की जाय। स्पष्ट है कि इसके बाद जनमत गणना का कोई महत्व नहीं रह जायगा। ऐसी स्थिति में भारत सरकार का प्रस्ताव ठुकराने के अतिरिक्त हैदराबाद के सम्मुख दूसरा कोई चारा नहीं रहा। दिल्ली ने हैदराबाद की मैत्री का हाथ पकड़ने से इन्कार कर

दिया है। उसने धमकी दी है कि अपनी श्रेष्ठ सैनिक, आर्थिक एवं भौगोलिक स्थिति के द्वारा भारत हैदराबाद को कुचल देगा। उसने कहा है कि हम हैदराबाद से अपनी मन चाही कराकर ही दम लेंगे। हम अपने अल्प साधनों से इस स्थिति का कैसे मुकाबला करें, यही प्रश्न है। किन्तु कोई भी शक्ति हमारे नैतिक बल को ध्वस्त करने में निष्फल होगी, यह ध्रुव सत्य है। हैदराबाद की स्वतन्त्रता की रक्षा की जायगी।"

"अन्तिम क्षण तक हम भारत से मेल बनाये रखना चाहते हैं परन्तु यदि सारी कोशिशों के बावजूद हम विवश किये गये और हमारे विरुद्ध बलप्रयोग किया गया तो हमारे लिये इसके सिवा और कोई चारा न रह जायगा कि हम स्थिति का अपनी शक्ति भर गौरव पूर्ण रीति से सामना करें और परिणाम खुदा के हाथ में छोड़ दें। हम दुर्बल और असहाय हो सकते हैं परन्तु हमारा पक्ष न्यायपूर्ण है और ईश्वर में हमारा विश्वास है। यदि निजाम के फरमान का ठीक से आशय समझ कर उसे कार्यान्वित किया जाय तो उससे जनता की अधिकांश माँगों की पूर्ति हो जायगी जिन लोगों को शासन में समुचित भाग नहीं मिला है उनके लिये दरवाजा अब भी खुला है। उन्हें इसलिये अलग नहीं रहना चाहिये, क्योंकि उन्हें किसी ने ऐसा करने के लिये कहा है। भारत विभाजन और अंग्रेजों के चले जाने के बाद रियासतों को यह स्वतन्त्रता दे दी गई थी कि वे भारत या पाकिस्तान से मिल जायें अथवा स्वाधीन ही रहें। अपने वंश की परम्परानुसार निजाम ने स्वतन्त्र ही रहने का निश्चय किया, कारण किसी एक राज्य में शामिल होने पर हमारी जनता के एक वर्ग की भावना पर आघात पहुँचता। फिर भी स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हमें भारत संघ से घनिष्ट सम्बन्ध बनाये रखना चाहिये। हैदराबाद अनुभव करता है कि भौगोलिक एवं राजनीतिक दोनों दृष्टियों से उसे भारत के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखना होगा। वह यह भी जानता है कि सुरक्षा,

बाहरी मामले, तथा यातायात सम्बन्धी विषयों में उसे भारत में समझौता करना होगा। हम इस तथ्य से भी अनभिज्ञ नहीं हैं कि शेष संसार के साथ हमारा यातायात सम्बन्ध भारत के द्वारा ही संभव है। सुरक्षा के सम्बन्धों में हमारा विश्वास है कि यदि बाहरी आक्रमण से भारत की स्थिति अरक्षित हुई तो भले ही हम अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखें, फिर भी उसके प्रभाव से हम मुक्त नहीं रह सकते। अतः परराष्ट्र सम्बन्धी मामलों में हम अपनी अलग परराष्ट्र नीति नही रख सकते। उक्त बातो पर विचार करते हुए भारत संघ से हम ऐसा सम्बन्ध रखना चाहते हैं कि निजाम की राजगद्दी बनी रहे और हमारी आर्थिक तथा सांस्कृतिक विरासत की रक्षा होसके। यथास्थित समझौते होने पर भी हमें अबतक शास्त्रास्त्र नहीं दिये गये। हमारे निर्यात पर भी प्रतिबन्ध लगे हुए हैं। शिकायतों और जवाबों से केवल फाइलों की ही संख्या बढ़ी है। प्राय हैदराबाद को "अमित्र विदेशी राज्य" कहा गया है। रेडियो पर सरकारी, गैर सरकारी वक्ताओं ने ऐसे ढंग से भाषण किये हैं जिनसे संघर्ष अनिवार्य प्रतीत होता है। इधर से भी कुछ लोगों ने व्यक्तिगत हैसियत से ऐसे ही भाषण किये हैं। आखिर शक्ति शाली भारत संघ के परेशान होने की जरूरत ही क्या है? यदि हैदराबाद अपनी सम्मान जनक स्थिति में ही रहना पसन्द करता है तो क्या जरूरत है कि भारतीय नेता हैदराबाद से युद्ध की भाषा में ही बातचीत करें। यदि यही ढंग रहा तो विनाश अनिवार्य है। यदि एक बार संघर्ष हो गया तो उसे रोकना कठिन ही है।"

"नेहरू जी और कड़े आर्थिक प्रतिबन्धों की धमकी दे रहे हैं और कहते हैं कि हैदराबाद के विरुद्ध सैनिक कार्यवाई को युद्ध न कहा जायेगा। मैं कह देना चाहता हूँ कि हैदराबाद धमकियों से जरा भी न दबेगा। यह पशु शक्ति के समक्ष नत मस्तक न होगा। वह प्रत्येक परिस्थिति के लिये पूरी तरह तैयार है। वह पूरी शक्ति के साथ

आक्रमण का मुकाबला करेगा।

हैदराबाद की समस्या पर ता० २७ जुलाई १९४८ को पार्लियामेंट की लोक सभा (लन्दन) में ब्रिटेन के विरोधी दल के नेता मि० चर्चिल ने, जो गत दोनों महायुद्धों में ब्रिटेन के प्रधान मंत्री रह चुके हैं, जो भाषण दिया था उसका मुँह तोड़ उत्तर देते हुए भारत के उप प्रधान मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक ऐतिहासिक वक्तव्य दिया है, वह इस प्रकार है—

"विरोधी दल के नेता ब्रिटेन के युद्ध कालीन प्रधान मन्त्री श्री विन्स्टन चर्चिल ने शाही खिताबों में से भारत सम्राट की उपाधि लुप्त हो जाने पर आँसू बहाते हुए भारत और भारत सरकार के विरुद्ध खूब ही विष वमन किया है। सरकार ने भी तथा विरोधी दल में भी श्री० चर्चिल का भारत के द्वेष पूर्ण रूख सर्व विदित है। जब कभी भी उन्होंने इस संबन्ध में हस्तक्षेप किया है, वह भारत विरोधी ही रहे हैं और इसका दूरस्थ परिणाम उनके देश के लिये भी अहितकर हुआ है। श्री० चर्चिल एक निर्लज्ज साम्राज्य वादी हैं और एक समय पर जब साम्राज्य वादी अपनी अन्तिम सांसे ले रहा है, उनकी जिद तथा हठ धर्मी बुद्धिहीनता की सीमा को पार किये जारही है। भारत और ब्रिटेन के बीच मैत्री के बहुत से प्रयत्न उनके तथ्यों से मुँह मोड़ने के कारण असफल हुए हैं।"

"यह भली भांति विदित है कि जब क्रिप्स योजना पेश की गई थी तब श्री चर्चिल ने ही वार्तालापों की सफलता में अड़ंगा लगाया था। जब-जब श्री रूज़ वेल्ट ने भारत की न्याय्य मांगों के प्रति न्याय और युद्ध में भारत के स्वतन्त्र और स्वेच्छा पूर्ण सहयोग के लिये प्रयत्न किये तो एक मात्र श्री चर्चिल ने ही उन पर पानी फेरा लार्ड वावेल के शिमला सम्मेलन भंग होने और उसकी विफलता की जिम्मेदारी भी श्री चर्चिल पर है। यदि इनमें से कोई सा भी प्रयत्न सफल हो जाता तो भारत का इतिहास तथा स्वातन्त्र्य आन्दोलन की तीव्रता

और तीखे पन के उपरान्त भी भारत और ब्रिटेन के सम्बन्ध भी कुछ और ही होते। तब विभाजन तथा उससे उत्पन्न और सम्बद्ध संकटों से हम बच जाते। ब्रिटेन के सौभाग्य कि उसके संकट का प्याला जिस समय लबालब भरा था, उसने अपना मांझी बदल दिया।"

"मजदूर सरकार की वास्तविकतापूर्ण नीति, ब्रिटेन के चतुरतम राजनीतिज्ञ लार्ड माउन्ट बेटन के साहसिक तथा समझदारी पूर्ण प्रयत्न तथा उस मैत्री तथा सद्भावना पूर्ण वातावरण ने जिसके निर्माण मे लार्ड माउन्ट बेटन न सहायता दी, चर्चिल द्वारा की गई शरारत को एक बड़ी हद तक दूर कर दिया। परन्तु ज्ञात होता है कि चर्चिल अभी तक अपनी पुरानी हिन्दू भूत व्यधि से पीड़ित हैं और मौन रहने के गुणों की उपेक्षा करके वह सारे किये धरे पर पानी फेरने के लिये तुले बैठे हैं। उनके जैसे अनुभवी तथा उनकी जैसी स्थिति के मनुष्य से यह अपेक्षित है कि वह जिम्मेदारी से काम ले। इस प्रकार एक साथी उपनिवेश की सरकार पर आक्रमण करना किस हद तक उचित था, यह प्रश्न मैं ब्रिटिश सरकार तथा वहाँ की जनता के निर्णय पर ही छोड़ देता हूँ।"

"मैं तो केवल इतना ही कहूँगा कि उच्च पदप्राप्त अंग्रेजों द्वारा हमारे शासन, हमारे नेता और हमारी जनता की द्वेष पूर्ण तथा शरारत भरी निन्दा हम आवश्यकता से अधिक समय तक घूंट पिये सुनते रहे हैं। राष्ट्र मण्डल के किसी अन्य देश के लिये कभी भी इस प्रकार की बात नहीं कहीं गयी है इस मण्डल के एक देश ने जातिगत भेदभाव की नीति अपना कर और संयुक्त राष्ट्रीय अधिकार पत्र के आधार भूत सिद्धान्तों को खुल्लम खुल्ला ठुकराकर संसार की आत्मा पर आघात पहुँचाया है। किन्तु श्री चर्चिल ने, जिनमें अपनी जाति द्वारा दूसरों पर किये अन्याय को सहन कर लेने की असीम क्षमता है, औपचारिक विरोध के रूप में भी एक शब्द नहीं कहा। अतः सम्राट की सरकार को मैं बता देना चाहता हूँ कि यदि वह

चाहती है कि ब्रिटेन के साथ भारत के मैत्री पूर्ण सम्बन्ध बने रहें तो उसे यह देखना चाहिये कि भारत पर इस प्रकार के द्वेष पूर्ण डंक न मारे जाँय और ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ तथा अन्य लोग भारत के सम्बन्ध में मैत्री पूर्ण और सद्भावना मूलक बातें कहना सीखें। कितने ही वर्षों के गहन द्वेष तथा अज्ञानता के कारण यह हो सकता है कि कुछ लोगों के लिये ऐसा करना कठिन हो, परन्तु यदि भावी दुर्घटनाओं का निराकरण करना है तो ऐसा करना ही पड़ेगा।"

"गत वर्ष जुलाई में भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट को पास करने के सर्व दलीय दायित्व की चर्चिल ने जिस ढंग से अवहेलना की उससे पता चल जाता है कि भारत तथा भारत सरकार पर चर्चिल का आक्रमण कितना शरारत भरा तथा जहरीला है। हमने यह पहिले ही सोच लिया था कि भारत को स्वतन्त्रता देने के अन्तिम अध्याय को यदि दलगत प्रश्न बनाया गया तो हमारी कठिनाइयाँ कई गुनी बढ़ जायेंगी। भारत और ब्रिटेन में निन्दित स्वार्थ वाले व्यक्तियों के दावपेचों से हम पूर्णतः अवगत थे। वे चाहते थेकि भारत को कठिन से कठिन परिस्थितियों में सत्ता सौंपी जायँ। भारत को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करने के वीचार को सक्रिय प्रोत्साहन दिया जा रहा था। बहुत बड़े पैमाने पर काल्पनिक उपद्रव पैदा किये गये। जब व्यक्ति गत शासन का अन्त हो रहा था तो चर्चिल पन्थियों के एजन्ट गुण्डागीरी पर उतारू थे। इसलिये हमने निश्चय किया कि कड़वी घूंट पीकर अपेक्षाकृत कम घातक विभाजन को ही स्वीकार कर लिया जाय, केवल इस शर्त पर कि यदि इसेसमस्त दलों का समर्थन प्राप्त हो। इस समर्थन के लिये वचन दिये गये और वास्तव में समर्थन किया भी गया। समस्त दलों के इस समझौते ने भारतीय स्वतन्त्रता कानून को शीघ्र गति से पास करवाया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के इतिहास में इसके समान उदाहरण कोई नहीं है। हम समझते थे कि चर्चिल आदरणीय पुरुष हैं और वह अपने दायित्व को निभायेंगे, लेकिन

उनके लिये यह स्वीकार करना कठिन है कि भारत अब एक स्वतन्त्र देश है।"

"यदि उनके अन्तर्निविष्ट पक्षपात और मध्ययुगीन मनोवृत्ति के प्रमाण की आवश्यकता हो तो यह बता देना पर्याप्त होगा कि जब वे काश्मीर में चार पचमांश मुस्लिम आबादी बताते हैं तो यह बताना भूल जाते हैं कि हैदराबाद में भी चार पचमांश हिन्दू आबादी है। निजाम राज्य की स्थापना १८ वीं शताब्दी में हुई थी परन्तु चर्चिल महाशय के शाब्दिक इन्द्रजाल से वह प्राचीन राज्य में परिणत हो गया। वास्तविकता यह है कि चाहे चर्चिल शेर की बोली बोलें और चाहे कबूतर की, उनकी अज्ञता और पक्षपात स्पष्ट हुए बिना नहीं रहते। ब्रिटिश जनता ने चर्चिल के हाथ से शासन की बागडोर छीन कर जिस संकट को टाला है, उसे हम भली भांति जानते हैं। हमें आशा थी कि जिस समय चर्चिल अपने गौरव के शिखर पर विराजमान थे, उसी समय जनता ने उनके, आत्म सम्मान और सौभाग्य में जो चपत लगाई, उससे उन्हें चाहे दुख हो, पर उन्हें समझ आ जायेगी। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि किसी चीज को न सीखने या सीखी हुई चीज को न भूलने की विशेषता श्री चर्चिल ने अपने स्टूअर्ट वंशीय पूर्वजों से प्राप्त की है।"

"अब से लगभग ६ मास पूर्व साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण जो रक्तपात हुआ था, उसका उल्लेख करते हुए, चर्चिल ने सन्तोष की सांस ली है। यदि वे ऐसा कहते कि उपद्रवों के पश्चात भारत में इतनी शीघ्रता और दक्षता के साथ शान्ति स्थापित कर दी गयी कि अनेकों निष्पक्ष व्यक्ति तक चकित रह गये तो इससे उनकी उद्देष्य सिद्धि न होती। इन दुखद घटनाओं की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है। और यह मान लिया गया है कि इन घटनाओं से भारत को लज्जित और अपमानितभी होना पड़ा है। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि विश्लेषण करके देखाजाय तो अन्तमें यह प्रमाणित होजायगा कि इसअपराध व

प्रधान कारण अंग्रेजों की विरोध पैदा करके शासन करने की नीति है। चर्चिल इसके कुशल सूत्रधार थे। उन्हीं की विचार धारा वाले उनके एजन्टों तथा यूरोप वासियों ने उनके तथा उनके पूर्वाधिकारियों के शासन काल में इस देश में बड़ी वफादारी के साथ उस नीति का अनुसरण किया। भारत के ताजा इतिहास का अध्ययन करने वाले प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति को यह विश्वास हुए बिना नहीं रह सकता कि देश का विभाजन और उसके बाद होने वाली दुखद घटनाओं का प्रधान कारण उस जनवर्ग की हिन्सात्मक कार्रवाईयाँ थीं, जिसके नेता और पथप्रदर्शक श्री चर्चिल थे। इस प्रकार चर्चिल और उनके साथियों को भी इतिहास के न्यायालय में इस दुखद घटनाओं का उत्तर देना पड़ेगा।"

"यह स्पष्ट नहीं है कि इन अविवेक और मूर्खता पूर्ण कार्यों में टोरी दल के सदस्य कहाँ तक अपने नेता के अनुयायी हैं। विदेशी मामलों की बहस में श्री बटलर ने हैदराबाद के सम्बन्ध में जो अनर्गल चर्चा की है उससे यह ज्ञात होता है कि टोरी दल के कुछ लोग अबभी भारत की मुसीबतों से लाभ उठाना चाहते हैं। पार्लियामेन्ट की बहस में श्री चर्चिल ने जो बाधा डाली और बाद में अनुदार दल के लोगों के मध्य जो भाषण दिया, उससे यह ज्ञात होता है कि वे कम से कम ब्रिटेन के पुराने वफादार साथी को भारत के विरुद्ध उत्तेजित करने में प्रयत्न शील हैं। मैं ब्रिटिश जनता को इन कार्यवाइयों में भाग लेने के विरुद्ध चेतावनी देना चाहूँगा। हैदराबाद का प्रश्न शान्ति के साथ सुलझ सकता है यदि निजाम अल्पसंख्यक लड़ाकों में से चुने गये शासक वर्ग द्वारा राज्य करने की अत्यन्त पुरानी प्रथा को त्याग दें। जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों के सुझावों और परामर्शों पर प्रजातन्त्रात्मक रीति से चलें और हैदराबाद तथा भारत की भौगोलिक आर्थिक तथा अन्य जबरदस्त शक्तियों द्वारा दोनों के सम्बन्धों पर पड़ने वाले अनिवार्य प्रभाव को समझें। किन्तु भारत के हितों पर

आघात करने के लिये प्रजातन्त्रात्मक युग के ये विशिष्ट व्यक्ति इतिहास की शिक्षा तथा प्रजातन्त्र बाद के पाठ भूलगये और उस शासन का पक्ष लेरहे हैं जो अब भी अपनी आदि कालीन दशा में है। अतएव निजाम पर कोई आपत्ति आगई तो उसको दायित्व भारतीय उपनिवेश पर नहीं वरन् किसी अन्य पर होगा। मुझे प्रसन्नता है कि सम्राट की सरकार श्री चर्चिल और उनके गुट वालों के बहकावे में नहीं आई और उसने हैदराबाद के मामले को भारतीय उपनिवेश का एक घरेलू विषय मान लिया है। अतएव मैं टोरी दल के सदस्यों से यह अपील करता हूँ कि वे अपने नेताओं के पुराने विचारों में न बह जायें बल्कि भारतीय उपनिवेष से सद्भावना एंव मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करें और वही उत्तम भाव कायम रखें जो भारतीयों को शक्ति हस्तान्तरित करते समय उनके हृदय में विद्यमान थे। यह ब्रिटिश हितों के लिये भी उतना ही आवश्यक है जितना भारत के लिये। भारत, ब्रिटेन और राष्ट्र मण्डल के अन्य सदस्य देशों के मध्य इसी प्रकार चिरस्थायी मैत्री पूर्ण सम्बन्ध और आपसी सहयोग और सहकारिता स्थापित हो सकेगी न कि श्री चर्चिल के कपट पूर्ण और विषैले प्रचारों से।"

१९२६ में हैदराबाद के एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने मेमोरेन्डम तैयार किया था जिसमें उसने बताया था कि १८०० में आसफजाही घराने की जड़ दक्षिण में नहीं जमी थी। वास्तव में बात यह थी कि वे दक्षिण में हमेशा ही विदेशी की तरह माने गये। बिना अंग्रेजों की सहायता के वे दक्षिण में महज्ञ कुछ मुसलमानों के बलपर टिक नहीं सकते थे। मराठों से जीतना उनके लिये आकाश कुसुम को प्राप्त करने जैसा ही था। अंग्रेजों ने ही हैदराबाद का राज्य विभाजित किया वरना, वह प्राकृतिक रूप से अखण्ड भाषा-भाषी प्रदेश होता। कह नहीं सकते कि ईश्वर की क्या फिर यही मरजी है कि वह फिर प्राकृतिक रूप से एक भाषा-भाषी प्रदेश होजाय। हो सकता है कि ईश्वर निजा-

म की अदूरदर्शिता एंव नादानी के जरिये से ही इस भविष्य को पूर्ण कराये !

निजाम मध्य युगीन ढंग का अपने राज्य में अकेला ही सर्वे-सर्वा है। उसे सालाना ५० लाख रुपये निजी खर्च के तथा व्यक्तिगत जागीरों से ३ करोड़ सालाना की आमदनी है। उसके पास निजी सम्पति के रूप में करोड़ों का माल है। उसके बाद उसके कई हाकिम राज्य में हैं जो साम्प्रदायिक आधार पर नियुक्त किये गये हैं। ६६६ हाकिमों में से ७५४ हाकिम अल्पसंख्यक जाति के ही हैं जो हैदराबाद की कुल आबादी के १२.५० फीसदी के बराबर भी नहीं हैं। निजाम के पास रियासत की कुल आबाद जमीन का ४० फीसदी भाग जागीरों के रूप मे है। १६३७ तक हैदराबाद मे एकदम एकतंत्री एंव स्वेछाचारी शासन था। इसके बाद नाम के लिये व्यवस्थापिका सभा कायम की गई जिसमे एक तिहाई से भी अधिक सदस्य शासक के द्वारा ही नामजद किये हुए रखे गये और वहाँ भी अल्पसंख्यको का ही बोलबाला रहा। इसको देखते हुए, आश्चर्य करने का कोई कारण नजर नहीं आता कि भारत संघ में प्रविष्ट होने के लिये जिस जिम्मेदाराना सरकार को आवश्यकता है, उसे कायम करने में सम्बद्ध व्यक्तियों को कितना जबरदस्त भय है। निजाम की वास्तविक लड़ाई भारतीय संघ के साथ नहीं वरन् उसकी बहुसंख्यक प्रजा के साथ ही है। उस बहुसंख्यक प्रजा को दबाये रखने के लिये निजाम ने इत्तिहादुल मुसलमीन और रजाकारों के संगठनों को जन्म दिया है। रजाकारों और इत्तिहादुल मुसलमीन के जुल्मों और अत्याचारो से वहाँ के बहुसंख्यक बहुत ही परेशान होगये हैं। निजाम सार्वभौम सत्ता के जाने से भयभीत नहीं है वरन जनता के हाथ में सत्ता सौंपने से घबराता है। मिर्जा इस्माइल ने अपने वक्तव्य में स्वंय ही कहा है कि स्वयं निजाम इस बात के लिये शंकित है कि वास्तविक अर्थों में उसका राज्य स्वतंत्र कहला भी सकता है या नहीं ? भीतरी और बाहरी

दोनों तरीकों से निजाम स्वतंत्र नहीं हो सकता। विदेशों की अन्तराष्ट्रीय राजनीति में उसे कोई स्थान नहीं और आन्तरिक शासन में बहुसंख्यक प्रजा को कोई भी स्थान नहीं है। सरदार पटेल ने कहा है कि भारतवर्ष हैदराबाद को तब तक सम्मिलित नहीं कर सकता जब तक कि हैदराबाद जनता को सत्ता न सौंप दे।

भारतीय सरकार ने जनमत गणना के लिये २७ नवम्बर १९४७ तक की मियाद दी थी, जिसके उत्तर में हैदराबाद ने लिखा कि हैदराबाद की वैधानिक स्थिति ऐसी नहीं कि वहाँ जनमत गणना का आवश्यकता पड़े। इस वर्ष अप्रेल में भी भारत सरकार ने फिर यही मसला उठाया था किन्तु समझौते के प्रमुख तथा हैदराबाद के प्रधानमंत्री लायकअली ने यह प्रस्ताव फिर ठुकरा दिया। अभी-अभी की समझौता वार्ता में यह स्पष्ट झलक उठा था कि जनमत गणना के नारे बुलन्द करके हैदराबाद भारत सरकार को हिलगाये रखना चाहता है। जैसा कि लायकअली का कहना है कि जनमत संग्रह विदेशी नामजद व्यक्तियों के अधिपत्य में है। इसका सीधा अर्थ यही है कि हैदराबाद एकदम स्वेच्छाचारी हो जाय। यदि जनमत संग्रह से भारत अब इन्कार कर दे तो हैदराबाद की सरकार को भारत सरकार के बदनाम करने का द्वार खुला पड़ा है। अतः भारत सरकार ने अपने अन्तिम मसौदे में यह स्पष्ट कर दिया है कि पहिले हैदराबाद में जनता का शासन स्थापित कर दिया जाय। इसके बाद ही अनुकूल एवं शान्त वातावरण में जनमत संग्रह का सवाल उठ सकता है। यह तो जनता के साथ दिल्लगी करना है कि जब उसकी शासन में कोई आवाज ही नहीं तो जनमत संग्रह का क्या अर्थ हो सकता है? हैदराबाद ने औषधियाँ और अनाज न भेजने के विषय में भारत सरकार पर जो आक्षेप किये हैं उसके उत्तर में भारत सरकार ने पूर्ण विवरण देते हुए स्पष्ट कर दिया है कि यह एकदम झूठा आक्षेप है।

अभी अभी हैदराबाद ने भारतीय संघ के प्रधान मंत्री पण्डित

नेहरू को तार दिया था कि वे इस मामले को सुरक्षा परिषद् के समक्ष लेजाना चाहते हैं। हैदराबाद भारत सरकार के साथ इसी प्रकार की चालबाजियाँ बरांबर गत वर्ष से खेलता चला आरहा है पर अब इस प्रकार की बातों से कुछ परिणाम अच्छे निकलने वाले नहीं हैं। क्योंकि इस प्रकार की अपील सुरक्षा परिषद् के दायरे के बाहर की चीज है। सुरक्षा परिषद् तो उन्हीं मामलों में हस्तक्षेप करने की अधिकारणी हैं जो स्वतंत्र राष्ट्रों के बीच पैदा होते हैं और जिनसे विश्व की अन्तराष्ट्रीय परिस्थिति के बिगड़ने का खतरा रहता है। हैदराबाद कोई स्वतंत्र राष्ट्र नहीं है और भारत उसके बीच के मतभेद से विश्व की अन्तराष्ट्रिय स्थित को कोई भी खतरा नहीं है। यथा-स्थिति समझौते के अनुसार "सार्वजनिक हित के तमाम मामले और मुहायदे जिनमें विदेशी मामले, सुरक्षा एवं यातायात भी शामिल है" तब तक कायम रहेगे जब तक यथास्थित समझौता प्रभाव शील है। इस समझौते का दूसरे अर्थों में दो देशों के बीच होने वाली सन्धि से मतलब है। समझोते की भूमिका में भी यह स्पष्ट ही लिखा है कि "ये मुहायदे और व्यवस्था जो सार्वजनिक हित के लिये की गई है तबतक कायम रहेगे जब तक कि दूसरी शासन व्यवस्था और मुहायदे नहीं हो जाते हैं।" इन शब्दों से ही यह स्पष्ट होजाता है कि निजाम हैदराबाद की आज भी वही वैधानिक स्थिति है जो १५ अगस्त १९४७ के पूर्व थी। निजाम को इस समझौते के अनुसार न तो विदेशी राष्ट्रों से सीधे सम्बन्ध कायम करने का ही अधिकार है और न किसी विदेशी राष्ट्र-संस्था में अपील करने का हक है। हो सकता है कि कुछ विदेशी राष्ट्र यह कहें कि हैदराबाद के पास युद्ध जारी रखने के लिये काभी सैन्य बल है और यदि सुरक्षा परिषद बीच बचाव न करे तो पाकिस्तान के बीच में पड़ जाने का पूरा अन्देशा है। यदि मौका आया तो भारत-संघ का सैन्य बल विदेशी राष्ट्रों के पहिले मुल्क को तो काट कर खत्म कर देगा। दूसरे तर्क का यह उत्तर है कि काश्मीर

में पाकिस्तान खुले आम सहायता प्रदान कर रहा है और यह भारत ही है जिसे शान्ति की चाह है और जिसके लिये समय समय पर शान्ति स्थापनार्थ वह पाकिस्तानी सीमाओं में घुसकर भी शत्रुओं को खदेड़ने से नहीं भय खाता। हैदराबाद के प्रधान मंत्री लायक अली ने भारत सरकार को पत्र लिखते हुए भारत सरकार पर आर्थिक, एवं शस्त्रों सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाने का आरोप किया है जिसका सरकारी तौर पर भारत सरकार उत्तर भी दे चुकी है और उससे हैदराबाद की पाकिस्तानी झूठ का पर्दा फाश भी हो गया है। हैदराबाद ने भारत सरकार पर इतने अधिक आरोप समय समय पर लगाये हैं कि विदेशों तक में हैदराबाद के प्रति अब सहानुभूति नहीं रही है। सुरक्षा परिषद् में हैदराबाद का मामला रखने के पूर्व निजाम को यह सोच लेना चाहिये कि वह हैदराबाद रियासत की जनता के लिये मामला पेश कर रहा है या व्यक्तिगत रूप से यह वास्तव में इस जमाने में आश्चर्य जनक बात है कि निजाम अभी भी स्वेच्छा चारी शासक है और जनता के नाम पर भयंकर से भयंकर अत्याचार और जुल्म रजाकारों से करवा रहा है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, हमारा यह विश्वास जमता जा रहा है कि हैदराबाद में निजाम और उनके पालतू रजाकारों के अगर यही जुल्म रहे तो कहीं हैदराबाद के भाषा के आधार पर खण्ड खण्ड न हो जाय। भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह वहाँ की जनता के अधिकारों को मान्यता दे, बल्कि इससे भी आगे बढ़ते हुए भारत सरकार को चाहिये कि वह यह स्पष्ट घोषित करदे कि रजाकार या शासन जो भी जनता के साथ अन्याय और जुल्म करेगा उस पर खुली अदालत में मुकदमा चलाया जायेगा। जब नरेम्बर्ग में जर्मनी के युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाया जा सकता है तो भारत सरकार अपने अन्दरूनी सुधार में बाधक होने वाले व्यक्तियों पर क्यों मुकदमा नहीं चला सकती? चारों तरफ से दूसरे प्रान्तों से घिरी हुई रियासत के सार्वभौम कहलाने

की इस प्रजातन्त्रवाद के समय में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। कोई भी राष्ट्र अपनी सीमाओं से घिरे हुए राज्य को विदेशी राष्ट्रों से सम्बन्ध रखने की इजाजत नहीं दे सकता। और न यही इजाजत दे सकता है कि वह राज्य अपनी मर्जी के अनुसार फौजी ताकत बढ़ाता चला जाय। भारत सरकार ने लायक अली का सुरक्षा परिषद् में मामला रखने के सवाल का मुंहतोड़ उत्तर भी दे दिया है और सुना है सुरक्षा परिषद् ने भी मामले को एजेन्डे में लेने से इसी कारणवश रद्द कर दिया है कि हैदराबाद स्वतन्त्र नहीं बल्कि अधीनस्थ राज्य है। फिर भी भारत सरकार को महज इस विश्वास और आधार पर ही बैठे रहने की आवश्यकता नहीं है कि उनका मामला पूर्णरूप से न्याय युक्त और पूर्ण युक्तिसंगत एवं वजनदार है। बल्कि भारत सरकार को चाहिये कि वह हमेशा निजाम की गतिविधि की पूर्ण जानकारी रखते हुए उसकी रोक करने तथा निजाम की असमर्थता और मूर्खता का पूरा-पूरा जवाब देती रहे।

उपसंहार

ता० २१ अक्टूबर १६४८ को हमारे प्रातः स्मरणीय चरितनायक सरदार वल्लभभाई पटेल की आयु के ७३ वर्ष सानन्द समाप्त होंगे। हमारे देश को नव प्राप्त स्वतन्त्रता के लिये इस युग पुरुष की हमें सबसे अधिक आवश्यकता है।

सरदार पटेल के परिवार में एकमात्र पुत्र श्री डाह्या भाई व पौत्र श्री विपिन हैं। उनकी पुत्री कुमारी मणिबेन हमेशा उनके साथ ही रहती हैं। पुत्र वधू सौभाग्यवती भानुमति हैं। यह संक्षिप्त परिवार भारतीय जनता का प्राण परिवार है और समस्त देश को इस आदर्श परिवार पर नाज है।

परमात्मा सरदार पटेल को देश की आजादी के लिये चिरायु करे।

वल्लभभाई विलायत को रवाना हो गये। वल्लभभाई का यह स्वभाव ही है कि वे जिस बात को पूरा करने के लिए जुट जाते हैं उसे बिना पूरा किये वे हटते ही नहीं।

विलायत पहुँचकर वल्लभभाई ने बड़ी ही मेहनत और लगन के साथ पढ़ाई आरम्भ करदी। लगातार १७ घण्टे पढ़ाई करते रहना उन्हीं का काम था। अपने निवास स्थान से वे एक लायब्रेरी में पढ़ने जाया करते थे जो उनके निवास स्थान से प्रायः ११ मील दूर थी। पढ़ने में इतने दत्तचित्त रहते थे कि कई बार तो पुस्तकालय का कर्मचारी उन्हें उठने के लिए कहता था। आखिर मजबूर होकर लायब्रेरी के बन्द होने पर उठना ही पड़ता था। विलायती वैभवपूर्ण वातावरण का उन पर जरा भी असर नहीं हुआ। आप वहाँ न तो कभी सिनेमा या विनोद-स्थानों में ही गये और न कभी उन्होंने ऐसी चीजों का स्पर्श किया जिनके लिये विलायत बदनाम है। वहाँ रहकर भी आपने अत्यन्त ही साधारण जीवन व्यतीत किया इसका परिणाम यह हुआ कि आप प्रथम श्रेणी में पास हुए और आपको ५० पौंड को छात्रवृति पारितोषिक रूप में प्रदान की गई। इसके अलावा उनकी चार बार की फीस भी उन्हें वापस इनाम के रूप में लौटा दी गई। उनके प्रोफेसर उनसे इतने खुश हुए कि उन्होंने अपनी ओर से एक सिफारिश-पत्र भी एक हाईकोर्ट के यहाँ के न्यायाधीश के नाम दिया कि यहाँ वे सरलतापूर्वक कोई उच्चपद प्राप्त कर सकें। अपनी असाधारण योग्यता के कारण वे उस परीक्षा में सब से अधिक प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी माने गये।

बैरिस्टर हो जाने के बाद आपने अहमदाबाद में आकर वकालत का कार्य आरम्भ कर दिया। यही वह समय और स्थान है जहाँ पटेल साहब की महात्मा गान्धी से मुलाकात हुई और पटेल साहब उनकी ओर आकर्षित हुए। पटेल साहब ने कुछ ही दिनों में गुजरात

प्रान्त की ओर से गान्धी जी को मुक्त कर दिया। पटेल साहब ने अपने अद्भुत कौशल से गुजरात प्रान्त में बात की बात में चतुर्मुखी जागृति पैदा करदी। तब से आज तक गुजरात और वल्लभभाई में केवल नाम का ही भेद रह गया है। वैसे गुजरात का नाम आते ही वल्लभभाई का स्मरण हुए बिना नहीं रहता। सारे देश को वल्लभ-भाई के ही कारण गुजरात पर नाज है, भरोसा है। जिस गुजरात ने हमें संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और अहिंसा का एकमात्र पैगम्बर प्रदान किया है, उसी गुजरात ने हमें वल्लभभाई जैसा अद्वितीय नेता भी प्रदान किया है। महात्मा गान्धी और वल्लभभाई पटेल भारतीय आदर्शवाद रूपी रथ के दो चक्र के समान हैं। यदि एक आध्यात्मिक शक्ति है तो दूसरा नैतिक शक्ति का प्रतीक है। सचाई तो यह है कि गान्धी जी के हथियार का सतेज पानी वल्लभभाई पटेल ही हैं। हमें हथियार जैसा दृढ़ कलेजा भी चाहिये और हथियार भी तेज पानी वाला चाहिये। यदि देश को ऐसा संयोग प्राप्त न हुआ होता तो हम साम्राज्यवाद से टक्कर लेकर विजयी भी न हो पाते। दोनों नररत्नों को पैदा करने का सौभाग्य गुजरात को ही प्राप्त हुआ है। इस्पात और मोम दोनों को पैदा करने का श्रेय गुजरात को ही है।

जब महात्मा गान्धी दक्षिणी अफ्रीका से प्रथम महायुद्ध के बीच में लौटे तो उन्होंने भारतीय सरकार से युद्ध छेड़ने के लिये नैतिक हथियार उठाये। उस समय वल्लभभाई ३० वर्ष के बैरिस्टर थे। जवानी ही ऐसी अवस्था है जिसमें मनुष्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकता है, यही मनुष्य की निर्णायक अवस्था है। पटेल साहब भी बैरिस्टरी में उस समय चरमोत्कर्ष पर ही थे। ऐसे ही समय उन्हें निश्चय करना था कि आखिर जीवन को किस लक्ष्य की पूर्ति का साधन बनाया जाय ?

१६१८ में गुजरात में भयङ्कर अकाल पड़ा। किसानों ने लगानों

की माफी के लिए सरकार से अनुनय-विनय की, लेकिन आँखों से हमेशा ही अन्धी अंग्रेजी सरकार विदेशी होने के कारण देश के लोगों के कष्टों पर क्यों विचार करने लगी ? उनको तो लगान मिलना ही चाहिये था। यही वह समय था जबकि स्वदेश आने पर महात्मा जी ने सबसे पहिली बार सत्याग्रह के अस्त्र का इस्तैमाल किया। इस अमोघ अस्त्र के द्वारा दक्षिणी अफ्रीका में वे अपना सिक्का जमा चुके थे। अकाल के कारण गुजरात की जनता त्रस्त और परेशान हो रही थी। अंग्रेजों ने उन्हें बहुत पहिले से ही निरस्त्र कर दिया था। अतः उनमें हथियार द्वारा लड़ाई लड़ने की भी सामर्थ्य न थी। अभी तक गुजरात की जनता ने राजनीतिक हलचलों में किसी भी प्रकार का भाग नहीं लिया था, लेकिन वह दक्षिणी अफ्रीका के विजयी गुजराती नेता महात्मा गान्धी को अच्छी तरह जानती थी। इसके अलावा गुजरात सत्याग्रह की जन्मजात भूमि है जैसे पंजाब समर की भूमि। सत्याग्रह की उत्पत्ति ही गुजरात से हुई है।

अतः गुजरात के लोगों के कष्ट-निवारण के लिये महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह करने का उपदेश दिया। गुजरात के किसान इसके लिये फौरन ही तैयार हो गये क्योंकि वे अत्यन्त ही दुःखी थे और उन कष्टों से छुटकारा पाने के लिये किसी मार्ग की खोज ही कर रहे थे। उन्हें वल्लभभाई के रूप में परमात्मा ने नेता भी प्रदान कर दिया। नेता के मिलते ही बरसों की दबी हुई जनता की कष्ट की आग सारे गुजरात में व्याप्त हो गई। सरदार पटेल ने उनका नेतृत्व किया। गुजरात के लिये महात्मा गान्धी को एक सहायक की आवश्यकता थी और पटेल साहब के रूप में वह उनको मिल गया। पटेल साहब को ज्यों ही महात्मा गान्धी का सम्पर्क हुआ कि उनकी जिन्दगी ही पलट गई। वह दिन देश के लिये बड़े ही सौभाग्य का दिन था। गान्धी जी का हर बात में मजाक उड़ाने वाला वैभवसम्पन्न बैरिस्टर जिस दिन

गान्धी जी के महान आकर्षण के चक्र में उलझा वह दिन देश के उत्थान के लिये एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दिन के रूप में स्मरण किया जायगा। युवक पटेल ने गान्धी जी के सम्पर्क में आते ही समस्त वैभव को लात मारदी और साथ ही वैरिस्टरी भी त्याग दी।

अब क्या था ? एक लोहे के हृदय वाले युवक को पाकर गान्धीजी ने गुजरात के गाँव-गाँव में दौरा करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने किसानों में जोश और जागृति भरदी। राजनीतिक गतिविध की जानकारी को परम आवश्यकता है। दोनों ने मिलकर जनता को नौकरशाही से टक्कर लेने के लिये तैयार किया। लोगों ने इरादा कर लिया कि लगान नहीं देंगे चाहे नौकरशाही हमें बरबाद ही करदे। सत्याग्रह की आग एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गयी। इस आग को देखकर अंग्रेजी नौकरशाही अवाक रह गयी। उसने इस आग का मुकाबला करना उचित नहीं समझा। सरकार ने गरीब किसानों का लगान माफ कर दिया। सरकार ने अप्रत्यक्ष: रूप से अपनी हार स्वीकार करली।

यह गुजरात की जीत थी ! जब हथियार से लैस सरकार अहिंसा के सामने घुटने टेक दे तो उसे भी हारी हुई नहीं मानी जा सकती। गुजरात ने मुकाबिला करने के रूप में किया ही क्या, जिसका ब्रिटिश सरकार अस्त्रों से सामना करती। जब सत्याग्रह विरोधी को सामना करने लायक स्थिति में ही नहीं पहुँचने देता तो उसे सत्याग्रहियों की बात मन मारकर ही मान लेनी पड़ती है। पर ताकत होते हुए भी मन मारकर शत्रु की बात मान लेने के लिये सरकार को गर्वान्वित तो होना ही चाहिये ?

● श्रीयुत जी० वी० मावलंकर प्रेसीडेन्ट भारतीय पार्लिमेन्ट ने सरदार वल्लभभाई पटेल की आरम्भिक जीवनी पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—